

॥ कोबातीर्थमंडन श्री महावीरस्वामिने नमः ॥

॥ अनंतलब्धिनिधान श्री गौतमस्वामिने नमः ॥

॥ गणधर भगवंत श्री सुधर्मस्वामिने नमः ॥

॥ योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ चारित्रचूडामणि आचार्य श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर

पुनितप्रेरणा व आशीर्वाद

राष्ट्रसंत श्रुतोद्धारक आचार्यदेव श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा.

जैन मुद्रित ग्रंथ स्केनिंग प्रकल्प

ग्रंथांक : १



श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-३८२००७ (गुजरात)
(079) 23276252, 23276204
फेक्स : 23276249

Websiet : www.kobatirth.org

Email : Kendra@kobatirth.org

शहर शाखा

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
शहर शाखा
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
त्रण बंगला, टोलकनगर
परिवार डाइनिंग हॉल की गली में
पालडी, अहमदाबाद - ३८०००७
(079) 26582355

॥ अहम् ॥

श्रीशांतिनाथाय नमः ॥

बृहत्पर्युषणा निर्णयः

पूर्वार्द्ध. प्रथम—दूसरा खंड.

कर्त्ता

मान् परमपूज्य उपाध्यायजी श्री १००८ श्री सुमति-
सागरजी महाराजके लघु शिष्य मुनि-
श्रीमणिसागरजी महाराज.

प्रसिद्ध कर्त्ता

लकत्ता, मुर्शिदाबाद, वीकानेर, जयपुर, जेसलमेर,
मुंबई, धूलिया, खलीसगांव वगैरह शहरोंके
जैनसंघकी द्रव्य साहायतासे

मन् अभयदेवसूरि ग्रंथमालाके कार्यवाहक कलकत्ता. तथा
शिवसूरि ज्ञानभंडारके कार्यवाहक, शा.पानाचंद भगुभाई, सुरत.

मूलग्रंथ बी. एल. प्रेस, कलकत्तामें छपा.

प्रिंटिंग, पि आत्माराम प्रिंटिंग अँड पब्लिशिंग कंपनी, श्री. वि.
जावडेकर द्वारा आत्माराम छापखाना धूलियामें छपा.

श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४४७. विक्रम संवत् १९७८.

वैशाख शुक्ल ३ अंगुल वार.

वार ३१५० कौपी.] मेट [मूल्य सत्य ग्रहण.

॥ श्रीचंद्रप्रभस्वामिने नमः ॥

याद रखने योग्य उपयोगी सूचना-

१-आत्मार्यो हे ! भव्यजीवों खरतरगच्छ, तपगच्छ, कमलागच्छ, अंचलगच्छ, पायचंदगच्छादिकके आग्रहकीबातेकरनेमें आत्मकल्याण मुक्तिनहीं है, किंतु जिनाज्ञानुसारभावसे शुद्धधर्मक्रियाकरनेमें मुक्ति है। इसलिये अपने २ गच्छकी परंपरा रुठीको छोड़कर जिनाज्ञानुसार सत्यबातकी परीक्षाकरके उसमुजबधर्मकार्यकरो उससे श्रेयहो।

२- श्रीसर्वज्ञ भगवान्के कहे हुए अतीवगहनाशयवाले, अपेक्षा सहित, अनंतार्थयुक्त जैनशास्त्र अविस्वादी हैं, मगर “कथं देसगहणं, कथं धिष्णंति निरवसेसाइं । उक्कमकम जुत्ताइं, कारण वसओ निरुत्ताइं ॥ १ ॥” श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञासिखीकी वृत्तिके इस महावाक्य मुजब-सामान्य, विशेष, ओपमा, वर्णनक, उत्सर्ग, अपवाद, विधि, भय, निश्चय, व्यवहारादिक संबंधी शब्दार्थ, भावार्थ, लक्ष्यार्थ, वाच्यार्थ, संबंधार्थादि भेदोंवाले गंभीरार्थके भावार्थ संबंधी शास्त्रवाक्योंको समझे बिनाही अभी अविस्वादी सर्वज्ञशासनमें कितने गच्छोंके भेदोंका आग्रह बढ गया है- देखो- “गच्छना भेद बहु नयण निहालतां, तत्त्वनीवातकरतां न लाजें । उदरभरणादि निजकाज करतांथ कां, मोहनडिया कालिकालराजें ॥ १ ॥ देवगुरुधर्मनी शुद्धि कहो किमरहे, किमरहे शुद्ध श्रद्धान आणो । शुद्धश्रद्धाबिना सर्वकरियाकरी, छारपर निपणो तेह जाणो ॥ २ ॥ पापनहीं कोई उत्सूत्रभाषण जिस्सुं, धर्मनहीं कोई जगसूत्र सरिखो । सूत्र अनुसारें जे भविक किरिया करें, तेहो शुद्ध चारित्र परिखो ॥ ३ ॥” इत्यादि बातोंको विचार कर आत्मार्योंको अपना असत्य आग्रहको छोड़कर अपनी आत्माको हितकारी, सुखकारी होवे, वैसा सत्य ग्रहण करना चाहिये।

३- कितनेक मुनिमहाशय वर्षोंवर्ष पर्युषणापर्वके व्याख्यानमें अधिकमहीनेके व श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंके निषेध संबंधी चर्चा उठाते हैं, उससे भोले लोगोंको अनेक तरहकी शंकायें उत्पन्न होती हैं, और कितनेही महाशयतो इन बातोंमें तरचढहिसे सत्य असत्यका निर्णय किये बिनाही अपने पक्षको सत्य मान्य करके दूसरोंको झूठे ठहरानेका एकांत आग्रह करते हैं । शास्त्रोंमें एकांत आग्रहको और

[३]

शंकारूपी शल्यको एकप्रकारसे मिथ्यात्वही कहा है, उसका निवारण करनेकेलिये और शास्त्रानुसार सत्य बातोंका निर्णय बतलानेकेलिये वर्तमानिक सर्व शंकाओंका समाधान सहित मैंने यह ग्रंथ बनाया है, मगर मैरी तरफसे किसी तरहका नवीन विवाद शुरू करनेकेलिये नहीं बनाया. इसलिये इस ग्रंथके बनानेमें सुबोधिका, किरणावली वां चनेवाले कितनेक विद्वान् मुनि महाशयही कारणभूत हैं, पाठक गण इसमें मैरेको किसी तरहका दोषी न समझें, मैं तो उन्हींकी शंकाओंका समाधान लिखा है.

४- शुद्धश्रद्धाबिना द्रव्यसे व्यवहारमें चाहे जितनेधर्मकार्य करें, तो भी आत्म कल्याण करने वाले नहीं होते, और आग्रही लोगोंकी अभी अलग २ प्ररूपणा होनेसे भोले जीवोंको जिनाज्ञानुसार सत्य बातकी प्राप्ति होना बहुत मुश्किल होरहा है. और अविसंवादी रूप आगम-पंचांगी-प्रकरण-चरित्रादि सर्वशास्त्रोंको मानने वालोंमें पर्युषणा-छ कल्याणक-सामायिकादि विषयों संबंधी शास्त्रकारमहाराजोंके अभिप्रायको न समझनेसे व्यर्थही विसंवाद होरहा है, उसकानिर्णय करनेके लिये और भव्यजीवोंको शुद्धश्रद्धारूप सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्तिके उपकारकेलिये मैंने यह ग्रंथ बनाया है। मगर किसी गच्छके साधु-श्रावकोंको किसी अन्य गच्छमें ले जानेके लिये नहीं बनाया. किसी गच्छमें रहो, परंतु आपसमें राग द्वेष निंदा ईर्ष्या अंगतविरोधादिक बखेडे छोडकर शुद्ध श्रद्धापूर्वक आत्मिक कल्याण करनेके लियेही इस ग्रंथकी रचना करनेमें आयी है, इसलिये पक्षपात छोडकर इस ग्रंथको यांवार पूरेपूरा वांच, विचार, मननकर सत्य समझकरके शांति पूर्वक शुद्ध श्रद्धासहित अपना आत्मसाधन करके आत्मार्या पाठकगण मैरे परिश्रमको सफल करेंगे.

५- जिनाज्ञानुसार शुद्धश्रद्धापूर्वकभावसे धर्मकार्य करनेका योग महान्पुण्योदयहोवे तब प्राप्तहोता है, इसलिये उसमें लोकपूजा बहुत समुदायवगैरकी प्रवृत्तिमुजब करना योग्यनहीं है. इसकालमें आत्मार्याअल्पही होते हैं. कदाचित् गच्छ-गुरुपरंपरा-बहुत समुदाय वगैरह बाह्यकारणोंसे आज्ञामुजब क्रियाकरनेका योग न बनसके तोभी शुद्धश्रद्धा-प्ररूपणा तो आज्ञामुजब सत्यबातोंकीही करना योग्य है, उससे भवांतरमें सुलभबोधिकी प्राप्ति हो सकेगी. मगर गुरु-गच्छ-लोकसमुदायके आग्रहसे जिनाज्ञा बाहिर क्रिया करतेहुए आज्ञामुजब सत्यबातोंका निषेध करनेसे भवांतरमें दुर्लभबोधिकी प्राप्ति होती है,

[४]

इसलिये भवामिरुयोंको गुरु गच्छ व लोक समुदायादिकका पक्षरखने-
के बदले जमालिके शिष्योंकी तरह जिनाज्ञाका पक्ष रखनाही योग्य है,
अर्थात्-जैसे-अपने गुरु जमालिके उत्सूत्रप्ररूपणाके पक्षको छोड़कर
बहुत भव्यजांव भगवान्की आज्ञामुजब माननेलगेथे, तैसेही-अभीभी
आत्मार्थियोंको करना योग्य है. यही सम्यक्त्वका मुख्य लक्षण है.

६-मैंरे बनाये इस एक ग्रंथके सामने अनेकग्रंथ लिखेजानेकी
मैरेको कोई परवाह नहींहै, देखो-जैसे एकवीतराग सर्वज्ञभगवान्के
परोपकारी जैन आगमोंके विरुद्ध हजारों मतवादी अनेक तरहसे अ-
पना २ कथन करते हैं. मगर तत्त्व दृष्टिसे आत्महितकारी सत्य बात
क्या है, यही देखा जाता है. तैसेही-मैंरे बनाये इस ग्रंथपरभी १-२
नहीं; परंतु १०-२० लेखकभी अपना २ विचार सुखसे लिखें. मगर
जिनाज्ञानुसार सत्य बात क्या है. यही देखना है. झूठे मतवादियोंका
यही स्वभाव है, कि- हजारों सत्य बातें छोड़ देते हैं, और अतिश-
योक्तिमें या क्रोधमें आकर क्लेश बढ़ानेलगजातेहैं, मगर अपनी बात
को छोड़ते नहीं. वैसे इस ग्रंथपर न होना चाहिये यही प्रार्थनाहै.

७- इस ग्रंथमें पर्युषणा संबंधी अधिक महीनेके ३० दिनोंकी
गिनतीसहित आषाढचौमासीसे ५० वें दिन दूसरे श्रावणमें या प्रथम
भाद्रपदमें पर्युषणापर्वका आराधन करनेका तथा श्रावण भाद्रपद आ
सोज अधिक महीने होंवे तब पर्युषणाके पीछे कार्तिकतक १०० दिन
ठहरनेका खरतर गच्छ, तपगच्छ, अंचलगच्छ, पायचंदगच्छादि सर्व
गच्छोंके पूर्वाचार्योंके वचनानुसार और निशीथचूर्णि, बृहत्कल्पचू-
र्णि, पर्युषणाकल्पचूर्णि, स्थानांग सूत्रवृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रपाठा-
नुसार अच्छी तरहसे साबित करके बतलाया है। जैसे अधिक म-
हीना होंवे तोभी ५० दिने पर्युषणापर्व करनेकी सर्व शास्त्रोंकी आज्ञा
है, वैसेही-अधिकमहीना होवे तोभी पीछे हमेश ७०दिन रहनेकी आ-
ज्ञा किसीभी शास्त्रमें नहीं है. समवायांगसूत्रका पाठ तो सामान्य
रीतिसे अधिक महीना न होंवे तब ४ महीनोंके वर्षाकाल संबंधी है,
उसका भावार्थ समझे बिना अधिकमहीना होवे तब अभी पांच म-
हीनोंके वर्षाकालमेंभी उसी सामान्य पाठको आगे करना और १००
दिन पीछे रहनेसंबंधी अनेक शास्त्रोंके विशेष पाठोंकी बातको छोड़
देना यह सर्वथा अनुचित है।

८- लौकिकटिप्पणामें दो श्रावणादिमहीने होंवे, तब पांचमहीनोंका
वर्षाकाल मान्य करता यह बात अनुभवसिद्ध प्रत्यक्ष प्रमाणानुसार

[५]

है, तो भी उनको ४ महीनों का वर्षाकाल कहने से मिथ्या भाषण करने का दोष आता है। यदि अभी वर्तमान में अधिक महीने श्रावणादि होने पर भी जैनशास्त्रानुसार ४ महीनों का वर्षाकाल मानेंगे, तो पौष-आषाढ अधिक होने वाला ८८ ग्रहसहित जैनपंचांग भी अभी मानना पड़ेगा। मगर वो जैनपंचांग तो अभी विच्छेद है, इसलिये लौकिक पंचांग मुजब व्यवहार करने में आता है। अब यहां पर विवेकबुद्धि से न्यायपूर्वक विचार करना चाहिये, कि-अभी पौष-आषाढ महीने की वृद्धि वाला ८८ ग्रह सहित जैनपंचांग विच्छेद भी मानना व लौकिक पंचांग मुजब व्यवहार भी करना और लौकिक पंचांग मुजब अधिक महीने दो श्रावण, या दो भाद्रपद, या दो आसोज भी मानने फिर ४ महीनों का वर्षाकाल भी कहना, यह तो 'बालचेष्टा' की तरह पूर्वापर विरोधी वि-संवादी कथन करना विवेकी विद्वानों को सर्वथा ही योग्य नहीं है। अधिक श्रावणादि महीने नहीं मानने होंगे तो अभी अधिक पौषादि वाला जैनपंचांग बतावो अथवा लौकिक पंचांग मुजब अधिक श्रावणादि मानो तो अधिक पौषादिका बहाना बतलाकर ४ महीनों का वर्षाकाल कहने का आग्रह छोड़ो। अधिक श्रावणादि भी मानेंगे और ४ महीनों का वर्षाकाल भी कहेंगे, यह कभी नहीं बन सकेगा। विच्छेद जैनपंचांग की बात का आश्रय लेना और प्रत्यक्ष विद्यमान बात का निषेध करना, यह न्याय विरुद्ध है। पहिले पौष आषाढ बढ़ते थे तब भी फाल्गुन और आषाढ चौमासा पांचर महीनों से होता था और अभी श्रावणादि बढ़ते हैं तब कार्तिक चौमासा भी पांच महीनों का होता है। अभी जैनपंचांग विच्छेद होने से लौकिक पंचांग मुजब अधिक श्रावणादि मान्य करके उस मुजब व्यवहार करना युक्तियुक्त व पूर्वाचार्यों की आज्ञानुसार है, जिस पर भी अधिक श्रावणादि होंगे, तब पांच महीनों के वर्षाकाल में ५० दिने दूसरे श्रावण में या प्रथम भाद्रपद में पर्युषणापर्व आराधन करने का उल्लंघन करना और पीछे १०० दिन रहने की जगह ७० दिन रहने का आग्रह करना सर्वथा अनुचित है। देखो-

यद्यपि जैन पंचांग में ४ महीनों का वर्षाकाल कहा है, परंतु जैन पंचांग के अभाव से अभी लौकिक पंचांग मुजब श्रावणादि बढ़ते हैं, तब पांच महीनों का वर्षाकाल भी मानना पड़ता है, इसलिये इसका निषेध करना सर्वथा अनुचित है। बस ! पौष-आषाढ महीने की वृद्धि सहित ४ महीनों के वर्षाकाल वाला जैन पंचांग शुरू बतावो या लौकिक पंचांग मुजब श्रावणादि बढ़ें तब पांच महीनों का वर्षाकाल

[६]

मान्य करो और जब पांच महीनोका वर्षाकाल मान्य हुआ तो फिर अधिकमहीना निषेध करनेकी व पर्युषणाके पीछे ७० दिन हमेशा रखने वगैरहकी सर्व बातें आपही आप निष्फल हो जाती हैं

इसतरहसे अधिकमहीनेकेनिषेधसंबंधी धर्मसागरजीने 'कल्प क्रि-
रणावली'में, जयविजयजीने 'कल्प दीपिका'में, विनयविजयजीने 'सु-
बोधिका'में, कांतिविजयजी-अमरविजयजीने 'जैन सिद्धांत समाचारी'
में, शांतिविजयजीने 'मानवधर्मसंहिता'में, वल्लभविजयजीने 'जैनपत्र'में,
विद्याविजयजीने 'पर्युषणा विचार'में, कुलमंडनसूरिजीने 'विचारामृत
संग्रह'में, हर्षभूषणजीने 'पर्युषणास्थिति'में, और वर्तमानिक चर्चाके
हैंडबिलें, किताबें वगैरहमें जो जो शंकायें कीहैं, उन सर्व शंकाओंका
खुलासा पूर्वक समाधान इस ग्रंथकी भूमिकामें व पीठिकामें और
इस ग्रंथमें अच्छी तरहसे लिखनेमें आयाहै, इसलिये जिनाज्ञानुसार
धर्मकार्य करनेकी इच्छावाले, सत्यतत्वाभिलाषी, आत्माहितैषी पाठक
गण इसग्रंथको पूर्णतया वांचकर सत्यसार ग्रहण करें।

९-तीर्थंकर भगवान्के च्यवन-जन्म-दीक्षादिकोंको कल्याणक मा-
ननेका आगमानुसार अनादि सिद्ध है, इसलिये श्री महावीरस्वामि-
भी देवलोकसे देवानंदामाताके गर्भमें आषाढ शुदी ६ को आये; उन-
को प्रथम च्यवन कल्याणक, और आसोजवदी १३ को देवानंदामा-
ताके गर्भसे त्रिशलामाताके गर्भमें आये; सो गर्भापहाररूप (गर्भसंक्र-
मणरूप) दूसराच्यवन कल्याणक माननेका स्थानांग-आचारांग-दशा-
श्रुतस्कंधादिक आगम पंचांगी प्रकरण चरित्रादि अनेक शास्त्रानुसा-
र और वडगच्छ, चंद्रगच्छ, उपकेशगच्छ (कमलगच्छ) खरतर-
गच्छ, तपगच्छ, अंचलगच्छ, पायचंद्रगच्छादि अनेक गच्छोंके पूर्वा-
चार्योंके ग्रंथानुसार अच्छी तरहसे सिद्ध करके घतलायाहै। च्यवन-
जन्म-दीक्षादिकोंको चाहे वस्तु कहो, चाहे स्थानकहो, चाहे कल्या-
णक कहो। इन तीनोंबातोंमें प्रसंगोपात संबंधानुसार पर्याय वाचक
एकार्थवाले शब्द अलग २ हैं, मगर सबका भावार्थ एकही है, उस-
बातकाभेद समझे बिनाही च्यवन-जन्म-दीक्षादिकाको वस्तु-स्थान
कहकर कल्याणक पनेका निषेध करके आगमार्थरूप पंचांगीको उ-
त्थापनकरनेके दोषी बनना किसीकोभी योग्य नहीं है।

१०- श्रीवीरप्रभुके आषाढ शुदी ६ को प्रथम च्यवनकल्याणक
मान्यकरके; आसोजवदी १३ को दूसरेच्यवनको कल्याणकपनेका नि-
षेध करनेवालोंको न्यायबुद्धिसे विचार करना चाहिये, कि-तीर्थंकर

[७]

भगवान्केच्यवनकल्याणकसमय उनकी माता १४ महास्वप्न आकाशसे उत्तरतेहुपदेखतीहैं, उसीसमय तीनजगतमें उद्भयोत होता है य सर्व संसारीप्राणीमात्रकी सुखकीप्राप्तीहोती है, और इन्द्रमहाराजका आसन चलायमान होनेसे अवधिज्ञानसे भगवान्को देखकर विधिपूर्वक पूर्णभक्तिसहित नमुत्थुणरूप नमस्कारकरके तत्काल माताके पासआकर १४ महास्वप्न देखनेसे स्वप्नोंके अनुसार तीनजगतके पूज्यनी क तीर्थंकर पुत्र होनेका कहकर इन्द्रमहाराज अपने स्थानपरजाते हैं. और प्रभातसमय फजरमें राजा स्वप्न पाठकोंसे १४ महास्वप्नोंकाफल पूछताहै, तब तीर्थंकर पुत्र होनेका सुनकर हर्ष सहित महोत्सव करता है, और इन्द्र महाराज देवताओं द्वारा उस रोजसे भगवान्के माता-पिताके घरमें धन धान्यादिकसे राज्य ऋद्धिकीवृद्धि करवातेहैं इत्यादि तीर्थंकरभगवान्के च्यवनकल्याणकके कार्यहोतेहैं, यही सर्व कार्य आषाढशुदी ६के रोज भगवान् देवानंदामाताके गर्भमें आये; तब नहीं हुप, किंतु आसोज वदी १३के रोज त्रिशलामाताके गर्भमें आये; तब उससमय हुपहैं, क्योंकि देखो-आषाढ सुदी ६ को तो प्राचीन कर्मके उदयसे भगवान् ब्राह्मणीदेवानंदामाताके गर्भमें आये. और ८२दिनतकवहां ठहरनापडा, उनको कल्पसूत्रादिक शास्त्रोंमें अच्छेरा कहाहै, इसलिये ८२ दिन तकतो इन्द्रादिक किसीकोभी तीर्थंकरभगवान्के उत्पन्न होनेकी मालूम न पड़ी, मगर संपूर्ण ८२ दिन गयेबाद इन्द्रमहाराजको अवधिज्ञानसे मालूमपड़ी उसीसमय पूर्णहर्षसहित नमुत्थुणकिया और हरिणेगमेपिदेवको आज्ञाकरके क्षत्रियाणीत्रिशला माताके गर्भमें पधराये, तब त्रिशलामाताने(देवानंदाके १४महास्वप्न हरणकरनेका १स्वप्न नहीं देखा-किंतु) तीर्थंकर भगवान्के च्यवन कल्याणककी सूचनाकरने वाले १४ महास्वप्न आकाशसे उत्तरते हुप और अपने मुखमें प्रवेश करते हुप देखे हैं. इसलिये खास कल्पसूत्रके मूल पाठमेंभी “एष चउद्दस सुमिणा, सव्वा पासेई तिस्थयर माया । जं रयणिं वक्कमई, कुंच्छिसि महायसो अरिहा” अर्थात्-जिस समय तीर्थंकर भगवान् माताके गर्भमें आकर उत्पन्न होतेहैं, उस समय यह १४ महास्वप्न सर्व तीर्थंकरमहाराजोंकी मातायें देखतीहैं, वैसेही-त्रिशलामातानेभी १४ महास्वप्न देखेहैं, इसलिये त्रिशलामाताके गर्भमें आनेकोही शास्त्रकार महाराजोंने च्यवन कल्याणक मान्य कियाहै, इसीकारणसे समवायांगसूत्रवृत्तिमें देवानंदामाताके गर्भसे त्रिशला माताके गर्भमें आनेको अलग भव गिनकर तीर्थंकर

[८]

पनेमें प्रकट होनेकालिखाहै. और 'महापुरुष चरित्र' में तथा 'त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित्र' आदिक प्राचीन शास्त्रोंमेंभी ८२ दिन गये बाद इन्द्रका आसन चलायमान होनेसे अवधिज्ञानसे भगवान्‌को देखकर नमुत्थुण किया और त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये, जब त्रिशलामाता-ने १४ महास्वप्न देखे, तब खास इन्द्रने त्रिशलामाताके पासमें आकर तीर्थकर पुत्र होनेका कहा है, और फजरमें स्वप्न पाठकोंसेभी तीर्थ-कर पुत्र होनेका सुनकर सबको तीर्थकर भगवान्‌के उत्पन्न होने-की मालूम होगई. इसलिये कल्पसूत्रमें जो नमुत्थुणका पाठ है, सो-मी आसोज वदी १३ के दिन संबंधी है, किंतु आपाठ शुदि ६ के दि-न संबंधी नहीं है, क्योंकि देखो- 'नमुत्थुण करके त्रिशलामाताके ग-र्भमें पधराये' ऐसा कल्पसूत्रादिमें खुलासालिखाहै, मगर आपाठ शु-दी ६को आसनप्रकंपनसे नमुत्थुण किया और फिर उसके बादमें ८२ दिन गये पीछे त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये. या ८२दिन तो इन्द्रको विचारकरते चलेगये. वा पूरे ८२ दिन गयेबाद आसोज वदी १३ को फिर आसन प्रकंपनसे त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये. अथवा ८२दिन ठहरकर पीछे त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये. ऐसे पाठ किसीभी शा-स्त्रमें नहीं है. मगर ८२दिन तक तो मालूमभी नहीं पडी, परंतु ८२दिन जाने बाद आसन प्रकंपनहोनेसे मालूम पडी, तब नमुत्थुण किया और उसी रोज पधराये, ऐसे पाठ तो "महापुरुष चरित्र" में तथा "त्रि-षष्टिशलाका पुरुष चरित्र" आदि अनेक प्राचीन शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक प्रत्यक्ष मिलतेहैं, इसलिये आसोज वदी १३ कोही 'नमुत्थुण' वगैरह च्यवन कल्याणकके तमाम कार्य होनेसे आगम पंचांगीकी श्रद्धावालोंको व श्रीवीरप्रभुकी भक्तिवालोंको यह दूसरा च्यवनरूप कल्याणक मान्य करनाही उचित है, वस ! आसोज वदी १३ कोही नमुत्थुण करने वगैरह च्यवन कल्याणकके तमाम कार्य होनेका मा-न्यकरो या आपाठ शुदी ६ को नमुत्थुण करने वगैरह च्यवन कल्या-णकके तमाम कार्य होनेका खुलासा पूर्वक शास्त्रपाठ बतलाओ, व्यर्थ विवाद करनेमें कोई सार नहीं है.

११- श्रीआदीश्वर भगवान्‌के राज्याभिषेकमें तो कोईभी क-ल्याणकके लक्षण नहीं हैं, मगर गर्भापहारसे गर्भ संक्रमणरूप दूस-रे च्यवनमें तो च्यवन कल्याणकके सर्व लक्षण प्रत्यक्ष मौजूदहैं, इ-सलिये उसका भावार्थ समझे बिनाही राज्याभिषेककी तरह गर्भाप-हारकोभी कल्याणकपनेका निषेध करना यहभी बे समझ है।

[९]

१२- श्री आदीश्वरभगवान् १०८ मुनियोंके साथ 'अष्टापद'पर मोक्ष पथारे सो अच्छेरा कहतेहैं, तोभी उनको मोक्ष कल्याणक माननेमें कोईभी बाधा नहीं आसकती. तैसेही-श्रीवीरप्रभुकेभी देवान्-दा माताके गर्भमें अनेसे विशलामाताके गर्भमें जाना पडा. सो अच्छेरारूप कहते हैं, तोभी उनको च्यवनकल्याणक माननेमें कोईभी बाधा नहीं आसकती. इसलिये अच्छेरा कहकर कल्याणकपनेका निषेध करना यहभी वे समझही है.

१३- और श्री मल्लिनाथस्वामि स्त्रीपनेमें तीर्थकर उत्पन्न हुएहैं, तोभी चौबीस तीर्थकर महाराजोंकी अपेक्षासे सामान्यतासे पुरुषपनेमें कहनेमेंआतेहैं. तैसेही श्रीवीरप्रभुकेभी छ कल्याणक आचारांग-स्थानांगादि आगमोंमें विशेषतासे खुलासापूर्वक कहेहैं, तोभी 'पंचाशक' में सर्व तीर्थकर महाराजोंकी अपेक्षासे सामान्यतासे पांच कल्याणक कहेहैं, उसकाभावार्थ समझे बिनाही सर्वजिनसंबंधी पांच कल्याणकोंका सामान्य पाठको आगे करके आचारांग-स्थानांगादि आगमोंमें कहे हुए विशेषतावाले छ कल्याणकोंका निषेधकरना यह भी वे समझका व्यर्थही आग्रह है।

१४-इसतरहसे आगमपंचांगीके अनेक शास्त्रानुसार तीर्थकर, गणधर, पूर्वधरादि प्राचीन पूर्वाचार्योंके कथनमुजब गर्भापहारको दूसरा च्यवनरूप कल्याणकपनाप्रत्यक्षसिद्ध होनेसे.श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने चितोडमें छठे कल्याणककी नवीनप्ररूपणाकी, पहिले नहीं थी, ऐसा कहनाभी वे समझसे व्यर्थही है।

१५-और गर्भापहाररूप दूसरे च्यवनकल्याणकके अतीव उत्तम कार्यको 'सुबोधिका' टीकामें अतीव निंदनीक कहकरके निंदाकीहै, सोभी भगवान्की आशातनाकारक होनेसे सम्यक्त्वको व संयमकी हानीपहुंचानेवालीहै, उसका तत्त्वदृष्टिसे विचारकियेबिनाही विद्वान् कहलानेवाले सर्व मुनिमहाराज वर्षोंवर्ष पर्युषणापर्वके मांगलिक रूप व्याख्यान समय ऐसी अनुचित बातको वांचते हैं, यह बड़ीही शर्मकी बात है, भवभीरू आत्मार्थियोंको ऐसा करना कदापि योग्य नहीं हैं। इन सर्व बातोंका विशेष निर्णय प्रथम भागकी भूमिकामें और इस ग्रंथके उत्तरार्द्धमें अच्छी तरहसे लिखनेमें आयाहै, उनके वांचनेसे सर्व बातोंका निर्णय हो जावेगा.

१६- सामायिकमें प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे हरियावही करनेसंबंधीभी आवश्यकचूर्णि-बृहद्वृत्ति-लघुवृत्ति-नवपदप्रकरण विवरणरूपवृत्ति-दूसरीवृत्ति-श्रावकधर्मप्रकरणवृत्ति-

[१०]

वंदितसूत्रचूर्णि-श्राद्धदिनकृत्यसूत्रवृत्ति-पंचाशकचूर्णि-वृत्ति-वि-
 चारामृतसंग्रह-धर्मसंग्रहवृत्ति-संबोधसत्तरी प्रकरणवृत्ति-जयसो-
 मोपाध्यायजी कृत 'ईर्यापथिकी षट्त्रिंशिका विवरण', श्रावकप्रवृत्ति-
 वृत्ति इत्यादि अनेक शास्त्रानुसार श्रीजिनदासगणिमहात्तराचार्यजी पू-
 र्वधर, श्रीहरिभद्रसूरिजी, अभयदेवसूरिजी, हेमचंद्राचार्यजी, देवेन्द्रसू-
 रिजी, देवगुप्तसूरिजी, वगैरह सर्व गच्छोंके प्राचीन पूर्वाचार्योंने सा-
 मायिक विधिमें प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इ-
 रियावही करके स्वाध्याय, ध्यानादि धर्मकार्य करनेका बतलाया है,
 यही बात जिनाज्ञानुसारहै. पहिले सर्व गच्छोंमें इसी प्रकारसेही सामा-
 यिकविधि करते थे, मगर पीछेसे कितनेही चैत्यवासियोंने अपनी
 मतिकल्पना मुजब प्रथम इरियावही पीछेकरेमिभंते स्थापन करनेका
 आग्रहचलाया था, उनकी परंपरामुजब अबीभी कितनेकमहाशय प्रथम
 इरियावही पीछे करेमिभंतेका स्थापन करनेकलिये अन्य कोईभी प्र-
 कट भक्षरवाले शास्त्रप्रमाण न मिलनेसे महानिशीथ-दशवैकालि-
 कादिकके अधूरे २ पाठोंसे संबंधके विरुद्ध अर्थ करके सामायिकमें
 प्रथम इरियावही पीछेकरेमिभंते ठहराते हैं, परंतु उससे अनेक दोष आ-
 ते हैं, उसका विचारभी कभी नहीं करते हैं. देखो - विसंवादी शा-
 स्त्रोंको व विसंवादी कथन करनेवालोंको शास्त्रोंमें मिथ्यात्वी कहे हैं,
 इसलिये जैन शास्त्रोंको व पूर्वाचार्योंको अविसंवादी कहनेमें आते हैं,
 और आवश्यकचूर्णिआदि अनेक शास्त्रोंमें सामायिकमें प्रथमकरेमिभंते
 पीछे इरियावहीके पाठ मौजूद होनेपरभी महानिशीथ-दशवैकालि-
 कादिसे प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते ठहरानेसे सर्वज्ञ शास्त्रोंमें
 विसंवादरूप यह प्रथमदोष आता है. और आवश्यक बड़ी टीका, महा-
 निशीथका उद्धार, दशवैकालिक बड़ी टीका यह सर्वशास्त्र श्रीहरिभ-
 द्रसूरिजी महाराजने किये हैं, इसलिये आवश्यक बड़ी टीकाके विरु-
 द्ध महानिशीथसे प्रथम इरियावही ठहरानेसे इन महाराजके कथन-
 में विसंवाद आनेरूप यह दूसरा दोष आता है. आवश्यकदिमें सामा-
 यिकके नामसे प्रथमकरेमिभंते पीछे इरियावही खुलासा लिखी है, महा-
 निशीथके तीसरे अध्ययनमें उपधानसंबंधी चैत्यवंदन स्वाध्यायादि-
 करनेका पाठ है, दशवैकालिककी टीकामें साधुके गमनागमन (जाने
 आने) संबंधी इरियावही करके स्वाध्यायादि करनेका पाठ है, इस-
 प्रकार भिन्न २ अपेक्षा वाले शास्त्रोंके पाठोंके संबंध विरुद्ध होकर अ-
 धूरे २ पाठोंसे सामायिकमें भी प्रथम इरियावही ठहरानेसे शास्त्रोंकी

[११]

मर्यादाका भंगहोनेरूप यह तीसरा दोष आता है. और सर्व गीतार्थपूर्वाचार्यों ने महानिशीथादि देखे थे, उन्हें के अर्थको भी अच्छी तरह से जानते थे, तो भी सामायिक में प्रथम इरियावही नहीं लिखी, जिस पर भी अभी महानिशीथ से सामायिक में प्रथम इरियावही ठहराने से उन सर्व गीतार्थ पूर्वाचार्यों को महानिशीथ के अर्थ को नहीं जानने वाले अज्ञानी ठहराने का यह चौथा दोष आता है. और सर्वपूर्वाचार्यों ने सामायिक में प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही लिखी है, उसको उत्थापन करने से सर्व पूर्वाचार्यों की आज्ञा लोपने का यह पांचवा दोष भी आता है. और आवश्यकचूर्ण आदिक सर्व शास्त्रों के विरुद्ध होकर सामायिक में प्रथम इरियावही स्थापन करने से आगम पंचांगी के उत्थापनरूप यह छठा दोष आता है. और खास तपगच्छ के श्रीदेवेंद्रसूरिजी, कुलमंडनसूरिजी वगैरहोंने भी सामायिक में प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही खुलासा लिखी है, उसके भी विरुद्ध होकर सामायिक में प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते ठहराने से अपने पूर्वज बडील आचार्यों की भी अवज्ञा करनेरूप यह सातवा दोष भी आता है. इस प्रकार सामायिक में प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही कहने का निषेध करके प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते ठहराने से अनेक दोष आते हैं, इसका विशेष खुलासा पूर्वक निर्णय शास्त्रों के संपूर्ण संबंधवाले पाठों के सहित इसी ग्रंथ के दूसरे भाग की पीठिका के पृष्ठ ८७ से ११२ पृष्ठ तक और इस ग्रंथ में भी पृष्ठ ३१० से ३२९ पृष्ठ तक छप गया है. वहां सर्व शंकाओं का खुलासा समाधान करने में आया है, इसलिये आत्मार्थी भव्य जीवों का जिनाज्ञानुसार, सर्व गच्छों के पूर्वाचार्यों के वचनानुसार, प्राचीन अनेक शास्त्रानुसार, तीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजों की भाव परंपरानुसार सामायिक में प्रथम करेमिभंते का उच्चारण किये बाद पीछे से इरियावही करना ही योग्य है, और प्रथम इरियावही करने की अभी थोड़े काल की गच्छ की रूढ़ी के आग्रह को छोड़ना ही श्रेयरूप है। इस बात को विशेष तत्त्वज्ञ जन आप ही विचार लेंगे.

जिन २ महाशयों को इतना बड़ा संपूर्ण ग्रंथ वांचने का अवकाश न होवे; उन महाशयों को इस ग्रंथ के प्रथम भाग की भूमिका और दूसरे भाग की पीठिका को अवश्य ही वांचना चाहिये. मैंने भूमिका-पीठिका में अन्य २ बातें नहीं लिखी, किंतु इस ग्रंथ का सार और सर्व शंकाओं का थोड़े से में समाधान मात्र ही लिखा है. इसलिये भूमिका-पीठिका वांचनेवालों को ग्रंथ का सार अच्छी तरह से मालूम हो सकेगा. इति शुभम्.

इसग्रन्थके उत्तरार्द्धके तीसरे खंडकी- जाहिर खबर.

१-इसग्रन्थके उत्तरार्द्धके तीसरेखंडमें आगमादि अनेकप्राचीन शास्त्रानुसार, व चंद्रगच्छ, वडगच्छ, खरतरगच्छ, तपगच्छ, अंचलगच्छ, पायचंदगच्छादि सर्वगच्छोंके पूर्वाचार्योंके बनायेग्रंथानुसार श्रीवीर प्रभुके छ कल्याणक मान्यकरनेका अच्छी तरहसे सिद्ध करके बतलाया है. और शांतिविजयजीने ' जैनपत्र 'में, विनयविजयजीने ' सु-बोधिका 'में, कांतिविजयजी-अमरविजयजीने ' जैनसिद्धांतसामाचारी ' में, श्रीआत्मारामजीने ' जैन तत्त्वादर्श 'में, धर्मसागरजीने ' कल्प-किरणावली ' ' प्रवचन परीक्षा ' वगैरहमें जो जो छ कल्याणक निषेध संबंधी शंकायें की हैं. और शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायको समझे बिनाही अधूरे २ पाठ लिखकर उनके छोटे २ अर्थ करके भोले जीवोंको उलटा मार्ग बतलानेकी कौशिश की है, उन सर्ववार्ताका समाधान सहित निर्णय इसमें लिखनेमें आया है ।

२-और श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजसे वस्तिवासी-सुविहित-खरतर विरुद्धकी शुरुयात हुयीहै, इसलिये श्रीनवांगीवृत्तिकारक श्री-अभयदेवसूरिजी महाराज खरतर गच्छमें हुए हैं, यह बात प्राचीन-शास्त्रानुसार तथा तपगच्छके पूर्वाचार्योंके बनाये ग्रंथानुसार सिद्ध-करके बतलाया है । और कोई महाशय श्रीजिनदत्त सूरिजी महाराजसे संवत् १२०४में खरतरगच्छकी शुरुयातहोनेका कहतेहैं, सोभी सर्वथा असत्य है. क्योंकि-इन महाराजसे सं. १२०४में खरतरगच्छ-की शुरुयात होनेका कोईभी कारण नहीं हुआ है. व्यर्थ झूठे आक्षेप करने बड़ी भूलहै, देखो-१२०४में तो खरतर गच्छकी तीसरी शाखा हुईहै. इस बातका अच्छीतरहसे खुलासा इसग्रंथमें करनेमें आयाहै.

३-और जैनशास्त्रोंकी यह आज्ञा है, कि-यदि अपनी गच्छ परंपरामें ३-४ पेढीके आगेसेही शिथिलाचार चला आता होंवे, तो क्रिया उद्धार करनेवाले दूसरेगच्छके अन्यशुद्ध संयमीके पासमें क्रिया उद्धार करें. अर्थात्- उनके शिष्य होकरके शुद्ध संयम पालें, उससे पहिलेकी शिथिलाचारकी अशुद्ध परंपरा छुटकर, क्रिया उद्धार करवानेवाले गुरुकीशुद्धपरंपरा मानीजावे. देखो जैसे-श्रीआत्माराम जीने ढूँढियोंके झूठेमतको छोड़कर तपगच्छमें दीक्षाली है. इसलिये यद्यपि पहिलेढूँढियेथे तोभी उनकीपरंपरा ढूँढियोंमेंनहींलिखी जावे; किंतु तपगच्छमेंही लिखीजावे. तथा कोई शिथिलाचारी यति अपने गुरु व गच्छको छोड़कर अन्यगच्छवाले शुद्धसंयमीके पासमें क्रिया

[१३]

उद्धारकरें(फिरसे दीक्षालेवे)तो उनकी यतिपनेकी अशुद्धपरंपरा छुटकर जिसगुरुके पासमें किया उद्धार किया होगा, उन्हीं गुरुकीशुद्ध परंपरा चलेगी ॥ इसी तरहसे श्रीवडगच्छके जगचंद्रसूरिजी महाराजने अपनेको व अपनी गच्छ परंपराको शिथिलाचारी अशुद्ध ज्ञानकर छोड़दियाथा और श्रीचैत्रवालगच्छके शुद्ध परंपरावाले शुद्ध संयमी श्रीदेवभद्रोपाध्यायजीके पासमें किया उद्धार कियाथा,अर्थात्-उनके शिष्य होकर शुद्ध संयमी बने थे. और उसके बादमें बहुत तपस्या करनेसे 'तपा' विरुद्ध मिलाथा, उस रोजसे इन महाराजकी समुदायवाले तपगच्छके कहलाये गये. इसलिये श्रीदेवेंद्रसूरिजीमहाराजने और श्री क्षेमकार्तिसूरिजी महाराजने श्रीजगचंद्रसूरिजीमहाराजकी पहिलेकी शिथिलाचारकी वडगच्छकी अशुद्ध परंपरा लिखना छोड़कर; इनमहाराजकी चैत्रवाल गच्छकी शुद्ध परंपरा अपनी बनाई ' धर्मरत्न प्रकरण वृत्ति' में और 'श्रीवृहत्कल्प भाष्य वृत्ति' में लिखीहै. यही शुद्ध परंपरा लिखना जिनाज्ञानुसार है, मगर पहिलेकी वडगच्छकी अशुद्ध परंपरा लिखना जिनाज्ञानुसार नहींहै. यह बात अल्पज्ञभी अच्छी तरहसे समझसकताहै. जिसपरभी अभी वर्तमानि क तपगच्छके विद्वान् मुनिमंडल देवेंद्रसूरिजी वगैरह महाराजोंकी लिखी हुई जिनाज्ञानुसार चैत्रवालगच्छकी शुद्ध परंपराको छोड़ देते हैं.और जिनाज्ञाविरुद्ध शिथिलाचारी वडगच्छकी अशुद्ध परंपराको लिखते हैं. यह सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है. इन सर्व बातोंका विस्तार पूर्वक खुलासा इस ग्रन्थके उत्तरार्द्धमें लिखा गयाहै. सोभी छपकर तैयार होगयाहै, इस पूर्वार्द्धके प्रकट हुएबाद, थोड़े समयसे उत्तरार्द्धभी प्रकट होगा, सो संपूर्ण तथा वांचनेसे सर्व निर्णय हो जावेगा.

विद्वान् सर्व मुनिमंडलसे विनति.

श्रीमान्- विजयकमलसूरिजी, विजयधर्मसूरिजी, विजयनेमिसूरिजी, बुद्धिसागरसूरिजी, विजयवीरसूरिजी, विजयनीतिसूरिजी विजयसिद्धिसूरिजी, आनंदसागरसूरिजी, उ०इन्द्रविजयजी, प्र० श्री कांतिविजयजी-मंगलविजयजी, पं० गुलाबविजयजी- धर्मविजयजी- केशरविजयजी-दानविजयजी-मणिविजयजी- अजितसागरजी, श्री हंसविजयजी-कपूरविजयजी- चन्द्रमंविजयजी-कल्याणविजयजी-लब्धिविजयजी-आनंदविजयजीआदि विद्वान्सर्व मुनिमंडलसेविनति.

आप यह तो जानतेहीहैं, कि-श्रीनिशीथचूर्णिमें वर्षाकृतमेंही मु-

[१४]

नियोंको आलोचनालेनेका कहते हैं, और अभी आचरणादि महीने बड़े, तब पांच महीनोंके दश पक्ष; १५० दिन वर्षाकालके होते हैं, उसमें आ-यंभिल, उपवास, नवकरवाली गुणने वगैरहसे जितने दिन धर्मकार्य होंगे; उतनेही दिन आलोचनाकी गिनतीमें आवेंगे, इसी तरहसे वर्षी और छ मासी तपके दिनोंमें व ब्रह्मचर्य पालने वगैरह कार्योंमें भी अधिक महीनेके ३० दिन गिनतीमें आते हैं ॥ इस हिसाबसे धर्मकार्यमें व कर्म बंधनके व्यवहारमें सूर्यके उदय अस्त (रात्रि दिनके) परिवर्तन-के हिसाबसे और अंग्रेजी, मुसलमानी, पारसी, बंगलाकी तारिखोंके हिसाबसे भी आषाढ चौमासीसे जब दो श्रावण होवें; तब भाद्रपद तक, या जब दो भाद्रपद होंवे तब दूसरे भाद्रपद तक ८० दिन होते हैं, उसके ५० दिन कहते हैं, और जब दो आसोज होंवे तब कार्तिक तक-१०० दिन होते हैं, उसके भी ७० दिन कहते हैं। यह यात संसार व्यवहार-के हिसाबसे, रात्रिदिनके जानेके (समयके प्रवाहके) हिसाबसे, धर्म शास्त्रोंके हिसाबसे, ज्योतिषपंचांगके हिसाबसे, राज्यनीतिके हिसाब-से, और धर्म-कर्मके अनादि नियमके हिसाबसे भी सर्वथा विरुद्ध है। और अन्य दर्शनियोंके विद्वानोंके सामने जैनशासनको कलंक रूप है। इसलिये मेहेरवानी करके बहुत समयकी गच्छ परंपराकी रूढीरूप प्रवाहके आग्रहको छोड़कर जिनाज्ञाका विचार करके यह अनुचित रीवाजको वगैरह बिलंबसे सुधारनेकी कौशिश करें। इसके संबंधमें सर्व बातोंका खुलासा पूर्वक समाधान इस ग्रंथकी भूमिकाके ४७ प्रकरणोंमें व सुबोधिकादिककी २८ भूलोंवाले लेखमें और इस ग्रंथमें अच्छीतरहसे लिखनेमें आया है, उसको पूरेपूरा अवश्यवांचे और योग्य लगे उतना सुधारा करें, पक्षपात झूठा आग्रह शास्त्रविरुद्ध बहुत लोगोंकी समुदाय व गुरुगच्छकी परंपरा हितकारी नहीं है, किंतु जिनाज्ञाही हितकारी है। परोपदेशके लिये बहुत लोग बड़े कुशल होते हैं, मगर वैसाही कार्य करनेवाले आत्मार्थी बहुत ही अल्प होते हैं, यह भी आप जानते हैं।

और सर्वज्ञ शासनमें कर्मबंधन व धर्मकार्य संबंधी समय २ का व श्वासोश्वासका हिसाब किया जाता है, उसमें ८० दिनके ५० दिन और १०० दिनके ७० दिन कहनेवाले, यदि कसाई व व्यभिचारी वगैरह पापी प्राणियोंके कर्मबंधन और साधु मुनिमहाराजोंके व ब्रह्म-चारी वगैरह धर्मी प्राणियोंके कर्मक्षय करने संबंधी भी ८० दिनके ५० दिन, व १०० दिनके ७० दिन कहेंगे, तब तो-सर्वज्ञ भगवान् के प्रवचन-की व धर्म-कर्मकी अनादि मर्यादा भंग करनेके दोषी ठहरेंगे, अथवा

[१५]

८०दिनके व १००दिनके धर्म-कर्म समय २ के श्वासोश्वासके हिसाब से सर्वज्ञ भगवान्‌के प्रवचनानुसार अनादिमर्यादा मुजब मान्य करेंगे, तो-८०दिनके ५०दिन, व १०० दिनके ७० दिन कहनेका आप्रह झूठा ही ठहरावेगा. यह भी न्यायबुद्धिसे विचारने योग्य है, विशेष क्या लिखें.

देव द्रव्य निर्णयः ।

१-वर्तमानिक देवद्रव्यकी चर्चा संबंधी अर्पण बुद्धिसे भगवान्‌को चढ़ाई हुई वस्तु देव द्रव्यमें गिनी जाती है, यह बात सर्वमान्य है, इसी तरहसे पूजा और आरतीकी बोलीभी अर्पण बुद्धिसे पहिले सेही संघ तरहसे भगवान्‌को चढ़ाई हुई वस्तु हैं, अर्थात्-देवद्रव्यमें जानेका नियम हो चुका है, उनको अन्य मार्गमें ले जानेसे बिनाकारण संघकी आज्ञा भंगका व भगवान्‌को अर्पण की हुई वस्तु रूपांतरसे पीछी लेनेका दोष आता है, इसलिये पेसा करना योग्य नहीं है ।

२-भगवान्‌की पूजा आरतिकी बोली कलेश निवारण करनेके लिये नहीं है, किंतु शुद्ध भक्तिके लिये है, देखो-अपने अनुभवसे यही मालूम होता है, कि-बहुत भाविक जन आज अमुक पर्व दिवस है, मेरी शक्तिके अनुसार आज १०।२० या १००।२०० रुपये भगवान्‌की भक्तिके लिये देवद्रव्यमें जावें तो भी कोई हरज नहीं है, मगर आज तो भगवान्‌की पहिली पूजा-आरति मैं करूं, तो मेरे कल्याण-मंगल होंगे, वर्षभर भगवान्‌की भक्तिमें जावें, इसी निमित्तसे मेरा द्रव्य भगवान्‌की भक्तिमें लगेगा. तो मेरी कमाई भी सफल होवेगी, और सुकृत की कमाईवाले भाग्यशालीको आज भगवान्‌की भक्तिका पहिलालाभ मिलेगा ऐसा कहनेमें भी आता है. इत्यादि शुभभावसे बोलीबोलते हैं, इस लिये कलेश निवारणके लिये बोली बोलनेका ठहराना योग्य नहीं है.

और भी देखो-भगवान्‌के मंदिर बनवाने व प्रतिमा भरवानेमें महान्‌ लाभ कहा है, यह कार्य भक्तिके लिये धर्म बुद्धिसे करनेकी शास्त्राज्ञा है. तो भी कितनेक बेसमझ लोग नामके लिये या अभिमानसे वा देखा देखीके विरोधभावसे करते हैं, सो यह अनुचित है. इसी तरहसे बोली बोलनेका रीवाज भी भगवान्‌की भक्तिके लिये महान्‌ लाभका हेतु है, तो भी कितनेक बेसमझ लोग नामके लिये या अभिमानसे वा देखा-देखीके विरोध भावसे बोलते हैं- उनको देखकर बोलीबोलनेके रीवाजको भक्ति राग छोड़कर कलेश निवारणका हेतु ठहराना योग्य नहीं है.

तथा देवद्रव्यकी तरह साधारण द्रव्यकी भी बहुतही आवश्यकता है, उसमें बे दरकारीका दोष मुनिमंडल व आगेवानोंपर है. औ-

[१६]

रभी देव द्रव्य संबंधी सर्व शंकाओंका समाधान व साधारण द्रव्य-की वृद्धिके लिये उपायवगैरह बहुतबातोंके खुलासे समाधान 'देव-द्रव्य निर्णय' नामा पुस्तकमें लिखनेमें आवेंगे.

निवेदन और उपकार.

इसग्रंथकी कीर्तिबात समझमें न आवे, या वांचते २ कोई शंका होवे, तो इस ग्रंथके कर्त्ताको लिखकर खुलासा मंगवानेका सबको हक है, ग्रंथ संबंधी सब तरहका जवाबदार लेखक है.

इस ग्रंथमें अनुमान ३०० शास्त्रोंके प्रमाण बतलाये गयेहैं, इस ग्रंथके बनवाने संबंधी शास्त्रोंके संग्रह करने वगैरहमें, श्रीमान् जिनयशसूरिजीमहाराज, श्रीमान् शिवजीरामजीमहाराज, श्रीमान् जिनचारित्रसूरिजीमहाराज, श्रीमान् कृपाचंद्रसूरिजीमहाराज, पन्थासजी श्रीमान् केशरमुनिजीमहाराज, पं० श्रीमान् गुमानमुनिजीमहाराज और कलकत्तानिवासी उ. श्रीमान् जयचंद्रजीमणि व रायबहादुर बर्दीदास जीजौहरीवगैरहोंने जो जो मदतदीहै, उनका मैं उपकार मानता हूं.

संवत् १९७८ वैशाख शुदी ३. हस्ताक्षर मुनि-मणिसागर.

बिनाकिंमतभेटसे पुस्तक मिलनेके नाम व स्थान.

यहग्रन्थ एकहजार पृष्ठकाबडाहोनेसे दो विभागमें प्रकटकियाहै.

१ बृहत्पर्युषणा निर्णय पूर्वार्द्ध, प्रथम-दूसरा खंड.

२ बृहत्पर्युषणा निर्णय उत्तरार्द्ध, तीसरा खंड.

३ लघुपर्युषणा निर्णयका प्रथम अंक.

४ प्रश्नोत्तर विचार. ५-६-७ प्रश्नोत्तर मंजरीके १-२-३ भाग.

८-९ हर्षहृदय वर्णन १-२ भाग. १० आत्मभ्रमोच्छेदन भाग.

यह ग्रन्थभी छपनेवाले हैं.

१ देवद्रव्यनिर्णय. २ न्यायरत्न समीक्षा. ३ प्रवचनपरीक्षा निर्णय.

१ श्रीमद् अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला कार्यालय, ठे० श्रीजैनश्वेतांबर मित्रमंडल केनिंगस्वीट नं. २१, मु०-कलकत्ता.

२ श्रीमद् अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला कार्यालय, ठे० बडा उपाश्रय देश-मारवाड, मु०-वीकानेर.

३ श्रीजिनदत्तसूरिजी ज्ञानमंडार, ठे० गोपीपुरा-शीतलवाडी देश-गुजरात, मु०-सुरत.

४ जौहरी माहूमल्लजी धनपतसिंहजी भणशाली, सुंदरबीरडिंग ठे० फतहपुरी, मु०-बिहारी.

॥ ॐ ॥

श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः

प्रथम भागकी भूमिका

पाहिले इसको अवश्यही पढिये.

मांगलिक्यके करनेवाले श्रीस्थंभनपार्श्वनाथ जिनेश्वर भगवान् को नमस्कार करके, श्रीजिनाज्ञाके अभिलाषी सर्व सज्जन महाशयोंको निषेदन किया जाता है, कि-जन्म-मरण-रोग-शोक-आधि-व्याधि संयोग-वियोगादि-उपाधियुक्त दुष्टर संसार समुद्रके परिभ्रमणका दुःख निवारण करनेके लिये, आत्महितैषी पुरुषोंको जिनाज्ञानुसार शांतिपूर्वक धर्मकार्य करने चाहिये। जिसमें वर्तमानिक द्रव्य गच्छ परंपरा बहुत समुदायकी देखादेखीकी रुढ़ीको अहितकारी जानकर त्याग करना चाहिये। और सुधारेके जमानेमें गच्छांतरोंके भेदोंकी भिन्न भिन्न प्रवृत्ति देखकर शंकाशील होकर धर्मकार्योंमें शिथिलता करनाभी योग्य नहीं है, किंतु 'मैरा सो सच्चा' का आग्रह छोड़कर मध्यस्थ बुद्धिसे गुणग्राही होकरके सत्यकी परीक्षाकरके उसको अंगीकार करना, यही मनुष्य जन्मकी सफलताका कारण है।

यद्यपि खंडनमंडनके विवादमें सत्यासत्यका विचार छोड़कर अपनापक्ष स्थापन करनेके लिये शुष्कवाद या वितंडावाद करनेवाले आजकल बहुत लोग देखे जाते हैं-मगर दूसरेकी सत्यबात अंगीकार करके अपना असत्य आग्रहको छोड़नेवाले बहुतही थोड़े देखनेमें आते हैं। जब दूसरेके पक्षका खंडन करनेके ईरादेसे उद्यम करनेमें आता है, तब उसपक्षवालोंकी अनेक शास्त्रोंके प्रमाणसहित युक्तिपूर्वक सत्यबातकोभी छोड़कर भोले जीवोंको अपना पक्ष सत्य दिखलाने के लिये शास्त्रोंके भागे पीछेके संबंध वाले सब पाठोंको छुपाकरके थोड़ेसे अधूरे २ पाठ लिखते हैं, तथा शास्त्रकारोंके अभिप्राय विरुद्ध उनके अर्थ करते हैं, या शास्त्रीय बातको झूठी ठहरानेके लिये कुयुक्तियेंभी लगानेमें उद्यम किया जाता है। अथवा विषय संबंध

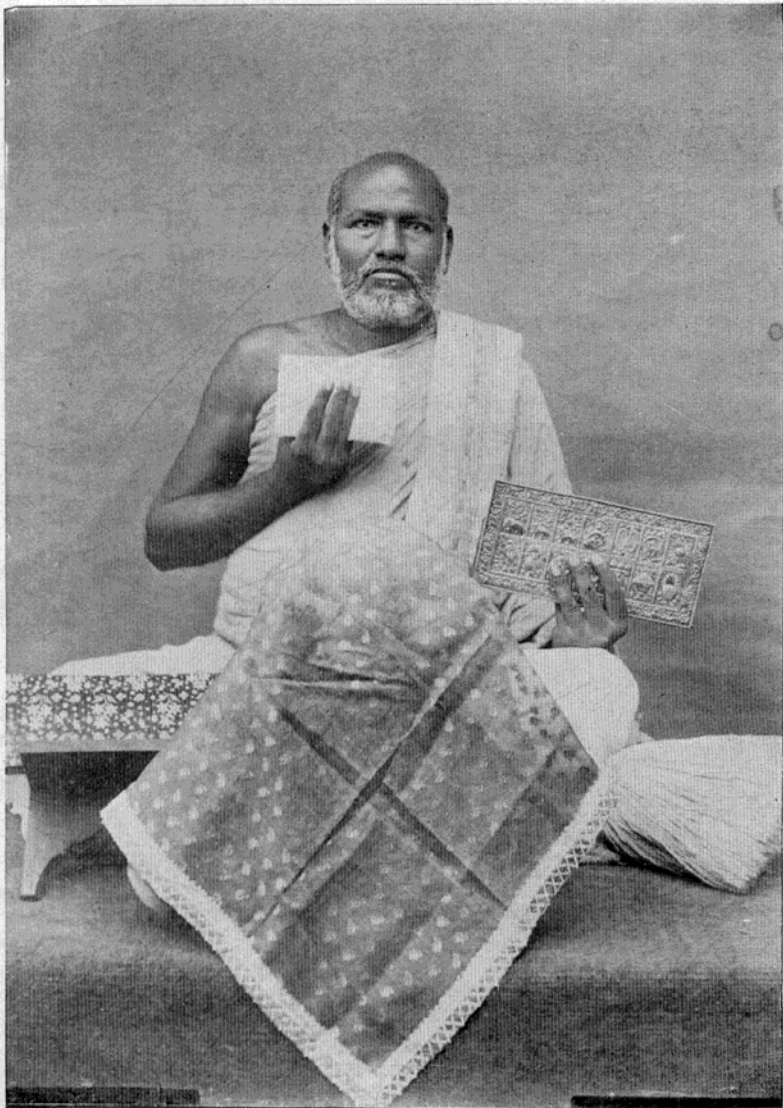
[२]

छोड़कर विषयांतर लेकर निष्प्रयोजन व्यक्तिगत आक्षेप करने लग जाते हैं, और अपनी या अपने पक्षकारों की बिनाप्रसंगही बड़ाई करने लगते हैं। मगर शास्त्रोंमें तो कहा है कि-आत्मप्रदेशगत मिथ्यात्वसे भी प्ररूपणागत मिथ्यात्व अधिक दोषवाला होनेसे अनेक भवभ्रमण करानेवाला होता है।

और अनादिकालसे ११ अंगादिशास्त्रोंको देखकर अनंतजीव संसारपरिभ्रमणके दुःखसे मुक्त होगये हैं, और अनंतजीव संसारपरिभ्रमणके दुःखको बढ़ानेवाले भी होगये हैं। इसका आशययही है कि, अतीव गहनाशयवाले, अपेक्षा गर्भित शास्त्रकारोंके अभिप्रायको समझकर वर्ताव करनेवाले तो मुक्तिगामी होते हैं, और शास्त्रकारोंके अभिप्राय विरुद्ध होकर शब्दमात्रके आग्रहमें पड़कर विवादकरनेवाले संसारगामी होते हैं। मगर जो आत्मार्षी होते हैं, वो तो शब्द मात्रके विवादको छोड़कर तात्पर्यार्थ तरफ दृष्टि करते हैं, और जो आग्रही होते हैं वो तात्पर्यार्थको छोड़कर शब्दमात्रके विवादको विशेष बढ़ाते हैं। इसीही कारणसे रागद्वेषादि भाव शत्रुओंको हटानेवाला श्रीवीतराग सर्वज्ञ भगवान् का कथन किया हुआ अविसंवादी शान्तिप्रिय श्रीजैनशासनमें भी अभी विसंवादरूपी विरोध भावको स्थान मिल गया है।

और पहिले तो सूर्य तीर्थंकर महाराजोंके जितने गणधर होते थे उतनेही गच्छ [साधु समुदायकी ओलखान] होते थे और पीछे भी प्रभावकाश्यायोंकी बहुत समुदाय होनेसे कुल-गण-शाखा वगैरह होते थे, मगर सबकी प्ररूपणा और क्रिया एक समान होनेसे संपर्शांतिसे मिलते हुए आत्मकल्याण करते थे, उस समय विरोधी प्ररूपणाके अभावसे किसीको भी कोई तरहकी शंका उत्पन्न होनेका कारण या अपने गच्छके आग्रहका कारण नहीं था, मगर श्रीवीरप्रभुके निर्वाणबाद पड़ताकाल होनेसे कितनेक शिथिलाचारी चैत्यवासी होगये, उन्हींसे गच्छोंका आग्रह और भिन्नभिन्न प्ररूपणा विशेष होने लगी तबसे ही शास्त्रोक्त जिनपूजा विधिमें कुछ अविधिभी होगई, और जैन पंचांगके विच्छेद होनेपर जैनसमाज लौकिक द्विषणा मानने लगा, उसमें श्रावणादिभी महीने बढ़ते हैं। उस मुजब घर्ताविशुरू किया, तबसे महामांगल्यकारी शान्तिमय अतीवउत्तम पर्युषणा जैसे पर्व आराधनकरनेमें भी भेद पड़ गया और शासन नायक श्रावर्द्धमान स्वामीके छ कल्याणक नहीं मानने वगैरह कितनीही बातोंका विवाद

महाराज



श्रीमन्सुनिवर्य श्रीसुमति सागरजी महाराज ।
ज्ञाति वीशाओसवाल, नागौर मारवाड़ ।
जन्म संवत् १८१७ । दीक्षा संवत् १८४४ ।

[३]

उपस्थित होगया. उसके विषयमें आगे लिखनेमें आवेगा, मगर इस जगह तो हम केवल पर्युषणा संबंधी थोडासा लिखतेहैं.

जैन पंचांगके अनुसार जब वर्ताव करनेमें आताथा, तब पर्युषणा करनेसंबंधी “ अभिवद्धि यमि वीसा, इयरेसु सवासई मासो ” इत्यादि निशीथ भाष्य, चूर्णि, बृहत्कल्प भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, पर्युषणाकल्प निर्युक्ति, चूर्णि, वृत्ति वगैरह प्राचीन शास्त्रोंमें खुलासा लिखा है, कि, आपाढ चौमासीसे वर्षाकृतुमें जीवाकुलभूमि होनेसे जीवदयाके लिये मुनियोंको विहार करनेका निषेध और वर्षाकालमें एक स्थानमें ठहरना, उसका नाम पर्युषणाहै। इसलिये जब अधिक महीना होवे तब उसको तेरह [१३] महीनोंका अभिवर्द्धित वर्ष कहतेहैं, उस वर्षमें आपाढ चौमासीसे २० वें दिन प्रसिद्ध पर्युषणा करना। और जिस वर्षमें अधिक महीना न होवे, तब उसको १२महीनोंका चंद्रवर्ष कहतेहैं, उस वर्षमें आपाढ चौमासीसे ५० वें दिन प्रसिद्ध पर्युषणा करना [वर्षाकालमें रहनेका निश्चय कहना] उसीमेंही उ-सीदिन वार्षिक कार्य और उसका उच्छव किया जाता है, यह अनादि नियमहै. इसलिये निशीथभाष्य, चूर्णि, पर्युषणा कल्पनिर्युक्ति, चूर्णि, जीवाभिगमसूत्रवृत्ति, धर्मरत्नप्रकरणवृत्ति, कल्पसूत्रमूल और उसकी सर्व टीकाओंमें संवच्छरी शब्दकोभी पर्युषणा शब्दसे व्याख्यान कियाहै, और प्रसिद्ध पर्युषणाकरनेके दिनसे भिन्न [अलग] वार्षिक कार्योंका दिन कोईभी नहीं है, किंतु एकही है, इसीको पर्युषणा पर्व कहो, संवच्छरीपर्व कहो, सांवत्सरिकपर्व कहो या वार्षिकपर्व कहो, सबका तात्पर्य एकही है। और कारणवश “ अंतरा वि य से कप्पइ, नो से कप्पइ तं रयणि उवायणा वित्तप ” इत्यादि कल्पसूत्र वगैरह शास्त्र पाठोंके प्रमाणसे आपाढ चौमासीसे ५०वें दिन पहिले तो पर्युषणा करना कल्पताहै, मगर ५०वें दिनकी रात्रिकोभी उल्लंघन करके आगे पर्युषणा करना नहीं कल्पताहै और ५०वें दिनतक पर्युषणाकरनेको ग्रामनगरादि योग्यक्षेत्र न मिलसके तो, जंगलमेंभी वृक्ष नीचेभी अवश्यही पर्युषणाकरनाकहाहै. और अभिवर्द्धितवर्षमें २०दिने तथा चंद्रवर्षमें ५०दिने पर्युषणा न करे और विहार करे तो “ छक्काय जीव विराहणा ” इत्यादि स्थानांगसूत्रवृत्तिवगैरह शास्त्रपाठोंसे छक्कायके जीवोंकी विराधना करनेवाला. आत्मघाती, संयम और जिना-झाको विराधन करनेवाला कहा है। यह नियम जैन पंचांगानुसार पौष और आपाढ बढताथा तब चलताथा, मगर जबसे जैन पंचांग

[४]

भिच्छेद हुआ, तबसे लौकिक टिप्पणा मुजब मास-पक्ष-तिथी-वार-
नक्षत्र-मुहूर्त्तादि व्यवहार जैन समाजमें शुरू हुआ. उसमें श्रावण
भाद्रपदादि मासभी बढ़ने लगे. तब जैनसंघने श्रीवीर निर्वाणसे ९९३
वर्ष अधिक महीने वाला वर्षमें २० दिने पर्युषणापर्व करनेकी मर्यादा
बंध करी और अधिक महीना हो, चाहे न हो, तो भी ५०वें दिन प-
र्युषणापर्वमें वार्षिक कार्य करनेका नियम रखवा है. सो “जैनटिप्प-
नकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगांते चाऽऽषाढ एव वर्धते
नान्ये मासास्तट्टिप्पणकं तु अधुना सम्यग् न ज्ञायते ततः पंचाशतैव
दिनैः पर्युषणा युक्तेति वृद्धाः” यह पाठ कल्पसूत्रकी सुबोधिकादिसर्व
टीकाओंमें प्रसिद्ध ही है। उसके अनुसार श्रावणबढ़ेतो दूसरे श्रावणमें
और भाद्रपदबढ़ेतो प्रथम भाद्रपदमें ५० दिने पर्युषणापर्वका आराधन
करना जिनाज्ञा है। और पहिले मास वृद्धिके अभावसे ५०वें दिन प-
र्युषणा करतेथे, तब पर्युषणाकेबाद कार्तिक तक ७० दिन ठहरतेथे, म-
गर जब मास वृद्धि होनेपर २० दिने पर्युषणा करतेथे, तब तो पर्युष-
णाके पिछाड़ी कार्तिक तक १०० दिन ठहरतेथे, यह बात निशीथभा-
ष्य-चूर्णि-पर्युषणाकल्पचूर्णि, बृहत्कल्पचूर्णि, वृत्ति-जीवानुशासनवृत्ति
गच्छाचारपयस्त्रवृत्ति, स्थानांगसूत्रवृत्ति, वगैरह अनेक शास्त्र पाठोंसे
सिद्ध होती है। और वर्तमानमें श्रावण, भाद्रपद तथा आश्विन बढ़-
नेपर भी ५० दिने पर्युषणापर्व करनेसे पिछाड़ी कार्तिक तक १०० दिन
ठहरते हैं। यह भी कल्पसूत्रकी सर्व टीकाओंके अनुसार होनेसे जि-
नाज्ञानुसार ही है, इसलिये इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं है।

इस ऊपरके शास्त्रीय लेखपर दीर्घ दृष्टिसे निष्पक्ष होकर मध्यस्थ
बुद्धिसे विचार किया जावे तो स्पष्ट मालूम हो जावेगा, कि-पर्युषणा पर्व
करनेमें जैन टिप्पणानुसार या लौकिक टिप्पणानुसार अधिक मास
अथवा कोई भी मास, या कोई भी दिन कभी बाधक नहीं हो सकता है-
क्योंकि पर्युषणापर्व करनेमें ५० दिनोंकी गिनतीका व्यवहारिक शास्त्रीय
नियम होनेसे पर्युषणा पर्व दिन प्रतिबद्ध ठहरते हैं. किंतु मास
प्रतिबद्ध कभी नहीं ठहर सकता। और ५० दिनोंकी गिनतीमें अधिक
महीनेके ३० दिवस तो क्या मगर एक दिवस मात्र भी गिनतीमें कभी
नहीं छुट सकता। जिसपर भी पर्युषणा पर्व-दो श्रावण होनेपर भी
भाद्रपद मास प्रतिबद्ध ठहराना १. अधिक महीनेके ३० दिनोंको
बीचमेंसे छोड़ देना २. बीस दिनोंसे पर्युषणा पर्व करनेकी बातको
सर्वथा उड़ा देना ३. श्रावण भाद्रपद या आश्विन बढ़नेसे १००

[५]

दिन होनेपरभी उसको ७० दिन कहनेका आग्रह करना ४. सो यह सब बातें सर्वथा शास्त्रकारोंके विरुद्ध हैं.

अथ पर्युषणा पर्व करने संबंधी ५० दिनोंकी गिनती करनेमें अधिक महीनेके ३० दिनोंको गिनतीमेंसे छोड़ देनेका आग्रह करने के लिये कितनेक लोग शास्त्रविरुद्ध होकर कितनीक कुयुक्तियें करते हैं, उसके विषयमें थोड़ासा लिखते हैं।

१—कल्पसूत्रादिमें आषाढ चौमासीसे दिनोंकी गिनतीसे ५० वें दिन अवश्यही पर्युषणापर्व (वार्षिक कार्य) करने कहेहैं, उसमें अधिक महीनेका १ दिनमात्रभी गिनतीमें नहीं छुट सकता. और ५० वें दिनकी रात्रिकोभी उल्लंघन करना नहीं कल्पताहै। जिसपरभी वर्तमानिक कितनेक लोग श्रावण भाद्रपद बढ़नेपर ८० दिने पर्युषणापर्व करतेहैं, सो शास्त्रविरुद्धहै, इसका विशेष खुलासा इसीही “बृहत्पर्युषणा निर्णय” ग्रंथकी आदिसे पृष्ठ २७ तक देखो.

२—अधिकमहीनेके ३० दिन जैनशास्त्रोंमें गिनतीमें नहीं लिये, ऐसा कहते हैं सो भी शास्त्र विरुद्ध है, अधिक महीनेके ३० दिनोंको दिनोंमें, पक्षोंमें, मासोंमें, वर्षोंमें और युगकी गिनतीमें खुलासापूर्वक गिनेहैं, इसका विशेष खुलासा देखो इसी ग्रंथके पृष्ठ २८ से ४८ तक

३—अधिकमहीना काल चूलारूप है, सो गिनतीमें नहीं लेना ऐसा कहते हैं सो भी शास्त्र विरुद्ध है, निशीथचूर्णि, दशवैकालिक बृहद्वृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें अधिक महीनेको काल चूलाकी शिखर रूप श्रेष्ठ, (उत्तम) ओपमादी है, और उसके ३० दिनोंको गिनतीमें भीलिये हैं. इसकाभी विशेष खुलासा देखो इसी ग्रंथके पृष्ठ ४९ से ६५ तक। तथा पृष्ठ ७५ से ९१ तक.

४—पर्युषणाकल्प चूर्णि तथा निशीथ चूर्णिके पाठसे दो श्रावण होवे तो भी भाद्रपदमें पर्युषणापर्वकरनेका ठहरातेहैं, सोभी शास्त्रविरुद्धहै, दोनों चूर्णिके पाठोंमें अधिकमहीना पौष अथवा आषाढ होवे तब उसके ३० दिनोंको गिनतीमें लेकर आषाढ चौमासीसे २० वें दिन श्रावणमें पर्युषणा पर्व करना लिखाहै, और अधिक महीना न होवे तब ५० वें दिन भाद्रपदमें पर्युषणा करना लिखा है। और ५० वे दिनको उल्लंघन करनेवालोंको प्रायश्चित्त कहा है, इसलिये दो श्रावण होनेपरभी ८० दिने भाद्रपदमें पर्युषणा पर्व करना योग्य नहीं है। और अधिकमासके ३० दिन गिनतीमें छोड़ देनाभी शास्त्र विरु-

[६]

अ है. इसकाभी विशेष खुलासा देखो दोनों चूर्णिके विस्तार पूर्वक पाठों सहित इसीग्रंथके पृष्ठ ९१ से १०६ तक.

५—जैन टिप्पणामें अधिकमहीना होताथा तबभी २० वै दिन-
 ध्रावण शुद्धि पंचमीको पर्युषणा पर्वमें वार्षिक कार्य होतेथे, इसलि-
 ये २० वै दिनकी पर्युषणामें वार्षिक कार्य कभी नहीं हो सकते,
 ऐसा कहनाभी सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है, इसकाभी विशेष खुलासा दे-
 खो इसीग्रंथके पृष्ठ १०७ से ११७ तक,

६— ध्रावण भाद्रपद या आश्विन बढे तो भी ५० वै दिन पर्यु-
 षणापर्व करनेसे शेष कार्तिक मास तक १०० दिन होते हैं, जिसप-
 रभी ७० दिन रहनेका आग्रह करते हैं, सो भी शास्त्र विरुद्ध है, ७०
 दिन रहनेका तो मास वृद्धिके अभाव संबंधी है, मगर मास वृद्धि होवे
 तबतो १०० दिन रहना शास्त्रानुसार हैं। इसकाभी विशेष खुलासा
 इसग्रंथमें पृष्ठ ११७ से १२८ तक, तथा १७४ से १८५ तक देखो.

७— अधिकमहीना होवे उसवर्षके १३ महीने व एक चौमासे-
 के ५ महीने होते हैं. उतनेही महीनोंके कर्मबंधनभी होते हैं, तोभी
 उसमें १२ महीनोंके व ४ महीनोंके क्षामणकरने कहतेहैं. सोभी शा-
 स्त्र विरुद्ध है. अधिक महीना होवे तब १३ महीनोंके व ५ महीनोंके
 क्षामण करने शास्त्रानुसार हैं; इसकाभी विशेष खुलासा पृष्ठ १३३
 से १३६ तक. और पृष्ठ ३६२ से ३७८ तक देखो.

८— अधिक महीनेमें सूर्यचार नहीं होता, ऐसा कहनाभी शा-
 स्त्रविरुद्ध है, छ छ महीने १८३ वै दिन, सूर्य दक्षिणायनसे उत्तरायनमें
 और उत्तरायनसे दक्षिणायनमें हमेशा होता रहता है, उसमें अधिक
 महीनेके ३० दिनोंमेंभी जैनशास्त्र मुजब या लौकिक टिप्पणामुजब-
 भी सूर्यचार होता है. इसकाभी विशेष खुलासा देखो इसी ग्रंथके पृ-
 ष्ठ १३७ से १३९ तक.

९— अधिक महीनेके ३० दिनोंमें देवपूजा, मुनिदान, प्रतिक्रमण
 वगैरह धर्मकार्य करने, मगर उसके ३० दिनोंको गिनतीमें नहीं लेनेका
 कहना, सो भी प्रत्यक्ष शास्त्र विरुद्ध है. जितने रोज देवपूजादि धर्मका-
 र्य किये जावेंगे, उतने दिन अवश्यही गिनतीमें लिये जावेंगे, और
 जैसे मुनिदानादि कार्य दिन प्रतिबद्ध हैं, वैसेही पर्युषणपर्वभी ५० दिन
 प्रतिबद्ध हैं. इसकाभी विशेष खुलासा पृष्ठ १४२ से १४३ तक देखो

१० अधिक महीनेमें विवाह आदि शुभकार्य नहीं होते, उसमु-

[७]

जब पर्युषणा पर्वभी नहीं हो सकते. ऐसा कहनाभी प्रत्यक्ष शास्त्र विरुद्ध है, मुहूर्त्तवाले विवाहादि तो मलमास, अधिकमास, क्षयमास, १३ महीनोंके सिंहस्थ, अधिकतिथि, क्षयतिथि, गुरुशुक्रका अस्त और हरि शयनका चौमासा वगैरह कितनेही, तिथि-वार-नक्षत्र-मास वगैरह योगोंमें नहीं किये जाते, मगर बिना मुहूर्त्तके धर्मकार्य करनेमें तो किसी समयका निषेध नहीं हो सकता. इसी तरहसे पर्युषणा पर्वभी अधिकमासमें, तथा १३ महीनोंके सिंहस्थमें, और चौमासेमेंही करनेमें आते हैं। इसमें अधिकमहीना या कोईभी योग बाधक नहीं हो सकता है. इसकाभी विशेष खुलासा पृष्ठ १९३ से २०४ तक देखो.

११- अधिकमहीनेको वनस्पतिभी अंगीकार नहीं करती, ऐसा कहनाभी शास्त्र विरुद्ध है, अधिक महीनेके ३० दिन तो क्या परंतु १ दिन मात्रभी वनस्पति कभी नहीं छोड़ सकती, किंतु हरेक समय प्रत्येक दिवसको अंगीकार करती है. इसकाभी विशेष खुलासा इसी ही ग्रंथके २०५ से २१० तक देखो

इत्यादि मुख्य २ बातों संबंधी शास्त्रीय प्रमाण और युक्तिपूर्वक इस प्रथमभागमें अच्छीतरहसे खुलासापूर्वक लिखनेमें आया है.

और इस ग्रंथको पक्षपात रहित होकर संपूर्ण पढ़नेवाले सन्तोंको सत्यासत्यकी परीक्षा स्वयं होसकेगी, इसलिये यहांपर विशेष लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

इस ग्रंथ कारका उद्देश क्या है ?

इस ग्रंथकारका मुख्य उद्देश यही है, कि-सबगच्छवाले आपसमें हिलमिलकर संपूर्वक सुखशांतिसे धर्मकार्य हमेशा करें, मगर पर्युषणा जैसे अतीव उत्तम धार्मिक शांतिके दिनोंमें अधिक महीनेके ३० दिनोंको धर्मकार्योंमें गिनतोंमेंसे छोड़ देनेके लिये तपगच्छके कितनेक मुनिमहाराज जो खंडन मंडनका विषय व्याख्यानमें चलते हैं, सो सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है, और समयकेभी प्रतिकूल होनेसे-कर्मबंधन, क्रुसंप व शासनहिलना कराने वाला है. (इसी बातका विशेष निर्णय इसी ग्रंथमें अच्छी तरहसे लिखा गया है) उसको (इस ग्रंथके संपूर्ण पांचे बाद) अवश्यही बंध करना योग्य है.

पक्षपात रहित ग्रंथकी रचना.

“पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु। युक्तिर्मद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥१॥” इत्यादि श्रीहरिभद्रसूरिजी जैसे महापुरुषोंके श्यायानुसार पक्षपात रहित होकर आगम पंचांगी सम्मत युक्तिपू-

[८]

वैक खरतरगच्छ, तपगच्छ, अंचलगच्छादिसर्व गच्छवालोंके शास्त्र वा क्यौंका संग्रह इसग्रंथमें करनेमें आया है। मगर अमुक गच्छवालेके अमुक आचार्यके वाक्य हमको मंजूर नहीं, ऐसा एकांत आग्रह किसी जगहभी करनेमें नहीं आया और शास्त्रविरुद्ध व युक्ति बाधित वाक्य तो किसी गच्छवालेकाभी मान्य करना योग्य नहीं। यह बात सर्व जन सममतही है, वोही न्याय इस ग्रंथमें रखवा गया है। इसलिये पाठकगणकोभी किसी गच्छ समुदायका पक्षपात न रखकर अवश्यही इस ग्रंथको संपूर्ण अवलोकन करके सार निकालना चाहिये।

इस ग्रंथका लेखक मैं खास संसारीपनेमें तपगच्छका वीसापोरवाल श्रावकथा, मगर उपाध्यायजी श्रीसुमतिसागरजी महाराजके पास श्री-सिद्धक्षेत्र (पालीताणा) में विक्रम संवत् १९६० वैशाख शुदी २ को खरतरगच्छमें दीक्षा अंगीकार की, तो भी दोनों गच्छोंके पूर्वाचार्योंपर तथा वर्तमानिक मुनिमहाराजोंपर पूज्यभाव था, और है भी। मगर जिस २ अंशमें शास्त्र विरुद्ध होकर परंपराके बहाने जिस २ बातोंका झूठाही आग्रह किया गया है, उन २ बातोंकी आलोचना करके शास्त्रानुसार सत्य बातें जनसमाजमें प्रकट करनी, यह मैंरा खास कर्तव्यही समझ कर मैंने इस ग्रंथमें इतना लिखा है। इसमें किसीको पक्षपात न समझना चाहिये। और किसीको नाराज होनेकाभी कोई कारण नहीं है। वर्तमानिक समयके अनुसार परंपराकी अंधरूढ़ीको त्यागना और सत्यको ग्रहण करना, सब सज्जनोंको प्रिय है। और समय बदलता जाता है, तथा संपसे शासनोन्नतिके कार्य करनेकी बहुत जरूरत है, इसलिये कुसुंफ बढ़ानेवाला पर्युषणाके व्याख्यानमें आपसका खंडन मंडन चलाना योग्य नहीं है। विशेष दूसरे, तीसरे और चौथे भागमें अनुक्रमसे लिखनेमें आवेगा।

क्षमा याचना तथा अपनी भूल स्वीकार.

इसग्रंथकी रचना करते समय मैंरी अल्पवय व अल्प अभ्यास होनेसे, इसग्रंथमें-लेखक दोष, भाषादोष, दृष्टिदोष, पुनरुक्ति दोष, प्रेसदोष व शास्त्रीय पाठोंकी विशेष अशुद्धताके दोषोंकी पाठक गण अवश्यही क्षमा करेंगे, तथा हंसकी तरह दोष त्यागकर सत्य २ सार ग्रहण करेंगे, और सुधारकर बाँचेंगे। दूसरी आवृत्तिमें इन सर्व दोषोंका संशोधन अच्छी तरहसे करनेमें आवेगा।

और सुबोधिका, दीपिका तथा किरणावली आदिकमें शास्त्रविरुद्ध जो जो बातें लिखी हैं, उन्हीं सर्व बातोंका निर्णय इस ग्रंथमें लिखा

[४]

गया है, उसको समझकर उनके पक्ष के अनुयायी विद्वान् पुरुषों को उनकी सब भूलों को क्रमशः अवश्य ही सुधारना योग्य है, तथा इस ग्रंथ में भी जो कोई बात शास्त्र विरुद्ध देखने में आवे, तो जरूर मेरे को लिख भेजना. लिखने वाले का उपकार मानकर अपनी भूल को अवश्य ही स्वीकार करूंगा, और दूसरी आवृत्ति में उसको सुधार लूंगा.

यह ग्रंथ विलंब से प्रकट होने का कारण ।

इस ग्रंथ की रचना का कारण ग्रंथ की आदि में ही लिखा है, तथा सुबोधिका, किरणावली आदिक की खंडन मंडन संबंधी भूलों का कारण तो प्रकट ही है। और यह ग्रंथ छपने पर शीघ्र ही प्रकट होने वाला था. मगर कितने ही महाशयों का कहना था कि-यदि मुनि मंडल की सभा में, विद्वानों की समक्ष, इस विषय का शास्त्रार्थ से निर्णय हो जावे, तो बहुत ही अच्छा होवे, और तीन वर्ष पहिले दो भाद्रपद होने से इस विषय के निर्णय करने की चर्चा भी खूब जोर शोर से चली थी, तब मैंने भी 'मुंबई' से 'पर्युषणा निर्णय का शास्त्रार्थ' करने संबंधी विज्ञापन छपवाकर जाहिर किया था. उस पर आनंद सागरजी और शांति विजयजी लोकल ज्जासे हां हां करने लगे थे, तो भी बीच में व्यर्थ ही आड़ी रवातें निकालकर चुप बैठ गये, इसका खुलासा आगे लिखूंगा. और अन्य कोई भी मुनि सभा में निर्णय करने को तैयार नहीं हुए, इसलिये अब यह ग्रंथ इतने विलंब से प्रकाशित किया जाता है. यह ग्रंथ एक हजार पृष्ठ के लगभग होने से, ४ भागों में अनुक्रम से यथा अवसर प्रकट होता रहेगा. और मंगवाने वाले साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका-यति-ध्यापूज्य-ज्ञान भंडार-लायब्रेरी और साक्षर वर्ग सर्व को बिना किंमत से भेंट भेजा जावेगा ।

१-देखिये—एक वहेम ॥

तपगच्छ के कितने क मुनि महाराजों ने अपनी समाज में यह भी एक तरह का वहेम ठसा दिया है, कि- 'अधिक महीने में विवाह-सादी वगैरह शुभ कार्य लोग नहीं करते हैं, उसी तरह अपने भी अधिक महीने में पर्युषणा पर्व आदि धार्मिक कार्य नहीं हो सकते हैं', मगर इस बात पर तत्त्व दृष्टि से विचार किया जावे तो यह भी एक तरह का एकांत आग्रह से झूठा ही वहेम है, क्योंकि विवाहादि मुहूर्त वाले कार्य तो मास, पक्ष, तिथि, वार नक्षत्रादि देखकर, वर्ष छ महीने आगे पीछे भी करते हैं. परंतु बिना मुहूर्त के लोकोत्तर धर्म कार्य तो नियमित दिवस से आगे पीछे कभी नहीं

[१०]

हो सकते हैं, इसलिये लौकिक वाले भी मुहूर्त वाले कार्य नहीं करते, मगर बिना मुहूर्त के दान, पुण्य, जप, तप परोपकारादि तां विशेष रूप से करने के लिये ही अधिक महीने को 'पुरुषोत्तम अधिक मास', कहते हैं, उसकी कथा भी सुनते हैं और सिंहस्थ में नाशिकादि तीर्थों में यात्रा का मेला भी भरते हैं। इसी प्रकार वर्तमानिक जैन समाज में भी मुहूर्त वाले कार्य अधिक महीने में नहीं करते हैं। मगर बिना मुहूर्त वाले पर्युषणापर्वादि धार्मिक कार्य करने में कोई तरह का भी हरजा नहीं है। अधिक महीने के ३० दिनों का मुहूर्तादि कार्यों में नहीं लेते, परंतु बिना मुहूर्त के (दिवसों की संख्या से प्रतिबद्ध) धार्मिक कार्यों में लेते हैं। बस ! इसका मर्म सरल दिल से न्यायपूर्वक समझ लिया जावे तो अधिक महीने में पर्युषणापर्वादि धर्म कार्य नहीं हो सकते हैं। ऐसा एकांत आग्रह का झूठा वहेम आपसे ही निकल सकता है। इसका विशेष निर्णय इस ग्रंथ को वाचने वाले तत्त्वज्ञ विवेकी सज्जन स्वयं कर सकेंगे।

२-यह बे समझ है, या हठाग्रह है ॥

अधिक महीने के अभाव में ५० दिने भाद्रपद में पर्युषणा करना लिखा है सो ५० दिन के अंदर करने वाले आराधक होते हैं ऊपरान्त करने वाले तो विराधक होते हैं। इसलिये ५०वें दिन की रात्रि को भी किसी प्रकार से भी उल्लंघन करना नहीं कल्पता है। यह बात जैन समाज में प्रसिद्ध ही है। जिस पर भी सिर्फ भाद्रपद शब्द मात्र को ही पकड़कर वर्तमानिक दो श्रावण होने पर भी भाद्रपद में पर्युषणा करने का आग्रह करते हैं, मगर उसमें ८० दिन होने से शास्त्र विरुद्ध होता है, इसका विचार कुछ भी करते नहीं हैं।

और भी इसी तरह से पर्युषणा के पिछाड़ी भी हमेशा ७० दिन रहने का एकांत आग्रह करते हैं, मगर ७० दिन का नियम अधिक महीने के अभाव संबंधी है, और अधिक महीना होवे तब तो निशीथचूर्णि, बृहत्कल्पचूर्णि, स्थानांगसूत्रवृत्ति और कल्पसूत्र की टीकाओं में १०० दिन रहने का कहा है। इसलिये ७० दिन संबंधी या १०० दिन संबंधी यथा अवसर दोनों बातें आत्मार्थियों को मान्य करने योग्य हैं, जिस पर भी १०० दिन संबंधी शास्त्र प्रमाणों को छोड़कर सिर्फ ७० दिन के शब्द मात्र को आगे करके १०० दिन की जगह भी ७० दिन रहने का आग्रह करते हैं। इसलिये ऊपर की दोनों बातों संबंधी शास्त्रीय अपेक्षा की यह बे समझ है, या समझने पर भी हठाग्रह है। इसका विशेष विचार तत्त्वज्ञ पाठकगण को करना चाहिये।

[११]

३-कहतेहैं मगर करते नहीं, यहभी देखिये-आग्रह ?

अधिकमहीनेके ३० दिनोंको गिनतीमेंसे छोड़ देनेका आग्रह करनेवाले; जब दो श्रावण होंवे तबभी भाद्रपद तक ५० दिन हुए ऐसा कहतेहैं, मगर प्रत्यक्ष प्रमाण व न्यायकी युक्तिसे विचारकर देखा जावे तो यहकहना प्रत्यक्ष प्रमाणसेभी सर्वथा अनुचितही मालूम होता है। देखिये- किसी श्रावण या श्राविकाने आषाढचौमासीसे उपवास करने शुरू किये होवें, उनको बतलाईये दो श्रावण होनेपर ५० उपवास कबतक पूरेहोवेंगे, और ८० उपवास कबतक पूरे होवेंगे? इसके जवाबमें छोटासा बालक होगा वहभी यही कहेगा, कि ५० दिनोंके ५० उपवास दूसरे श्रावणमें और ८० दिनोंके ८० उपवास दो श्रावणहोनेसे भाद्रपदमें पूरे होवेंगे। इसीतरह साधुसाध्वियोंके संयमपालनेमें, तथा सर्व संसारी जीवोंके प्रत्येक समयके हिसाबसे ७८ कर्मोंके शुभाशुभ बंधन होनेमें और धार्मिक पुरुषोंके धर्मकार्योंसे कर्मोंकी निर्जरा होनेमें व सूर्यके उदय अस्तके परिवर्तन मुजब दिवसोंके व्यतीत होनेके हिसाबमें, इत्यादि सर्व कार्योंमें दो श्रावण होनेसे भाद्रपद तक ८० दिन कहते हैं। ५० उपवास दूसरे श्रावणमें, व ८० उपवास भाद्रपदमें पूरे होनेकाभी कहते हैं, और उपवासादिक उपरके तमाम कार्योंमें अधिक महीनेके ३० दिनोंको बीचमें सामील गिनकर ८० दिन कहते हैं, ८० दिनोंके लाभालाभ-पुण्य-पापके कार्यभी प्रत्यक्षमें मंजूरकरतेहैं, ऐसेही दो आश्विनमहीने होनेसे पर्युषणाके पिछाडी कार्त्तिक तक १०० दिन होतेहैं, उसकेभी १०० उपवास, व १०० दिनोंके कर्मबंधन तथा धर्मकार्य वगैरह सर्व कार्योंमें १०० दिन कहतेहैं, और १०० दिनोंको आपभी अपने व्यवहारमेंभी मंजूर करते हैं। उसमें अधिक श्रावणके ३० दिनोंको गिनतीमें लेनेकी तरह अधिक आसोजकेभी ३० दिनोंको गिनतीमें मान्य करना कहते हैं, मगर जब दो श्रावण होवे तब भाद्रपद तक ८० दिन होते हैं, व जब दो आश्विन होवे तबभी पर्युषणाकेबाद कार्त्तिक तक १०० दिन होते हैं, उन्को अंगीकार करते नहीं, और ८० दिनके ५० दिन, व १०० दिनके ७० दिन कहते हैं, यह जगत बिरुद्ध कैसा जबरदस्त आग्रह कहा जावे, इसको विवेकी जन स्वयं विचार सकते हैं।

४-कालचूलारूप अधिकमहीना पहिला या दूसरा ?

यद्यपि जैनटिप्पणा विच्छेद है, इसलिये लौकिक टिप्पणा मु-

[१२]

जब मास, पक्ष, तिथि, धार, नक्षत्रादिक मानते हैं, मगर जैनशास्त्र तो मौजूद ही है। इसलिये पर्युषणादि धार्मिक कार्य जैनसिद्धांतों के मुजबही करने में आते हैं। और जैनशास्त्र मुजबही अभी सर्व गच्छवाले अधिक महीने को कालचूला कहते हैं। किंतु कितने के प्रथम महीने को कालचूला कहते हैं, मगर प्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्ति, सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति, चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्रवृत्ति, लोकप्रकाश, ज्योतिषकरंडपयश्चवृत्ति वगैरह शास्त्रप्रमाणों से दूसरा अधिक महीना कालचूलारूप ठहरता है देखिये—“सहोष अर्ध्याष, हवई हु अहिमासो जुगंतंमि। बावीसे पव्वसप, हवई हु बीओ जुगंतंमि ॥ १ ॥ इत्यादि सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिके अनुसार ६० पर्व (पक्ष) के ३० महीने व्यतीत होने पर ३१ वा महीना दूसरा पौष अधिक होता है, और १२२ पक्ष के ६१ महीने जाने पर कालचूला रूप दूसरा आषाढ अधिक होता है। उसी कालचूलारूप दूसरे अधिक आषाढ महीने में ही चौमासी प्रतिक्रमणादि धार्मिक कार्य सर्व गच्छवालों के करने में आते हैं। और अधिक पौष महीने व अधिक आषाढ महीने के दिनों की गिनती सहित ही ६२ महीने, १२४ पक्ष, १८३० दिन और ५४९०० मुहूर्तों के पांच वर्षों का एक युग शास्त्रों में कहा है। इसलिये कालचूलारूप अधिक महीने के ३० दिन गिनती में नहीं आते १, तथा कालचूलारूप अधिक महीने में चौमासी प्रतिक्रमणादि धार्मिक कार्य नहीं हो सकते २, और मासवृद्धि दो महीने होने से प्रथम महीने को कालचूला कहना ३, यह सर्व बातें सर्वथा शास्त्रविरुद्ध हैं।

५- पूर्वापर विसंवादी (विरोधी) कथन ॥

जो लोग जिस अधिक महीने को कालचूला कहकर गिनती में लेने का व पर्युषणपर्वदि धर्म कार्य करने का निषेध करते हैं, वोही लोग उसी कालचूलारूप दूसरे अधिक आषाढ को गिनती में लेकर चौमासी प्रतिक्रमणादि सर्व कार्य आप करते हैं, जिस पर भी मुंह से कालचूलारूप अधिक महीने को गिनती में नहीं लेना तथा उसमें पर्युषणा व चौमासी आदि धर्म कार्य नहीं करने का कहते हैं। और कालचूलारूप अधिक महीने को गिनती में लेकर धर्म कार्य करने वालों को दोष बतलाते हैं। सो देखो एक जगह कालचूलारूप अधिक महीना गिनती में छोड़ते हैं, दूसरी जगह उसी को ही खास आप गिनती में लेकर चौमासी आदि धर्म कार्य करते हुए अंगीकार करते हैं। और फिर दूसरे गिनती में लेने वालों को दोष भी बतलाते हैं, यह तो “मम वदने जिह्वा नास्ति” की तरह कैसा पूर्वापर सर्वथा असंगतरूप विसंवादी कथन है, सो भी विचारने योग्य है।

[१३]

६-कालचूला शिखररूप है, या चोटीरूप है ?

अधिकमहीनेको निशीथचूर्णि आदि शास्त्रोंमें शिखररूप कालचूला कहा है और दिनोंकी गिनतीमें भी लिया है, जिसपर भी कितने-क महाशय दिनोंकी गिनतीमें निषेध करनेके लिये चोटीरूप कहते-हैं. और 'जैसे पुरुषके शरीरके मापमें उसकी चोटीकी लंबाईका माप नहीं गिना जाता, तैसेही अधिकमहीना कालपुरुषकी चोटीसमान होनेसे उसीके ३० दिनोंका प्रमाण गिनतीमें नहीं लिये जाते' ऐसा दृष्टांत देते हैं, सो भी सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है, क्योंकि पुरुषकी उँचाईकी गिनतीमें उसकी चोटी १-२ हाथ लंबी होवे तो भी कुछ भी गिनतीमें नहीं ली जाती, उससे उसका प्रमाण भी कुछ नहीं बढ़ सकता, मगर जैसे-देवमंदिरोंके शिखर व पर्वतोंके शिखर प्रत्यक्षरूपेण उनकी उँचाईकी गिनतीमें आते हैं, उसीसे उन्हींकी उँचाईका प्रमाण भी बढ़ जाता है. तैसेही अधिकमहीनेको कालचूला कहा है, सो शिखररूप होनेसे गिनतीमें आता है, उससे उस वर्षका प्रमाण भी १२ महीनोंके २४ पक्षोंके ३५४ दिनोंकी जगह, १३ महीनोंके २६ पक्षोंके ३८३ दिनोंका होता है, और मास वृद्धिके कारण चंद्र वर्षकी जगह अभिवर्द्धित वर्ष भी कहा जाता है. इसलिये शिखरकी जगह घासरूप चोटी कह करके अधिकमहीनेको दिनोंकी गिनतीमें लेनेका निषेध करना सो "करे माणे अकरे" जमालिकी तरह सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है।

७-अधिकमहीना गिनतीमें न्यूनाधिक है, या बरोबर है ?

जैनसिद्धांतोंके हिसाबसे तो जैसे १२ महीनोंके सर्वदिन धर्मकार्योंमें बरोबर हैं, तैसेही अधिकमहीना होनेसे १३ महीनोंके भी सर्वदिन बरोबर ही हैं। इसमें न्यूनाधिक कोई भी महीना नहीं है, और पापी प्राणियोंके कर्मोंका बंधन होनेमें व धर्मीजनोंके कर्मोंकी निर्जरा होनेमें एक समयमात्र भी व्यर्थ खाली नहीं जाता है. और समय, आवलिका, मुहूर्त्त दिन, पक्ष, मास, वर्ष, युग, पल्योपम, सागरोपमादि कालमानमें से १ समयमात्र भी गिनतीमें कभी नहीं छूट सकता, जिसपर भी धर्म कार्योंमें ३० दिनोंको गिनतीमें छोड़ देनेका कहते हैं, या अधिक महीनेके दिनोंको तुच्छही समझते हैं, सो सर्वथा जिनाशा विरुद्ध है.

८ - अधिकमहीना नपुंशक है, या पुरुषोत्तम है ?

जैसे-ब्रह्मचारी उत्तम पुरुष समर्थ होनेपर भी परछी प्रति नपुंशक समान होता है, तैसेही-लौकिक रूढ़ीसे विवाह सादिवगैरह

[१४]

आरंभवाले या मुहूर्तवाले कार्य करनेमें तो अधिकमहीनेको नपुंशक समान कहतेहैं मगर तोभी दिनोंकीगिनतीमें तो बरोबरलेतेहैं । और निरारंभी व विना मुहूर्तवाले दान, पुण्य, परोपकार, जप, तपादि कार्य करनेमें तो अधिक महीनेको 'पुरुषोत्तम अधिक मास' कहा है, सो बात प्रकटही है। इसलिये जैनसिद्धांतोंके हिसाबसे या लौकिक शास्त्रोंके हिसाबसेभी अधिक महीनेको दिनोंकी गिनतीमें निषेध करते हैं, सो शास्त्रीय दृष्टिसे व युक्ति प्रमाणसे या दुनियाके व्यवहारसेभी सर्वथा विरुद्ध है । इसकी विशेष पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं

९-दूसरे आषाढमें चौमासी करनेका क्या प्रयोजनहै ?

ओ देवानुप्रिय ! चौमासीप्रतिक्रमणादि पर्वकार्य ग्रीष्मऋतुपूरी होनेपर वर्षाऋतुकीआदिमें किये जाते हैं, और ज्येष्ठ व आषाढमें ग्रीष्मऋतु कही जाती है। इसलिये जब दो आषाढ होंवे; तब उन दोनों आषाढमहीनोंको ग्रीष्मऋतुमें गिन जाते हैं। यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणसे जगजाहिरहीहै, और जैनसिद्धांतानुसार तो दूसरे आषाढ शुदी पूर्णिमाका हमेशा क्षय होता है। इसलिये दूसरे आषाढ शुदी१४को पांच वर्षोंका एक युग पूरा होताहै, उसी रोज ग्रीष्मऋतुभी पूरी होतीहै, तथा पांचवा अभिवर्द्धितवर्षभी उसीरोज पूरा होताहै। और १ युगमें सूर्यके दक्षिणायन उत्तरायणके दशअयनभी १८३०दिनोंसे उसीदिन पूरे होतेहैं। इसलिये उसी दिन दूसरे आषाढ शुदी१४ को चौमासी प्रतिक्रमणादि कार्य करनेकी अनादि मर्यादा है । और प्रथम आषाढ ग्रीष्मऋतुमें होनेसे वहां ग्रीष्मऋतु, युग, वर्ष, अयन, वगैरह पूरे नहीं होते, व प्रथम आषाढमें वर्षाऋतुभी शुरू नहीं होती, इसलिये प्रथम आषाढमें चौमासी प्रतिक्रमणादि पर्वके कार्य करनेमें नहीं आतेहैं और शास्त्रीय हिसाबसे श्रावण वदी१को (गुजरातदेशकी अपेक्षासे आषाढ वदी १ को) युगकी, वर्षकी और वर्षाऋतुकी शुरूआत होती है। इसलिये उसकी आदिमें और ग्रीष्मऋतुकी, वर्षकी, युगकी समाप्ति समय दूसरे आषाढकेअंतमें चौमासी प्रतिक्रमणादि पर्वके कार्य करने शास्त्रोंमें कहे हैं, सो युक्तियुक्तही हैं ।

१० - चौमासा ४ महीनोंका या ५ महीनोंका ?

देखिये-१२ महीनोंका वर्ष कहा जाता है, मगर जब अधिक महीना महीना होवे तब १२ महीनोंका वर्ष कहा जाता है, इसीतरह यद्यपि चौमासा शब्द व्यवहारसे ४ महीनोंका कहा जाता है, मगर अधि-

[१५]

क महीनाहोनेसे १६ महीनोंके वर्षकी तरह चौमासीभी पांच महीनोंका होता है। इसलिये अधिक महीना न होवे तब तो ४ महीनोंके ८ पक्षोंके २० दिनोंसे चौमासीकार्य होते हैं, मगर जब अधिक महीना होवे तब तो पांच महीनोंके दश (१०) पक्षोंके १५० दिनोंसे चौमासी प्रतिक्रमणादिकार्य होते हैं। यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणसे व लौकिक टिप्पणाके प्रमाणसे जग जाहिर है, और आगम पंचांगी सिद्धांत प्रमाणसे तो अनादि सिद्धप्रवाह ऐसाही है। इसलिये इसको कोईभी कभी निषेध नहीं कर सकता है। इसका विशेष विचार तत्त्वज्ञ पाठक गण स्वयं कर सकते हैं।

११ — देखो — एक कुतर्क.

कितनेक कहते हैं, कि—‘चौमासी प्रतिक्रमणादिकार्य आषाढमें करने का कहा है, इसलिये प्रथम आषाढमें करेंगे तो दूसरा आषाढ छूट जावेगा और दूसरेमें करेंगे तो, प्रथम छूट जावेगा. या दोनोंमें करेंगे तो पुनरुक्ति दोष आवेगा’ ऐसी २ कुतर्क करते हैं, सो भी सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है। क्योंकि प्रथम आषाढमें ग्रीष्मऋतु वगैरह उपर मुजब कारण होनेसे चौमासीकार्य कभी नहीं होसकते, इसलिये ‘प्रथम आषाढमें करेंगे तो दूसरा आषाढ छूट जावेगा’ ऐसा कहना व्यर्थही है। और दो आषाढ होनेसे दोनोंकी गिनतीपूर्वक ५ महीने दूसरे आषाढमें चौमासीकार्य करते हैं, इसलिये ‘दूसरेमें करेंगे तो प्रथम छूट जावेगा’ ऐसा कहनाभी व्यर्थही है। और दोनों आषाढोंमें दो बार चौमासी कार्य नहीं; किंतु ग्रीष्मऋतुकी समाप्ति वगैरह उपर मुजब कारणोंसे दूसरे आषाढमें एकही बार चौमासीकार्य करते हैं. इसलिये ‘दोनोंमें करेंगे तो पुनरुक्ति दोष आवेगा’ ऐसा कहनाभी व्यर्थही है। और चौमासी प्रतिक्रमण तो ४ महीने, या मास वृद्धि होवे तब पांच महीने सब गच्छवाले एकबार प्रत्यक्षपने करते हैं इसलिये मास बढ़ने परभी चौमासीकार्य ४ महीने होवे मगर पांच महीने नहीं होवे, ऐसा प्रत्यक्ष असत्य भाषण करना आत्मारथियोंको योग्य नहीं है. इसकोभी विशेष तत्त्वज्ञ पाठक गणस्वयं विचारलेंगे.

१२—दूसरे आषाढमें चौमासीकार्य करनेकी तरह पर्युषणापर्वभी दूसरे भाद्रपदमें हो सकें, या नहीं?

आषाढ-कार्तिकादि चौमासा ४-४ महीनोंसे होता है, मगर अधिक महीना होवे तब पांच महीनोंकासी होता है, यह बात ऊपर

[१६]

लिख चुक हैं। इसलिये मासवृद्धि होनेसे १२० दिनोंकी जगह १५० दिनभी चौमासमें होते हैं। उसमें किसी प्रकारका दोष कोईभी शास्त्रमें नहीं बतलाया। मगर पर्युषणातो वर्षाऋतुमें दिन प्रतिबद्ध होनेसे ५० दिने अवश्यही करना सर्वशास्त्रोंमें कहा है, उसपर कभी १ दिनभी बढ़ जावे तो उसका दोष कहा है। और दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणाकर, तो ८० दिन होनेसे प्रत्यक्षपने सर्व शास्त्रविरुद्ध होता है। इसलिये दूसरे आषाढमें चौमासी पर्वकी तरह पर्युषणा पर्व ८० दिन होनेसे दूसरे भाद्रपदमें कभी नहीं होसकते हैं, किंतु आगमादि सर्व शास्त्रोंकी आज्ञा मुजब ५० दिने प्रथम भाद्रपदमें करना युक्तियुक्त न्यायसंपन्नही है, इसको तो विषेश पाठक गण स्वयं विचार सकते हैं।

१३—जिसको मान्यकरते हैं उसीकोही उत्थापनकरते हैं।

हमेशां भाद्रपदमेंही पर्युषणा पर्व करनेका ठहरानेके लिये निशीथचूर्णिके अधूरे पाठको आगेकरते हैं, मगर चूर्णमें तो ५० दिने या ४९ दिने अवश्यही पर्युषणा करना लिखा है, परंतु ५० दिन उपरांत करना कभी नहीं लिखा और अधिक महीनेके ३० दिनोंकीभी खुलासा पूर्वक गिनतीमें लिये हैं। जिसपरभी दो भाद्रपद होवें, तब ५० दिने प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्वका आराधन करना छोड़कर, ८० दिने दूसरे भाद्रपदमें करते हैं। उसीसे जिस चूर्णिका पाठ मान्य करते हैं, उसी चूर्णिकापाठ (दूसरे भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करनेसे) उत्थापनभी करते हैं। इसको विशेष तत्त्वज्ञ जन स्वयं विचार सकते हैं।

१४—अब देखो एक-वितंडा वाद ॥

८० दिने पर्युषणापर्व करनासो शास्त्र विरुद्ध ठहराते हो, मगर दो आषाढ महीने होवे तब प्रथम आषाढमें चौमासी प्रतिक्रमण करोगे, तो-तुमारेभी ८० दिने पर्युषणा पर्व होवेंगे, तब कैसे करोगे? समाधान भो-देवानुप्रिय ! पर्युषणाके ५० दिनोंकी गिनती ग्रीष्मऋतुकी समाप्ति होनेपर वर्षाऋतुकी शुरुआतसे गिनी जाती है। और प्रथम आषाढ महीना ग्रीष्मऋतुमें होनेसे उसमें चौमासी कार्य नहीं हो सकते और ग्रीष्मऋतुकी समाप्ति हुए बिना व वर्षाऋतुकी शुरुआत हुए बिना प्रथम आषाढसे पर्युषणासंबंधी ५० दिनोंकी गिनतीभी कभी नहीं हो सकती। इसलिये प्रथम आषाढमें चौमासी कार्य करने का, व उससे पर्युषणाके ८० दिन गिननेका कहना अज्ञानताका कारण है, क्योंकि वर्षाऋतुकी आदिमें दूसरे आषाढके अंतमें चौमासीकार्य होनेसे पर्युषणाके ५० दिन गिननेका निशीथचूर्णिके प-

[१७]

पुष्पणाकल्पचूर्णि वगैरहशास्त्रोंमें कहा है, इसलिये प्रथम आषाढसे ८० दिन बतलाकर दो श्रावण होने पर भी भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करना. या दो भाद्रपद होंवे तब दूसरे भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा ठहराना, सर्वथा शास्त्रविरुद्ध है, इसको भी विवेकी पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे ।

१५ - देखिये यह—कैसी कुयुक्ति है ।

कितनेक महाशय अपना असत्य आग्रहको छोड़ सकते नहीं तथा सत्यवातको ग्रहण भी कर सकते नहीं और व्यर्थ ही अपनी सचाई जमानेकेलिये कहते हैं, कि “दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्व करना किसी भी आगममें नहीं लिखा” ऐसीर कुयुक्तियें करते हैं, और भद्रजीवोंको संशयमें गेरते हैं. मगर इतना विचार करते नहीं हैं, कि—५० दिने पर्युषणापर्व करना कल्पसूत्रादि सर्व आगमोंमें लिखा है, यही जिनाज्ञा है. देखिये—“सर्वसिद्धि राणमासे” वा “सर्वश्रितिरात्रे मासे” वा “दश पंचके” वा “पचांशतैव दिनेः पर्युषणा युक्तेति वृद्धाः” इन सर्व वाक्योंमें ५० दिने पर्युषणा करना कहा है, सो वर्तमानमें ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्व करना कल्पसूत्रादि आगमानुसार ठहरता है. इससे ५० दिन कहो, या दूसरा श्रावण, प्रथम भाद्रपद कहो, दोनों एकार्थ ही हैं. इसलिये ‘दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करना किसी आगममें नहीं लिखा’ ऐसीर जानबुझकर कुयुक्तियें लगाकर अपना झूठा पक्ष जमानेकेलिये मायामृषा भाषण करना आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है.

१६—उत्सूत्र प्ररूपणा ॥

चंद्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति-जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति-भगवती-समवायांगादि आगम-निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि-वृत्ति-प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें अधिक महीनेके ३० दिन गिनतीमें लिये हैं, वे सर्व शास्त्रोंके पाठ लुपानेसे लुप सकते नहीं और अर्थ बदलनेसे अर्थ भी बदला सकते नहीं. इसलिये कितनेक आग्रही जन कहते हैं, कि—‘उन शास्त्रोंमें तो अधिक महीना होनेसे १३ महीनोंके २६ पक्षोंके ३८३ दिनोंका अभिवर्द्धितवर्षका स्वरूप बतलाया है, मगर १३ महीनोंको गिनतीमें लेनेका कहा लिखा है’ ऐसा कहनेवाले प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणा करते हैं, क्योंकि देखो—चंद्रप्रज्ञप्ति-सूत्रवृत्ति वगैरह सर्व शास्त्रोंमें, जैसे—१ वर्षके १२ महीनोंके २४ पक्षोंके ३५४ दिनोंका स्वरूप गणित प्रमाण बतलाया है, तैसही अधिक महीना होनेसे उस वर्षके भी १३ महीनोंके २६ पक्षोंके ३८३ दिनोंका स्वरूप गणित प्रमाण बतलाया है, इस लिये

[१८]

चंद्र और अभिवर्द्धित इन दोनों वर्षोंका स्वरूप गणित प्रमाण सर्व शास्त्रोंमें समानरूपसे खुलासापूर्वक होनेपरभी १२ महीनोंके वर्षको प्रमाणभूत मानना और १३ महीनोंके वर्षको स्वरूप बतलानेका बहाना बतलाकर प्रमाणभूत नहींमानना, यह तो प्रत्यक्षही अन्याय है, यदि १३ महीनोंका स्वरूप बतलानेका कहकर गिनतीमें प्रमाणभूत नहीं मानोंगे, तो १२ महीनोंकाभी स्वरूप बतलाया है, उसकोभी गिनतीमें प्रमाणभूत नहीं मानसकॉगे और शास्त्रोंमें तो १२ या १३ महीनोंके दोनों वर्षोंके समानरूपसे स्वरूप बतलाकर गिनतीमें प्रमाणभूत माने हैं। इसलिये दोनों प्रकारके वर्षमानने योग्य हैं, इसमें शास्त्रप्रमाणसे तो एकभी वर्षका निषेध नहीं होसकता है। देखिये - ११ अंग; व १४ पूर्वादिशास्त्रोंमें जैसे, दर्शन-ज्ञान-चारित्र-चौदहराजलोक-षट्द्रव्य-नवतत्त्व-चौदहगुणस्थान-जीवाजीवादि पदार्थोंका स्वरूप; व चरणकरणानुयोगमें संयमके आराधनकी क्रियाका स्वरूप बतलाया है, वोही सर्वमान्य करनेयोग्य है, इसलिये स्वरूप बतलाना सोही श्रद्धापूर्वक मान्य करने योग्य सत्यप्ररूपणा कही जाती है। जिसपरभी चरणकरणानुयोगमें संयमकी क्रियाका व षट्द्रव्य - नवतत्त्वादिकका स्वरूप बतलाया है, मगर उस मुजब मान्य करना कहां लिखा है, ऐसा कोई कहे और उनको प्रमाणभूत नहींमानें; तो ११ अंग व १४ पूर्वोंके उत्थापनकरनेका प्रसंग आनेसे अनेक भवोंकी वृद्धिकरनेवाली उत्सूत्र प्ररूपणाका दोष आवे। इसी तरहसे ही १३ महीनोंका स्वरूप कहकर प्रमाणभूत नहींमानें तो सूर्यप्रज्ञप्तिवगेरह पूर्वोक्त शास्त्रोंके उत्थापनकरनेका प्रसंग आनेसे उत्सूत्र प्ररूपणा ठहरती है। और जैसे- षट्द्रव्य, नवतत्त्वादिकके स्वरूप शास्त्रोंमें कहे हैं, उस मुजबही मानने पड़ते हैं। तैसे ही १२ महीनोंके स्वरूपकी तरह; १३ महीनोंका स्वरूपभी शास्त्रोंमें बतलाया है, उस मुजबही १३ महीने गिनतीमें प्रमाणभूत मानने पड़ते हैं। इसलिये '१३ महीनोंके अभिवर्द्धित वर्षका स्वरूप बतलाया है, मगर मान्य करना कहां लिखा है' ऐसी उत्सूत्र प्ररूपणा करना और भोले जीवोंको संशयमें डेरना आत्मार्थी भवभीख-ओंको योग्य नहीं है।

१७ - लौकिक अधिकमहीना मानना; या नहीं ?

कितने कमहाशय कहते हैं, कि- जैनटिप्पणामें तो पौष और आपाद दो महीने बढ़ते थे और अब लौकिकटिप्पणामें तो श्रावण भाद्रपदादि महीने भी बढ़ने लगे हैं सो कैसे माने जावे? इसपर इतनाही विचार कर-

[१९]

नेकाहै, कि जैनटिप्पणामें तीसरेवर्षमें जो महीना बढताथा उसकोभी गिनतीमें लेतेथे और जैनटिप्पणामें ज्यादामें ज्यादा ३६घटिका प्रमाणे दिनमान होताथा, तथा कमतीमें कमती २४ घटिकाप्रमाणे दिनमान होताथा. और माघमहीने दक्षिणायनसे सूर्य उत्तरायनमें होताथा और श्रावणमहीने उत्तरायनसे दक्षिणायनमें सूर्य होताथा और श्रावण वदि एकमसे६२वीं तिथि क्षय होतीथी. इसीप्रकार १ वर्षमें ६ तिथि क्षयहोतीथी बीचमें कोईभीतिथि क्षयनहींहोतीथी. और तिथिबढने कातो सर्वथा अभावहोनेसे कोईभीतिथि कमी बढतीनहींथी और ६० घडीसेकम तिथिकाप्रमाणहोनेसे, ६०घडीके ऊपर कोईभी तिथि नहीं हांतीथी. और नक्षत्रसंवत्सर, ऋतुसंवत्सर, सूर्यसंवत्सर, चंद्रसंवत्सर व अभिवर्द्धितसंवत्सरसहित ५वर्षोंके १८३० दिनोंका १ युग, व ८८ ग्रह मानतेथे इत्यादि अनेक बातें जैनटिप्पणामें होतीथी वो जैन टिप्पणा परंपरागत जैनीराजा देशभरमें चलातेथे और पूर्वगत आम्नायसे गुरुगम्यतावाले जैनकुलगुरु बनातेथे, इसलिये उसमें ग्रहणादि किसीतरहका फरकभीकभी नहीं पडताथा, मगर परंपरागत जैनी राजाओंका व पूर्वगत आम्नायका, अभावहुआ और जबसे ८८ग्रहवाला जैनपंचांग बंधहुआ, तबसे सर्व जैनसमाजमें ९ग्रहवाला लौकिक टिप्पणा माननेकी प्रवृत्ति शुरूहुई, उसमें श्रावण व माघमें दक्षिणायनमें व उत्तरायनमें सूर्यके होनेका नियम न रहा और हरेक महीने बढनेसे ज्येष्ठ-आषाढ व मार्गशीर्ष-पौषादिमेंभी दक्षिणायन व उत्तरायन होनेलगा, तथा क्षेत्रफल व गणित विभागमें फेर पडनेसे ज्यादामें ज्यादा ३४ घटिका, व कमतीमें कमती २६ घटिकाप्रमाणे दिनमानभी मानने लगे और एक तिथिका ६० घटिकासे ज्यादा प्रमाण माननेसे हरेकपक्षमें तिथियोंका क्षयभी होनेलगा और हरेक तिथियोंकी वृद्धि होनेसे दो दो तिथियेंभी होने लगी. और १२ वर्षका युग इत्यादि अनेकबातें अभी जैनपंचांगके अभावसे, लौकिकटिप्पणाकी माननापडतीहैं, इसीतरह अधिकमहीनाभी लौकिकटिप्पणाकीरीतिसे वर्तमानमें माननापडताहै, इसलिये ८४ गच्छोंके सर्व पूर्वाचार्योंने श्रावण भाद्रपदादिमहीने लौकिक टिप्पणामुजब मानेहैं. वोहां प्रवृत्ति अभी सर्वजैनसमाजमें शुरू है। और दक्षिणायन, उत्तरायन, तिथिकी हाना, वृद्धि चैगरह तिथि, चार, नक्षत्र, पक्ष, मास, वर्ष आदिक सर्व लौकिक टिप्पणामुजब अभीमानतेहैं. मगर अधिकमहीना बाबत जैन पंचांगकी आड लेकर नहीं मानना, यह न्याय युक्ति बाधक होनेसे

[२०]

सत्य कभी नहीं ठहर सकता है। इसलिये ऊपर मुजब बातों की तरह श्रावण भाद्रपदादि अधिकमहीने भी लौकिक टिप्पणा मुजब वर्तमान में मान्य करने से युक्तियुक्त न्यायसंपन्न होने से कभी निषेध नहीं हो सकते। और यद्यपि जैन टिप्पणामें पौष-आषाढ बढ़ता था, उस बात को जिनकल्पी व्यवहार की तरह सत्यमानना, श्रद्धारक्षणा, प्ररूपणा करना, मगर जिनकल्पी व्यवहार अभी बिच्छेद होने से उनको अंगीकार नहीं कर सकते हैं, उसी तरह अभी जैन टिप्पणा भी बिच्छेद होने से वर्तमान में जैन टिप्पणा मुजब तिथि, वार, या पौष-आषाढ महीने मानने का आग्रह करना से देशकाल के व सर्वपूर्वाचार्यों के सर्वथा विरुद्ध है।

१८ - जैन ज्योतिष परसे अभी जैन टिप्पणा शुरू करें तो शुरू हो सके; या नहीं ?

यद्यपि जैन ज्योतिष के सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्रवृत्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति सूत्रवृत्ति, ज्योतिषकरंडपयनवृत्ति आदि अनेक शास्त्र मौजूद हैं, उस परसे तिथि, वार, मास, पक्ष, वर्षादिक का गणित अभी हो सकता है। मगर ग्रहणादि सर्व बातें बरोबर मिलान करना मुश्किल पड़ता है, इसलिये कितनी क बातों में अन्य आधार लेना पड़ता है। और लौकिक व जैन दोनों के गणित विभाग में फेर होने से, तिथि, वार, मास, नक्षत्र व ग्रहणादि दोनों के समान रूप से बरोबर नहीं आ सकते। और पूर्वगत गीतार्थ गुरुगम्य आम्नाय के अभाव से व अल्पज्ञता के कारण से यदि कोई ग्रहणादि बतलाने में न्यून अधिक कुछ फरक पड़ जावे तो अभी सर्वज्ञ शासन की लघुता होने का कारण बन जावे। और परंपरागत जैनी राजाओं का अभाव होने से व ब्रह्मचारी, व्रतधारी, गुरुगम्यता वाले कुल गुरुओं का अभाव होने से, तथा खरतरगच्छ नायक श्रीनवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीशांतिसूरिजी, श्रीहेमचंद्राचार्यजी वंगरह समर्थ व शासन प्रभावक आचार्यों के समय से भी बहुत काल से जैन टिप्पणा बिच्छेद होने से, अभी अपने अल्प बुद्धि वालों से फिर से शुरू नहीं हो सकता है। और कोई शुरू करें तो भी सर्वमान्य युगप्रधान समर्थ आचार्य के अभाव से सर्वदेशों के, सर्वगच्छों के, सर्व जैन समाज में परंपरागत चल सकता भी नहीं। देखिये-जैन शासन में प्राचीन काल में विशेषज्ञानी समर्थ प्रभावक पूर्वाचार्यों के समय में जो बात पहिले से बिच्छेद हो जावे; उसको विशिष्टतर अवधिज्ञानादि रहित अल्पज्ञों से इस काल में फिर से शुरू नहीं हो सके। इतने पर भी फिर से शुरू करें,

[२१]

तो सर्व पूर्वाचार्योंकी आशातनाके तथा शासनकी लघुताके दोषके भागी होंगे । इसीतरह जैनपंचांगभी प्राचीन पूर्वाचार्योंके समयसे विच्छेद होनेसे अभीफिरसे शुरू नहीं होसकता जिसपरभी कोई फिरसे शुरू करे तो २०वें दिन पर्युषणापर्व करनेकी, व पांच पांच दिने अज्ञात पर्युषणास्थापन करने वगैरह बातें जो विच्छेद होगईहैं, वे सब बातेंभी जैन टिप्पणाशुरू होनेसे पीछाशुरू करनी पड़ेगी, और वे सर्व बातें अभी पडताकाल होनेसे फिरसे शुरू नहीं होसकती हैं, इस लिये अभी जैन पंचांग शुरू नहीं होसकता है ।

१९- अभी लौकिक दो आषाढादिक महीनोंके; अपने दो आषाढ बनासकें या नहीं ?

कितनेक कहते हैं, कि-लौकिक टिप्पणामें आषाढ भाद्रपद बंद तब जैन शास्त्रोंके हिसाबसे दो आषाढ बनालेवे तो पर्युषणाका भेद मिट जावे मगर ऐसाभी कभीनहीं होसकता क्योंकि देखो-जब जैन पंचांगही अभी विच्छेदहै, और तिथि, वार, नक्षत्र पक्ष मासादि पंचांग संबंधीव्यवहार लौकिक टिप्पणा मुजब करतेहैं, जिसपरभी १ महीनेका फेरफार करदेना योग्यनहीं है । देखिये-दो आषाढ होनेसे भरपूर वर्षाकृतुवाला प्रथम आषाढशुदी १५ को प्रत्यक्षप्रमाणसेभी विरुद्ध होकर उसकोआषाढ पूर्णिमाकहना यहजगत विरुद्ध होनेसे व्यवहामेंभी मिथ्याभाषणका दोषलगे । औरपहिले पूर्वाचार्योंनेभीऐसाकभी नहीं किया, इसलिये अभी दो आषाढ या दो भाद्रपदके, दो आषाढ बनाना कभी नहीं बनसकताहै, किंतु लौकिक टिप्पणामुजब दो आषाढ भाद्रपदादि सर्वगच्छोंके पूर्वाचार्यपहिलेसे जैसे मानते आयेहैं, वैसेही वर्तमानमें अपने सबकोभी मान्य करना योग्यहै बस ! धार्मिक व्यवहार पर्युषणपर्यादिकार्य जैन सिद्धांतोंके अनुसार ५०वें दिन करने और तिथि, वार, नक्षत्र, चंद्रयोग, मास, पक्षादि व्यवहार लौकिकटिप्पणाकेअनुसार करना यहीन्याय युक्तियुक्त व सर्वसम्मत होनेसे सर्व जनीमात्रको मान्य करना योग्य है, इसलिये इसमें अन्य २ कल्पनायें करनी सर्वथा व्यर्थही हैं ।

२०-पर्युषणा कितने प्रकारकी होती हैं ?

निशीथचूर्णि, वृहत्कल्पचूर्णि, कल्पसूत्रनिर्युक्ति, चूर्णि, वृत्तिवगैरह शास्त्रोंमें पर्युषणाके नामांतसे ८ प्रकारसे अनेक भेद बतलाये हैं, मगर यहां तो अभी मुख्यतासे वर्षास्थितिरूप और वार्षिक कार्यरूप

[२२]

ऐसे दो अर्थ वर्तमानमें सर्व गच्छवाले ग्रहण करतेहैं । इसलिये आषाढ चौमासीसे ठहरना सो वर्षास्थितिरूप अज्ञात पर्युषणा और मासवृद्धिके सद्भावमें २० दिने या उसके अभावमें ५० दिने ज्ञात (प्रकट) पर्युषणा करना सो वार्षिक कार्यरूप प्रसिद्ध पर्युषणा करनेका समझना चाहिये । जब जैनपंचांगके अभावसे २० दिनकी पर्युषणा बंधहुई, तबसे लौकिक हरेक मास बढ़े तो भी ५० दिने वार्षिक कार्यरूप पर्युषणा करनेकी सर्वगच्छोंके पूर्वाचार्योंकी मर्यादा है।

२१-महीना बढे तब बीस दिनकी पर्युषणा वर्षास्थिति-रूप हैं; या वार्षिकपर्वरूप हैं ?

ओ देवानुप्रिय ! जैसे चंद्रवर्षमें ५० दिनकी ज्ञात पर्युषणा वार्षिक कार्यरूप हैं, तैसेही-अभिवर्द्धित वर्षमें २० दिनकी ज्ञात पर्युषणाभी वार्षिक कार्यरूप हैं । जिसपरभी श्रावणमें बीस दिनकी ज्ञात पर्युषणा सिर्फ वर्षास्थितिरूपमानोंगे, तो भाद्रपदमेंभी ५० दिनकी ज्ञात पर्युषणाभी वर्षा स्थितिरूप ठहर जावेंगे और वार्षिककार्य करने सर्वथा उडजावेंगे, और २० दिने वार्षिककार्य नहीं करने, मगर ५० दिने करने; ऐसाभी कोई शास्त्र प्रमाण नहीं है, और २० दिने ज्ञात पर्युषणा किये बाद पीछे एक महीनेसे वार्षिककार्य करने ऐसाभी कोई शास्त्र प्रमाण नहीं है । इसलिये जैसे-५० दिने भाद्रपदमें वार्षिक कार्य होतेहैं, वैसेही-२० दिने श्रावणमेंभी वार्षिक कार्य होतेथे । और वर्तमानमें श्रावण या भाद्रपदबढ़े; तोभी दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें ५० दिने वार्षिक कार्यरूप पर्युषणापर्व करना सो शास्त्राज्ञा है।

२२-वार्षिक कार्य १२ महीने होवें; या १३ महीनेभी होवें ?

देखो पहिलेभी जैसे-२० दिने श्रावणमें वार्षिककार्य करतेथे तबभी आवतेवर्ष भाद्रपदतक १३ महीने होतेथे, तैसेही अभी वर्तमानमें भी ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें वार्षिक कार्य होनेसे आवते वर्ष १३ महीने हांतेहैं, इसमें कोई दोपनही है, देखिये-दो पौष, दो आषाढ, अथवा दो आसोज होनेसे भी १३ महीने प्रत्यक्षमें होते हैं; इसलिये महीना बढे तब तो पहिले या पीछे १३ महीनोंके २६ पाक्षिक प्रति-क्रमण सर्व गच्छवालोंकोही होतेहैं । और जनमें या लौकिकमें १२ महीनोंके या १३ महीनोंके दोनोंवर्षमाने हैं, इसलिये १२ महीनेभी वार्षिक कार्य होवें, और १३ महीनेभी वार्षिककार्य होवें, यह कोई नवीन बात नहीं है । किंतु अनादि मर्यादाका प्रवाह ऐसाही है, जिसपरभी १३

[२३]

महीने वार्षिक कार्य होनेका दोष बतलाकर, १२ महीने वार्षिककार्य होनेका ठहरानेकेलिये अधिकमहीनेको बीचमेंसे छोड़ देना अनुचित है, २३ - पर्युषणा संबंधी कल्पसूत्रका पाठ वार्षिक कार्योंके लिये है, या केवल वर्षास्थितिके लियेही है?

कल्पसूत्रका पर्युषणा संबंधी पाठ वर्षास्थितिके साथही वार्षिक कार्योंकेलियेभी है, जिसपरभी उसको सिर्फ वर्षास्थितिरूप ठहराकर वार्षिककार्य निषेध करते हैं, वो गंभीर आशयवाले अनेकार्थ-युक्त आगमपाठके अर्थको उत्थापन करनेवाले बनते हैं। जैसे "णमो अरिहंता ण" पदके अर्थमें कर्मशत्रुको जितनेवाले अरिहंत भगवानको नमस्कार करनेका अर्थ अनादिसिद्ध है, जिसपरभी कर्मशत्रुके अर्थको नहीं माननेवालेको अज्ञानी समझा जाता है। तैसेही कल्पसूत्रादिके ५० दिने पर्युषणा करने संबंधी पाठोंमें वार्षिककार्य करनेका अर्थ तो अनादिसिद्ध है, जिसपरभी ५० दिने वार्षिक कार्योंको नहीं मानने वालोंको अज्ञानी या हठवादी समझने चाहिये।

२४ - भगवान् किसी प्रकारके भी पर्युषणा करते थे या नहीं ?

उग्रविहारी जिन कल्पी मुनियोंके तथा स्थविर कल्पी मुनियोंके आचारमें बहुत भेद है, और भगवान् तो अतंतशक्तियुक्त कल्पाति हैं। इसलिये भगवान् के आचारमें तो विशेष भेद है तो भी वर्षाकृत में वर्षास्थितिरूप पर्युषणा तो सर्वकोई करते हैं और स्थविर कल्पी मुनियोंके तो वर्षास्थितिके साथही चौमासी व वार्षिक वर्षके कार्य करने वगैरहका अधिकार प्रसिद्ध ही है। जिसपरभी कल्पसूत्रमें पर्युषणा शब्द मात्रको देखकर अतीव गहनाशयवाले सूत्रार्थके भावार्थको गुरु-गम्यतासे समझ बिना भगवान् को भी वार्षिक प्रतिक्रमणादिक करनेवाले ठहराने, या ५० दिनकी पर्युषणाको वार्षिक कार्योंरहित ठहरानी, सो अज्ञानता है। इसको भी धिवेकीजन स्वयं विचार सकते हैं।

२५ - पर्युषणा संबंधी सामान्य व विशेष शास्त्र कौन २ हैं ?

देखो-- जिस शास्त्रमें मुख्यतासे एक विषयको विशेषरूपसे खुलासाके साथ कथन किया होवे, उसको विशेष शास्त्र कहते हैं। और जिस शास्त्रमें थोड़ा बहुत बातोंका कथन होवे, उसको सामान्य शास्त्र कहते हैं। यद्यपि यथा अवसर दोनों शास्त्र सामान्य हैं, मगर सामान्य-शास्त्रसे विशेष शास्त्र ज्यादा अधिक बलवान होता है। इसलिये मुख्यतासे विशेष शास्त्रकी बात अंगीकार करनेके समय; सामान्य शास्त्रकी बात

[२४]

गौण्यताभावमें रहती है. यहन्याय विद्वानोंमें सर्वत्र प्रसिद्धही है। औरभी देखिये— जैसे श्री भगवतीजीसूत्र बड़ा कहा जाता है, तोभी उनमें बहुत बातोंका थोड़ा २ कथन होनेसे संयमके आराधनकी क्रिया संबंधी सामान्यशास्त्र कहा जावे. और आचारांग, दशवैकालिक छोटे २ सूत्रहैं, तोभी उसमें मुख्यतासे संयमके आराधनका विशेष विधान होनेसे यह संयमक्रियासंबंधी विशेषशास्त्रकहे जातेहैं. इसीतरह समवायांगसूत्रमें थोड़ा २ अनेक बातोंका कथन होनेसे पर्युषणासंबंधी समवायांगसूत्र सामान्य शास्त्र है, और कल्पसूत्रमें तो खास पर्युषणासंबंधी सामान्य व विशेष दोनों प्रकारसे विस्तारपूर्वक खुलासाके साथ वर्षास्थितिरूप व वार्षिकपर्वरूप दोनों पर्युषणाका अधिकार है. इसलिये पर्युषणासंबंधी श्रीकल्पसूत्र विशेषशास्त्र है. यही श्रीकल्पसूत्ररूप विशेषशास्त्रको पर्युषणापर्वमें चतुर्विधसंघके मांगलिकके लिये वर्षोंवर्ष प्रत्येक गांध नगरादिमें सर्वत्र वांचनेमें आता है. उस विशेषशास्त्रके पर्युषणासंबंधी मूलमंत्ररूप मुख्य विशेष पाठको छोड़ना और समवायांगके सामान्यपाठपर दृढ़ आग्रहकरना सो आत्मार्थी विवेकी विद्वानोंको योग्य नहीं है. मगर अल्पज्ञ बिना समझवाले अपना आग्रह न छोड़ें; तो उनकी खुशीकी बात है।

२६—पर्युषणासंबंधी हमेशां नियत नियम ५०

दिनका है; अथवा ७० दिनका है ?

देखो—पर्युषणासंबंधी सर्वशास्त्रोंमें ५० दिनको पर्युषणा किये बिना उल्लंघनकरना निवारणक्रिया है, इसलिये ५० दिनका नियतनियम है, और ७० दिनसे ज्यादा दिन होंवे उसका कोईभी दोष किसीभी शास्त्रमें नहीं कहा, इसलिये ७० दिनका हमेशां नियतनियम नहीं है.

१— देखो पहिलेभी २०दिने पर्युषणा करतेथे, तबभी पीछे १०० दिन रहतेथे. इसलिये ७०दिनका हमेशां नियत नियम नहीं है।

२— अबीभी श्रावण भाद्रपद या आसोज बड़े तथ तपगच्छके पूर्वाचार्योंके कथन मुजब कल्पसूत्रकी टीकाओंके वाक्यसेभी ५० दिनेपर्युषणा होंवे तबभी पीछे १०० दिन रहते हैं। इसलियेभी ७० दिन रहनेका हमेशां नियत नियम नहीं है।

३— पचास दिन उल्लंघेतो सर्वशास्त्रोंमें उसका प्रायश्चित्त कहा है, मगर ७० दिन उल्लंघेतो किसीभी शास्त्रमें उसका प्रायश्चित्त नहीं कहा इसलियेभी ७० दिनका हमेशां नियतनियम नहीं ठहरसकता है,

[२५]

४- ५० दिन तो आमादिक न होवे तोभी अंगलमें धृक्षनीचेभी अवश्यही पर्युषणा करनेकी आवश्यकता बतलाई है, और ७० दिन की स्वाभाविक गिनती बतलाई है, परंतु वैसीही ५० दिनकी आवश्यकता नहीं बतलाई, इसलिये भी ७० दिनका हमेशा नियत नियम नहीं है।

५- ७० दिवसका पाठ मासवृद्धि के अभाव संबंधी है, इसलिये उसको मासवृद्धि होने पर भी आगे करना व उसपर आग्रह करना सो शास्त्रकार महाराजों के अभिप्राय विरुद्ध होने से सर्वथा योग्य नहीं है।

६- इन्हीं समवायंगसूत्रके टीकाकार महाराजने स्थानांगसूत्र वृत्तिमें, मासवृद्धि होवे तब पर्युषणाके पिछाड़ी कार्तिकतक १०० दिन ठहरने का कहा है, उसको उत्थापन करना और शास्त्रकार महाराज के अभिप्राय विरुद्ध हांकर १०० दिनकी जगह भी ७० दिन ठहरने का आग्रह करना सो आत्मार्थियों को कभी योग्य नहीं है।

७- निशीथचूर्णि-वृहत्कलचूर्णि-वृत्ति-पर्युषणाकल्पनियुक्ति-चूर्णि-वृत्ति-गच्छाचारपर्युषणवृत्ति-जीवानुशासनवृत्ति वगैरह प्राचीन शास्त्रोंमें, वर्षास्थितिकेलिये कालावग्रहमें, जघन्यसे ७० दिन, मध्यमसे ७५-८०-८५-९०-९५ यावत् १२० दिन, और उत्कृष्टसे १८० दिनका कालमान प्रमाण बतलाया है, उसके अंदरमें से एक दिन मात्र भी गिनतीमें नहीं छूट सकता, जिसपर भी शास्त्रविरुद्ध होकर वर्षास्थितिके अनियत व जघन्य ७० दिनके नियमको हमेशा नियत नियम ठहराने का आग्रह करना सो विवेकीयों को सर्वथा योग्य नहीं है ॥

८- निशीथचूर्ण्यादिमें द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावसे पर्युषणा की स्थापना करनी बतलाई है, उसमें कालस्थापना संबंधी समय-आवलिका-मुहूर्त-दिन-पक्ष-माससे अधिक महोनेके भी ३० दिनोंकी गिनती सहित प्रत्येक दिवसको पर्युषणा संबंधी कालस्थापनाके अधिकारमें गिनतीमें लिये है, इसलिये पर्युषणा संबंधी दिनसंख्यामें से एक दिन भी गिनतीमें निषेध नहीं हो सकता है, जिसपर भी जघन्य ७० दिनके अनियत नियमको बाल बढे पर भी आगे करते हैं, और फिर अधिक महोनेके ३० दिन गिनतीमें छोड़कर १०० दिनके ७० दिन भी अपनी कल्पनासे बना लेते हैं, सो सर्वथा चूर्णिके विरुद्ध है, इसका विशेष विचार तत्त्वज्ञान स्वयं कर लेंगे।

९- सीत्तर दिवसा नियत नियम न होनेसे ७० दिनके ऊपर ज्यादा दिन भी होते हैं, और “ वासावासाप अणानुवृण, आसोप क-सिप वा निगन्ताणं, अट्ट अतिरित्ता भवेति ” इत्यादि निशीथचूर्णि,

[२६]

शुद्धकल्पचूण, पर्युषणाकल्पचूर्णि, वृत्ति आदि अनेकशास्त्रोंमें लिखे मुजब वर्षाके अभावसे आसोजमें विहार करें; तो ७० दिनसे कमती-भी ४०दिन, या ४५-५० दिनभी होतेहैं। देखो- पहिले ५० दिने वार्षिक कार्य जब लग नहीं करें; तब तक विहार करनेमें आताथा. मगर अभी वर्तमानमें तो आषाढ चौमासी बाद विहार करनेकी रुढ़ी नहीं है। तैसेही पहिले वर्षाके अभावसे आसोजमेंभी विहार करते थे, मगर अभीतो वर्षा नहींहोवे रस्तोंके कीचड़ सुककर रस्ते साफ होगये होवे तो भी कार्तिक पूर्णिमा पहिले आसोजमें विहार करनेकी रुढ़ी नहीं है, इसलिये वर्षाके अभावसे आसोजमें विहार नहीं कर सकते. और कभी दो आसोज होवे तो भी कार्तिक तक १०० दिन ठहरतेहैं। इसलियेभी ७० दिनका हमेशा नियत नियम नहींहै। इस बातको विशेष तत्त्वज्ञ जन स्वयं विचार लेवेंगे।

२७-महीना बढे तब होली, दीवाली वगैरह लौकिक पर्व पहिले महीनेमें होवे या दूसरे महीनेमें होवे?

देखो- कितनेक पर्व पहिले महीनेमें होते हैं, और कितनेक पर्व दूसरे महीनेमेंभी होते हैं. जब दो भाद्रपद होवेंगे; तब जन्माष्टमी का पर्व पहिले भाद्रपदमें करते हैं, और गणेश चौथका पर्व दूसरे भाद्रपदमें करतेहैं. तथा जब दो आसोज होवेंगे तब श्राद्धपक्ष पहिले आसोजमें करतेहैं, और दशहराका पर्व दूसरे आसोजमें करते हैं. तथा दो कार्तिक होवे तब दीवाली पर्व पहिले कार्तिकमें करते हैं. इसीतरहसे बारहहीमासोंके पर्व कार्य कृष्णपक्षसंबंधीपर्व पहिले महीनेमें और शुक्लपक्ष संबंधी पर्व दूसरे महीनेमें समझ लेना. और “मलमासो द्वेधा अधिक मासः-क्षयमासश्चेति। तदुक्तं काठकगृह्ये। यस्मिन् मासे न संक्रांतिः, संक्राति द्वयमेव वा मलमासो स विज्ञे-यो मासः स्यात् तु त्रयोदशः। तथा च उक्तं हेमाद्रि नागर खंडे। नभो वा नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत् सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्य-त्रेव तु पंचमः। इत्यादि” निर्णयसिंधु, धर्मसिंधु, निर्णयदीपकादि लौकिक धर्मशास्त्रोंके प्रमाणानुसार, आषाढ चौमासीसे पांचवा पितृपक्ष (श्राद्धपक्ष) होताहै, मगर जब आवण, भाद्रपद बढे तब उसकी गिनतीसे सातवा [७] श्राद्धपक्ष होताहै, इसलिये लौकिकवाले भी अधिकमहीनेके ३०दिन गिनतीमें लेतेहैं. जिसपरभी लौकिकवाले अधिकमहीनेके ३०दिन गिनतीमें नहींलेते, या प्रथम महीनेमें दीवाली

[२७]

व जन्माष्टमी वगैरह पर्वकार्य नहीं करते; ऐसा जान बुझकर मायामृ-
षा कथन करना और बालजीवोंको उलझा रक्ता बतलाना भवभीक
आत्मार्थियोंको सर्वथा योग्य नहीं है।

**२८- गणेश चौथके पर्वकी तरह पर्युषणा पर्वभी
दूसरे भाद्रपदमें हो सकें या नहीं ?**

भो देवानुप्रिय ! गणेश चौथका पर्वतो मास प्रतिबद्ध होनेसे
मासवृद्धिके अभावमें आपाठ चौमासीसे दूसरे महीनेके चौथेपक्षमें
५० दिने भाद्रपदमें होताहै. मगर कभी श्रावण या भाद्रपद बढ़े तब
तो तीसरे महीनेके छठे पक्षमें ८० दिने दूसरे भाद्रपद होताहै। इसी-
तरह मास बढ़नेके अभावमें अढ़ाई (२॥) महीनोंसे पांचवा श्राद्धपक्ष
होताहै. मगर श्रावणादि मासबढ़ें तब तो साढ़ेतीन (३॥) महीनोंसे
सातवा श्राद्धपक्ष होताहै, तथा दीवालीपर्वभी मासवृद्धिके अभावमें
३॥ महीनोंसे ७ वें पक्षमें कार्तिकमें होता है, मगर श्रावणादि ब-
ढ़े तबतो साढ़ेचार (४॥) महीनोंसे ९. में पक्षमें होता है. यह बात
प्रत्यक्षप्रमाणसे जगत्प्रसिद्ध सर्वजन सम्मतही है. और पर्युषणापर्व
तो दिन प्रतिबद्धहोनेसे दूसरे महीनेके चौथेपक्षमें ५०दिने अवश्यही
करने सर्वशास्त्रोंमेंकहेहैं. इसलिये गणेशचौथके पर्वकी तरह पर्युषणा-
पर्वभी दूसरेभाद्रपदमें करें तो तीसरेमहीनेके छठेपक्षमें ८०दिनहोनेसे
शास्त्रविरुद्धहोताहै, इसलिये दूसरेभाद्रपदमें पर्युषणापर्व नहींहोसक-
ते. किंतु दूसरेमहीनेके चौथेपक्षमें ५० दिने प्रथमभाद्रपदमेंही करना
शास्त्रानुसार होनेसे आत्मार्थियोंको योग्यहै। इसलिये मासप्रतिबद्ध
लौकिक गणेशचौथकी तरह दिनप्रतिबद्ध लोकोत्तर पर्युषणापर्वतो
दूसरे भाद्रपदमें ८०दिन होनेसे कभी नहीं होसकतेहैं. इसबातकोभी
विशेष तरवज पाठकगण स्वयं विचार लेंगें।

**२९-पहिले पौषादि मास बढ़तेथे तब कल्याणकादि
तप; अपने बडील कैसे करतेथे ?**

पहिले पौषादि मास बढ़तेथे तब दोनों महीनोंके चारों पक्षों-
में-पहिले पक्षमें, या दूसरेपक्षमें, वा तीसरेपक्षमें, अथवा चौथेपक्षमें,
जिसपक्षमें, जिसरोज, जिन जिन तीर्थकर भगवान्के जो जो रूपव-
न-जन्मादिकल्याणक हुएहों, उसमुजब उस उस पक्षमें, अर्थात्दोनों
महीनोंके ४पक्षोंमें बानीमहाराजोंकोपूछकर आराधनकरतेथे. यह अ-
नादिकालसे ऐसीही मर्यादा चलीआतीहै। इसलिये अधिकमहीनेमें

[२८]

कल्याणकादि तप नहीं हो सकते, ऐसा कहना प्रत्यक्ष मृषा है। देखो— अनंतकालसे अनंततीर्थकर महाराज हो गये हैं, उन महाराजों के च्यवन-जन्म-केवलज्ञानादि कल्याणक होने में, कोई भी पक्ष, कोई भी मास, कोई भी दिवस; या कोई भी वर्ष बाधक कभी नहीं हो सकत है, किंतु हरेक मास, हरेक पक्ष, हरेक ऋतु व हरेक दिवस में हो सकत है। इसलिये पहिले महीने के या दूसरे महीने के प्रथमपक्ष में या दूसरे पक्ष में जिस रोज च्यवनादि जो जो कल्याणक हुए हों उसी महीने के उसी पक्ष में उसी रोज उन्हीं कल्याणकों का आराधन करना शास्त्रानुसार ही है इसलिये इसको कोई भी निषेध नहीं कर सकता है। मगर अभी जनपंचांग के अभावसे व ज्ञानी महाराज के अभावसे अधिक पौष में या अधिक आषाढ में कौन २ भगवान् के कौन २ कल्याणक हुए हैं, उनकी मालूम नहीं होनेसे तथा लौकिक छद्मीके अनुसार कितने क पर्व प्रथम महीने में और कितने क पर्व दूसरे महीने में करने की प्रवृत्ति रखी है। उली मुजब वर्तमान में भी करने में आते हैं। देखिये— जैसे— कार्तिक महीने संबंधी श्रीलंमवनाथस्वामीजी के केवलज्ञानकल्याणक, श्रीपद्मप्रभुजी के जन्म व दीक्षा कल्याणक, श्रीनेमिनाथजी के च्यवन कल्याणक और श्रीमहावीरस्वामी के निर्वाणकल्याणक व दीवालीपर्व आदि कार्य दो कार्तिक रुझावे; तब प्रथम कार्तिक में करने में आते हैं; तथा दो पौष होवें तब श्रीपार्श्वनाथजी का जन्मकल्याणक पौषदशमीका पर्व प्रथम पौषमहीने में करने में आता है, और जब दो चैत्रमहीने हों तब श्रीपार्श्वनाथजी के केवलज्ञान कल्याणकादि पर्वकार्य उष्णकाल के प्रथममहीने के प्रथमपक्ष में अर्थात् पहिले चैत्र में करने में आते हैं मगर श्रीमहावीरस्वामी के जन्मकल्याणक व ओली आदिक पर्वतो उष्णकाल के दूसरे महीने के चौथे पक्ष में अर्थात् दूसरे चैत्र में करने में आते हैं। ऐसे-हादा आषाढ होवें तब श्रीअर्द्धेश्वर भगवान् के च्यवनादि उष्णकाल के चौथे महीने के सातवें पक्ष में प्रथम आषाढ में करने में आते हैं, और श्रीमहावीरस्वामी के च्यवनादि पांचवें महीने के दशवें पक्ष में दूसरे आषाढ में करने में आते हैं इसी तः ८४ अधि महीने हैं दोनों पक्षों की गिनती सहित सर्व महीनों के कार्य यथायोग्य कल्याणकादि तप वगैरह करने में आते हैं। इसलिये कल्याणकादि पर्वकार्यों में अधिक महीना गिनती में नहीं लेते, ऐसा कहना सर्वथा अनुचित है। इसको विशेषतः स्वज्ञ जनस्वयं विचार लेंगे।

[२९]

३०- जब अधिकमहीना होंवे; तब तेरह महीनोंके संवच्छरी क्षामणों संबंधी खुलासा.

जैसे-उन्हीं भूमिकाके पृष्ठ २२ वें के मध्यमें २२ वें नंबरके लेख मुजब वार्षिक कार्य १२महीनेभी होंवे, और जब महीना बढे तब ते-रह महीनेभी होंवे। तैसेही संवच्छरी क्षामणेभी १२ महीनेभी होंवे और जब महीना बढे तब तेरह महीनेभी होंवे, देखो-चंद्रप्रज्ञासिखवृत्ति, सूर्यप्रज्ञासिखवृत्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञासिखवृत्ति, प्रवचनसारोद्धार-सूत्रवृत्ति, ज्योतिषरंडपत्रवृत्ति, निशीथचूर्णि वगैरह अनेक प्राचीन शास्त्रोंमें, जब महीना बढे तब उस वर्षके १२महीनोंके २६ पक्ष खुलासा पूर्वक लिखे हैं। इसलिये १२ महीनोंके २६ पक्षोंके संवच्छरीमें क्षामणे करनेका ऊपर मुजब अनेक प्राचीनशास्त्रानुसारहै, जिसपरभी कोई कहेगा, कि-ऊन शास्त्रोंमें तो १२ महीनोंके २६ पक्षोंके संवच्छरीमें क्षामणेकरनेका नहीं लिखा। मगर ऐसा कहनेवालोंको अतीव गहनाशयवाले शास्त्रोंके भावार्थको समझमें नहीं आया मालूम होता है, क्योंकि-देखो-उन शास्त्रोंमें, जैसे- पक्षका, चौमासेका, व वर्षका गणितसे जो जो प्रमाण बतलाया है, तैसेही उन्हीं शास्त्रोंके उन्हीं प्रमाण मुजब, पाक्षिक, चौमासी व वार्षिक पर्वादि कार्य करनेमें आते हैं, इसलिये जैसे-जिसवर्षमें १२ महीनोंके २४ पक्ष होंवे, उसी वर्षमें १२ महीनोंके २४ पक्षोंके संवच्छरी प्रतिक्रमणमें क्षामणे करनेमें आते हैं। तैसेही उसी मुजब जब जिस वर्षमें अधिकमहीना होनेसे १२महीनोंके २६पक्ष होंवे; तब उस वर्षमें १२ महीनोंके २६ पक्षोंके संवच्छरी प्रतिक्रमणमें क्षामणे करनेमें आते हैं। इसलिये उन शास्त्रोंमें १२ महीनोंके क्षामणे नहीं लिखे, ऐसा कहना प्रत्यक्ष मिथ्या होनेसे आज्ञानताका कारण है।

औरभी देविये आवश्यक गृहवृत्ति वगैरह प्राचीन शास्त्रोंमेंभी जहां जहां वार्षिक प्रतिक्रमणका अधिकार आया है, वहां वहांभी 'संवच्छर' शब्द लिखा है। सो संवच्छर शब्दके १२ महीनोंके २४ पक्ष, व १२ महीनोंके २६ पक्ष, ऐसे दोनों अर्थ आगमोंमें प्रसिद्धही हैं, इसलिये १२ महीनोंके २४ पक्षका अर्थ मान्य करके क्षामणोंमें कहना, और १२ महीनोंके २६ पक्षका अर्थ मान्य नहीं करना व क्षामणोंमेंभी नहीं कहना, यह तो प्रत्यक्षमेंही आगमार्थके उत्थापनका आग्रह करना सर्वथा अनुचित है, इसलिये दोनों प्रकारके अर्थ मा-

न्य करके उस मुजब प्रमाण करना आत्माथी सम्यक्त्व धारियोंको योग्य है. इसबातको विशेष तत्त्वज्ञ जन स्वयं विचार सकतेहैं । और इसविषयका विशेष खुलासाभी इसी ग्रंथके पृष्ठ ३६२ से ३८२ तक छपगया है, उसके देखनेसे सब निर्णय हो जावेगा ।

३१- पांच महीनोंके चौमासी क्षामणों संबंधी खुलासा.

पहिले जैनटिप्पणामें जब पौषमहीना बढ़ताथा तबभी फाल्गुनचौमासा पांचमहीनोंका होताथा, तथा जब आषाढमहीना बढ़ताथा तबभी आषाढ चौमासा पांच महीनोंका होताथा, तैसेही अभी वर्तमानमें लौकिक टिप्पणामें श्रावणादि बढ़तेहैं, तबभी कार्तिक चौमासा पांच महीनोंका होता है. यद्यपि सामान्य व्यवहारसे चौमासा ४ महीनोंका कहा जाताहै, मगर जब अधिकमहीना होंवे तब विशेष व्यवहारसे निश्चयमें पांच महीनोंके १० पाक्षिक प्रतिक्रमण सर्व गच्छवालौको प्रत्यक्षमेंही करनेमें आते हैं । और जितने मास पक्षोंका प्रायश्चित [दोष] लगा होंवे, उतनेही मास पक्षोंकी आलोचना [क्षामणा] करना स्वयं सिद्धही है । और मास बढ़नेसे पांच महीनोंके दश पक्ष होनेपरभी उसमें ४ महीनोंके ८ पक्षोंके क्षामणे करने और एकमहीनेके दो पक्षोंकी आलोचना छोड़देनी यह सर्वथा अनुचित है । इसलिये ऊपर मुजब ३० वें नंबरके १३ मासी संवच्छरो क्षामणों संबंधी लेख मुजबही यथा अवसर पांच महीनोंके दशपक्षोंके चौमासेमें क्षामणेकरने शास्त्रानुसार युक्तियुक्तहोनेसे कोईभी निवेध कभी नहींकरसकता, इसकाभी विशेषखुलासा इसग्रंथके पृष्ठ ३६२ से ३८२ तकके क्षामणोंसंबंधी लेखमें छपगयाहै, वहांसे जान लेना.

३२- १५ दिनोंके पाक्षिक क्षामणों संबंधी खुलासा ।

जंबूद्वीपपञ्चसिखवृत्ति, ज्योतिष्करंडपयन्नवृत्ति, लोकप्रकाशादि जैन-ज्योतिष्के शास्त्रानुसार तो जिसपक्षमें तिथिका क्षयहोवे, वो पक्ष १४दिनोंकाहोताहै और जिसपक्षमें तिथिकाक्षयनहोवे, वो पक्ष १५ दिनोंका होता है । मगर लौकिक टिप्पणामें तो अभी हरेक तिथियोंकी हानी और वृद्धि होतीहै, इसलिये कभी १३दिनोंकाभी पक्ष होता है, कभी १४ दिनोंकाभी पक्ष होताहै, कभी १५ दिनोंकाभी पक्ष होता है और कभी १६दिनोंकाभी पक्ष होताहै, मगर व्यवहारसे १५ दिनोंका पक्ष कहाजाताहै. इसलिये व्यवहारसे पाक्षिकप्रतिक्रमणमें १५ दिनोंके क्षामण करनेमें आतेहैं. मगर निश्चयमें तो प्रतिक्रमण करनेके समय तक जितने रोजके कर्मबंधन हुए होंगे, उतनेही रोजके कर्मोंकी नि-

[३११]

उर्जरा होगी, किंतु ज्यादा कम कभी नहीं होसकेगो। इसलिये निश्चय और व्यवहारके भावार्थको समझे बिना शब्दमात्रको आगे करके विवाद करना विवेकी आत्मार्थियोंको तो योग्य नहीं है, इसका भी विशेष खुलासा इसीग्रंथके क्षामणासंबंधी प्रकरणके लेखसे जानलेना।

३३-अपेक्षा विरुद्ध होकर आग्रह करना योग्य नहीं है ।

मासवृद्धिके अभावमें ४ महीनोंके चौमासीक्षामणे, व १२ महीनोंके संवत्तुरी क्षामणे करनेका कहा है। उसकी अपेक्षा समझे बिना ही मासबढ़नेपर भी उसीपाठको आगे करना और ५ महीनोंके १०५-क्ष, व १३ महीनोंके २६ पक्ष शास्त्रोंमें लिखे हैं। उन पाठोंको छुपा देना। यह तत्त्वज्ञ आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है, इसीतरह जब पौष व चैत्रादि महीनेबढ़ें तब प्रत्येक महीनेके हिसाबसे विहार करनेवाले मुनिमहाराजोंको एककल्प चौमासेका और नवमहीनोंके नवकल्प मिलकर दशकल्पीविहार प्रत्यक्षमें होता है। जिसपर भी महीनाबढ़नेके अभाव-संबंधी एककल्प चौमासेका और ८ महीनोंके ८ कल्प मिलकर ९ कल्पीविहार करनेका पाठबतला करके मासबढ़े तब भी दशकल्पी विहारको निषेध करनेके लिये भोले जीवोंको संशयमें गेरना यह भी विवेकी सज्जनोंको सर्वथा योग्य नहीं है, इसीतरह मासबढ़नेके अभावकी अपेक्षासंबंधी हरेक वातोंको मासबढ़नेपर भी आगे लाकर उसका आग्रह करना और मासवृद्धिकी अपेक्षावाले शास्त्रोंकी बातोंको छोड़ देना सर्वथा अनुचित है। इसको विशेषतत्त्वज्ञ पाठकगण स्वयंविचार लेवेंगे।

३४- विषय छोड़कर विषयांतर करना योग्य नहीं है ।

५० दिनोंकी गिनतीसे दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्वका आराधन करनेकी अपनेही पूर्वाचार्योंकी सत्यवातको ग्रहण कर सकते नहीं और पचास दिनोंकी गिनती उड़ानेके लिये ऐसा कोई दृढ़ बाधक प्रमाण भी दिखला सकते नहीं, इसलिये दिन प्रतिबद्ध पर्युषणाका विषय छोड़कर होली, दीवाली, ओली आदिक मास प्रतिबद्ध कार्योंके विषयकी बात बीचमें लाते हैं, सो भी यह असत्य आग्रहकी सूचना रूप विषयांतर करना योग्य नहीं है। क्योंकि ऐसे तो मास प्रतिबद्ध कार्योंमें कितनेही महीने, और कितनेही वर्ष भी छूट जाते हैं- देखो- मास प्रतिबद्ध कार्य तो एक महीनेसे करनेके होंगे सो अधिक महीना होंगे तब एक महीनेकी जगह कितनेक वर्ष दूसरे

[३२]

महीनेभी किये जातेहैं। और दूज-पंचमी अष्टमी-चतुर्दशी वगैरहमें उपवास करनेका, ब्रह्मचर्य पालनेका, रात्रिमोजन त्याग करनेका इत्यादि व्रत, नियम पच्छख्वाण तो दोनों महानोंमें दो दा चार करनेमें आतेहैं। और पर्युषणापर्व तो मास बढ़ें तो भी ५० दिनकी जगह ५१वें दिनभी कभी नहीं होसकते हैं। इसलिये दिन प्रतिबद्ध पर्युषणापर्वके साथ, मास प्रतिबद्ध होली, दीवाली दशहरा वगैरहका विषय लाना सो विषयांतर होनेसे सर्वथा अनुचित है।

और महीनाबढनेके अभावमें ओलियोंका पर्व छठे महीने करनेका शास्त्रोंमें कहाहै, मगर जब कभी महीना बढजावे तबतो प्रत्यक्ष प्रमाणसे और शास्त्रीय हिसाबसेभी सातवें (७) महीने ओलीयोंकापर्व होताहै। तो भी व्यवहारसे छठे महीन आंबीलकी ओलिये करनेका कहाजाता है। देखो जैसे- श्रीआदीश्वर भगवान्ने चैत्र वदी ८ [गुजरातदेशकी अपेक्षासे फागण वदी ८] को दीक्षा अंगीकारकी थी और दीक्षाके दिनसे लेकर तपस्याका पारणा दूसरे वर्षमें वैशाखशुक्ली ३ को हुआथा, तोभी व्यवहारसे सर्व शास्त्रोंमें वर्षी तपका पारणा लिखा है। और ऐसेही वर्षीतपका पारणा सर्व कोई जैनीमात्र अभीभी कहते हैं। मगर दिनोंकी गिनतीसे तो १३ महीनोंके ऊपर १० दिन होनेसे ४००दिन पारणाके रोज होतेहैं। जिसमेंभी कदाचित उस वर्षमें बीचमें अधिक महीना आजावे तो १४ महीनेके उपर १० दिन होनेसे ४३०दिनेपारणा होताहै। तोभी व्यवहारसे वर्षी तप करने का कहाजाताहै, और यह बात तो अभी वर्तमानमेंभी वर्षी तप करनेवालोंके सर्वके अनुभवमें प्रत्यक्षही आती है, इसलिये ४३० दिने पारणा करते हैं, तोभी व्यवहारसे वर्षीतपही कहते हैं। और व्यवहारसे वर्षके ३६० दिन होते हैं, मगर निश्चयमें तो ४३० दिने पारणा करनेका बनता है। तो भी किसी तरहका विसंवाद या दोष नहीं आ सकता। इसी तरहसेही व्यवहारसे ओली ६ महीने, चौमासा ४ महीने व वार्षिक पर्व १२ महीने करनेका कहतेहैं। मगर जब बीचमें अधिक महीना आजावे तब तो निश्चयमें, ओली ७महीने, चौमासा ५ महीने, व वार्षिकपर्व १३महीने होताहै। तोभी तत्त्वदृष्टिसे कोई तरहका विसंवाद या दोष कभी नहीं आसकताहै। मगर पर्युषणापर्व तो अधिक महीना होवे तबभी आपाद चौमासोंके वर्षाकटुके ५०वें दिनकी जगह ५१वें दिनभी कभी नहीं होसकते। इसलिये मास प्रतिबद्ध होली, दीवाली, ओली वगैरहका दृष्टांत दिन प्रतिबद्ध पर्युषणामें बतलाना सो

[३३]

विषयांतर होनेसे सर्वथा शास्त्रविरुद्ध है और व्यवहारसेभी प्रत्यक्ष अनुचित है, इस बातको विशेष तत्त्वज्ञ पाठकजन स्वयंविचार लेवेंगे।

३५ - लौकिक श्रावणादि अधिक महीनोंकी तरह क्षयमहीनेभी मान्यकरने योग्य हैं या नहीं ?

पर्युषणापर्वादि धार्मिककार्योंके करनेका भेदसमझे बिनाही अधिक महीनेके ३० दिनोंमें चौमासी व पर्युषणादिपर्वकार्य नहींकरनेका कितनेक लोगआग्रह करतेहैं, मगर कभी कभी श्रावणादि अधिकमहीनेवाले वर्षमें कार्तिकादि क्षयमासभी बीचमें आतेहैं, तबतो कार्तिक महीनेसंबंधी श्रीवीरप्रभुके निर्वाण कल्याणकका तप, दीवालीका पर्व, श्रीगौतमस्वामीके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका महोत्सव, ज्ञानपंचमीका आराधन, चौमासी प्रतिक्रमण व कार्तिक पूर्णिमाका उच्छव वगैरह सर्वकार्य तो उसी क्षयकार्तिकमासमेंही करतेहैं। और लौकिकमें अधिकमहीना या क्षयमहीना दोनों बरोबरही मानेंहैं। जिसपरभी क्षय मासमें दीवालीपर्वादि धर्मकार्य करते हैं। और अधिकमहीनेमें पर्युषणापर्वादि धर्मकार्य नहीं करनेका कहतेहैं। यहतो प्रत्यक्षमेंही पक्षपातका झूठा आग्रहही है। सो आत्मार्थियोंको तो करनायोग्य नहींहै। इसलिये अधिकमहीनेमें और क्षयमहीनेमेंभी धर्मकार्य करने उचित हैं, इनमें कोईभी बाधा नहीं आसकती। इस बातकोभी विवेकीतत्त्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार लेवेंगे।

३६-वार्षिक क्षामणे; या प्राणियोंके कर्मबंधन; व आयु प्रमाणकी स्थिति; किस २ संवत्सरकी अपेक्षासे मानते हैं ?

जैनशास्त्रोंमें पांच प्रकारके संवत्सर मानेहैं, जिसमें नक्षत्रोंकी चालके प्रमाणसे ३२७ दिनोंका नक्षत्र संवत्सर मानतेहैं। चंद्रकी चालके प्रमाणसे ३५४ दिनोंका चंद्रसंवत्सर मानते हैं। फलफूलार्षिक होनेमें कारणभूत ऋतु प्रतिबद्ध ३६० दिनोंका ऋतुसंवत्सर मानतेहैं। तथा जब अधिकमहीनाहोवे तब १३महीनोंके ३८३ दिनोंका अभिवर्द्धित संवत्सर मानतेहैं। और सूर्यके दक्षिणायन व उत्तरायनके प्रमाणसे ३६६ दिनोंका सूर्य संवत्सर मानतेहैं। और पांच सूर्यसंवत्सरोंके प्रमाणसेही १८३० दिनोंका एक युग मानतेहैं। इसी एक युगके १८३० दिनोंका प्रमाण पांचोंही प्रकारके संवत्सरोंके हिसाबसे मिलानेकेलियेही, एक युगमें दो चंद्रमास बढ़ते हैं, सात नक्षत्रमास बढ़ते हैं, और एक ऋतुमास बढ़ता है, तब सब मिलकर १८३० दिनोंका एक

[३४]

युग पूरा होता है, और एक युग के सभी दिनों को अभिवर्द्धित महीने के हिसाब से गिनने में आवें तब तो कुल ५७ अभिवर्द्धित महीनों से ही १ युग पूरा होता है। इसलिये शास्त्रों के नियम से तो अधिक चंद्रमास के या अधिक नक्षत्रमास के किसी भी महीने के एक दिन को भी गिनती में निषेध करने वाले तीर्थंकर गणधरादि महाराजों के कथन के प्रमाण का भंग करने वाले होने से, उन महाराजों की आशातना के भागी बनते हैं, क्योंकि चंद्रादि अधिक महीनों के दिनों की गिनती सहित ही पांच वर्षों के एक युग के १८३० दिनों का प्रमाण पूरा हो सकता है, अन्यथा कभी पूरा नहीं हो सकता है।

और तिथि, वार, मास, पक्षादि व्यवहार चंद्रमास के हिसाब से चंद्रसंवत्सर की अपेक्षा से मानते हैं। और प्राणियों के कर्म बंधन की स्थिति व आयुष्य प्रमाण की स्थिति सूर्यमास के हिसाब से सूर्यसंवत्सर की अपेक्षा से मानते हैं, इसलिये सूर्यसंवत्सर के हिसाब से ही मास, अयन, वर्ष, युग, पूर्व, पूर्वांग, पल्योपम, सागरोपमादिक के काल प्रमाण से ४ गतियों के सर्वजीवों के आयु का प्रमाण व आठों ही प्रकार के कर्मों की जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट स्थितिके बंध का प्रमाण, और उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल से कालचक्र का प्रमाण, यह सर्व बातें सूर्यसंवत्सर की अपेक्षा से मानते हैं। इसका अधिकार लोकप्रकाशादि शास्त्रों में प्रकट ही है। और वार्षिक क्षामणे करने का तो चंद्रमास के हिसाब से चंद्रसंवत्सर की अपेक्षा से मानते हैं, मगर चंद्रसंवत्सर के ३५४ दिन होते हैं, तो भी व्यवहारिक रूढ़ी से एक वर्ष के ३६० दिन कहने में आते हैं, तैसे ही जब महीना बड़े तब उस वर्ष के १३ महीनों के ३९० दिन कहने में आते हैं, मगर कितने लोग ऋतु संवत्सर की अपेक्षा से ३६० दिनों के वार्षिक क्षामणे करने का कहते हैं, परंतु ऋतु संवत्सर तो पूरे ३६० दिनों का होता है, उसमें कोई भी तिथिके क्षय होने का अभाव है, व तीसरे वर्ष में महीना बढ़ने का भी अभाव है, और चंद्रसंवत्सर ३५४ दिनों का होने से संवत्सरी के रोज चंद्र संवत्सर पूरा हो सकता है, मगर ऋतुसंवत्सर पूरा नहीं हो सकता है, और तिथि, वार, मास, पक्ष, वर्ष का व्यवहार भी ऋतुसंवत्सर की अपेक्षा से नहीं चलता, किंतु चंद्रसंवत्सर का अपेक्षा से चलता है, और ऋतु संवत्सर के ३६० दिन तो संवत्सरी का पर्व हुए बाद ६ रोज से दशमी को पूरे होते हैं, और संवत्सरी पर्व तो ४ या ५ को करने में आता है, इसलिये वार्षिक क्षामणे ऋतुसंवत्सर की अपेक्षा से नहीं, किंतु चंद्रसंवत्सर की अपेक्षा से कर

[३५]

नेका समझना चाहिये. और ३५४ दिने, या ३८३ दिने संवत्सरीपर्व होता है, तोभी ३६० दिन,या ३९०दिन कहनेमें आतेहैं, सो ऋतुसंवत्सरसंबंधी नहीं, किंतु चंद्र या अभिषर्द्धित संवत्सरसंबंधी व्यवहारसे कहनेमें आते हैं. देखो-चंद्रमासकी अपेक्षासे एक पक्ष १४ दिन ऊपर कुछ भाग प्रमाणे होता है, मगर पूरे १५ दिनोंका नहीं होता, तो भी व्यवहारमें लोकसुखसे उच्चारण करसकें; इसलिये १५ दिनोंका एकपक्ष कहनेमें आताहै। यह अधिकार ज्योतिष्करंडपयश्रवृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें खुलासालिखाहै। इसीतरहसे महीनेके ३०दिन या वर्षके ३६०दिनभी व्यवहारकी अपेक्षासे समझने चाहिये, मगर निश्चय में तो जितने दिनोंसे संवत्सरीपर्वमें वार्षिक क्षामणें होवेंगे उतनेही दिनोंके कर्मोंकीनिर्जराहोगी, किंतु ज्यादा कम कभीनहीं हो सकेंगी।

और संजलनीय, प्रत्याख्यानीय, अप्रत्याख्यानीय कषायकी अनुक्रमसे, एक पक्षके १५दिन, ४महीनोंके १२०दिन, व १२ महीनोंके ३६०दिनोंके एक वर्षकी स्थितिकाप्रमाण शास्त्रोंमें बतलायाहै, सो, व्यवहारसे बतलायाहै, मगर निश्चयमें तो रागद्वेषादि तीव्र परिणामोंके अनुसार न्यूनाधिकभी बंध पडसकताहै. इसलिये उसकी स्थितीके प्रमाणकी गिनती सूर्य संवत्सरकी अपेक्षासे होती है। और क्षामणें तो चंद्रसंवत्सरकी अपेक्षासे व्यवहारसे करनेमें आतेहैं, सो ऊपरमें इसबात का खुलासा लिख चुकेंहैं। इसलिये एकवर्षके ३५४दिन होने परभी व्यवहारिक दृष्टिसे ३६० दिनोंके क्षामणें करनेका, और कषायादि कर्मोंकीस्थिति परिपूर्ण ३६० दिनतक निश्चय भोगनेका, दोनों विषय भिन्न २ अपेक्षासे, अलग २ संवत्सरोसंबंधीहैं, इसलिये इन्हींके आपस में कोई तरहका विरोधभाव कदापि नहीं आसकता. जिसपरभी चंद्र संवत्सरसंबंधी व्यवहारिकक्षामणेंकरनेका, और सूर्यसंवत्सरसंबंधी निश्चयमें कर्मोंकीस्थिति पूरेपूरीभोगनेका रहस्यको समझेबिनाही अधिकमहीनेके ३०दिनोंकी गिनतीमें लेनेका छोड देनेकेलिये, अधिकमहीनेको गिनतीमें लेवें, तो कषायकीस्थितिका प्रमाणबढजानेसे मर्यादा उल्लंघन होनेकाकहते हैं, सो शास्त्रोंके मर्मकोनहीं जाननेके कारणसे अज्ञानताजनक होनेसे सर्वथा मिथ्याहै. देखो-एकयुगके दोनों अधिक महीनोंके दिनोंको गिनतीमें नहींलेवें तो सूर्यसंवत्सरका प्रमाणभी पूरा नहीं हो सकताहै, इसलिये दोनों अधिकमहीनोंके दिनोंको अवश्यमेव गिनतीमें लेनेसेही पांच सूर्यसंवत्सरोके एक युगमें १८३० दिन पूरे होसकते हैं. इसलिये अधिकमहीना गिनतीमें कभी नहीं छुट सकता

[२६]

और भी देखो-३५४ दिने संवत्सरी प्रतिक्रमण करें, तो भी व्यवहार में ३६० दिनों के क्षामणे करने में आते हैं, मगर अप्रत्याख्यानीय कषाय के ३६० दिनों के एक वर्ष की पूरेपूरी स्थितिका निश्चय में बंध पड़ा होवे वह बंध, ३५४ दिनों में (३६० दिनों का) कभी क्षय न हो सकेगा, किंतु वो तो समय २ के हिसाब से पूरे पूरे ३६० दिन ही भोगने पड़ेंगे। इसी तरह से चौमासी, व पाक्षिक का भी भावार्थ समझ लेना। इसलिये व्यवहारिक क्षामणे करने के साथ निश्चय संबंधी कर्मबंधन की स्थितिका दृष्टांत से भोले जीवों को मर्यादा उलंघन होने का भय बतलाते हुए अपनी विद्वत्ता के अभिमान से अधिक महीना निषेध करना चाहते हैं, सो प्रत्यक्ष शास्त्रविरुद्ध होने से सर्वथा अनुचित है।

३७— चूलिका संबंधी एक अज्ञानता ॥

कितनेक लोग शास्त्रों के रहस्य को समझे बिना ही कहते हैं, कि-जैसे-एक लाख योजन के मेरुपर्वत में उनकी चूलिका नहीं गिनी जाती है, तैसे ही १२ महीनों के एक वर्ष में अधिक महीना भी नहीं गिना जाता। ऐसा कहकर अधिक महीने की गिनती उड़ाना चाहते हैं, सो उन्होंने की आज्ञानता है, क्योंकि एक लाख योजन के मेरुपर्वत ऊपर ४० योजन की उंची चूलिका है, उसपर एक शाश्वत जिन चैत्य है, उनमें १२० शाश्वती श्रीजिन प्रतिमाएँ हैं, इसलिये ४० योजन की चूलिका के प्रमाण की गिनती सहित विशेषता से एक लाख योजन के ऊपर ४० योजन के मेरुपर्वत का प्रमाण क्षेत्र समासादि शास्त्रों में खुला सा लिखा है, तैसे ही १२ महीनों के ३५४ दिनों के एक वर्ष के प्रमाण ऊपर अधिक महीने के ३० दिनों की गिनती सहित ३८३ दिनों का भी एक वर्ष की गिनती में लिये हैं, इसलिये चूलिका के दृष्टांत से अधिक महीना गिनती में निषेध नहीं हो सकता, मगर गिनती में विशेष पुष्ट होता है। और भी देखो-पंचपरमोष्ठिमंत्र कहने से सामान्यता से पाँच पदों के ३५ अक्षरों का नवकार कहा जाता है, मगर उसपर की ४ चूलिकाओं के ४ पदों के ३३ अक्षर साथ में मिलने से विशेषता से नवपदों के ६८ अक्षरों का 'नवकार मंत्र' चूलिकाओं के प्रमाण की गिनती सहित कहने में आता है। इसी तरह से दशवैकालिक व आचारंगसूत्र की दो दो चूलिकाओं का प्रमाण भी गिनती में आता है। तैसे ही सामान्यता से एक लाख योजन का मेरुपर्वत, व १२ महीनों का एक वर्ष व्यवहार से कहने में आता है मगर विशेषता से निश्चय में तो चूलिका के प्रमाण की गिनती सहित एक लाख चालीस योजन का मेरुपर्वत, य अधिक महीने की गिनती

[३७]

सहित १३ महीनोंका अभिवर्द्धित वर्ष कहनेमें आताहै, सो सर्व शास्त्र प्रमाणोंसे प्रकटही है। इसलिये अधिक महीना व मेरुचूलिका वगैरह सब विशेषतासे गिनतीमें आतेहैं, जिसपरभी चूलिकाके नामसे अधिकमहीना गिनतीमें निषेधकरतेहैं, उन्हींका अज्ञानताहै।

३८- पर्युषणा पर्व शाश्वत है; या अशाश्वत है ?

यद्यपि पांच भरतक्षेत्रोंमें व पांच पेरवर्तक्षेत्रोंमें चौबीस तीर्थ-करमहाराजोंके शासनमें प्रथम और चौबीसवें तीर्थकर महाराजके साधुओंको चौमासा ठहरने व पर्युषणापर्व करने संबंधी निज निज तीर्थकी अपेक्षासे तो पर्युषणापर्व अशाश्वत है, मगर अनादि कालकी अपेक्षासे तो शाश्वतही है। इसलिये तीनों चौमासीपर्व; या पर्युषणापर्व; वा आसो, चैत्रकी ओलियोंका अष्टाईपर्व आनेसे, भुवनपति-व्यंतर-ज्योतिषी और वैमानिक इंद्रादि असंख्य देव देवी, अपने समुदाय सहित देवलोक संबंधी अनंत सुखको छोड़कर, आठवा नन्दीश्वरद्वीपमें जाकर वहां शाश्वत चैत्योंमें श्रीजिवेश्वरमगवान्के शाश्वत जिनबिंबोंकी जल-चंदन-पुष्पादिसे द्रव्यपूजा व स्तवन-नाटक वाजिन्नादिसे भावपूजा करते हुए महोत्सव करके अपनी आत्माको निर्मल करते हैं। यह अधिकार श्रीजिवाभिगमसूत्र और उनकी टीकावगैरह बहुत शास्त्रोंमें खुलासा लिखा है। इसी प्रकार पर्युषणादि पर्व आराधन करनेकेलिये जैनीमात्र सर्वश्रावकोंकोभी विशेषरूपसे धर्मकार्यकरने योग्य हैं, इसकाभी विशेष खुलासा 'पर्युषणा अष्टाई व्याख्यान' में और कल्पभूत्रकी सर्वाटीकाओंमें सर्वत्र प्रकटही है; इसलिये यहांपर विशेष लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

३९ - पर्युषणाके विवाद संबंधी सत्यकी परीक्षा करो.

जिनाज्ञानुसार सत्यग्रहण करनेवाले आत्महितैषी सज्जनोंको निवेदन किया जाता है, कि- आगम-निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि-वृत्ति-प्रकरणदि प्राचीन और आजकालके पर्युषणा संबंधी सर्व शास्त्रोंके पाठोंका, व सभी गच्छोंके पूर्वाचार्योंके वचनोंका इस ग्रंथमें मैंने संग्रह किया है। और इस भूमिकामेंभी वर्तमानिक सभी शंकाओंका नंबर चार अनुक्रमसे समाधानभी खुलासापूर्वक करके बतलाया है। और इसग्रंथमेंभी अधिकमहीनेके ३० दिनोंको गिनतीमें लेनेका निषेध करनेवाले प्रत्येक लेखकोंके सभी लेखोंको पूरेपूरे लिखकर, पीछे उन सब लेखोंकी पंक्ति पंक्तिकी अच्छी तरहसे समीक्षा करके [इसग्रंथमें] खुलासापूर्वक बतलाया है, मगर पर्युषणा संबंधी

[३८]

किसीभी लेखककी शंकावाली एकभी बातको छोड़ी नहीं है। इसलिये इस ग्रंथमें वादी और प्रतिवादी दोनोंके सब पूरे लेखोंको, और आगम पंचांगीके सर्व शास्त्र पाठोंको, पक्षपात रहित होकर न्याय बुद्धिसे संपूर्ण बांचने वाले सत्यके अभिलाषियोंको अवश्यही जिनाज्ञानुसार सत्य बातोंकी परीक्षा स्वयंही हो जावेगी. अल्पसंसारी आत्मारथियोंके लिये तो इस ग्रंथमें लिखे मुजब इतना खुलासा बहुतही है. मगर दीर्घ संसारी भारी कमोंकी तो बातही भलग है.

४०- जिनाज्ञाकी दुर्लभता ।

जैसे-पूर्वदिशा तरफ कोई अपना अभीष्ट नगर होवे; उसमें जानेकेलिये थोड़ा २ भी पूर्व दिशा तरफ चलनेसे अवश्यही उस नगरकी प्राप्ति होती है, मगर पूर्वदिशा छोड़कर पश्चिम दिशामें बहुत २ चलें; तो भी वो नगर दूरदूरही जायगा, मगर नजदिक कभी नहीं आसकेगा. इसी तरह जिनाज्ञानुसार थोड़ा २ धर्मकार्य किया हुआभी मुक्ति रूपी अपना अभीष्ट नगरमें आत्माको पहुंचाने वाला होता है, परंतु जिनाज्ञा विरुद्ध बहुत २ तपश्चर्यादि धर्म ध्यान व्यवहार में करें; तो भी तत्त्वदृष्टिसे शून्य होनेसे मुक्तिनगरमें पहुंचाने वाला नहीं होता. किंतु संसार बढ़ाने वालाही होता है। और वर्तमानिक आग्रही लोगोंकी भिन्न २ प्ररूपणा होनेसे भोले भव्य भद्र जीवोंको जिनाज्ञानुसार सत्यबातकी प्राप्ति होना अभी बहुत मुश्किल है. यही दशा पर्युषणासंबंधी विवादमेंभी हो गई है। इसलिये भव्यजीवोंको जिनाज्ञानुसार पर्युषणा जैसे अतीव उत्तम पर्वके आराधन होनेकी प्राप्ति होनेकेलिये आगम पंचांगी सम्मत, व सर्व लेखकोंकी शंकाओं का समाधान पूर्वक मैंने इसग्रंथमें इतना लिखा है। उसको अपने गच्छका आग्रह छोड़कर तत्त्वदृष्टिसे पढ़नेवालोंको अवश्यही जिनाज्ञानुसार सत्यबातकी प्राप्ति हो जावेगी.

और मनुष्य भवमें शुद्ध श्रद्धा पूर्वक जिनाज्ञानुसार धर्म कार्य करनेकी सामग्री मिलना अनंतकालसे अनंतभवोंमेंभी महान दुर्लभ है, वारंवार ऐसा सुअवसर कभी नहीं मिलसकता. इसलिये गच्छका पक्षपात, दृष्टिराग, लोकलज्जाकी शर्म, विद्वत्ताका झूठा अभिमान, जिनाज्ञाविरुद्ध अपने गच्छपरंपराकी रूढ़ी, व बहुत समुदायकी देखादेखीकी प्रवृत्ति वगैरह बातोंको छोड़कर जिनाज्ञानुसार सत्यग्रहण करनेमेंही आत्मसाधन होनेसे, नरकादि ४ गतियोंके जन्म-मरण-गर्भावास वगैरह अनंत दुःखोंसे छुटना होताहै; इसलिये, जिना-

[३९]

ज्ञानुसार सत्यवातको समझेबादभी जानबुझकर भोलेजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेकेलिये विद्वत्ताके मिथ्याही अभिमानसे शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायविरुद्धहोकर झूठी २ कुयुक्तियें लगाना संसारवृद्धि व दुर्लभबोधिका कारण होनेसे आत्मार्थियोंको सर्वथा योग्य नहीं है।
४१ - पर्युषणापर्व ईधरके उधर कभी नहीं होसकते हैं।

कितनेक लोग जिनाज्ञानुसार धर्मकार्य करनेका मर्मभेद समझे बिनाही कहतेहैं कि-पर्युषणापर्व अधिकमहीनाहोवे तब ५० दिने करो तोक्या, या ८० दिनेकरो तोभी क्या, मगर आगे या पिछे कभी करने चाहिये। ऐसा कहनेवाले सेने व पितल दोनोंको एकसमान बनानेकी तरह जिनाज्ञानुसार सत्य वातको, और जिनाज्ञा विरुद्ध झूठी वातको, एक समान ठहराते हैं। इसलिये उन्होंका कथन प्रमाणभूत नहीं होसकता, किंतु मोक्षके हेतुभूत जिनाज्ञानुसार ५० दिनेही पर्युषणा पर्वका आराधना करना अवश्यही योग्य है, मगर ८० दिने करना जिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे कदापि योग्य नहीं ठहरसकता। देखो- जमालि वगैरहोंने जप, तप, ध्यान, आगमोंका अध्ययन, परोपदेश, क्रिया अनुष्ठानादि हमेशा बहुत २ किंयें थे, तोभी वे जिनाज्ञाविरुद्ध होनेसे संसार बढ़ाने वाले हुए, मगर यही क्रिया अनुष्ठान जिनाज्ञानुसार करते तो निश्चय बसी भवमें मोक्ष प्राप्त करने वाले होते, इसलिये आत्मार्थी मव्यजीवोंको जिनाज्ञानुसारही ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्वका आराधन करना योग्य है, मगर जिनाज्ञा विरुद्ध ८० दिने करना योग्य नहीं है। इसवातको भी विशेष तत्त्वज्ञ पाठक जन स्वयं विचार लेवेगे।

४२ - पर्युषणा पर्वकी आराधना करनेके बदले

विराधना करना योग्य नहीं है।

पर्युषणा जैसे आनंद मंगलमय परम शांतिके दिनोंमें जिनाज्ञानुसार धर्मकार्यकरके पर्वकी आराधना करते हुए, सर्वजीवोंसे मैत्रि भावपूर्वक शांततासे वर्ताव करना चाहिये। और वर्षभरके लगे हुए अतिचारोंकी आलोचना करके सबजीवोंके साथ भाव पूर्वक क्षमत् क्षामणे करके अपनी आत्माको निर्मल करना चाहिये। जिसके बदले कितनेही आग्रही जन पर्युषणाकेही व्याख्यानमें सुबोधिका-दीपिका-किरणावली आदि वांचनेके समय श्रीमहावीर स्वामीके छ कल्याणक आगमोंमें कहेहैं, उन्होंको व अधिकमहीनके ३० दिन गिनतीमें लिये हैं, उन्होंको निषेध करनेकेलिये, कितनीही जगहतो शास्त्रविरुद्ध, व

[४०]

कितनीही जगह प्रत्यक्ष मिथ्या कथनकरके आपसमेंही विशेषरूपसे खंडन मंडनके झगड़े चलातेहैं, और पर्वदिनोंमें सबजीवोंकी जगह केवल जैनीमात्रसेभी मित्रता नहीं रख सकते, उससे भैत्रीभावनाका भंग, विरोधभावकी वृद्धि, व खंडन मंडनसे रागद्वेष करके कर्मबंधनका कारण करतेहैं। और शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करनेसे जिनाज्ञाकीभी विराधना करतेहैं, उससे परिणामोंकीभी मलिनता होनेसे पर्व दिनोंमें वर्षभरके अतिचारोंकी आलोचना करके आत्माको निर्मल करनेके बदले विशेषरूपसे मलिनकरतेहैं, और खंडन मंडनके झगड़े के लिये सबजीवोंसे क्षमत क्षामणे करनेके बदले अपनेसर्व जैनीमात्रियोंसेही क्षमतक्षामणे नहींकरसकते. उससे अनंतानुबंधी कषायके उदयहोनेका प्रसंगआनेसे सम्यक्त्वकी व संयमकी विराधना होकर संसारभ्रमणका कारणकरतेहैं. इसलिये कर्मक्षयकारक महामंगलमय शांतिके पर्वदिनोंके व्याख्यानमें श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक आगमोंमें कहें हैं उन्हांको, व अधिकमहीनेके ३० दिनोंको सर्वशास्त्रोंमेंगिनतीमें लियेहैं, उन्हांको निषेधकरनेकेलिये खंडनमंडनके विवादके झगड़े कितनेक तपगच्छके मुनिमहाराज जो व्याख्यानमें चलातेहैं, सो पर्वकी विराधना करनेवाले, शांतिके भंग करनेवाले, अमंगलरूप अशांतिको बढ़ानेवाले, व उत्सृजप्ररूपणासे संसार बढ़ाने वाले होनेसे, तत्त्वदर्शी, विवेकी, आत्मारथी भव भिरू, अल्पसंसारी सज्जनोंको अवश्यही छोड़ना योग्यहै। इस बातकोभी विशेष निष्पक्षपाति पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं।

४३--पर्युषणाके मंगलिक दिनोंमें क्लेशकारक अमंगलिक करना योग्य नहीं है।

यहबात व्यवहारसे प्रत्यक्ष अनुभवपूर्वक देखनेमें आती है, कि मांगलिकरूप वार्षिक पर्व दिन सुखशांतिसे हर्षपूर्वक व्यतीत होवे, तो, वो वर्षभी संपूर्ण सुखशांतिसे व्यतीत होता है, मगर मांगलिक रूप पर्वदिनोंमें किसीके साथ विरोधभाव कलेश होकर अमंगलरूप अपशुक्ल होंवे, तो वो वर्षभरभी चिंतासे कलेशमेंही जाताहै, इसलिये पर्वके दिनोंमें तो अवश्यही शांति रखना योग्य है। इसप्रकार व्यवहारिक बातकेभी विरुद्ध होकर तपगच्छके अभी कितनेही मुनिमहाराज पर्युषणा जैसेपरम मांगलिकके दिनोंमेंभी शांतिसे नहीं बैठते, और सुबोधिका-दीपिका-किरणावली वगैरहके विवादवाले विषय हाथमें लेकर श्रीमहावीरस्वामिके छ कल्याणक आगमपंचांगी अने-

[४१]

क शास्त्रोंमें कहेहैं उन्होंने, व अधिकमहीनेके ३० दिन सर्वशास्त्रोंमें गिनतीमेंलियेहैं, उन्होंने निषेधकरनेकेलिये. अपने धर्मबन्धुओंके सामने व्याख्यानमें अशांतिके हेतुभूत व अमंगलरूप आपसके खंडनमंडनसे विरोध भावके झगड़े खड़े करतेहैं, उससे ' जैसे राजा वैसी प्रजा ' की तरह यही गुण श्रावकोंमेंभी प्रवेश करताहै, इसलिये वर्ष भरके झगड़े पर्युषणापर्वमें लाकर कलेशकरके विशेष कर्मबंधनकरतेहैं। इसलिये साधुओंके और श्रावकोंके दोनोंके आपसमें एक एक कीर्तिदाकरनेमें, अपनी श्रुती २ बड़ाईकरनेमें, दूसरेका बिगाड़करनेमें, या कोई शासन उन्नतिके कार्यकरेंतो उनकी साहायता करनेके बदले उसमें कोईभी अवगुण बतलाकर उसका खंडन करनेमें इत्यादि अमंगलरूप कलेशके कार्योंमें सब वर्षचला जाता है। इसलिये दिनों-दिन शासनकी यह दशा होती हुई चली जातीहै। और इससे अपने आत्माके कल्याणमें व परोपकारके कार्योंमेंभी विघ्न आते हैं, इसलिये मंगलिकरूप पर्वके दिनोंमें अमंगलिकरूप खंडन मंडनसंबन्धी विरोधभावको आपसमेंखड़ाकरना सर्वथाअनुचितहै. और अपनी सचाई जमानेकेलिये खंडनमंडन वैरविरोधके झगड़ेही करनेकी इच्छा होतोभी पर्वदिन छोड़कर अन्यभी बहुतदिन मौजूदहैं, मगर पर्युषणा पर्व अराधन करनेकेलिये सर्व गच्छवाले श्रावक मुनिराजोंके पास उपाश्रय, धर्मशालामें आवें; उसघखत अपने आपसके खंडनमंडनके विरोधभाववालीबातकौचलाना यह कितनी बड़ीअनुचितबातहै. और मंगलिकरूप पर्वदिन किसीप्रकारसेभी कलेशकारक खंडनमंडनके विरोधभावसे अमंगलिकरूप न बनाकर शास्त्रानुसार शांतिसेपर्वकाआराधन होवेंतो आत्माभी निर्मलहोवें, वर्षभी हर्षपूर्वक सुखशांतिसे जावे, बुद्धिभी अच्छी होवे. और आत्म साधन व परोपकारभी विशेषरूपसे होवे, संपसे शासन उन्नतिके कार्योंमेंभी वृद्धि होनेसे वर्तमानिक यह दशाकाभी शीघ्र सुधारा होवे. इसलिये वार्षिक पर्वरूप पर्युषणा शांतिमय सर्वजीवोंके साथ मैत्रिभाव पूर्वक आराधन करके उसमें मांगलिकके कार्यकरने चाहिये। और विरोधभावके कारणरूप खंडन मंडनके अनुचित वर्तावको छोड़नाही अपनेको व दूसरे भव्य जीवोंकोभी कल्याणकारक है। और शासनकी उन्नतिकाभी हेतुभूत है. इसबातको जो आत्मारथी निकट भव्य होंगे, सो दीर्घ दृष्टिसे खूब विचारेंगे, और ऊपर मुजब शास्त्रविरुद्ध अनुचित व्यवहारको छोड़कर शास्त्रानुसार संप शांतिका उचित व्यवहारको अवश्यमेवही ग्रहण करेंगे, व दूसरोंकोभी ग्रहण करावेंगे।

[४२]

४४ - अभीके झूठे आग्रही जनोंकी मलीन बुद्धि; और सम्यक्त्वी मिथ्यात्वीकी परीक्षा.

कोईभी वादविवादके विषयकी चर्चा करनेमें पहिले वाले सम्यक्त्वी आत्मारथी होतेथे, वो तो तत्त्वार्थकी दृष्टितरफ विचारकरके सत्य बातग्रहण करतेथे और अपना पक्ष छोड़नेमें किसीप्रकारकीभी हानीनहीं समझतेथे. श्रीगौतमस्वामि आदिगणधर महाराजोंकी तरह तथा श्रीसिद्धसेनदोवाकर, श्रीहरिभद्रसूरिजीवगैरह उत्तमपुरुषोंकी तरह. और अभीके झूठे अभिमानी अंतर मिथ्यात्वी हठाग्रही होतेहैं, वो तो शास्त्रोंकी बातको मनमें समझने परभी अभिमानसे सत्यबातको ग्रहणकरके अपनाझूठा पक्ष छोड़नेमें बड़ीभारी हानीसमझतेहैं, आनंदसागरजी, शांतिविजयजी वगैरहोंकीतरह (इसका खुलासा आगे लिखुंगा) और शास्त्रोंके अभिप्रायविरुद्ध होकर व्यर्थही झूठी २ कुयुक्तियें लगातेहैं, या विषयांतर करके सामनेवालेपर वा उनके समुदायपर विरोधभावको बढ़ानेवाले आक्षेप करने लगजातेहैं। और मुख्यमुद्देके विवादको छोड़कर निंदा ईर्ष्यासे; राग, द्वेष करके विरोधभावसे अपनेको और दूसरोंकोभी कर्मबंधन करानेमें हेतुभूत बनतेहैं. मगर झूठे आग्रहसे उत्सूत्रप्ररूपणा करके कुयुक्तियोंसे भोलें जीवोंको उन्मार्गमें गेरनेसे वा राग, द्वेष, निंदा, ईर्ष्यासे विरोधभाव करनेसे संसार बढनेकाभय नहीं रखते हैं, इसलिये अभीके झूठे आग्रही जनोंकी मलीन बुद्धि कहीं जातीहै. इसीप्रकार पर्युषणा संबंधीभी यह ग्रंथ वांचे बाद ध्य देखनेमें आवेगा, कि-५०दिन प्रतिबद्ध पर्युषणांके विषयको छोड़कर मासप्रतिबद्ध होली, दीवाली, दशहरा आदिके विषयांतरमें या अंगत आक्षेपकरनेमें कौन २ महाशय अपनेअंतरंग आत्माके कैसे २गुणप्रकाशित करेंगे, सो तत्त्वज्ञजनस्वयं देख लेवेंगे. इसलिये यहांपर अभीसे पहिले विशेषलिखनेकी कोई आवश्यकता नहींहै.

४५- इस ग्रंथ संबंधी लेखकोंको सूचना.

इस ग्रंथपर किसी तरहकामी लेख लिखने वाले महाशयोंको सूचना करनेमें आती है, कि-जैसे-मैंने इसग्रंथमें सुबोधिका-दीपिका-किरणावली वगैरहके विवादवाले प्रत्येक लेखोंको पूरेपूरे लिखकर पीछे शास्त्रानुसार व युक्तिपूर्वक उसकी समीक्षामें खुलासा करके बतलाया है, मगर विवादवाली एकभी बातको छोड़ी नहींहै. वैसे ही इसग्रंथपर लेख लिखनेवाले आप लोगभी इसग्रंथके प्रत्येक वि-

[४३]

षयको पूरेपूरा लिखकर पीछे उसपर अपना विचार सुझसे लिखें, मगर शास्त्रोंके पाठोंवाली सत्य-वार्ताके पृष्ठकेपृष्ठ छोड़कर कहीं-कहींकी अधूरी २ बातें लिखकर; शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्राय विरुद्ध होकर संबंध बिनाके अधूरे २ पाठ लिखकरके कुयुक्तियोंसे सत्य बातको झूठी ठहरानेका व भोलेजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेका उद्यम न करें। अन्यथा लेखकोंमें कितना न्याय व आत्मार्थीपना है, और सम्यक्त्वका अंशभी कितना है, उसकी परीक्षा विवेकी विद्वानोंमें अच्छी तरहसे हो जावेगा, और उसको सभामें सिद्ध करके बतलानेको तैयार होना पड़ेगा। फिर शास्त्रार्थ करनेमें मुह नहीं छुपाना विशेष क्या लिखें।

४६- उत्सूत्र प्ररूपणाके विपाक ॥

शास्त्रार्थ करनेको सभामें आमने सामने आनामंजूरकरना नहीं, व अपना झूठा आग्रह छोड़कर सत्य बातग्रहणभी करना नहीं। और विषयांतरकरके कुयुक्तियोंसे शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणाकरते हुए दृष्टिरागी व भोलेजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेका उद्यम करते रहना। उससे दृष्टिरागी, पक्षपाती, अज्ञानी लोग चाहे जैसे पूजेंगे, मानेंगे, मगर “उसूत्त भासगा णं बाहि णासो अणंत संसारो” इत्यादि, तथा “सम्मत्तं उच्छिदीय, मिच्छत्तारोवणं कुणई निय कुलस्स ॥ तेण सयलो विवंसो, कुणई मुह समुहो नीओ ॥ १ ॥” इत्यादि, देखो- शास्त्रविरुद्ध होकर उत्सूत्र प्ररूपणा करने वालेके बोधिबीज (सम्यक्त्व) का नाश होकर अनंत संसार बढ़ता है, और जिसने अपने कुलमें, गणमें (गच्छमें), समुदायमें सम्यक्त्वका नाश करनेवाली मिथ्यात्वकी प्ररूपणाकी होवे, वो अपने सब वंशको, गच्छको, समुदायकोभी, दुर्गतिमें गेरनेवाला होता है। शिवभूति-लुंका-लवजी-भीखम वगैरह झूठे २ मत चलानेवालोंकी तरह इत्यादि भावको विचारो और संसारसे उदासीन भावधारण करनेवाले, आत्मार्थी, भव्यजीवोंको उन्मार्गका रस्ता बतलानेवाला ‘शरणे आनेवालोंका विश्वासघातसे शिरच्छेदन करनेवालेसेभी’ अधिक दोषी ठहरता है, और यह याद रखने योग्य बात है, कि-दृष्टिराग, लोकपूजा, मानता, व झूठा आग्रहका अभिमान परभवमें साथ न चलेगा। मगर उत्सूत्रप्ररूपक ८४लाख जीवायोनीका घात करनेवाला होनेसे उसके विपाक अवश्यही भवांतरमें भोगे बिना कभी नहीं छुटेंगे, इस बातपर खूब विचार करना चाहिये। और जिनाक्षानुसार सत्यप्ररूपणा करके भव्य-

[४४]

जीवोंको मुक्तिमार्गका रस्ता बतलानेवाले ८४ लाख जीवायोनीके स-
र्व जीवोंको अभयदान देनेसे महान्पुण्यके भागी होते हैं, और अपने
कुलको, गच्छको, समुदायकोभी सद्गतिके भागीबनातेहैं, व आपभी
अपनी आत्माको निर्मल करके अल्पकालमें निर्वाण प्राप्तकरने वाले
होतेहैं, श्रीगौतमस्वामी गणधरादि उपकारी महाराजोंकी तरह. इ-
सलिये संसारसे डरनेवाले आत्मार्थियोंको झूठा आग्रह छोड़कर व-
गर विलंबसे सत्यग्रहण करना चाहिये। इस बातकोभी विशेष वि-
वेकी निष्पक्षपाति पाठक गण स्वयं विचार लेंगे।

**४७- सुबोधिका-दीपिका-किरणावली वगैरहकी पर्युष-
णा संबंधी तथा छ कल्याणक संबंधी शास्त्रविरुद्ध प्रस्-
पणाकी भूलोंको सुधारनेकी खास आवश्यकताहै.**

१- जैनपंचांगके अभावसे अभी महीना बढे तो भी “ जैन टि-
प्पणकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगान्ते चापाढ एव वर्धते,
नान्येमासास्तट्टिप्पणकं तु अधुना सम्यग् न ज्ञायते, ततःपंचाशतैव
दिनैः पर्युषणा संगतेति वृद्धाः ” इस वाक्यसे सुबोधिका-दीपिका-
किरणावली इन तीनों टीकाकारोंने अपने तपगच्छकेही पूर्वाचार्यों-
की आज्ञासे ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा-
पर्वकी आराधना करनेका लिखा है, फिर उसीकोही उत्थापन कर-
नेके लिये शास्त्रविरुद्ध और अपने प्राचीन पूर्वाचार्योंकेभी विरुद्ध हो-
कर कुयुक्तियोंका संग्रहकिया है, यह सबसे बड़ी प्रथम भूलकी है,
उसको वगर विलंबसे खास सुधारनेकी आवश्यकता है।

२- निशीथचूर्णिमें अधिकमहीनेको कालचूलाकहकरकेभीउसके
३०दिन पर्युषणासंबंधी दिन संख्याकी व्यवस्थामें गिनतीमें लिये हैं,
उसको कालचूलाकेनामसे निषेद्ध किये सो यहभी दूसरी भूलकी है।

३-निशीथ चूर्णिके अधिक मासके अभायवाले५०दिनो संबंधी
अधूरे पाठ भोलेजीवोंको बतलाकर अभी दो श्रावण होंवे,तबभी जि-
नाज्ञाविरुद्ध होकर ८०दिने पर्युषणा होनेका भय न करके भाद्रपदमें
पर्युषणा करनेका ठहराया सो भी तीसरी भूलकी है।

४- अधिक महीनेके अभावमें सामान्यतासे पर्युषणाके पिछा-
डी कार्तिकतक ७० दिन रहनेका कहाहै,उसको समझेबिना अधिक
महीना होवें तब विशेषतासे शास्त्रानुसारही १०० दिन होते हैं, उ-
सकीजगहभी ७०दिन रहनेका आग्रहकिया सोभी चौथी भूलकी है।

[४५]

५- पौष-आषाढ-श्रावणादि बड़े तब शास्त्रानुसार या प्रत्यक्ष-मेंभी पांचमहीनोंसे फाल्गुन-आषाढ-कार्तिकमें चौमासीप्रतिक्रमण करनेमें आताहै, जिसपरभी श्रावणादि बड़े तब आसोजमें ४ महीनों-से चौमासी प्रतिक्रमण करनेका बतलाया सोभी पांचवी भूलकी है।

६- पहिले मास बढ़ताथा तबभी २० दिने वार्षिक कार्य पर्युषणा करतेथे, उनको सर्वथा उडादिये सो भी यह छठी भूलकी है।

७- मास बढे तब १३ महीनोंके क्षामणे वार्षिक प्रतिक्रमणमें, तथा पांचमहीनोंके क्षामणे चौमासी प्रतिक्रमणमें हमलोगकरते हैं, तो भी मास बढे तब १२महीनोंके वार्षिक क्षामणे, तथा ४ महीनोंके चौमासी क्षामणेकरनेका प्रत्यक्ष झूठलिखा सोभी यह सातवी भूलकी है।

८- पौष-चैत्रादिमहीने बड़े तब शास्त्रप्रमाणमुजब और प्रत्यक्ष-में भी १० कल्पी विहार होता है, जिसपरभी मास वृद्धिके अभाव-संबंधी ९ कल्पी विहारकी बात बतलाकर मास बढे तबभी १० कल्पी विहारका निषेध किया सो भी यह आठवी भूलकी है।

९- अधिकमहीनेमें सूर्यचार होता है, जिसपरभी नहीं होनेका प्रत्यक्षही झूठ लिख बतलाया सो भी यह नवमी भूलकी है।

१०- श्रावणादि महीने बड़े तब उनकी गिनती सहित प्रत्यक्ष-मेंही पांचवें महीनेके नवमें पक्षमें ४॥ महीनोंसे दीवालीपर्व करनेमें आता है, और कभी दो कार्तिकमहीने होंवे, तबभी प्रथम कार्तिक महीनेमें दीवाली पर्व करनेमें आता है. जिसपरभी दीवाली वगैरह पर्वोंमें अधिक महीना नहीं गिननेका प्रत्यक्षही झूठ लिखा सो भी यह दशवी भूलकी है।

११- यज्ञोपवित, दीक्षा, प्रतिष्ठा, विवाह, सादी वगैरह मुहूर्त्तवाले कार्य तो अधिकमहीनेमें, क्षय महीनेमें, चौमासेमें, और सिंहस्थादि बहुतयोगोंमेंभी नहीं करते. मगर चौमासी पर्व व पर्युषणापर्वदि तो अधिकमहीनेमें, क्षयमहीनेमें, चौमासेमें, और सिंहस्थादिमेंही करनेमें आते हैं। जिसपरभी मुहूर्त्तवाले कार्योंकी तरह अधिक महीने-में पर्युषणापर्व करनेकाभी निषेध किया सो यहभी जिनाशा विरुद्ध उत्सृजप्रकरणारूप इग्यारहवी बड़ी भूलकी है.

१२- ५० दिने प्रथमभाद्रपदमें पर्युषणापर्व करने चाहियें, जि. सके बदले दूसरे भाद्रपदमें करनेका लिखा सो ८०दिन होनेसे यह-भी शास्त्रविरुद्ध बारहवी बड़ी भूलकी है।

१३- जैसे देवपूजा, मुनिदान, आवदयकादि कार्य दिन प्रतिबद्ध हैं, वैसेही-पर्युषणापर्वभी ५० दिन प्रतिबद्ध हैं, इसलिये जैसे-अधिक

[४६]

महीनेके ३० दिन देवपूजा, मुनिदानादि कार्योंमें गिनतीमें लिये जाते हैं, तैसेही-पर्युषणापर्व करने संबंधी भी अधिक महीनेके ३० दिन गिनतीमें लिये जाते हैं, जिसपर भी पर्युषणापर्व करनेमें अधिक महीनेके ३० दिन नहीं गिननेका लिखा, सो भी यह तेरहवीं बड़ी भूलकी है।

१४- अधिक महीनेके ३० दिनोंमें वनस्पति बढ़ती है, व फूल, फलादिकभी प्रत्यक्षमें होते हैं, जिसपर भी आवश्यक निर्युक्तिकी गाथाका भावार्थ समझे बिनाही अधिक महीनेमें वनस्पति पुष्पवाली नहीं होनेका लिखा, सो भी यह चौदहवीं बड़ी भूलकी है।

इत्यादि अनेक तरहसे शास्त्रविरुद्ध होकर अधिक महीनेके ३० दिनोंको गिनतीमें लेनेका निषेध करनेके लिये उत्सूत्रप्रकरणारूप बहूत बड़ी २ भूलेंकी हैं, उन्हींको खास सुधारनेकी आवश्यकता है।

**अब शासननायक श्रीमहावीरस्वामीके आगमोक्त
छ कल्याणकोंका निषेध करने संबंधी भूलोंका
थोड़ासा खुलासा लिखते हैं।**



१५- तीर्थंकर महाराजोंके ज्यवन-जन्मादिकोंको कल्याणक पना आगमानुसार अनादि सिद्ध है, इसलिये उन्हींको ज्यवनादि वस्तु कहो, चाहे ज्यवनादि स्थान कहो, या ज्यवनादि कल्याणक कहो, यद्यपि वस्तु व स्थान शब्द अनेकार्थवाले हैं, तो भी तीर्थंकर महाराजोंके चरित्रमें प्रसंगसे ज्यवन-जन्मादिकमें सब एकार्थवाले पर्यायवाचक शब्द अलग २ हैं, मगर सबका भावार्थ एकही है, किंतु भिन्न २ नहीं है। इसलिये श्रीपार्श्वनाथस्वामीके तथा श्रीनेमिनाथस्वामीके ज्यवनादि पांच पांच कल्याणकोंकी तरहही श्रीमहावीरस्वामीके भी ज्यवनादि पांच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें और छठ्ठा निर्वाण कल्याणक स्वातिनक्षत्रमें होनेका कल्पसूत्रादि आगमोंमें खुलासा पूर्वक कहा है। जिसका मर्म समझे बिना कल्पसूत्रके मूल पाठके अर्थमें ज्यवनादि छ कल्याणकोंका निषेध करनेके लिये छ वस्तु, या छ स्थान कहकर अनादि सिद्ध कल्याणक अर्थको उड़ा दिया यह सूत्रार्थके उत्पादन करनेवाली उत्सूत्रप्रकरणारूप सबसे बड़ी पंद्रहवीं भूलकी है।

१६- श्री महावीर स्वामीके प्रथम ज्यवन कल्याणकक दिनमें तो आषाढ सुदी ६ को इन्द्र महाराजका आसन चलायमान भी नहीं

[४७]

हुआ, तथा इन्द्रमहाराजने अवधिज्ञानसे देवानंदामाताके गर्भमें भगवान्को देखेभी नहीं, और नमुत्थुणं वगैरह कुछभीनहींकिया तोभी उन्हींको कल्याणकपना मानते हैं। और कल्पसूत्रमूल तथा उन्हींकी सर्वटीकाआदि अनेकशास्त्रोंके अनुसारतो यही सिद्धहोताहै, कि ८२ दिन गये बाद गर्भापहाररूप दूसरे ज्यवन कल्याणकके दिनमें आसोजवदी १३ को इन्द्रमहाराजने अवधि ज्ञानसे भगवान्को देखेहैं, तब हर्षसहित सिंहासनसे नीचे उत्तरकर विधि पूर्वक 'नमुत्थु णं' किया और हरिणेगमेषि देवको आज्ञा करके त्रिशलामाताकी कुक्षिमें स्थापित करवायेहैं, तब त्रिशलामातानें असोजवदी १३ कीरात्रिको तीर्थंकरभगवान्के अवतार लेनेकी सूचना करानेवाले १४ महास्वप्न देखेहैं। और कलिकाल सर्वज्ञ विरुद धारक श्रीहेमचंद्रसूरिजी महाराजने तो 'श्रीत्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र' के दशवे पर्वमें श्रीमहावीरस्वामीके चरित्रमें लिखा है, कि-गर्भापहारके दिन आसोजवदी १३ को इन्द्रमहाराजका आसन चलायमान होनेसे अवधिज्ञानसे भगवान्को देखकर नमस्काररूप 'नमुत्थु णं' किया और हरिणेगमेषिदेव द्वारा त्रिशलाके गर्भमें स्थापित करवाये, तब त्रिशलामाताने तीर्थंकरभगवान्के अवतार लेनेकी सूचना करानेवाले १४ महास्वप्न देखेहैं, उसके बाद खास इन्द्रमहाराजने त्रिशलामाताके पासमें आकर १४ महास्वप्न देखनेसे उनका फल तीर्थंकर पुत्र होनेका कहा है, तथा धनद भंडारीको आज्ञा करके देवताओं द्वारा धन धान्यादिकसे सिद्धार्थ राजाके राज्य ऋद्धिकी भंडारादिमें वृद्धि कराई है, इत्यादि अनेक बातें ज्यवन कल्याणकपनेकी सिद्धिकरनेवाली प्रत्यक्षमें हुयीहैं। इसलिये इन्हींकोही गर्भापहाररूप दूसरा ज्यवन कल्याणक मानते हैं। उसका भावार्थ समझे बिनाही कल्याणकपनेका निषेध करनेकेलिये राज्याभिषेककी बात बीचमें लाते हैं, मगर श्रीऋषभदेव भगवान्के राज्याभिषेकमें तो किसीभी कल्याणकपनेके कोईभी लक्षण नहींहै, इसलिये राज्याभिषेकको जन्म-दीक्षादि कोईभी कल्याणक नहीं मानसकते हैं, परंतु इस अवसर्पिणीमें प्रथम राज्याभिषेक उत्तराषाढा नक्षत्रमें इन्द्रमहाराजने किया, और प्रथम राज्यप्रवृत्ति चलाया, उसकी याद गिरिके लिये केवल राज्याभिषेकका नक्षत्र मात्रही ज्यवनादि कल्याणकोंके साथ बतलायाहै, उसका भावार्थ समझबिनाही उसकोभी कल्याणकपना ठहरानेका आग्रहकरना, या राज्याभिषेकके समान गर्भापहारकोभी कल्याणकपने रहित ठहराना

[४८]

सोभी मर्भापहारूप दूसरे ज्यवनकल्याणकके और राज्याभिषेकके, भावार्थको समझे बिना व्यर्थही यह सोलहवीं भी बड़ी भूलकी है।

१७- जैसे श्रीमल्लीनाथस्वामी स्तुतिवचनमें तीर्थंकर उत्पन्नहुए हैं, सो विशेषतासे प्रसिद्धही है, तोभी चौबीस तीर्थंकर महाराजोंकी अपेक्षासे सामान्यतासे श्रीमल्लीनाथ स्वामीकोभी पुरुषत्ववचनमें कहनेमें आते हैं, मगर उसमें सामान्य विशेष संबंधी अपेक्षाकी भिन्नता होवेसे इन बातके आपसमें कोईतरहका विरोधभाव नहीं आसकता है, तैसही-श्रीमहावीरस्वामीकेभी विशेषतासे छ कल्याणक आचारांग, स्थानांग, कल्पसूत्रादि आगमोंमें कहे हैं, तो भी अतित, अनागत, और वर्तमान काल संबंधी भरतक्षेत्रके तथा पेरवर्त क्षेत्रके सर्व तीर्थंकर महाराजोंकी अपेक्षासे सामान्यतासे श्रीमहावीर स्वामीकेभी पांच कल्याणक 'पंचाशक सूत्रवृत्ति' में कहे हैं, मगर उनमें सामान्य विशेष अपेक्षाकी भिन्नता होनेसे इनके आपसमें कोई तरहका विरोध भाव कभी नहीं आ सकता है, तो भी आचारांग, स्थानांगादि आगमोंके छ कल्याणकों संबंधी विशेषताके और 'पंचाशक' के पांच कल्याणकों संबंधी सामान्यताके अभिप्रायको समझे बिनाही सामान्य पांच कल्याणकों संबंधी पूर्वापर संबंध बिनाका अधूरापाठ अल्पज्ञ भोलेजीवोंको बतलाकर आगमोंमें विशेषतापूर्वक छ कल्याणक कहे हैं, उन्हींका निषेध करनेके लिये आप्रह किया है, सो भी अज्ञानता जनक सर्वथा अनुचित यह सत्तरहवीं भी बड़ी भूलकी है।

१८- आचारांग, स्थानांगादि मूल आगमोंमें ज्यवनादि अलग २ छ कल्याणक खुलासा पूर्वक बतलायें हैं, और उन्हींकी टीकाओंमेंभी ज्यवनादि कल्याणक अर्थकी सूचना करनेवाले पर्याय वाचक ज्यवनादि छ स्थान बतलायें हैं, उनका तत्त्वदृष्टिसे भावार्थ समझे बिनाही ज्यवनादिकोंको वस्तु या स्थान कहकर कल्याणकपनेका सर्वथा निषेध किया, सोभी अतीव गहनाशयवाले आगमोंके भावार्थका अज्ञानपना होनेसे यहभी अठारहवीं बड़ी भूलकी है।

१९- आपाह शुदी ६ को भगवान् देवानन्दामाताकी कुक्षिमें आये, सो नीचगौत्रके कर्म विपाकका उदयरूप है, उसीकोही शास्त्रकारोंने आश्चर्यरूप अच्छेरा कहा है, तोभी उनको प्रथम ज्यवनकल्याणक मानते हैं, और नीचगौत्रका कर्मविपाक क्षय हुए बाद पीछे उंचगौत्रके कर्म विपाकका उदय होनेसे आसोज वदी १३ को त्रिशला माताकी कुक्षिमें उत्तम कुलमें भगवान् पधारें तब अनादि कालकी मयी

[४९]

दामुजब तीर्थंकरमहाराजोंकी माताओंके गर्भमें तीर्थंकरउत्पन्न होने-
की सूचना करानेवाले १४ महास्वप्न देखनेकी तरहही त्रिशलामाता-
नैभी १४ महास्वप्न आकाशसे उत्तरतेहुए देखेहैं, इसलिये यहतो दूसरा
च्यवनरूप कल्याणकपना प्रत्यक्षमेंही सिद्ध है। उन्हींको नीच गौत्रका
विपाकरूप और आश्चर्यरूप कहकर कल्याणक पनेका निषेध किया
सो यहभी एकोणवीशवींभी बड़ी भूलकी है।

२०-जैसे-देवलोंकसे देवभव संबंधी आयु पूर्ण होनेपर वहांसे
च्यवनरूप कारणहोनेसे माताके गर्भमें उत्पन्नहोनेरूप(अवतारलेनेरूप)
कल्याणकपनेका कार्यहोताहै, तो भी कारणमें कार्यका उपचार होने
से च्यवनकोही कल्याणकपना कहनेमें आता है, तैसेही- गर्भापहार-
रूप कारण होनेसे तीर्थंकरपनेमें प्रकट होनेके लिये गर्भसंक्रमणरूप
(अवतारलेनेरूप)दूसराच्यवनरूप कल्याणकपनेका कार्यहुआहै, तोभी
कारणमें कार्यका उपचार होनेसे गर्भापहारको कल्याणकपना कहनेमें
आताहै, इसलिये उनको गर्भापहार कहो, गर्भसंक्रमण कहो, त्रिशला-
कुक्षिमें अवतार लेनेका कहो, या दूसरा च्यवनरूप कल्याणक कहो,
सबका तात्पर्यार्थसे भावार्थ एकही है, इसलिये इनके आपसमें किसी
तरहका विरोधभाव नहीं है, इसप्रकार तीर्थंकरपनेमें प्रकटहोनेकेलिये
त्रिशलामाताके गर्भमें अवतारलेनेरूप गर्भापहारके अतीव उत्तम का-
र्यके भावार्थको समझे बिनाही गर्भापहारको अतिनिंदनीक कहते हैं,
सो तीर्थंकरभगवान्के अवर्णवाद बोलनेरूप (आशातना करनेरूप)
दुर्लभबोधि पनेकी हेतुभूत यहभी वीशवीं बड़ी भूलकी है।

२१- जैसे-श्रीआदीश्वर भगवान् १०८ मुनियोंके साथ एक स-
मयमें अष्टापदपर्वत ऊपर मोक्ष पधारे हैं, उनको आश्चर्यरूप अच्छेरा
कहतेहैं, तोभी उन्हींकोही मोक्षकल्याणकभी मानतेहैं, तथा श्रीमल्लीना-
थस्वामीके जन्म, दीक्षा, व केवलज्ञानकी उत्पत्ति वगैरह सर्व कार्य
स्वीत्यपनेमें हुएहैं, उन्हींको आश्चर्यकारक अच्छेरेकहतेहैं, तोभी उन्हीं-
कोही जन्म, दीक्षादिक कल्याणकभी मानतेहैं। तैसेही श्रीमहावीर-
स्वामिके गर्भापहारकोभी आश्चर्यकारक अच्छेराकहतेहैं, तोभी उनको
दूसरा च्यवनरूप कल्याणकपनाभी माननेमें आताहै, उसका आशय
समझे बिनाही गर्भापहारको आश्चर्यकहके कल्याणक पनेका निषेध
किया सो भी अज्ञानताजनक यह एकवीशवींभी बड़ी भूलकी है।

२२- जैसे-श्रीसिद्धसेनश्रीवाकरसूरिजी महाराजने उज्जयनीनगरी
में दषी हुई श्रीपवंतिपार्श्वनाथजीकी प्राचीनप्रतिमाको फिरसे प्रकट-

[५०]

क्री, तथा गुजरात देशमें अणहिलपुरपाटणमें शिथिलाचारी चैत्यवासियोंने संयमधर्मको दबा दियाथा, उसको श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजने वहां जाकर फिरसे प्रकट किया और श्रीनवांगीवृत्ति कारक खरतरगच्छनायक श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने श्रीस्थंभनपार्श्वनाथजीकी प्राचीनप्रतिमाको फिरसे प्रकटकी। तैसेही-कल्प, स्थानांग, दशाश्रुतस्कंध, आचारांगादि आगमोंमें कहेहुए श्रीमहावीरस्वामीके च्यवमादि छ कल्याणकोंकों मेवाडदेशमें चितोडनगरमें शिथिलाचारी, लिंगधारी, चैत्यवासियोंने दबा दियेथे, उन्हांकोंही श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने वहां जाकर फिरसे प्रकट किये हैं। सो शास्त्रविरुद्ध नवीन नहीं, किंतु आगमोक्त प्राचीनही हैं। जिसकाभी भावार्थ समझे बिनाही नवीन प्रकट करनेका कहतेहैं, सो भी अज्ञानताजनक प्रत्यक्ष ही मिथ्या भाषणरूप यह बाबीशर्वाभी बड़ी भूलकी है।

२३- जैसे-अभी वर्तमानिक गच्छोंके पक्षपाती लोग अहमदाबाद वगैरह शहरोंमें अपने गच्छके उपाध्य वा धर्मशाला वगैरह मकान खालीपड़ेहोंवें, तोभी अन्यगच्छवाले शुद्धसंयमीमुनियोंकों उस मकानमें ठहरने नहीं देते, और यति लोगभी अपने गच्छके आश्रित भगवान्के मंदिरमें अन्य गच्छके यतिको स्नात्र महोत्सवादि पूजापढ़ाने नहीं देते, जिसपरभी अन्यगच्छवाला कोई यति अपने गच्छके आश्रित मंदिरमें स्नात्रमहोत्सवादि पूजापढ़ानेको आवे, तो वो लोग मरण-मारण शिरफोड़नेको तैयार होतेथे, और कहतेथे, 'कि-ऐसा कभी पहिले हुआ नहीं और अभी होने देंगेभी नहीं।' यह बात गच्छोंके विरोधभावसे मारवाड, गुजरात वगैरह देशोंमें पहिले प्रसिद्धहीथी और कोई शहरोंमें अबीभी देखनेमें आतीहै। इसी तरहसेही पहिले चैत्यवासी-लोगभी आपसके द्वेषसे या लोभदशासे अपने गच्छके आश्रित मंदिरमें अन्यगच्छवालेकों स्नात्रपूजा महोत्सव, प्रतिष्ठादि कार्य नहीं करनेदेतेथे। उस अवसरमें श्री जिनवल्लभसूरिजी महाराजभी गुजरातदेशसे विहार करके मेवाडदेशमें विशेषलाभ जानकर जिनाज्ञाविरुद्ध शिथिलाचारी चैत्यवासियोंका अयिधिमार्गका निषेध करतेहुए; जिनाज्ञानुसार विधिमार्गका उपदेशद्वारा स्थापन करतेहुए, भव्यजीवोंके उपकारकेलिये चितोडनगरमें पधारे। तब वहांवाले चैत्यवासियोंने और उन्हांके पक्षपातिभक्तलोगोंने अपनीभूल प्रकटहोनेके भयसे महाराजको शहरमें ठहरनेकेलिये कोईभी जगह नहीं दिया और द्वेषबुद्धिसंघामुंडिका देवीके मंदिरमें ठहरनेका बतलाया, तब महाराज तो दे-

[५१]

वीकी आज्ञा लेकर वहांही ठहरे. उनके संयमानुष्ठान, जप, तप, ध्यान, धैर्य, ज्ञानादिगुण देखकर देवीभी प्रभ्र होकर जीवहिंसा छोड़कर, जीवदया पालनेवाली व महाराजकी भक्ति करनेवाली होगई. और शहरवालेभी पुण्यवान् भव्यजीव जिनाज्ञानुसार सत्यधर्मकी परीक्षा करनेको वहां महाराजके पास थोड़े २ आने लगे. और अन्य दर्शनियोंमेंभी महाराजके विद्वत्ताकी यड़ी भारी प्रसिद्धि होनेसे बहुत लोग अपना संशय निवारण करनेके लिये महाराजके पास आने लगे, शहरभरमें बहुत प्रसंशा होने लगी, तब कितनेक गुणग्राही श्रावक लोग भी महाराज को गीतार्थ, शुद्ध संयमी और शास्त्रानुसार विधिमार्गकी सत्यबातें बतलानेवाले जानकर, चैत्यवासियोंकी शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणाकी तथा चैत्यकी पैदाससे अपनी आजीविका चालनेकी स्वार्थी कल्पित बातोंको छोड़कर महाराजके पास शास्त्रानुसार सत्यबातोंको ग्रहण करने वाले होगये। पीछे महाराजका चौमासा भी वहां करवाया, तब तो महाराज चैत्यवासियोंकी शिथिलता और अविधिको खूब जोरशोरसे निषेध करने लगे और जिनाज्ञानुसार विधिमार्गकी सत्यबातें विशेषरूपसे प्रकाशित करने लगे, उसको देखकर बहुत भव्य जीव चैत्यवासियोंकी मायाजालसे छुटकर शास्त्रानुसार क्रिया अनुष्ठान करने लगे. तबतो चैत्यवासी लोग महाराज ऊपर बहुत नाराज होगये और अपनी शास्त्रविरुद्ध भूलोंको सुधारनेके बदले पांचसौ चैत्यवासी इकट्ठे होकर लकड़ीयें बगैरह हाथमें लेकर महाराजको मारनेके लिये आये, इसबातकी अच्छे २ आगेवान् श्रावकोंद्वारा चितोडनगरके राजाको मालूम पड़नेसे महाराज ऊपरका यह उपसर्ग वहांके राजाने दूर किया, चैत्यवासी लोग बहुत द्वेष करने लगे और नगर भरके सब मंदिर चैत्यवासियोंके ताबेमें थे. उस अवसरमें महाराज श्रावकोंके साथ श्रीमहावीरस्वामीके दूसरे च्यवन कल्याणक संबंधी आसोजवदी १३को चैत्यवासियोंके मंदिरमें देववंदनादि करनेको जाने लगे, तब पहिलेके विरोधभावके कारणसे राज्यमान आगेवान् बहुत श्रावक लोग साथमें थे, इसलिये चैत्यवासी लोग तो कुछ भी बोलसके नहीं, मगर एक चैत्यवासी नीबुटिया अपने स्त्रीजातीके तुच्छस्वभावसे अपने गच्छके आश्रित भगवान्के मंदिरके दरवाजेपर आड़ी सोगई और क्रोधसे बोलने लगी कि- 'पहिले ऐसा कभी हुआ नहीं और यह अभी करते हैं, सो मेरे जीवते तो मंदिरमें नहीं जाने दूंगी; मेरेको मारकर पीछे भले अंदर जावो

[५२]

ऐसा उस चैत्यवासीनी बुढ़ियाका क्रोधसहित अनुचित वर्त्तावको देखकर; यद्यपि श्रावकलेग उसको दरवाजेसे हटाकर मंदिरमें दर्शन करनेको जासकतेथे, तो भी खीकेसाथ वैसा करना योग्य न समझकर महाराजके साथ पीछे अपने स्थानपर चले आये. इत्यादि 'गण धर सार्धशतक' बृहद्बुद्धि वगैरहमें श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजके चरित्रसंबंधी पूर्वापरके आगे पीछेके प्रसंगको, व चितोडके निवासी चैत्यवासियोंके विरोधभावको, विवेकी बुद्धिसे समझे बिनाही अथवा तो जान बुझकर आगे पीछेके संबंधको छुपाकरके कितनेक लोग कहतेहैं, कि—'श्रीजिनवल्लभसूरिजीने चितोडनगरमें छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणाकरी तब उनको बुढ़ियाने मना किया था तोभी मानानहीं.' ऐसा कहनेवाले अपनी अज्ञानताकोही प्रकटकरतेहैं, क्योंकि देखो—वो चैत्यवासीनी बुढ़िया अज्ञानी आगमोंके भावार्थको नहीं जाननेवालीथी, तथा शिथिलाचारी होकर अपनी आजीविकाके लिये चैत्यमें ठहरकरके चैत्यकी पैदाससे अपना गुजरान करती थी और श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज चैत्यमें [मंदिरमें] रहनेका, तथा उसकी पैदाससे अपनी आजीविका चलानेका निषेध करने वालेथे, और शास्त्रानुसार व्यवहार करने वाले शुद्ध संयमीथे. इसलिये चितोडके सब चैत्यवासियोंकी तरह वह बुढ़ियाभी महाराजसे विशेष द्वेष धारण करने वाली थी. और बुढ़ियाके जन्म भरमेंभी उसके सामने कोईभी शुद्ध संयमी चैत्यवासका निषेध करनेवाला चितोडनगरमें पहिले कभी नहीं आयाथा. उससेही शास्त्रानुसार विधिमा- र्गकी बातोंकी उसको मालूम नहींथी. इसलिये इन महाराजका आगमानुसार छठे कल्याणकका कथनभी उस बुढ़ियाको नवीन मालूम पडा. और अपने चैत्वनिवासकी तथा उससे अपनी आजीविका चलानेकी बातका खंडन करने वाला और अपनी शिथिलाचारकी भूलोंको प्रकट करनेवाला, ऐसा अपना विरोधी अपने ताबेके मंदिरमें अपने सामने चला आवे; सो उस बुढ़ियासे सहन नहींहोसका. इसलिये क्रोधसे मंदिरके दरवाजे पर आडी पड गई, सो उस निर्विवेकी अज्ञानी क्रोधसे विरोध भावको धारण करनेवाली बुढ़ियाके कहनेसे प्रत्यक्ष आगम प्रमाण मौजूदहोनेसे छठा कल्याणक नवीन कभी नहीं ठहर सकता. जिसपरभी उस बुढ़ियाके अज्ञानताजनक वचनोंका भावार्थ समझे बिनाही उस चैत्यवासीनी बुढ़ियाकी परंपरा-वाले अभी वर्तमानमेंभी कितनेक आग्रही जन अज्ञानतासे बुढ़ियाकी

[५३]

तरह द्वेष बुद्धिसे, छुटे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करनेका श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजपर झूठा दोष आरोपण करते हैं। मगर प्रत्यक्ष-पने आगम प्रमाणोंको उत्थापन करके मिथ्याभाषणसे त्रेवीशवी यह भी बड़ीभूल करके विवेकी तत्त्वज्ञ विद्वानोंके सामने अपनी लघुता-होनेका कारण करते हुए कुछभी विचारनहीं करते, यह कितनी बड़ी लज्जा (शर्म) की बात है। सो भी विचारने योग्य है।

औरभी एक प्रत्यक्ष प्रमाण देखिये — श्रीअंतरिक्षपार्श्वनाथजी महाराजकी यात्रा करनेकेलिये मुंबईसे संघगयाथा, उनके साथमें आनंदसागरजी आदि साधुजीभीथे, सो रस्तामें संघके दर्शनकरनेकेलिये साथमें श्रीजिनेश्वर भगवानकी प्रतिमाथी। उनको वहां संघ ठहरे तब तक संघ वाले मंदिरमें विराजमान करनेलगे, सो दिगंबर लोगोंने मना किया, जब उनके सामने जबर्राई करनेको गये। तब आपसमें मार-पीट हुई, शिर-फुटे, कोर्ट कचेरीमें गये, दंडहोनेका या कैदमें जानेका मोका आया, हजारों रुपयें संघके खर्च हुए, तब साधू लोग लूटे, और आपसमें विरोधभाव बढ़ा, तथा शासन हिलनाभी बहुत हुई, इस पर अब विचार करना चाहिये, कि-उस समय संघवाले तथा संघके साथ आनंदसागरजी वगैरह साधु लोगभी विवेक वाले होते, तो व्यर्थ हठकरके तकरार खड़ी न करते, तो इतना नुकसान कभी उठाना नहीं पड़ता। इसीतरहसे श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजभी व्यर्थ तकरार न होनेके लिये बुद्धियाका हठ देखकर वहांसे पीछे चले आये, सो तो दीर्घदृष्टिसे विवेकता पूर्वक बहुत अच्छा काम कियाथा। जिसके बदले उनको झूठे ठहरानेका दोष लगाना यह कीतनी बड़ी अज्ञानता है।

और न्यातन्यातमें, गांवगांवमें, देशदेशमें, अपने २ पाडोसीपाडोसी में, पंचपंचायतमें, राजदरबारमें, या गच्छगच्छमें व अंधपरंपरारूढीकी खोटी प्रवृत्तिमें, आपसके विरोधभाव संबंधी “ ऐसा पहिले कभीहुआनहीं, और अभी यह ऐसा करते हैं, सो कभी होनेदेगें भी नहीं” इस तरहसे कहनेकी एक प्रकारकी प्रचलीत रूढ़ीहीहै, उसमें सत्या-सत्यकी परीक्षा किये बिना किसीको झूठा ठहराना यह सर्वथा निर्विवेकताहै। इसी तरहसे उन चैत्यवासीनी बुद्धियानेभी अपने आग्रहसे वैसा कहाथा, उसका भावार्थ समझेबिनाही छुटे कल्याणककी नवीन ठहराना, सोभी यह आगमोंके उत्थापनकरनेरूप तथा श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजपर झूठादोष आरोपणकरनेरूप व अज्ञानताजनक बड़ी भारीभूलहै। इसबातकोविशेष पाठक स्वयं विचार लेंगे।

[५४]

२४- देवानंदामाताके गर्भमें ८२ दिनगयेबाद त्रिशलामाताके गर्भमें आनेको च्यवनकल्याणकपना प्रकटतयासिद्ध करनेकेलियेही खास कल्पसूत्रमें च्यवनकल्याणकके सर्व कार्य देवानंदामाता संबंधी वर्णन नहीं किये, किंतु त्रिशलामाता संबंधी वर्णन कियेहैं, तथा श्रीसमवायांगसूत्र वृत्तिमेंभी देवानंदामाताके गर्भसे ८२ दिनगये बाद त्रिशलामाताके गर्भमें आनेको अलग २ भव गिनतीमें लियेहैं, और कल्पसूत्र तथा उन्हींकी सर्व टीकाओंमें तथा श्रीवीरचरित्रादि अनेकशास्त्रोंमेंभी देवानंदामाताके गर्भमें ८२ दिनगयेबाद आसोजवदी १३को त्रिशलामाताके गर्भमें भगवान् आयेहैं, यह अधिकार बहुतविस्तार पूर्वक खुलासाके साथ कथन किया है, इसलिये देवानंदामाताकी कुक्षिसे जन्म होनेके बदले त्रिशलामाताकी कुक्षिसे जन्म होने संबंधी किसी तरह कीभी असंगतिरूप शंकाकी नहीं हो सकती। जिसपरभी असंगतिरूप शंका निवारण करनेकेलिये गर्भापहारका नक्षत्र बतलानेका कहकर उनमें अलग २ भव गिनने, व १४महास्वप्नदेखनेवगैरह सर्व बातोंको उड़ाकर दूसराच्यवनरूप गर्भापहारको कल्याणकपने रहित ठहरातेहैं, और उनको बहुततुच्छ समझकरबड़ी निंदाकरतेहैं, सो भी मायावृत्तिसे तीर्थंकरभगवान् की आशातनाकरनेरूप चौबीशवीं यड़ीभूलकी है।

२५- श्रीऋषभदेव आदि तीर्थंकरमहाराज पहिले होगये, तथा श्री सीमंधरस्वामि आदि वर्तमानमें हैं, उन्हीं सबीने श्रीमहावीरस्वामिके च्यवनादि छ कल्याणक कथन कियेहैं, उन्हींकेही अनुसार गणधर-पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंनेभी आचारांग, स्थानांगादि आगमोंमेंभी च्यवनादि छ कल्याणक कथन कियेहैं, उसीकेही अनुसार तपगच्छके पूर्वज वडगच्छके श्रीविनयचंद्रसूरिजीने कल्पसूत्रके प्राचीन निरुक्तमें, तथा चंद्रगच्छके श्रीपृथ्वीचंद्रसूरिजीने कल्पसूत्रके प्राचीन टिप्पणमें और श्रीपार्श्वनाथस्वामिकी पट्टपरंपरामें उपदेश गच्छांय श्रीदेवगुप्तसूरिजीने कल्पसूत्रकी टीकामें इत्यादि अनेक प्राचीन शास्त्रोंमेंभी खुलासा पूर्वक च्यवनादि छ कल्याणकलिखे हैं। उसीकेही अनुसार तपगच्छकेभी पूर्वाचार्य श्रीकुलमंडनसूरिजी वगैरहोंनेभी श्रीकल्पावचूरि आदिक ग्रंथोंमें च्यवनादि छ कल्याणकलिखे हैं, इसलिये श्री तीर्थंकर-गणधर-पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंके प्राचीन समयसेही आगमानुसार आत्मार्थी सर्वगच्छवाले च्यवनादि छ कल्याणक माननेवाले थे, जिसपरभी आगमादि सर्व प्राचीनशास्त्रोंके प्रमाणोंको जान बुझकर छुपाकरके या अज्ञानतासे 'श्री जिनवल्लभसूरिजीने चितोडमें

[५५]

छठे कल्याणककी नवीन प्ररूपणा करी' ऐसा कहकर जो लोग छठे कल्याणकका निषेध करते हैं. वो लोग तीर्थंकर, गणधर, पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी और खास अपनेही तपगच्छकेभी पूर्वाचार्योंकीभी आशातना करनेवाले ठहरतेहैं, इसलिये आत्मार्थी भवभिरू विवेकी जनोंको तो छठे कल्याणकका निषेध करना सर्वथा योग्यनहींहै, मगर निषेध करनेवालोंने यह पचीशवीभी बड़ी भूलकी है।

२६- सभा मंडलमें जाहिर व्याख्यान करते हुए परोपकारकेलिये सत्य बात प्रकट करनेमें अपनी स्वाभाविक प्रकृतिसे, सच्चे जोशमें आकर कितनेक वक्ता लोग चौकी, टेबल, या पाटापर जोरसे अपना हाथ पिछाडते हुए अपना मंतव्य प्रकट करतेहैं, तथा कितनेक छाती ठोकते हुए, या भुजा आस्फालन करते हुए, अपनी सत्यबात प्रकट करतेहैं, और कोई विशेष प्रबल विद्वान् वादी तो हाथमें खूब उंचा झंडा लेकर नगरको पीटवाते हुए विवाद करनेकेलिये नगरमें उद्घोषणा करवाते हैं, मगर यह बात कोई प्रकारसे अनुचित नहींहै, किंतु सत्यबात प्रकाशित करनेमें अपनी हिम्मत बहादुरीकी स्वाभाविक प्रकृति है। इसीतरहसे श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजनेभी सर्व शिथिलाचारी चैत्यवासियोंके सामने चैत्यवासका निषेध व आगमानुसार श्रीमहावीरस्वामिके छ कल्याणक मानने वगैरह विषयो संबंधी सत्यबातें प्रकाशित करनेमें अपनी हिम्मत बहादुरीसे भुजास्फालन पूर्वक कहाथा, कि- 'चैत्यवास निषेधादिक ऊपरकी बातें जो न माननेवाले होंथें, वो उन्हींकी शस्त्रार्थ करनेकी ताकत हो तो मैंरे सामने आकर उन बातोंका शास्त्रार्थसे निर्णय करो' मगर उस समय किसीभी चैत्यवासीकी महाराजके साथ शास्त्रार्थ करनेकी हिम्मत नहींहुई. तब महाराजने सब लोगोंके सामने ऊपर मुजब सत्वबातें प्रकाशितकी. इसीतरहसे 'गणधरसार्धशतक' बृहद्वृत्ति, लघुवृत्ति वगैरहका भावार्थ समझे बिनाही श्रीजिनवल्लभसूरिजीने 'स्कंधास्फालनपूर्वक' छठा कल्याणक नवीन प्रकट किया, ऐसा कहकर चैत्यवास निषेध वगैरह ऊपरकी सबबातोंका संबंध छुपाकर छठेकल्याणको नवीन ठहराकरके जो निषेधकरते हैं, सो मायावृत्तिसे व्यर्थही भोलेजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेकेलिये मिथ्याभाषणकरके यहभी छवीशवीबड़ी भूलकीहै.

२७- श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज चैत्यवासका खंडन करनेवालेथे, इसलिये चैत्यवासियोंने महाराजको शहरमें ठहरनेको जगह नहीं दी. और द्वेषबुद्धिसे चामुंडिका देवीके मंदिरमें ठहरनेका बतला-

[५६]

था, तब महाराज तो वहांही ठहरकर अनेक प्रकारके कष्ट सहन करतेहुएभी भव्यजीवोंके उपकारकेलिये जिनाज्ञानुसार सत्यबातें लोगोंको बतलाते रहे, और चैत्यमें ठहरने वगैरह चैत्यवासियोंकी कल्पित बातोंका खंडन करते रहे, यह बात 'गणधर सार्धशतक' ग्रंथकी लघुवृत्ति तथा बृहद्वृत्ति वगैरह शास्त्रोंमें खुआसा लिखी है। जिसपरभी ऊपर मुजब चैत्यवासियोंकीभूलोंको तथा जिनाज्ञानुसार सत्य बातोंके प्रसंगको मायावृत्तिसे छुपा करके 'आपना नवीन मत स्थापन करनेकेलिये चामुंडिकादेवीके मंदिरमें ठहरथे' ऐसा प्रत्यक्ष मिथ्या लिखकर महाराजकी झूठी निंदा की, और दृष्टिरागी बाल जीवोंकोभी परम उपकारी युग प्रधान आचार्य महाराजके झूठे अवर्णवाद बोलनेवाले बनाये. यहभी सत्तावीशवी बड़ी भूलकी है।

२८ "यो न शेष सूरिणामज्ञातसिद्धांतरहस्यानाम्" इत्यादि 'गणधर सार्धशतक' ग्रंथकी १२२वीं माथाकी लघुवृत्ति तथा बृहद्वृत्तिके यह वाक्य सिद्धांतकेरहस्यको नहीं जाननेवाले द्रव्यलिङ्गी चैत्यवासियों संबंधी है, मगर पहिले होगये उन सर्व पूर्वाचार्योंसंबंधी नहीं है, जिसपरभी 'पहिले जितने आचार्य होगये हैं, उन सबोंको सिद्धांतके रहस्यको नहीं जाननेवाले ठहराकर जिनवल्लभसूरिजीने छठा कल्याणक नवीन प्रकाशित किया' ऐसा अर्थ कहते हैं। सो अपनी विद्वत्ताकी लघुताकारक अपनी अज्ञानता प्रकट करते हैं। क्योंकि 'शेष' कहनेसे सिद्धांतके रहस्यको जानने वाले सर्व पूर्वाचार्योंको छोड़कर सिद्धांतके रहस्यको नहीं जानने वाले बाकीके अज्ञानियोंका ग्रहण होता है, और 'अशेष' कहनेसे सर्वका ग्रहण होसकता है, मगर यहाँतो 'अशेष' शब्द नहीं है, किंतु 'शेष' शब्द है, इसलिये सर्व पूर्वाचार्योंका ग्रहण नहीं होसकता, जिसपरभी सर्वपूर्वाचार्योंका ग्रहण करते हैं, सो 'शेष' शब्दके अर्थकोभी नहीं जाननेवाले अपनी अज्ञानतासे शास्त्रोंके छोटे २ अर्थ करके, यहभी अठ्ठावीशवी बड़ी भूलकी है। इस बातकोभी विशेष विवेकी तत्त्वज्ञ विद्वान् लोग स्वयं विचार सकते हैं।

देखिये-खरतरगच्छ वालोंने अपने पूर्वाचार्योंके चरित्रोंमें, जैसे- श्रीअमयदेवसूरिजी महाराज संबंधी 'श्रीस्थंभन पार्श्वनाथ प्रकटकर्ता' तथा 'श्रीनवांगी वृत्ति कर्त्ता' वगैरह बातें, उन महाराजने जैनसमाजपर किए हुए उपकारोंकी यादगिरिकेलिये प्रसंशारूप लिखी हैं। तैसेही श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज संबंधीभी 'दश सह

[५७]

स नवीनधावक तथा चामुंडिका देवी प्रतिबोधक 'चैत्यवास शिथि-
लाचार निषेधक' 'षष्ठ कल्याणक प्रकट कर्ता' वगैरह बातें भी इन
महाराजने जैनसमाजपर किये हुए उपकारोंकी याद गिरिकेलिये
प्रसंशारूप लिखी हैं, सो नवीन कल्पित नहीं, किंतु शास्त्रानुसार
प्राचीनही हैं। इसलिये प्रसंशारूप लिखी हैं । जिसका मर्मभेद सम-
झेबिना, 'गणधर सार्द्ध शतक' ग्रंथकी लघुवृत्ति तथा बृहद्बृ-
त्तिके 'यो न शेषसूरीणां' इत्यादि पाठोंके ऊपर मुजब सत्यअ-
र्थोंको छुपाकरके अपनी मतकल्पना मुजब खोटे खोटे अर्थकरके
भोले जीवोंको मिथ्यात्वके उन्मार्गमें भेजनेकेलिये धर्मसागरजीकी अंध
परंपरावाले उनकी देखा देखी वर्तमानिक न्यायाभोनिधिजी, शास्त्र
विशारदजी, न्यायविशारदजी, विद्यासागर न्यायरत्नजी, जैनरत्न,
व्याख्यानवाचस्पति, आगमोद्धारक, गीतार्थ, यगैरह विशेषणोंको धा-
रणकरनेवाल आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, गणि, पन्थास, प्रसिद्धवक्ता,
विद्वान् मुनिजनआदि सर्व ऐसेही अनर्थ करते हुए चले जाते हैं और
सामान्यविशेष बातका भेदसमझे बिनाही सर्वतीर्थकर महाराजों सं-
बंधी 'पंचाशक सूत्रवृत्ति' का पांच कल्याणकों संबंधी सामान्यपाठको
आगे करके कल्प, स्थानांग, आचारांगादिमें विशेषता पूर्वक च्यवनादि
छ कल्याणक कहें हैं, उन्हींका निषेध करनेकेलिये आगमोंके अनादिसिद्ध
च्यवनादि कल्याणक अर्थको उड़ा देते हैं, तथा जैसे यति-मुनि-साधु-
अणगार शब्द एकार्थके भावार्थवाले हैं, तैसेही च्यवनादि वस्तु-स्थान-
कल्याणक शब्दभी एकार्थके भावार्थवाले हैं, उसका भेद समझे बिना
ही च्यवनादिकोंको वस्तु-स्थान कहकर कल्याणकपने रहित ठहराते
हैं । मगर दीर्घदृष्टिसे विवेकबुद्धिपूर्वक शास्त्रकार महाराजोंके अभि-
प्राय तरफ उपयोग लगाकर सत्य तत्त्व बातका कोईभी विचार नहीं
करते हैं, यह अंधपरंपराकी कितनी यड़ीभारी लज्जनीय अनुचित प्रवृ-
त्ति है। इसको विशेष विवेकी तत्त्वज्ञ पाठकगण स्वयंविचार सकते हैं ।

औरभी देखिये-विवेक बुद्धिसे खूब विचारकरीये, यदि नीचगौत्र
कर्मविपाकरूप तथा आश्चर्यरूप कहनेसे कल्याणकपनेका निषेध हो
सकता होवे, तबतो आपादशुदी ६ को देवानंदामाताके गर्भमें भग-
वान् आये, सोही नीचगौत्र कर्मविपाकरूप होनेसे कल्पसूत्रादि शास्त्रों-
में उनको आश्चर्य कहा है, इसलिये तुम्हारे मतव्य मुजबतो उनकोभी क-
ल्याणकपनेका निषेध हो जावेगा। और विशेष अधिक आश्चर्यकारक
दूसरे च्यवनकी तरह प्रथमच्यवनभी कल्याणकपने रहित होनेसे श-

[५८]

पषाकीके ४कल्याणकही रहजावेंगे. और नीचगौत्रके विपाकरूप तथा आश्चर्यरूप कहते हुएभी प्रथम च्यवनको कल्याणकपना मानेंगे, तो- नीचगौत्र विपाकरूप और आश्चर्यरूप कहकर दूसरे च्यवनरूप गर्भा पहारको कल्याणकपने रहित ठहराया सो प्रत्यक्षमिथ्या व्यर्थही झूठा आप्रह सिद्ध होवेगा. इसलिये ऐसे झूठे आप्रहसे भोले जीवोंको सं- शयरूप मिथ्यात्वके भ्रममें गेरकर भगवानकी आशातनाका हेतुभूत अनर्थ करना सर्वथा योग्य नहीं है. किंतु प्रथम च्यवनमें कल्याणक पना माननेकी तरहही दूसरे च्यवनमेंभी कल्याणकपना आगमादि शास्त्रप्रमाण तथा युक्तिसम्मत होनेसे आत्मार्थियोंको अवश्यही मान्यकरना उचितहै, इसको विशेष तत्त्वज्ञजन स्वयंविचारसकतेहैं।

औरभी प्रत्यक्ष शास्त्रप्रमाण देखिये-कल्पसूत्रकी सर्व टीकायें वगैरह बहुतशास्त्रोंमें श्रीजंबूस्वामिके निर्वाणगयेबाद दश(१०) वस्तु विच्छेद होनेका लिखाहै. उसमें-केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यात- चारित्र, मुक्तिगमन वगैरह बातोंकोभी वस्तु कहाहै. और 'गुणस्थान- क्रमारोह' वगैरह शास्त्रोंमेंभी केवलज्ञान उत्पन्नहोनेको, तथा मुक्तिगम- नको १३-१४ वा गुणस्थान कहाहै. इसी तरहसे इन शास्त्रप्रमाण मु- जबभी तीर्थंकर भगवानके केवलज्ञान उत्पन्न होनेको तथा मुक्तिगम- न निर्वाणको वस्तु कहो या स्थान कहो और उन्हींकोही केवलज्ञान तथा निर्वाण कल्याणकभी मानो, तो भी इस बातमें कोई तरहका वि- रोधभाव नहींहै, इसलिये च्यवनादिकोंको वस्तु कहो, या स्थान क- हो, वा कल्याणककहो, सबका तात्पर्यार्थसे भावार्थ एकहीहै. जिस परभी वस्तु-स्थान कहकर कल्याणकपनेका निषेध करनेवाले अपनी अज्ञानतासे शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा करके भोलेजीवोंको उन्मार्गमें गे- रते हैं, और अपनी आत्माकोभी उत्सूत्र प्ररूपणाके दोषसे मलीन करते हैं. इसबातकोभी विवेकी तत्त्वज्ञजन स्वयं विचार सकते हैं।

और तीर्थंकरभगवानके च्यवनादिकोंको कल्याणकपना आगमानु- सार अनादिसिद्धहै, उन्हीं च्यवनादिकोंको शास्त्रोंमें एक जगह स्था- न कहे, दूसरी जगह वस्तु कहे, तीसरी जगह कल्याणक कहे, इससे- भी वस्तु-स्थान-कल्याणक यह तीनों शब्द पर्यायवाचक एकार्थवाले सिद्ध होतेहैं जिसपरभी वस्तु-स्थान शब्द देतकर अनादिसिद्ध च्य- वनादिमें कल्याणक अर्थको उडादेना सो अपने झूठे पक्षपातके आप्र- हसे शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करनेरूप यह कितनी बड़ी भूल है इसको

[५९]

आत्माथी विवेकी तत्त्वज्ञ पाठक जन स्वयं विचार सकते हैं।

छ कल्याणक संबंधी ऊपरके संक्षिप्त लेखसेभी जो आत्माथी सत्य ग्रहण करने वाले निकट भव्य होंगे, वह तो थोड़ेसेमेंही सार समझ लेवेंगे, कि-गर्भापहारको अलग भव गिननेसे तथा त्रिशलामातानें सर्व तीर्थंकर माताओंकी तरह आकाशसे उतरते हुए १४ महास्व-प्रदेखने वगैरह कार्योंसे दूसराध्यवनरूप कल्याणकपनेकी उत्तमताको छुपाकरके व्यर्थही छठे कल्याणककी निंदाकरना सर्वथा योग्यनहींहै और शास्त्रोंकेअर्थ बदलकरके उत्सृजप्ररूपणासे व कुयुक्तियोंसे भोले जीवोंकोभी उत्तम कार्यके हेतुभूत गर्भापहारकी निंदा करवाने वाले बनवाकर तीर्थंकर भगवानकी आशातनासे भवहार जानेका कारण कराना कदापि योग्य नहींहै। ऊपरकी इन सब बातोंका विशेष निर्णय शास्त्रोंके संपूर्ण पाठोंके प्रमाणोंसहित इस ग्रंथके पृष्ठ ४५३ से ८२६ तक छप चुका है, सो तीसरे भागमें प्रकट होगा। उसके बांचनेसे सर्व शंकाओंका खुलासा समाधान अच्छी तरहसे होजावेगा।

और शासन नायक श्रीमहावीरस्वामि आदि सर्व तीर्थंकर म हाराजोंके चरित्र भव्यजीवोंको कमौकी निर्जरा करानेवाले कल्याणकारक मंगलरूपही हैं, इसलिये पर्युषणाके मंगलिक पर्व दिनोंमें आत्मकल्याणके लिये वांचनेमेंआतेहैं और श्रीमहावीरस्वामिके गर्भापहाररूप दूसरा द्यवनका कार्य तो त्रिशलामाता, सिद्धार्थपिता, व इंद्रमहाराज वगैरह सर्व जीवोंको कल्याण मंगलरूप दर्शका देनेवालाहुआहै। तथा उनका आराधन करनेवाले अल्पसंसारी आत्माथी भव्यजीवोंकोभी अभिमानरहित कमौकी विचित्रताकी भावनासे कमौकी निर्जरा करानेवाला कल्याणकारक मंगलरूपहोता है। मगर गर्भापहारके नाम सुननेमात्रसेही चमकउठनेवाले और उनको नीच गौत्रविपाकरूप, आश्चर्यरूप अतीवनिंदनीक कहकरनिंदाकरनेवालोंको तीर्थंकरभगवानके अवर्णवाद बोलनेसेसंसारपरिभ्रमणके बहुतविशेष दुःख भोगनेवाकी होंगे, इसलिये उन्हींको वो कार्य अमंगलरूप अकल्याणरूप मालूमपडता होगा। इससे उनकार्यसे द्वेषरखकर वर्षोंवर्ष पर्युषणाके मांगलिकरूप कल्याणकारक पर्वदिनोंके व्याख्यानमें उनकी निंदा करते हुए अकल्याणरूप अतिनिंदनीक ठहराकर तीर्थंकर भगवानकी आशातना करनेसे अपनेको और दूसरे भव्य जीवोंकोभी अकल्याणरूप दुर्लभबोधिका हेतुकरतेहैं, ऐसी २ अनर्थभूत अनुचित बातोंसेही 'सुबोधिका' नाम रख्खाहै। मगर वास्तविक में

[६०]

तो 'दुर्लभबोधिका' नाम सिद्ध होता है। इस बात को विशेष आत्मार्थी तत्त्वज्ञ पाठकगण स्वयं विचार लेंगे।

एक बात उत्थापन करनेसे अनेक बातें उत्थापन करनी पड़ती हैं ॥

देखो-एक अधिकमहीना व छ कल्याणक उत्थापन करनेसे उसकी पुष्टिकेलिये, अनेक शास्त्रोंके अर्थबदलनेपड़े। अनेक जगह शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्राय विरुद्ध आग्रह करना पड़ा। कितनीही जगह मिथ्या बातें भी लिखनी पड़ी। कितनीक जगह शास्त्रोंके आगे पीछे के संबंधवाले पाठोंको छोड़कर बिनासंबंधके अधूरे २ पाठभी भोले जीवोंको बतलाकर अपनापक्षकी सत्यता बतलानेका परिश्रम करना पड़ा और कितनीही जगह तो शास्त्रोंकी, पूर्वाचार्योंकी व भगवानकी भी आशातनाके हेतुभूत अनुचित शब्दभी लिखने पड़े। उसका अनुभव तो सुबोधिक-किरणावलीआदिककी २८ भूलोंवाले ऊपरके लेखसे तथा इस भूमिकाके सबलेखपरसे और इस ग्रंथके अवलोकन करनेसे पाठकगणको अच्छी तरहसे होसकेगा, इसलिये 'एक बात उत्थापन करनेसे अनेक बातें उत्थापन करनी पड़ती हैं' यह लोकरुढ़ीकी कहावतकी बात ऊपरके विषयमें प्रत्यक्ष देखनेमें आती है।

इस प्रकार पर्युषणासंबंधी, व छ कल्याणक संबंधी अपना झूठा पक्ष स्थापन करनेकेलिये और भोले जीवोंको उन्मार्गमें घेरनेकेलिये, शास्त्र विरुद्ध होकर विनयविजयजीने सुबोधिकामें, तथा जयविजयजीने दीपिकामें, और धर्मसागरजीने किरणावलीमें, ऊपर मुजब अनेक भूलें की हैं, उन्हीं भूलोंको तपगच्छके कितनेक आग्रही जन पर्युषणाके व्याख्यानमें वर्षोंवर्ष वांचते हैं। उससे जिनाज्ञाकी विराधनाहोकर भवबढ़नेका व दुर्लभबोधिका हेतुभूत अनर्थ होता है। इसलिये अल्पसंसारी भव्यजीवोंको जिनाज्ञानुसार सत्य बातोंकी प्राप्ति होनेरूप उपकारकेलिये उपरकी सब बातोंका खुलासा निर्णय इस ग्रंथमें अच्छी तरहसे लिखनेमें आया है। उसको देखकर यदि शास्त्राविरुद्ध प्ररूपणासे संसार परिभ्रमणका भय लगता हो तो उन भूलोंको सुधारो, व्याख्यानमें वांचनेका बंध करो, और सत्वबातोंको ग्रहण करो या बड़ोदा वगैरह किसीभी राज्य दरबारमें इन भूलोंसंबंधी श्रीगौतमस्वामिआदि गणधरमहाराज व सिद्धसेनदीवाकर, हरिभद्रसूरिजी वगैरह महाराजोंकी तरह सत्य ग्रहण करनेकी प्रति-

[४१]

ज्ञापूर्वक शास्त्रार्थ करनेको तैयारहो, हमने तो इनका सत्य निर्णय अच्छी तरहसे करलियाहै, तोभी इन शास्त्रार्थमें सत्यनिर्णय ठहरेगा सो मंजूर है, इसलिये जो महाशय ऊपरकी भूलोंसंबंधी शास्त्रार्थ करना चाहते हों, वो अपनी सहीसे अपना प्रतिज्ञा पत्र जाहिर रूपसे हमको भेजें-समय, स्थान, नियम, साक्षि वगैरहकी व्यवस्था तो सबके अनुकूल उसी राज्यके नियममुजब होसकेगी, विशेष क्या लिखें।

पर्युषणा संबंधी मंतव्यके कथनका संक्षिप्त सार.

१- जैनटिप्पणाके अभावसे लौकिक टिप्पणामुजब मास-पक्ष-तिथि-वर्ष वगैरह माननेका व्यवहार करना और पर्युषणादि धार्मिक कार्योंका व्यवहार जैन सिद्धांतोंके अनुसार करना. तथा जैनसिद्धांतोंके अनुसार या लौकिक टिप्पणाके अनुसारभी अधिक महीनेके ३० दिनोंको दान, पुण्य, परोपकार, जप, तप, धर्म ध्यानादि करनेमें व ब्रह्मचर्य पालनेमें या देशविरती-सर्वविरती संयम पालनेमें, तथा कर्मबंधनकी स्थितिके प्रमाणमें और कर्मोंकी निर्जरा करने वगैरह कार्योंमें गिनतीमें लियेजातेहैं, तैसेही ५० दिन प्रतिबद्ध पर्युषणापर्व का आराधन करनेमेंभी उसके ३० दिन गिनतीमें लेकर खरतरगच्छ, तपगच्छादिककी कल्पसूत्रकी टीकाओंके “पंचाशतैव दिनैः पर्युषणा संगतेति वृद्धाः” इसवाक्यमुजब अभी दूसरेभ्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें ५०दिने पर्युषणापर्वकरना, यही शास्त्रानुसार जिनाज्ञा है।

२- मास प्रतिबद्ध कार्य तो एक महीनेकी जगह दूसरे महीनेमेंभी करनेमें आवे, तो भी कोई शास्त्रमें उनका दोष नहीं बतलाया. मगर पर्युषणापर्व करनेमें तो ५०दिनकी जगह ५१दिनभी कभी नहींहोसकते, इसलिये बिनामुहूर्तवाले ५० दिन प्रतिबद्ध पर्युषणापर्वके साथ मास प्रतिबद्ध या मुहूर्त प्रतिबद्ध होली, ओली, दीवाली, दशहरा, अक्षयतृतीया, पौष-श्रावणादिक महिनोंके कल्याणकादितप, या यज्ञोपवित, दीक्षा, प्रतिष्ठा, विवाह सादी वगैरह कोईभी कार्योंका संबंध नहीं है। जिसपरभी दिन प्रतिबद्ध पर्युषणापर्व आराधन करनेकी चर्चामें मासप्रतिबद्ध या मुहूर्त प्रतिबद्ध कार्योंकी बात बीचमें लाते हैं. वो लोग पर्युषणापर्वकरने संबंधी शास्त्रकार महाराजोंका आशय नहीं जानने वाले होनेसे, शास्त्रोंकी आज्ञा विरुद्ध होकर व्यर्थही कुयुक्तियोंसे विषयांतर करके भोले जीवोंको उन्मार्गमें मेरते हैं।

[६२]

३- अधिक महीनेके अभावसंबंधी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेके व उसकेपीछे ७० दिन रहनेके और १२ मासी क्षामणे वगैरहके सामान्यपाठोंको अधिकमहीना होवे तबभी आगेलातेहैं। और अधिकमहीनेसंबंधी “ पचाशतैव दिनेः पर्युषणा संगतेति वृद्धाः ” कल्पसूत्रकी सर्वटीकाओंके इस विशेषपाठका, तथा स्थानांगसूत्रवृत्ति, निशीथ-चूर्णि, बृहत्कल्पचूर्णि, वृत्ति, पर्युषणाकल्पचूर्णि वगैरह शास्त्रोंके १०० दिन रहने संबंधीआदि विशेषताके पाठोंकी सत्यबातोंको छुपाकरके छोड़ देते हैं, सो यह सर्वथा अनुचित है।

४- धार्मिक कार्य करनेमें १२ महीनोंके सर्व दिन, या अधिक महीना होवे तब १३ महीनोंकेभी सर्व दिन, वा क्षय महीनेकेभी सर्व दिन बरोबर समानही हैं, उनमें कर्मबंधनके संसारिक कार्य और कर्म निर्जराके धार्मिक कार्य हमेशा बराबर होते रहते हैं, इसलिये तत्त्वदृष्टिसे तो उनमेंसे एक समय मात्रभी गिनतीमें नहीं छुट सकता। जिसपरभी कार्तिकादि क्षयमहीनेके ३० दिनोंमें दीवाली, ज्ञान-पंचमी, चौमासी वगैरह धार्मिक कार्य करते हुएभी अधिक महीनेके ३० दिनोंको तुच्छ समझकर बड़ी निंदा करते हैं, या कालचूलाके नामसे गिनतीमें छोड़ देनेका कहते हैं, सो सर्वथा जिनाज्ञाका उत्थापन करते हैं।

५- जैन ज्योतिषविषयसंबंधी प्ररूपणा आगमानुसार करनी और श्रद्धाभी उसीमुजबवरखनी, परंतु अभी पडताकालमें जैनटिप्पणा बंध होनेसे उस मुजब व्यवहार नहीं कर सकते और लौकिकटिप्पणा मुजब व्यवहार करनेमें आता है। इसलिये अभी जैन शास्त्रमुजब पौष-आषाढ अधिक होनेसंबंधी पाठ बतलाकर लौकिक टिप्पणासंबंधी चैत्र, श्रावणादि अधिकमहीने मान्यकरनेका निषेध नहीं कर सकते। और जैसे जिनकल्पी व्यवहार अभी विच्छेद है तोभी उन्हकी प्ररूपणाकरनेमें आती है, तैसेही पौष-आषाढ बढ़नेकी प्ररूपणा तो शास्त्रानुसार कर सकते हैं, मगर मास-पक्ष-तिथि वगैरहका वर्ताव तो लौकिक टिप्पणा मुजबही करना योग्य है।

इन सर्व बातोंका विशेष निर्णय ऊपरके भूमिकाके लेखमें और इस ग्रंथमें अच्छी तरहसे हो चुका है। यहां तो उसका संक्षिप्तसार मात्रही बतलाया है। मगर विशेष निर्णय करनेकी अभिलाषावाले पाठकगण इसग्रंथको संपूर्णतया वांचेंगेतो सबखुलासा हो जावेगा

[६३]

छ कल्याणकों संबंधी मंतव्यके कथनका संक्षिप्त सार.

१- कल्पसूत्र तथा आचारांग सूत्रादि आगमानुसार विशेषतासे श्रीमहावीरस्वामिके च्यवनादि छ कल्याणकमान्य करने, और अतित-अनागत-वर्तमानकालके सर्वतीर्थकर महाराजोंकी अपेक्षासंबंधी सामान्यतासे पंचाशकादि शास्त्रानुसार पांचकल्याणकभी मान्य करने, इनमें कोई दोष नहीं है. मगर कितनेक लोग शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायको नहीं जाननेसे पंचाशकके पांच कल्याणकों संबंधी सामान्य पाठकों भोलें जीवोंको घतलाकर; विशेषतासे कल्प-आचारांगदि आगमोक्त छ कल्याणकोंका निषेध करते हैं, सो अज्ञानतासे शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करते हैं।

२- श्रीकृष्णभदेवस्वामिके राज्याभिषेकके कार्यमें तो च्यवन-जन्म-दीक्षादि कोईभी कल्याणकके कुछभी लक्षण नहीं हैं, तथा उनके मास, पक्ष, तिथि वगैरहकाभीकहीं उल्लेखनहीं है. और श्रीमहावीरस्वामिके दूसरे च्यवनरूप गर्भापहारके कार्यमें तो सर्व तीर्थकर महाराजोंकी माताओंकी तरह विशला मातानेभी १४ महास्वप्न आकाश से उतरते हुए देखे हैं, तथा उसी दिन इन्द्रमहाराजका विशलामाता केपास आगमनहुआ है, तीर्थकर पुत्र होनेका स्वप्नफल कहा है, व उनके मास-पक्ष-तिथि वगैरह च्यवन कल्याणकके सर्व कार्य प्रत्यक्षपने शास्त्रोंमें कथन किये हुए हैं. और समवायांगसूत्रवृत्ति, लोकप्रकाशादिशास्त्रोंमें उनको अलग भव गिनतीमें लिया है, इसलिये गर्भापहाररूप दूसरे च्यवनके कार्यमें तो च्यवन कल्याणकपनेके सर्व लक्षण मौजूद हैं, जिसपरभी राज्याभिषेकके समान गर्भापहारकोभी उहरते हैं, और उनको कल्याणकपने रहित कहते हैं सो सर्वथा अनुचित है।

३- श्रीमल्लीनाथस्वामिके स्त्रित्वपनेमें तीर्थकरपनेके जन्म-दीक्षादि कार्य अच्छेरारूप हुए हैं, तो भी उन्होंनेकोही कल्याणकपना माननेमें आता है. तथा श्रीमहावीरस्वामि भगवानभी ब्राह्मण कुलमें देवानंदा माताके गर्भमें उत्पन्न हुए सो अच्छेरा रूप है, तो भी उनको प्रथम च्यवनरूप कल्याणकपना मानते हैं। तैसेही गर्भापहाररूप आश्चर्य को भी दूसरा च्यवनरूप कल्याणकपना माननेमें आता है, इसलिये आश्चर्य कहनेसे कल्याणकपना निषेध नहीं हो सकता. जिसपरभी आश्चर्य कहकर कल्याणकपनेका जो निषेध करते हैं, वो लोग अपनी अज्ञानतासे बड़ी भूल करते हैं।

[६४]

४- देवानंदामाताकी कुक्षिमें भगवान् आये सो ही नीचगौत्र कर्म विपाकरूप है, उनका क्षय हुए बाद उच्चगौत्रके कर्मका उदय होनेसेही गर्भापहार करना पड़ा है, तो भी शास्त्रकार महाराजोंने तो देवानंदामाताकी कुक्षिमें आनेको तथा त्रिशलामाताकी कुक्षिमें आनेको, इन दोनों का-योंको तीर्थकर भगवान् के चरित्रमें उत्तमतापूर्वक कल्याणकारक माने हैं। जिसपर भी त्रिशलामाताके गर्भमें आनेको नीचगौत्र कर्म-विपाकरूप अतिनिन्दनीय कहकर जो लोग वर्षोंवर्ष पर्युषणाके मांग लिक पर्व दिनोंके व्याख्यानमें प्रत्यक्ष झूठ बोलकर भगवान् की निंदा करते हैं, सो तीर्थकर भगवान् के अघर्णवाद् बोलनेवाले होनेसे आशा-तनाके दोषी ठहरते हैं।

५- जैसे श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने श्रीस्थंभनपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको प्रकट किया, उनका आशय समझे बिना कितनेक दृष्टिये व तेरहापंथी लोग जिनप्रतिमाकी नवीन प्ररूपणा कहें, तो उन्हींकी अज्ञानता समझी जावे। मगर तत्त्वदृष्टिवाले विवेकीलोग जिनप्रति-माकी नवीन प्ररूपणा कभी नहीं कहेंगे, किंतु आगमोक्त प्राचीनही कहेंगे। तैसेही श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजने भी पष्ठ कल्याणकको प्रकट किया, उनका आशय समझे बिना कितनेक लोग उनकी नवीन प्ररूपणा कहते हैं, वो उन्हींकी अज्ञानता समझनी चाहिये। मगर तत्त्व दृष्टिवाले विवेकीलोग उनकी नवीन प्ररूपणा कभी नहीं कहेंगे, किंतु आगमोक्त प्राचीन ही कहेंगे।

६- भगवान् के शरीर-इन्द्रिय-पर्याप्तिके अवयव [पुद्गलपरमाणु]। देवानंदामाताके शरीरसे बने हुए थे, और उसी शरीरसे त्रिशला-माताके गर्भमें भगवान् आगयेथे, यह बात आश्चर्यकारक होनेसे शरीर-इन्द्रिय-पर्याप्ति बदले बिनाभी शास्त्रकार महाराजोंने उनको अलग भव गिना है। उनमें प्रत्यक्षपने उद्यमन कल्याणकपना दिख-लानेके लियेही खास कल्पसूत्रके मूलपाठमें त्रिशलामाताने १४ स्व-प्न देखे हैं उन संबंधी "ए प च उदस सुमिणे, सव्वा पासई तित्थयर माया। जं रंयणिं वक्कमई, कुच्छिंसि महायसो अरिहा ४७॥" यह पाठ लिखा है, और इसपाठकी सुबोधिका टीकामें इस प्रकार व्याख्या किया है "अत्र प्रसंगेन एतेषां स्वप्नानां गर्भकाले सकलजिन-राजजननीबिलोकनीयत्वं दर्शयन्नाह-एतान् चतुर्दश स्वप्नान्, सर्वाः पश्यन्ति तीर्थकर मातरः। यस्यां रजन्यां उत्पद्यन्ते, कुक्षौ महायशसः अर्हन्तः ॥४७॥ इसी तरहसेही सर्व टीकाश्रीमें भी ऐसेही भावार्थका

[६५]

पाठजानलेना. देखो-जिसरात्रिको तीर्थंकरभगवान् माताके गर्भमें आकर उत्पन्नहोंगे, उसरात्रिको उन्हींकी माता गर्भकाले अर्थात् ज्यवन कल्याणक समय सर्व तीर्थंकरोंकी मातायें यह १४ महास्वप्न देखती हैं। ऐसेही श्री महावीरस्वामिभी त्रिशलामाताके गर्भमें आये, तब त्रिशलामातानेभी १४ महास्वप्न देखे हैं। इस ऊपरके पाठपर अच्छी तरहसे तत्त्वदृष्टिसे विचारकिया जावे. तो-अनादिकालकी मर्यादा मुजब सर्व तीर्थंकर महाराजोंके ज्यवन कल्याणककी तरहही आश्विन वदी १३ की रात्रिको त्रिशलामाताके गर्भमें भगवान् आये; उनको खास सूत्र कारने और सुबोधिका, दीपिका, किरणावली वगैरह सर्व टीकाकारोंनेभी ज्यवन कल्याणक मान्य किया है। और तीर्थंकर महाराजोंके ज्यवन कल्याणकमें इन्द्रमहाराजाका आसन चलायमान होनेसे विधिपूर्वक नमस्काररूप 'नमुत्थुणं' करना। तनिजगतमें उद्योत होना, तथा सर्व संसारी प्राणी मात्रको थोड़ीदेर सुखकी प्राप्ति होना, वगैरह कार्यहोते हैं। यह अनादि मर्यादा आगमानुसार प्रसिद्धही है। यही सर्व कार्य आसोज वदी १३ को भगवान् त्रिशलामाताके गर्भमें आये तब उसीरोज होनेका ऊपरके कल्पसूत्रके मूलपाठसे तथा उन्हींकी सर्व टीकायें वगैरह बहुत शास्त्रोंके प्रमाणोंसेभी प्रत्यक्ष सिद्ध होता है, क्यों-कि देखो- आषाढ शुद्ध ६ को भगवान् देवानंदा माताके गर्भमें आये तब उसी समय तो सिर्फ देवानंदा माताने १४ महा स्वप्न देखे सो अपने पति ऋषभदत्त ब्राह्मणको कहे, उनने स्वप्नोंके अनुसार उत्तम लक्षण वाला गुणवान् पुत्र होनेका कहा, सो यात अंगीकार किया और उसके बाद दोनो दंपति संसारिक सुखभोगते हुए काल व्यतीत करने लगे. इसप्रकार कल्पसूत्रादि सर्व शास्त्रोंमें लिखा है, मगर भगवान् देवानंदा माताके गर्भमें आषाढ शुद्ध ६ को आये, तब उसीरोज १४ महास्वप्न देखनेके सिवाय इन्द्रका आसन चलायमान होनेका व नमुत्थुणं वगैरह कोईभी ज्यवन कल्याणकके कार्य होनेका उल्लेख कल्पसूत्र व भगवान् के चरित्र संबंधी किसीभी शास्त्रमें देखनेमें नहीं आता. और त्रिशलामाताके गर्भमें आसोज वदी १३ को भगवान् आये, उसीरोज तो 'महापुरुष चरित्र' व 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र' तथा कल्पसूत्र और उन्हींकी सर्व टीकायें वगैरह बहुत शास्त्रोंके पाठोंसे प्रत्यक्षमेंही 'नमुत्थुणं' वगैरह ज्यवन कल्याणकके सर्व कार्य होनेका देखनेमें आता है. इसलिये कल्पसूत्रमें जो 'नमुत्थुणं' होनेका पाठ है, सो. आषाढ शुद्ध ६ के दिन संबंधी नहीं है, किंतु

[६६]

आसोज वदी १३ के दिन संबंधी है, ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि देखो— इन्द्रमहाराजने भगवानको नमुत्थुणं करके अपने सिंहासन पर बैठकर, प्राचीन कर्म उदयसे देवानंदाके गर्भमें भगवानको उत्पन्न होना पड़ा, ऐसा अच्छेरारूप विचारके हरिणगेमेषिदेवको आज्ञाकरके आसोज वदी १३को त्रिशलामाताके गर्भमें भगवानको संक्रमण करवाये, इसलिये यह सबबातें आसोज वदी १३को उसी समय हुई हैं, इसलिये ८२दिन तक तो इन्द्रमहाराजका आसन चलायमान नहीं होनेसे भगवान देवानंदाके गर्भमें उत्पन्न हुए हैं, ऐसा मालूम भी नहीं पड़ा, मगर संपूर्ण ८२ दिन गये बाद अवधिज्ञानसे मालूम पड़ा; तब हर्षसे विधिपूर्वक नमस्कार रूप नमुत्थुणं किया और त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये। इसलिये त्रिशलामाताके गर्भमें आनेके दिन आसोज वदी १३ को नमुत्थुणं करनेका कल्पसूत्रादि आगमानुसार प्रत्यक्षही सिद्ध होता है, और तीर्थंकर भगवान माताके गर्भमें आकर उत्पन्न होवें, तब इन्द्रमहाराजको अवधिज्ञानसे मालूम पड़े, उसी समय 'नमुत्थु णं' रूप नमस्कार करनेकी आगमानुसार अनादि मर्यादा है, मगर उस समय वहां सामान्य नमस्कार करनेकी मर्यादा नहीं है। इसलिये 'महापुरुष चरित्र' में और 'श्रीत्रिषष्टिशालाका पुरुषचरित्र' के १० वें पर्वमें श्रीमहावीरस्वामिके चरित्रमें आसोज वदी १३को इन्द्रमहाराजका आसन चलायमान होनेसे अवधिज्ञानसे भगवानको देवानंदाके गर्भमें देखकर नमस्कार किया ऐसा अधिकार है, सो नमुत्थुणं रूप नमस्कार करनेका समझना चाहिये मगर सामान्य नमस्कार करनेका नहीं समझना। और तीर्थंकर भगवानके ज्यवन समय इन्द्रमहाराज नमुत्थुणं रूप नमस्कार हमेशा करते हैं, तथा उसी समय तीनजगतमें उद्योत, और सर्व जीवोंको क्षणमात्र सुखकी प्राप्ति होती है, उन्हींकोही ज्यवन कल्याणक मानते हैं, यही सर्व कार्य आसोज वदी १३ के रोज होनेका ऊपरके लेखसे आगमादि प्राचीन शास्त्रानुसार सिद्ध होता है, और समवायांग सूत्रवृत्ति वगैरह आगमादि शास्त्रोंमें त्रिशलामाताके गर्भमें आसोज वदी १३ को भगवान् आये उन्हींकोही तीर्थंकर पनेके भवमें गिना है, इसलिये त्रिशलामाताके गर्भमें आनेको आसोज वदी १३ के रोज दूसरा ज्यवनरूप कल्याणक पना मान्य करना आत्मार्या निकट भव्य जीवोंको उचित ही है, जिसपर भी उनको कल्याणकपनेका निषेध करनेके लिये देवानंदाके १४ महास्वप्न त्रिशलासे हरण हुए हैं, इस

[६७]

लिये वो कल्याणक नहीं होसकता. ऐसा कहनेवालोंकी बड़ी अज्ञानताहै, क्योंकि देखो- जैसे देवानंदाने मेरे १४ महा स्वप्न त्रिशला ने हरण किये ऐसा स्वप्न देखा, वैसेही त्रिशलामी मैने देवानंदाके १४ महा स्वप्न हरण कियेहैं, वैसे सिर्फ एकहीस्वप्न देखती और च्यवन कल्याणककी सिद्धि बतलानेवाले नमुत्थुण वगैरह अन्य कोई भी कार्य उसीरोज न होते तथा कल्पसूत्रमेंभी “एष च उदस सुमिणा, सन्वा पासेह तित्थयरमाया । जं रयाणि वक्कमई कुच्छिसि, महायसो अरिहा” यहपाठ अनादि मर्यादामुजब त्रिशला संबंधी न कहकर देवानंदा संबंधी कहते और पार्श्वनाथस्वामिके तथा नेमिनाथस्वामिके च्यवन कल्याणक संबंधी उन्होंने १४महास्वप्न देखे, उसी समय इन्द्रकाआसन चलाय मान हुआ, तबविधिपूर्वक हर्षसे नमुत्थुण किया और प्रभातमें राजाओंने स्वप्न पाठकोंको बुलाकर स्वप्नोंका फल पूछा, तब स्वप्न पाठकोंने १४ महास्वप्न देखनेसे रागद्वेषको जितनेवाले जिने, त्रैलोक्य पूजनीक तीर्थंकर पुत्र होनेका कहा. इत्यादि च्यवन कल्याणकके कार्योंकी भलामणभी त्रिशला संबंधी न देकर देवानंदा संबंधी देते. और आषाढ शुदी ६ को ही नमुत्थुण होने वगैरह उपरके तमाम कार्योंका उल्लेख कल्पसूत्रादिमें शास्त्रकार करते, व समवायांगसूत्रवृत्तिमें अलग भवभी न गिनते और आसोज वदी १३को नमुत्थुण वगैरह च्यवन कल्याणकके कोईभी कार्य नहीं होते, तबतो त्रिशलाके गर्भमें आनेको च्यवनकल्याणक नहीं मानते तो भी चल सकता, मगर ऐसा नहीं है, और आषाढ शुदी ६ को नमुत्थुण वगैरह च्यवन कल्याणकके कार्य नहीं हुए, किंतु आसोज वदी १३को हुए हैं. इसलिये आसोज वदी १३को ही च्यवन कल्याणकके तमाम कार्य होनेसे उनको अवश्यही कल्याणकपता मान्य करना योग्य है। और स्वप्न हरण वगैरहके बहानेसे कल्याणकपता निषेध करना सो अज्ञानतासे शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा करना योग्यनहीं है. और जन्म त्रिशलामाताके गर्भसे हुआ है, तथा च्यवनकल्याणकके सर्वकार्यभी त्रिशलाके गर्भमें आये तबहुए हैं, इसलिये त्रिशलाके गर्भमें आनेरूप च्यवन माननाही आगम प्रमाण अनुसार और युक्तियुक्त है, च्यवनके सिवाय जन्मभी नहीं मानसकते. यह जगत विख्यात प्रसिद्ध न्यायकी बात है. त्रिशलाके गर्भमें आये तब अनादि मर्यादामुजब च्यवन कल्याणकके सर्वकार्य खाससूत्रकारनेलिखे हैं, जिसपरभी उन्होंने उरथापनकरके अकल्याणकरूप ठहरानेके लिये उसबातको निंदनीक कहकर बाल

[६८]

जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममेंगेरनेका अनर्थ करना सर्वथा अनुचित है। और जैसे-देवलोकसे ज्यवन हुए बाद तथा माताके गर्भमें अवतार लेनेबाद नमुत्थुणं वगैरह ज्यवन कल्याणकके कार्य होते हैं, तो भी 'कारणमें कार्यका उपचार' होता है, इसलिये ज्यवनसमय नमुत्थुणं वगैरह कार्य होनेका कहनेमें आता है। तैसेही यद्यपि देवानंदामाताके गर्भमें नमुत्थुणं हुआ तो भी आषाढशुदीद्विके दिननहीं, किंतु आसोज वदी १३ के दिन हुआ है, तथा उसी समय त्रिशला माताके गर्भ में जानेका होनेसे उन्हींके निमित्त भूतही 'कारणमें कार्यका उपचार' मानकर त्रिशला माताके गर्भमें आने संबंधी नमुत्थुणं वगैरह कार्य होनेका कहनेमें आता है। और इन्द्रमहाराज भगवान्‌के विनयवान भक्त थे; इसलिये अवधिज्ञानसे भगवान्‌को देखतेही उसीसमय नमुत्थुणं किया और त्रिशला माताके गर्भमें पधराये। यदि भगवान्‌को अवधिज्ञानसे देवानंदामाताके गर्भमें देखकर त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये बाद पीछेसेनमुत्थुणंकरते तो विनयभाक्तिरूप मर्यादाकाभंग होता, इसलिये विनय भक्तिरूप मर्यादा रखनेकेलिये पहिले नमुत्थुणं किया और पीछे त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये। देखो, जैसे कोई राजा महाराजा भगवान्‌का आगमनसुनने मात्रसेही हर्षयुक्त होकर उसीसमय उसी दिशा तरफ पहिले वहांसेही भगवान्‌को नमस्कारकरते हैं, और बादमें भगवान्‌के पास वहां जाकर उचित भक्ति करते हैं। तैसेही इन्द्रमहाराजनेभी अवधिज्ञानसे भगवान्‌को देखतेही वहांसे नमुत्थुणंरूप नमस्कारकिया और त्रिशलामाताके गर्भमें पधराये, बाद त्रिशला माताके पासमें आकर तीन जगतके पूजनीक तीर्थकर पुत्र होनेका कहा और देवताओंको आज्ञा करके धनधान्यादिककी वृद्धि करवाने वगैरह कार्योंसे भगवान्‌की उचित भक्ती करी। यह सर्व कार्य आसोजवदी १३के दिन हुए हैं, इसलिये कारणमें कार्यका उपचार माननेसे नमुत्थुणं वगैरह तमाम कार्य त्रिशलामाताके गर्भमें आनेसंबंधी समझने चाहिये। जिसपरभी देवानंदके गर्भमें नमुत्थुणं होनेका कहकर त्रिशलाके गर्भमें आनेसंबंधी आसोज वदी १३के दिनको ज्यवन कल्याणकपने रहित कहते हैं उन्हींकी अज्ञानता है।

और जो बातनहीं बननेवाली होवे; असंगतीरूप या असंभवित होवे, वोही बात कभी कालांतरमें बनजावे, उन्हीं बातको शास्त्रोंमें आश्चर्य कारक अच्छेरा रूप कहते हैं। इसलिये जिसबातको अच्छेरा कह दिया, उस बातमें अन्य शास्त्र प्रमाणकी मर्यादा बाधक

[६९]

नहीं हो सकती। इसी तरहसे भगवानके भी देवानंदा माता तथा त्रिशलामाता दोनोंका गर्भकाल मिलकर ९ महीने और ऊपर ७॥ दिन मानते हैं, मगर देवानंदाके गर्भमें आनेको शास्त्रकारोंने अच्छेरा कहा है। और ८२ दिन गये बाद त्रिशलाके गर्भमें आनेको तीर्थकर पनेके भवमें गिना है, इसलिये देवानंदाके गर्भमें आये तब च्यवन कल्याणक के सर्वकार्य नहीं हुए, परंतु त्रिशलाके गर्भमें आये तबही च्यवनकल्याणकके सर्व कार्य हुए हैं। तो भी देवानंदाके गर्भमें भगवान आये तब माता ने १४ महास्वप्न देखे, तथा ८२ दिनतक वहां विश्रामलिया और शरीर-इन्द्रिय-पर्याप्ति देवानंदामाताके शरीरसे बने हैं। इसलिये देवानंदाके गर्भमें आनेको भी भगवानके प्रथम च्यवनरूप कल्याणक पना मानते हैं। और जैसे-मारवाड, गुजरात, दक्षिण, पूर्व चंगरह देशोंमें पुत्रको दत्तक [गोद] लेनेमें आता है, उनके पहिलेके मातापिता अलगहोते हैं और पीछेपालने पोषनेवाले दूसरे मातापिता अलगहोते हैं, इसलिये उनके दो माता और दो पिता कहनेमें कोई दोष नहीं आता, मगर नाम पीछेवालाका चलता है। तैसेही भगवानके भी देवानंदाके गर्भसे ८२ दिन गये बाद आश्चर्यरूप त्रिशलाके गर्भमें आना पडा, उससे दो माता तथा दो पिता और दो च्यवन कल्याणक माननेमें आते हैं। इसलिये दोनों माताओंका गर्भकाल मिलकर ९ महीने और ७॥ दिन हुए हैं, तो भी दो च्यवन कल्याणक माननेमें कोई भी शास्त्र बाधा नहीं आ सकती और कोई कुयुक्ति व वितर्क भी बाधकन ही हो सकती, इस बातको विशेष तत्त्वज्ञान स्वयंविचार सकते हैं।

इन सर्वबातोंका विशेषनिर्णय ऊपरके भूमिकाके लेखमें और इस ग्रंथमें अच्छीतरहसे सर्व शंकाओंका निवारणपूर्वक खुलासा हो चुका है, यहां तो उसका संक्षिप्तसार बतलाया है, और विशेष निर्णय करनेकी अभिलाषावाले तत्त्वसारग्रहण करनेवाले पाठकगण इस ग्रंथको संपूर्ण वांचेगे तो सर्वबातोंका खुलासा अच्छी तरहसे होजावेगा

विवादवाले विषयों संबंधी अभिप्राय.

तपगच्छके श्रीमान् विजयधर्मसूरिजीके शिष्य श्रीमान् रत्न-विजयजीने विवादवाले विषयों संबंधी पौषशुदी ३ बुधवार, श्रीबीरनिर्वाण संवत् २४४३ के जैन शासन पत्रके पृष्ठ ५८८ में श्रीपार्श्वनाथ-स्वामीकी परंपरासंबंधी उपदेशगच्छ (कवलागच्छ) की हकीकत छपवाया है, उसका थोड़ासा उतारा यहांपर बतलाते हैं।

[૭૦]

“શ્રીરત્નપ્રભસૂરિજીકૃત સામાચારીમાં લખ્યું છે કે, પુષ્પવતી થયા-
 વાદ સ્ત્રીને પૂજા નહીં કરવી. આંબિલમાં ૨-૩ દ્રવ્ય કલ્પે. તથા દેવ-
 ગુપ્તસૂરિજીકૃત કલ્પસૂત્રનો ટીકામાં ૬ કલ્યાણિક લક્ષ્યાં છે, પજોસ-
 ના ૫૦ દિવસે કરવા સ્ત્યાદિ ” તથા “ વીર પ્રભુના ૨૮ ભવ લક્ષ્યા
 છે, સુધર્મા, જંબુ, પ્રભવ, સિંજંભવ ૫ ચારના ૮૪ શાસ્ત્રા, ૪૫ ગણ, ૮
 કુલ થયા. આ સામાચારી તથા કલ્પ ટીકા હાલનાં ગચ્છોંથી ઘણી
 પ્રાચીન બનેલી છે, પ્રાચીન સમયથી ૬ કલ્યાણિક, સ્ત્રી પૂજા નિષેધ
 ધિગેરે પ્રવૃત્તિઓ ચાલી આવી છે, જિનદત્તસૂરિજી, જિનવલ્લભસૂરિજી
 ધિગેરાને લોકો છાલી નિંદે છે, નવું કોઈપ કાર્ય નથી. પજોષણ જે-
 વા વતિરાગ પર્વમાં કલ્પસૂત્રના માંગલિક વ્યાખ્યાનમાં ચતુર્વિધ
 શ્રીસંઘમાં અકારણ કલહ કરી જૈનભાઈયોનાં અંતકરણ દુભાવી ધ-
 મની નિંદા કરાવી વર્ષોવર્ષ અને એ વાતને ‘ અમૂતદમ્ભોવેચ્ચિ ’ ક-
 રીને કિંતુના કલાસમાં દાખલ કરવી, એ કોઈ રીતે ઇચ્છવા યોગ્ય
 નથી, શાસન પ્રેમી મહાશયો આ વાત બરાબર સમજી ગયા હશે,
 [અયં નિજપરોવેત્તિ, ગણનાલઘુ ચેતસા । ઉદાર ચરિતાનાં તુ, વસુધૈવ
 કુટુંબકમ્ ॥૧॥] આમા ‘ વસુધૈવ કુટુંબકં ’ એ વાક્ય અત્યંત શ્રેષ્ઠ છે
 પણ અને બદલે ‘ સર્વે ગચ્છ કુટુંબકં ’ એવું બનો, એજ પ્રાર્થના, યાચના
 અને સલાહ ” યહીલેખ ઉસીઅરસેમે જૈનપત્રમેમી પ્રકાશિત હોગયાહૈ
 ઔરમીજેઠવદિંબુધવાર વીર સં૦૨૪૪૪ કે જૈનશાસનપત્રકેપૃષ્ઠ૧૬૮
 મેં શ્રીરત્નવિજયજીને પર્યુષણમેં સમભાવરચ્છનેસંબંધી લેખ છપવાયા-
 થા, ઉસમેસે થોડાસાબતલતેહૈ. “દરેકગચ્છનીપટ્ટાવલીજુઓ, તેમાંપર
 સ્પર પઠનપાઠન સાથે રહેતા, વંદનાદિ વ્યવહાર કરતા, વિનયમૂલ ધ-
 મની પુષ્ટિ કરનારાહતા, આજે વિરોધભાવ કરનારા બીકનથીરાખતા.
 ચરતરગચ્છના આચાર્યોને સત્કારઆપનારા તપગચ્છના સાધુઓહતા
 અને તપગચ્છના આચાર્યોનેં બહુમાન આપનારા ચરતરગચ્છના સાધુઓ
 હતા, તપગચ્છનાં જેવા પરમ પ્રભાવિક પુરુષો થયાં છે. તેવાજ ચરતર
 ગચ્છમાં પરમ પ્રભાવિક પુરુષો થયા છે. જિનદત્તસૂરિજી, જિનકુશલ
 સૂરિજી જેણે સવાલાશનવા જૈનો બનાવ્યા, હજારો રાજા મહારાજાઓનેં
 જૈન ધર્મ અંગિકાર કરાવ્યો, હજારો ક્ષત્રીયોનેં ઓસવાલ બનાવ્યા,
 જિનચંદ્રસૂરિ, જિનહર્ષસૂરિ જિનપ્રભસૂરિ આદિ અનેક પ્રભાવિક પુરુષો
 થયા. તેવા મહા પુરુષોના અવર્ણશબ્દ બોલવા, આવતે ભવે જીમ પામ
 વી મુશ્કિલ છે. ઉપકારી નો ઉપકાર રદી કરવો મહા મયંકર પાપ
 છે, એક જાસ મુહો તપાશોકે આજે સાધુઓ વચ્ચાણમાં ટીકાઓ

[७१]

वांचेछे तथा चरित्रोनां चरित्रो वांचेछे, ग्रंथो वांचेछे ते घणेभागे खरतर गच्छना बनावेला ग्रंथो छे, परस्पर गच्छवालाओ वांचे छे सर्व गच्छवालाओ श्रद्धाथी सांभले छे ' पुरुष विश्वासे वचन विश्वास' जेना बनावेला पुस्तको हाथमां लई सन्मुख धरी वांचो छे, अने मोढेथी तेज आचार्योनी बद बोई कराय. आजे दादा साहेबने मानवा वाला चरण पादुकाना दर्शन करनारा तपगच्छवाला हजारो भाविक भक्तो छे तथा श्री हीरविजयसूरि प्रमुखने माननारा खरतरगच्छना हजारो भाविक भक्तोछे. आधा शंभु मेलामां खाली विक्षेप पेदा करवाथी कोईनुं कल्याण थवानुं नथी " इत्यादि.

देखो-ऊपर मुजब खास तपगच्छके श्रीरत्नविजयजीके लेख पर खूब दीर्घ दृष्टिसे विवेकपूर्वक विचार किया जावे, तो श्रीपार्श्वनाथस्वामिकी परंपराके श्रीदेवगुप्तसूरिजीकृत कल्पसूत्रकी प्राचीन टीका वगैरह शास्त्रानुसार पहिले पूर्वाचार्योंके समयसेही श्रीवीर प्रभुके २८ भव, तथा छ कल्याणक मानने वगैरह बातें प्रचलीतही थी. उन्हीके अनुसार श्रीजिनवल्लभसूरिजी वगैरह महाराजोंने चैत्यवासियोंको हटाते हुए, भव्य जीवोंके सामने विशेषरूपसे प्रकटपने कथन की हैं। परंतु शास्त्रविरुद्ध होकर नवीन प्ररूपणा नहीं की, जिसपरभी आगमप्रमाणोंको उत्थापन करके शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायको समझेबिना अपनी मतिकल्पनासे शास्त्रपाठोंके छोटे छोटे अर्थ करके नवीन छुटे कल्याणककी प्ररूपणा करनेका झूठा दोष लगाते हैं. सो प्रत्यक्षपणे मिथ्याभाषणकरके अपने दूसरे महाव्रतका भंग करना और भोलेजीवोंको उन्मार्गमें गेरना सर्वथा अनुचितहै।

और श्रीजिनवल्लभसूरिजी, श्री जिनदत्तभूरिजी महाराज जैसे शासन प्रभावक परम उपकारी पुरुषोंने, चैत्यवासियोंको उरसूत्रप्ररूपणाके तथा शिथिलाचारके मिथ्यात्वको हटाया, और क्षत्री-ब्राह्मणादि लाखों अन्य दर्शनियोंको प्रतिबोधकर जैनी भावक बनाये, उन्हींकीही वंश परंपरा वाले अभी वर्तमानमेंभी गुजरात, कच्छ, मारवाड, पूर्व, पंजाब, दक्षिणादि देशोंमें लाखों जैनी विद्यमान मौजूद हैं। इसलिये उन महाराजोंने परंपराके हिसाबसे करौंडो जीवोंको सम्यक्संज्ञ प्राप्त कराने संबंधी बड़ा भारी महान् उपकार किया है। तथा विद्या, मंत्र, देवसाहाय, व संयमानुष्ठान-आत्मशक्ति प्रकाशित करके बहुत धडीमारी जैनशासनकी प्रभावना करी. उन महाराजोंके प्रतिबोधे हुए श्रीवक्ताकी वंश परंपरावाले भावकोंसेही, वर्तमानिक

[७२]

सबगच्छवाले बहुतसाधुओंको आहार, पानी, तथा संयम उपकरणोंसे निर्वाह होता है। ऐसे महान् शासन प्रभावक परम उपकारी महाराजोंने पूर्वाचार्योंकी प्रवृत्ति मुजब तथा आगमादि प्राचीन शास्त्रानुसारही सत्य प्ररूपणाकरी है, मगर शास्त्राविरुद्ध होकर नवीन प्ररूपणानहीं करी, जिसपरभी कितनेक पक्षपातीजन उपकारी महाराजोंके उपकारोंको लुपादेते हैं, और छठे कल्याणक प्रकटकरनेकी तथा स्त्रीपूजा निषेधकरनेकी नवीन प्ररूपणाकरनेका झूठा दोष लगाकर अनेक तरहसे निंदा करते हुए आक्षेप करते हैं। उन्हींको परभवमें जीभ मिलना मुश्किल है यह बात तपगच्छवालेही गुणानुरागी मध्यस्थ भावसे लिखते हैं। अर्थात् ऐसे उपकारोंको भूलकर झूठा दोष लगाकर निंदा करनेवाले एकेन्द्रिय होवेंगे, फिर उन्हींको जैनधर्म प्राप्त होना बहुत मुश्किल होवेंगा, संसारमें बहुत काल परिभ्रमण करेंगे, इसलिये भवभिरु आत्मार्यो भव्य जीवोंको संसार परिभ्रमण के हेतुभूत उपकारी पुरुषोंकी झूठी निंदा करके भोलें जीवोंको मिथ्यत्वमें गेरनेरूप अनर्थ करना सर्वथा अनुचित है।

और ऊपरके लेखसे श्रीरत्नविजयजीके लेखमुजब तपगच्छके तथा खरतरगच्छके आपसमें विशेषरूपसे संपर्क की वृद्धि होना चाहिये और कुसंपर्क के कारण भूत पर्युषणामें खंडनमंडनके विवाद वाले विषयोंको सर्वथा त्याग करके संपर्कसे शासन उन्नतिके कार्योंमें कटिबद्ध होना, यही अपने और दूसरे भव्यजीवोंकेभी आत्म कल्याणका हेतु है। ऐसी ही श्रद्धा तथा प्ररूपणा और प्रवृत्तिका शुद्ध हृदयसे व्यवहारकरके उपकारी पुरुषोंकी झूठी निंदा छोड़कर; प्राचीन पूर्वाचार्योंकी परंपरामुजब शास्त्रानुसार आषाढ चौमासीसे ५० दिने दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा पर्वका अराधन करके तथा श्री महावीर स्वामिके च्यवनादि छ कल्याणकोंको आगमानुसार भावपूर्वक मान्य करके भगवान्की आज्ञानुसार धर्मकार्योंसे निज और परका कल्याणकरो, संसार परिभ्रमणके दुःखसे लुटो, और अक्षय सुख प्राप्त करो। यही आत्मिक हृदयकी विशुद्ध प्रेम भावसे आत्महितैषी पाठक गण भव्यजीवोंके प्रति प्रार्थना है। इति शुभम्।

विक्रम संवत् १९७७, प्रथम श्रावण शुदी १३ बुधवार.

हस्ताक्षर - श्रीमान् उपाध्यायजी श्रीसुमतिसागरजी महाराजके लघुशिष्य—मुनि—माणिसागर. जैन धर्मशाला, धुलिया—खानदेश.

श्रीवीतरागाय नमः ।

दूसरे भागकी पीठिका.

इनकोंभी पहिले अवश्यही वांचिये.

अब हम यहांपर दूसरे भागकी पीठिकामें न्यायरत्नजी शांति-विजयजी संबंधी थोड़ासा लिखतेहैं, जिसमें ३ वर्ष पहिले दो भाद्र-पद होनेसे पर्युषणापर्व प्रथम भाद्रपदमें करने या दूसरे भाद्रपदमें, इस विषयकी मुंबईशहरमें चर्चा खूब जोरशोरसे दोनों तरफसे चलीथी, उससमय मैनेभी 'लघु पर्युषणा निर्णय'का प्रथम अंक नामाछोटी सी पुस्तकमें मुख्य २ सर्वबातोंकी शंकाओंका समाधान अच्छीतरह-सेलिखदियाथा. वह पुस्तक एकश्रावकने छपवाकर प्रसिद्ध की थी. उसपर न्यायरत्नजीने उन पुस्तककी शास्त्रानुसार सत्य २ बातोंको ग्रहण तो नहीं करी और मैरे सबलेखोंको अनुक्रमसे पूरेपूरे लिखकर पीछे उनसबका जवाब देनेकीभी ताकत न होनेसे जानबुझकर कुयु-क्तियोंसे अनेकबातें शास्त्रविरुद्ध लिखकर 'पर्युषणापर्वनिर्णय' तथा 'अधिकमासनिर्णय'में प्रकटकी. उसपर मैने उनदोनों पुस्तकोंकी शा-स्त्रविरुद्धबातोंसंबंधी शास्त्रार्थसे सभामें निर्णयकरनेकेलिये न्यायरत्न-जीको जाहिररूपसे छपवाकर सूचना दीथी. वो लेख नीचे मुजबहै.

विज्ञापन, नं० ७

न्यायरत्नजी शांतिविजयजी सावधान ! शास्त्रार्थके
लिये जलदी तैयार हो.

मैने- आपको शहर पुणामें शास्त्रार्थ संबंधी विज्ञापन नंबर १-२-३-४ भेजेथे और वर्तमानिक पर्युषणाकी चर्चासंबंधी आपकी ब-नाई 'पर्युषणापर्वनिर्णय' किताब " शास्त्रकारोंके अभिप्रायविरुद्ध, जिनाह्वा बाहिर और कुयुक्तियोंसे भोले जीवोंको उन्मार्गमें गेरने वाली है," यह सूचना विज्ञापन नंबर पहिलेमें लिखकर, इसका वि-शेष खुलासा मुंबईकी सभामें शास्त्रार्थद्वारा करनेकेलिये आ पकी आ-मंत्रण कियाथा और 'श्रीकच्छी जैन एसोसीयन सभा' नेभी सब मु-निमहाराजोंकी तरह आपकोभी पर्युषणाका निर्णय करनेसंबंधी वि-नतीपत्र भेजाथा, जिसपरभी आपने मुंबईमें शास्त्रार्थकरना मंजूर न

[७४]

किया और दूसरों पर गेरकर मौनही कर बैठे, तथा दूरसेही फिर “अधिकमासनिर्णय” की छोटीसी किताब छपवाकर प्रकटकी. उसके बाद थोड़े रोज पीछे आप मुंबई दादर आये, तब मैंने आपको दोनों किताबों संबंधी शास्त्रार्थ करनेकी सूचना पत्र द्वारा दीथी, उसकी नकल नीचे मुजब है:—

“श्रीदादर मध्ये श्रीमान् न्यायरत्नजी शांतिविजयजी योग्य श्री मुंबई बालकेश्वरसे मुनि-मणिसागरकी तरफसे सूचना.मैंने कलरात्रि-को आपके दादर आनेकासुनाहै,उससेआपको सूचनादेताहूं.कि-आपने “पर्युषणापर्व निर्णय” और “अधिक मास निर्णय” दोनों पुस्तकोंमें बहुत जगह शास्त्रविरुद्ध होकर उत्सूत्र प्ररूपणारूप लिखा है, आपने दोनों पुस्तकोंमें सर्वथा शास्त्रविरुद्ध और कल्पित बातोंकाही संग्रह किया है, इसलिये हम सभामें शास्त्रार्थसे आपकी दोनों पुस्तकों जिनान्नाविरुद्ध सिद्ध करनेको तैयार हैं, शास्त्रार्थ किये बिना आप चले जावेंगे तो झूठे समझे जावेंगे, विशेष फ्या लिखुं, शास्त्रार्थका विज्ञापन नं० १ आपको पहिलेभी भेज चुका हूं, कल दादर आवुंगा आप जाना नहीं. इसका उत्तर अभीही लालबागमें आदमीके साथ पीछा भेजना; मै लालबाग जाताहूं, हस्ताक्षर मुनि-मणिसागर, पौष शुदी १ रविवार, सं० १९७४.” इस मुजबपत्र पौषशुदी१ को आदमी भेजकर आपको पहुंचाया और दूजके दिन खास मै और मुनिश्रीलक्ष्मि मुनिजी, तथा अंचलगच्छीय मुनि दानसागरजी और केवलचंदजी चारोंही ठाणे दादर आये, और शास्त्रार्थ करनेका आपसे-कहा,तब आपनेभी अन्य मुनियोंकीतरह आनंदसागरजीकी आड लेकर दो महीनोंबाद शास्त्रार्थ करनेका कहाथा, सो २ महीनेकी जगह ४ महीने होगये, अब जलदी करो. आनंदसागरजी तो आडी आडी बातोंसे दूसरेका नाम आगे करते हैं. अपना नामसे लिखतेभी डरते हैं, तो सभामें नियमानुसार क्या शास्त्रार्थ करेंगे. और आपने किताबें बनवानेमें किसी आगेवानोंकी व आनंदसारगजी वगैरह मुनियोंकी आड न ली तो फिर उसका खुलासा करनेमें दूसरोंकी आड लेते हो — यही आपका अन्याय समझा जाता है, बालकेश्वरमें जब हमारे गुरुजी महाराजकेसाथ आपकी मुलाकात हुईथी तबभी झगडीया वगैरह तीर्थयात्राको जाकर आये बाद शास्त्रार्थ करनेका मंजूर कियाथा, सो आप यात्राकरके आगये.अब आमने सामने या लेख-द्वारा वा सभामें आपकी इच्छाहो वैसे शास्त्रार्थ करना मंजूर करिये

[७५]

और विशेष सूचनायें विज्ञापन, नंबर ६ से समझ लीजिये। और नियमभी जो आपकी इच्छा हो सो प्रतिज्ञापत्रके साथ १५ दिनके भीतर प्रकट करीये, आनंदसागरजी, विजयधर्मसूरिजी, विद्याविजयजी व न्यायविजयजीकी तरह आड़ी आड़ी बातें निकालकर शास्त्रार्थ करना मंजूर न करेंगे। तो-आपकीभी हार समझी जावेगी। अथवा श्री-कच्छी जैन एसोसीयनकी विनतीके अनुसार, व मैरे विज्ञापनोंके अनुसार यदि आपको मुंबईमें ठहरकर सभामें शास्त्रार्थ करनेमें अनुकूलता न होवे, तो लीजिये चलिये- लेख द्वाराही सही, मगर विज्ञापन नंबर ६ मुजब प्रतिज्ञा वगैरह नियमोंके साथ उत्तर दीजिये। देखो —

न्यायरत्नजी मैरे बनाये 'लघु पर्युषणानिर्णयके प्रथम अंक' के सब लेखोंका न्यायसे पूरेपूरा उत्तर देनेकी आपमें ताकत नहीं है, यदि होती तो उसके पृष्ठ ३-४-५-६-७ और १०में अधिकमासमें सूर्य-चार न होवे, घनस्पति न फूले, वगैरह सुबोधिकाकी ११ बातोंका खुलासा मैंने लिखा था। उन सबको लिखकर अनुक्रमसे पूरा उत्तर क्यों न दिया, यदि भूल गये हो, तो अभीही देवो। और पृष्ठ १७ के अंतके पाठका खुलासामी साथही करो ॥ और मैंने 'लघु पर्युषणा निर्णय' में निशीथचूर्णि और दशवैकालिक बृहद्वृत्तिके पाठसे अधिकमासको कालचूला कहकरकेभी दिनोंकी गिनतीमें लेनेका सिद्धकर दिखाया है, इसलिये दिनोंकी गिनतीमें निषेध नहीं होसकता, देखो-लघुपर्युषणानिर्णयके पृष्ठ २४-२५ ॥ और लौकिक शास्त्रानुसारभी अधिकमासको दिनोंमें गिना है, देखो-लघुपर्युषणानिर्णय के पृष्ठ २८-२९ ॥ और अधिक मासमें मुहूर्त्तवाले शुभकार्य न होवे, उसी तरह चौमासेमें, सिंहस्थमें, गुरु शुक्रके अस्तमें, पौष-चैत्र मलमासमें, क्षयमासमें, वदीपक्षकी १३-१४ और अमावास्या इन तीन क्षीणतिथियोंमें, और वैधृति-गंडांत-व्यतिपात-भद्रा वगैरह कुयोगोंमें; तिथि, वार, नक्षत्र, चंद्रादि बहुत, मास-पक्ष-वर्ष-दिन वगैरह योगोंमेंभी मुहूर्त्तवाले शुभकार्य न होवे, देखो-ज्योतिःशास्त्रे "जंभारिति पुरोहिते हरिगते, सुते-मुकुंदेविभौ । जातेधर्मघने धनशफटयोः क्षीणेकुवारस्तिथिः ॥ अस्ते भार्गव जीघयोः कुदिने, मासाधिके वैधृतौ । गंडांते व्यतिपात विष्टिक शुभं, कार्यं न कार्यं बुधैः ॥ १ ॥" मगर-दान, शील, तप, भाव, सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध वगैरह धर्मकार्य अधिक मासमें भी होसकते हैं, उसी तरह पर्युषणापर्वभी दिन प्रतिबद्ध होनेसे अधिकमासमें करनेमें कोई बाधा नहीं है। देखो लघुपर्युषणा निर्णयके पृष्ठ

[७६]

२७-२८ ॥ और मासवृद्धि होने परभी पर्युषणाके पिछाडी ७० दिन रहनेका किसीभी शास्त्रमें नहीं लिखा, समवायंगका पाठ तो मास वृद्धिके अभावका है, इसलिये अधिकमास होनेपरभी ७० दिन रहनेका कहना शास्त्रकारोंके अभिप्रायविरुद्ध होनेसे मिथ्या है, देखो लघुपर्युषणा निर्णयके पृष्ठ १८-१९-२०-२१ ॥ इसीतरहसे दोनों आषाढ वगैरहका खुलासाभी लघुपर्युषणाके पृष्ठ २५-२६में अच्छी तरहसे दिखला दिया था ॥ जिसपरभी न्यायस्नजी आपने मैरे सब लेखोंका आगे पीछेका संबंध तोड़कर मैरे अभिप्रायके विरुद्ध होकर अधूरे अधूरे लेख, भोलेजीवाँकों दिखलाकर अपनी दोनों किताबोंमें आप धारंवा. र अधिकमहीनेके दिनोंको गिनतीमेंसे उडा देनेकेलिये कोईभी शास्त्रका पाठ बतलाये बिनाही, और लघुपर्युषणाके पृष्ठ २७-२८ का लेखको पूरा बिचारे बिनाही, 'अधिकमासनिर्णय' के दूसरे पृष्ठकी आदिमें आप लिखते हैं, कि- 'अधिकमहीनेमें विवाह सादी वगेरा कामनहीं किये जाते, दीक्षा प्रतिष्ठा वगेरा धार्मिक कामभी अधिकमहीनेमें नहीं किये जाते, फिर पर्युषणापर्व जैसा उमदापर्व अधिकमहीनेमें कैसे किया जाय.' तथा 'पर्युषणापर्व निर्णय' के मुख्य पृष्ठ परभी 'दीक्षा प्रतिष्ठा और दुनियादारीके विवाह सादी वगेरा काम अधिकमहीनेमें नहीं किये जाते, तो फिर पर्युषणापर्व जैसा उमदापर्व कैसे किया जाय' यह दोनों लेख आपके जिनाज्ञाविरुद्ध उत्सूत्र प्ररूपणारूपही हैं. यदि मुहुर्त्तवाले दीक्षा प्रतिष्ठा व संसारी विवाह सादीकी तरह पर्युषणा भी आप मानोगे, तबतो चौमासेमें, तथा १३ महीनों तक सिंहस्थवाले वर्षमेंभी पर्युषणा करनाही नहीं बनेगा, मगर शास्त्रोंमें तो चौमासेमेंही और सिंहस्थवाले वर्षमेंभी वर्षा ऋतुमेंही दिनोंकी गिनती से ५०वें दिन अवश्यही पर्युषणा करना कहा है, मुहुर्त्तवाले विवाह सादी वगैरह लौकिक कार्योंके साथ, बिना मुहुर्त्तवाले लोकोत्तर पर्युषणापर्वका कोईभी संबंधनहीं है. सिंहस्थ, अधिकमास, क्षयमास, गुरुशुकका अस्त, चौमासा, व्यतिपात, भद्रा, और चंद्र व सूर्य ग्रहण वगैरह कोईभी योग पर्युषणा करनेमें बाधक नहीं होसकते, इसलिये आपका उत्सूत्र प्ररूपणका और प्रत्यक्ष अयुक्त व मिथ्यालेखको पीछा खींच लीजिये और मिच्छामिदुकडं प्रकट करिये, नहीं तो सभामें सिद्ध करनेको तैयार हो जाईये ॥ १ ॥ औरभी आपने 'मानव धर्म संहिता' के पृष्ठ ८०० में लिखा है कि "अगर अधिकमास गिनतीमें लिया जाता हो तो पर्युषणापर्व दूसरे वर्ष श्रावणमें और इसतरह अधिकम

[७७]

हीनोके हिसाबसे हमेशां उक्त पर्व फिरते हुए चले जायेगे, जैसे मुसलमानोके ताजिये- हर अधिक मासमें बदलते हैं" यह लेखभी उत्सूत्र प्ररूपणारूपहीहै, क्योंकि जिनेंद्रभगवानने अधिकमहीना आनेपरभी वर्षाऋतुमेंही पर्युषणा करना फरमायाहै,मगर वर्षाऋतु बिना माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाखमें शरदी व धूपकालमें पर्युषणा करना नहीं फरमाया, जिसपरभी आप अधिक महीनेके ३० दिन उडा देनेकेलिये मुसलमानोके ताजियोंके दृष्टांतसे हर अधिक महीनेके हिसाबसे बारोही महीनोंमें [छही ऋतुओंमें] पर्युषणापर्व फिरते हुए चले जानेका बतलाते हो, सो किस शास्त्र प्रमाणसे,उसकाभी पाठ बतलाइये, या आपनी भूलका मिच्छामि दुकडं दीजिये, अथवा सभामें सत्य ठहरनेको तैयार हो जाईये ॥ २ ॥ और भी 'पर्युषणापर्व निर्णय' के मुख्यपृष्ठपर 'अधिकमहीना जिसवर्षमें आवे उसवर्षका नाम अभिवर्द्धित संवत्सर कहते हैं, और वो अभिवर्द्धित संवत्सर तेरह महीनोंका होता है, मगर अधिक महीना कालपुरुषकी चूला यानी चोटी समान कहा इसलिये उसको चातुर्मासिक-वार्षिक और कल्याणिकपर्वके व्रत नियमकी अपेक्षा गिनतीमें नहीं लियाजाता' तथा 'अधिकमास निर्णय' के प्रथम पृष्ठके अंतमें 'अधिक महीना कालपुरुषकी चूला यानी चोटी समानहै,आदमीके शरीरके मापमें चोटीका माप नहीं गिनाजाता, इसतरह अधिक महीना अच्छे काममें नहीं लिया जात' इस लेखसे अधिक मासको केशोंकी चोटी समानकहते हो और गिनतीमें लेना निषेधकरते हो सो भी सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध है, देखो-चोटी तो १०-२० अंगुल, अथवा १-२ हाथ लंबीभी होसकतीहै, व नहींभी होतीहै. और शरीरके मापमें चोटीका कुछभी भाग नहीं लियाजाता, इसीतरह यदि अधिकमासभी चोटी समान गिनतीमें नहीं लिया जाता तो फिर उसको गिनतीमें लेकर १३ महीनोंके, २६ पक्षोंके, ३८३ दिनोंका अभिवर्द्धित संवत्सर क्यों कहा ? देखिये-जैसे पर्वतोंके शिखर और घास एकसमान नहीं है, तथा मंदिरोंके शिखर और घंज एक समाननहींहैं,तैसेही चूला याने शिखर और चोटीएकसमाननहींहै, इसलिये चोटीकहोंगे तो गिनतीमेंनहीं और गिनतीमें लेवोंगे तो चोटी समाननहीं. चोटीकहोंगे तो अभिवर्द्धित संवत्सर कैसे बना सकोंगे ? इसको विचारो, अधिकमासको चोटीसमान कहकर गिनतीमें छोडदेना किसीमी जैनशास्त्रमें नहींकहा, निशीथचूर्णि व दशवैकालिक वृत्तिमें कालचूला याने शिखरकहाहै,

[७८]

और गिनतीमें भी लिया है, देखो लघुपर्युषणाके पृष्ठ २५ में. इसलिये शिखरको चोटी कहना और गिनतीमें छोड़ देना बड़ी भूल है ॥३॥ इसीतरहसे अधिकमहीनेमें धर्म, ध्यान, व्रत, पञ्चस्नान, तप, जप, चौमासी, पर्युषणा, कल्याणकादि धर्म कार्य निषेध करना ॥४॥ वर्तमानिक श्रावण, भाद्रपद, आश्विन बढनेपर भी समवायांग सूत्रवृत्ति कारका अभिप्राय को समझे बिनाही पीछे ७० दिन ठहरनेका आग्रह करना ॥५॥ श्रावण-पौष बढनेपर एक महीनेमें कल्याणिक माननेसे दूसरे महीनेको छुटनेका कहकर अधिकमासके ३० दिन उडावेना ॥ ६ ॥ दो आषाढ होनेपर प्रथम आषाढको कालचूला ठहराना ॥७॥ दूसरे आषाढमें चौमासी करनेसे प्रथम छुट जानेका कहना ॥ ८ ॥ और नवतत्त्व- षट् द्रव्यके स्वरूपकी तरह चंद्र और अमिवर्द्धित दोनों वर्षोंका समानही स्वरूपकहा है, तथा दोनोंसेही मास-पक्ष-तिथि-वर्ष वगैरहका व्यवहार चलता है, तिसपर भी दिनोंको गिनतीके विषयमें दिन प्रतिबद्ध पर्युषणाकी चर्चामें विषयांतर करके मास व क्रतु प्रतिबद्ध कार्योंको दिखलाकर अधिक मासके दिन गिनतीमें छोड़ देना ॥ ९ ॥ अधिकमास आनेसे ५० वें दिन पर्युषणा पर्वकरनेको जैनशास्त्रसे खिलाफ ठहराना ॥१०॥ और पंचाशकके पूर्वापर संबंधवाले संपूर्ण सामान्य पाठको छोड़कर शास्त्रकार महाराजके अभिप्रायको समझेबिना थोडासा अधूरा पाठ भोलेजीवोंको दिखलाकर, वीरप्रभुके विशेषतासे आगमोक्त छ कल्याणकोंका निषेध करना ॥ ११ ॥ और सुबोधिकाकी तरह समयसुंदरोपाध्यायजी कृत-कल्पलतामें खंडन मंडनका विषय संबंधी कुछ भी अधिकार नहीं है. तो भी झूठा दोष आरोप रखना ॥ १२ ॥ इत्यादि अनेक बातें आपकी दोनों किताबोंमें शास्त्रविरुद्ध व प्रत्यक्ष मिथ्या और बालजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेवाली भरीहुई हैं, उसका लेख द्वारा या सभामें निर्णय करनेको तैयार हो जाईये, मगर झूठेको क्या प्रायश्चित देना वगैरह नियम होने चाहिये. वीर निर्वाण २४४४, विक्रमसंवत् १९७५, वैशाख वदी १२, हस्ताक्षर- मुनि-मणिसागर, लालबाग, मुंबई.

उपर मुजब छपाहुआ विश्वापन न्यायरत्नजीको पहुंचाया, मगर उसमें लिखेप्रमाणे सभामें आकर शास्त्रार्थ करनेका मंजूर नहीं किया तथा इन विश्वापनमें बतलाई हुई उत्सूत्र प्ररूपणारूप अपनी भूलोंको सुधारनेका भी प्रकट नहीं किया, और शास्त्रप्रमाणसे साबित करके भी बतला सके नहीं. सर्वथा मौनकर बैठे, तब हमने उनकी हारका विश्वापन छपवाकर प्रकाशित कियाथा, सो नीचे मुजब है:—

[७९]

विज्ञापन, नं० ९

न्यायरत्नजी शांतिविजयजी हार गये !

सत्याग्राही पाठकगणसे निवेदन किया जाता है, कि-न्यायरत्न-जी शांतिविजयजी को पर्युषणा बाबत सभामें शास्त्रार्थ करनेके लिये मैंने विज्ञापन नं० ७ वें में सूचना दी थी, उसमें १५ दिनके भीतर शास्त्रार्थ करना मंजूर न करेंगे, तो आपकी हार समझी जावेगी, यह बात खुलासा लिखी थी, और वैशाख शुदी १० को विज्ञापन नं० ७-८ के साथ १ पत्र भी उनको डाक मारफत रजिष्ट्री द्वारा 'ठाणे' भेजा था, उसमें १५ दिनकी जगह २० दिनका करार लिखा था, उसको आज २२ दिन होगये, तो भी न्यायरत्नजीने शास्त्रार्थ करना मंजूर नहीं किया और वैशाख शुदी १३ को फिर भी दूसरा पत्र भेजा था उसमें हमने ठाणेमें ही शास्त्रार्थ करना मंजूर किया था। उसका भी कुछ भी उत्तर न मिला और लेखद्वारा शास्त्रार्थ शुरू करनेके लिये प्रतिज्ञापत्र व साक्षी वगैरह नियम भी प्रगटनहीं किये। इससे मालूम होता है, कि-न्यायरत्नजीमें न्यायानुसार धर्मवादका शास्त्रार्थ करनेकी सत्यतानहीं है, इसलिये चुप लगाकर बैठे हैं, उससे वो हार गये समझे जाते हैं, पाठकगणको मालूम होनेके लिये दोनों पत्रोंकी नकल यहां बतलाते हैं।

प्रथम पत्रकी नकल "श्रीमान् न्यायरत्नजी शांतिविजयजी, विज्ञापन, नं० ७-८ भेजता हूं, लघुपर्युषणा निर्णयके सत्य सत्य लेख छोड़ दिये, और मेरे अभिप्रायविरुद्ध उलटा उलटा ही लिख मारा, वैसा अब न करना, सबका पूरा उत्तर देना, आजसे १५-२० दिन तकमें, वैशाख शुदी १० सोमवार, हस्ताक्षर मुनि-मणिसागर।"

दूसरे पत्रकी नकल "श्रीठाणा मध्ये न्यायरत्नजी शांतिविजयजी योग्य श्रीमुंबईसे मुनि-मणिसागरकी तरफसे सूचना।

१—आप ठाणेमें शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो, हम ठाणे आनेको भी तैयार हैं, मगर विज्ञापन नं० ६ की ३-४-५ सूचना मुजब नियम मंजूर करो और कल्पसूत्रकी कौन २ प्राचीन टीका आप मानते हो, उत्तर दो, ठाणेकी कोटवालीमें शास्त्रार्थ होगा।

२—शास्त्रार्थ आपका और मैरा है, इसमें मुंबई के सब संघका व आगेवातोंको बीचमें लानेकी कोई जरूरत नहीं है, आप संघको बीचमें लानेका लिखो या कहो यही आपकी कमजोरी है, न सब संघ बीचमें पड़े और न हमारी पोल खुले, ऐसी कपटता छोड़ो,

[८०]

ताकत हो तो मुंबईकी पोलीश चौकी कोटवालीमें शास्त्रार्थ करनेको आवो, दूरसे कागज काले करके मनमानी आड़ीर लंबी चौड़ी झूठीझूठी बातें लिखकर भोलेजीवोंको भ्रमानेका काम नहीं करना.

३-दोनोंको सब लेख सिद्ध करके बतलाने पड़ेंगे. उसमें झूठे को क्या आलोचना लेनी, सो लिखो, वैशाखशुदी १३. ”

न्यायरत्नजी आपकी धर्मवाद करनेकी ताकातहोती तो इतने दिन मौनकरके क्यों बैठे. खैर !!! जैसी आपकी इच्छा. मगर याद रखना सभामें योग्य नियमानुसार शास्त्रार्थ न करना और अपने झूठे पक्षकी बात रखनेके लिये वितंडावाद करना या सामने न आकर साक्षि व प्रतिष्ठा बिनाही दूरसे कागज काले करते रहना और विषयांतर व कुयुक्तियोंसे उत्सृजप्ररूपणाकी आपकी दोनों कीताबें सच्ची बनाना चाहो सो कभी नहीं हो सकेगा, किंतु इसके विपाक भवांतरमें अवश्यही भोगनेपड़ेंगे. मरीचि और जमालिसेभी आपका उत्सृज बहुत ज्यादा है, आत्महित चाहते हो तो हृदयगम करके प्रायश्चित्त लेवो. उससे श्रेय हो. तथास्तु. सं० १९७५ ज्येष्ठ शुदी २ सोमवार हस्ताक्षर-मुनि मणिसागर.

इसप्रकार उपरमुजबलेख प्रकटहोनेसे न्यायरत्नजी 'झूठेहैं इसलिये चुप लगाकर बैठे हैं' इत्यादि बहुत चर्चा होने लगी, तब अपनी झूठी इज्जत रखनेके लिये १ हंडबील छपवाया उसमें लिखाथा कि, 'सभा हुईनहीं शास्त्रार्थ हुआनहीं फिर हारजीत कैसे होसके' इसके जवाबमें हमनेभी विज्ञापन १० वा छपवाकर उनके लेखका अच्छीतरहसे खुलासा कियाथा, वो लेखभी नीचे मुजबहै:—

विज्ञापन, नंबर १०

श्रीतिपगच्छके न्यायरत्नजी शान्तिविजयजीके हारका कारण, और उनकी अधिकमासके शास्त्रार्थकी जाहिर सूचनाका उत्तर.

१-न्यायरत्नजी लिखतेहैं कि, 'सभाहुईनहीं शास्त्रार्थ हुआनहीं फिर हारजीत कैसे होसके' जवाब-आपकी हारका कारण विज्ञापन ७वें में और ९ वें में लिख चुका हूं. उसको पूरेपूरा लिखकर सबका उत्तर क्यों न दिया ? फिरभी देखिये-मैरेविज्ञापन नं. ७ वें के सब लेखोंका पूरेपूरा उत्तर नियत समयपर आप देसकेनहीं १, विज्ञापना ६ मुजब सभाके नियमभी मंजूर किये नहीं २, आजकाल वारंवार मुंबईमें आ-

[८१]

प आना जाना करतेहैं, मगर सभा करनेको खड़े होते नहीं ३, सभामें सत्यग्रहण करनेकी प्रतिज्ञाभी करते नहीं ४, झूठ पक्षवालेको क्या प्रायश्चित्त देना सो भी स्वीकार करते नहीं ५, और श्रीकच्छीजैन एसोसीयन सभाकी विनतीसेभी सभा करनेको आप आते नहीं ६, और लेखीत व्यवहारसेभी शास्त्रार्थ शुरू किया नहीं, ७, इसलिये आपकी हार समझी गई, महाशयजी ! ९, महीनोंसे शास्त्रार्थ करनेके लिये आपसे लिखता हूं, मगर आपतो आड़ी २ बातें बीचमें लाकर शास्त्रार्थ करनेसे दूरही भटकतेहैं, फिर हारमें क्या कसररही. जबतक दूसरी आड़ छोड़कर शास्त्रार्थ करनेको सामने न आवाँगे तबतकही आपकी कम जोरी समझी जावेगी. अभीभी अपनी हार आपको स्वीकार न करना हो, तो, थाणा छोड़कर आगे पधारना नहीं. शास्त्रार्थ करनेको जलदी पधारो. कंठशोष-सुषुप्ति विवाद व धितेंडवादसे कागजकाले करनेकी व कालक्षेप करनेकी और व्यर्थ श्रावकोंके पैसे बरबाद करवानेकी कोई जरूरत नहीं है ।

२- “ शास्त्रार्थ आपका और मेरा है, इसमें मुंबईके सब संघ को व आगेवानोंको बीचमें लानेकी कोई जरूरत नहीं है, आप संघ को बीचमें लानेका लिखो या कहो यही आपकी कमजोरी है, न सब संघ बीचमें पड़े और न हमारी [न्यायरत्नजीकी] पोल खुले, ऐसी कपटता छोड़ो ” इसतरहसे विज्ञापन नं० ९ वें के मेरे पूरे सब लेख को आपने छोड़ दिया और भरे अभिप्राय विरुद्ध होकर आप लिखतेहैं, कि “ शास्त्रार्थ करना और फिर जैन संघकी जरूरत नहीं यह कैसे बन सकेगा ” महाशयजी ! यह आपका लिखना सर्वथा अर्थ का अनर्थ करना है, कौन कहता है जैन संघकी जरूरत नहीं है, मेरे लेखका अभिप्राय तो सिर्फ इतनाही है, कि—मुंबईमें सबगच्छोंका, सब देशोंका, व सब न्यातोंका अलग २ संघ समुदाय होनेसे सब संघ आपके और हमारे शास्त्रार्थके बीचमें पंचरूपसे आगेवान नहीं हो सकता, मगर सत्यासत्यकी परीक्षाके इच्छावालोंको सभामें आनेकी मनाई नहीं, सभामें आना व सत्य ग्रहण करना मुंबईके संघको तो क्या मगर अन्यत्रकेभी सब संघको अधिकार है, और इतनी बड़ी सभामें हजारों आदिमियोंके बीचमें पक्षपाती व अल्प विचार वाले कोईभी किसी तरहका बखेड़ा खड़ा करदेवे, या अपना निजका द्वेषसे आपसमें गड़बड़ करदेवे, तो मुंबईके संघको व आगेवानोंको सुरतके शगडेकी तरह कर्मकथा, धनहानी, शासनदिलना व कुसुंफ वगैरह-

[८२]

प्रपंचमें फँसना पड़े, इस अभिप्रायसे मैंने मुंबईके सब संघको बीच-मे न पडनेका लिखा था, जिसपर आप “संघकी जरूरत नहीं” ऐसा उलटा लिखते हो सो अनुचित है, मुंबईके, व अन्यत्रकेभी सब संघको सभामें आना व शांतिपूर्वक सत्यग्रहण करना, यह खास जरूरत है, इसलिये-सभामें अवश्य पधारना और पक्षपात रहित होकर सत्यग्राही होना चाहिये.

१-और आपभी अपनी वनाई ‘पुरुषणापर्वनिर्णय’के पृष्ठ २२ वें की पंक्ति ४-५-६ में लिखते हैं, कि- “सभामें वादी-प्रतिवादी-समा-दक्ष-इंडनायक और साक्षी ये पांच बातें होना चाहिये. दोनों पक्षवालोंकी रायसे सभा करनेका स्थान और दिन मुकरर करना चाहिये” देखिये-न्यायरतनजी यह आपकेलेख मुजबही हममंजूर करते हैं, अब आपकोभी अपना यह लेख मंजूर हो तो सभा करना मंजूर करो, आपका और हमारा शास्त्रार्थ कबहोंके, यह देखनेको सारी दुनिया उत्सुक हो रही है. जब सभाका दिन मुकरर होगा तब मुंबईके व अन्यजगहकेभी बहुतसे आदमी स्वयं देखनेको आजावेंगे “सभाका २ महीनेका समय होनेसे देशांतकेभी श्रावक सभाका लाभ ले सकेंगे” यह कथन दादर और वालकेश्वरमें आपहीका था, अब आपकेलेख मुजबही साक्षीवगैरहके नाम व अन्य नियमभी मिलकर करने चाहिये, पहिले विज्ञापनमें मैं भी लिख चुका हूँ.

४ आप लिखते हैं कि “संघका मेरेपर आमंत्रण भावे तो मैं सभामें शास्त्रार्थकेलिये आनेको तैयार हूँ” यह आपका लिखना शास्त्रार्थसे भगनेका है, क्योंकि पहिले आपही लिख चुके हो कि स्थान और दिन दोनों मिलकर मुकरर करें, अब संघपर गेरते हो यह न्यायविरुद्ध है, और पहिले कभी राजा महाराजोंकी सभामें शास्त्रार्थ होता था, तबभी वादी प्रतिवादीको संघ तरफसे आमंत्रण हो या न हो, मगर अपना पक्षकी सत्यता दिखलानेको स्वयं राजसभामें जाते थे. या अपने पक्षके संघ अपने विश्वासी गुरुको विनती करता था, मगर सब संघ दोनों पक्षवाले विनती कभी नहीं कर सकते, इसलिये आपको संघकी विनतीकी आवश्यकतानहीं है, स्वयं आना चाहिये, या आपके तपगच्छके संघको आपपर पुराभरोसा [विश्वास] होगा तो वो विनती करेंगे अन्य सब नहीं कर सकते. देखो- ‘आनंदसागरजी वडौदेकी राजसभामें शास्त्रार्थ करनेको तैयार हुए थे, और मुंबईमें भी शास्त्रार्थ करनेका मंजूर किया था तबभी संघकी विनती नहीं मांगी थी, स्वयं आनेको तैयार हुए-

[८३]

थे.मगर अब शास्त्रार्थ क्यों नहींकरते,तो उनकी आत्मा जाने' इतने-परभी आप संघके आमंत्रणका लिखते हो सो भी 'श्रीकच्छीजैन एसोसीयन सभा' ने सर्व जैनश्वेतांबर मुनिमहाराजोंको सभाकरनेकी विनती की थी, सो आमंत्रण हो ही चुका फिर बारंबार क्या? यदि आप मुनिमंडळमें हैं तबतो आपकोभी आमंत्रण होचुका, यदि आप अपनेको भिन्न समझतेहैं तो संघ आमंत्रणभी कैसे कर सकताहै, मैं पहिलेही लिखचुकाहूँ कि ' न सब संघ बीचमें पड़े और न न्यायरत्नजीको शास्त्रार्थ करनापड़े'ऐसी कपटता क्यों रखतेहो,आपके गच्छ-वालोंको आपका भरोसा न होवे, तो वे आपको विनती न करें, अथवा आपकी बात सच्ची मालूम न होवे तो मौनकर जावें,इसमें हम क्याकरें. आप अपनापक्ष सच्चा समझतेहोतो शास्त्रार्थको पधारो. आप दूरदूरसे खंडनमंडनका विवाद चलाते हैं, किताबें छपवाते हैं, तबतो संघसे पूछनेकी दरकार रखतेनहींहैं, फिर उसबातका निर्णय करनेकी अपनेमें ताकत न होनेसे संघकी बात बीचमेंलाते हैं, यहभी एक तरहकी कमजोरी व अन्यायकीही बातहै और यह विवाद तो खास करके मुख्यतासे साधुओंकाही है, श्रावकोंका नहीं.श्रावक तो साधुओंके कहने मुजब पर्युषणापर्वका आराधन करनेवाले हैं,इस-लिये साधुओंकोही मिलकर इसका निर्णय करना चाहिये.

५-पहिले राजा महाराजाओंकी सभामें शास्त्रार्थ होताथा और अभीके भारतक्रेमहाराज लंडनमें हजारों कोशबहुतदूरहैं,उनकी आज्ञाकारिणी और प्रजापालीनी कोर्ट व कोतवाली है, इसलिये वहां सभामें किसी तरहका बखेडा न होनेके लिये और शांतिसे पक्षपात रहित पूरा न्याय होनेके लिये विद्वानोंकी साक्षीपूर्वक शास्त्रार्थ होने में कोई तरहकाभी हरजा नहींहै.यह तो जगतप्रसिद्धही बातहै,कि अदालतमें जो न्यायालय है,उसमें सुलह शांतिसे पूरा न्याय मिलताहै इसलिये न्यायाधीशके समक्ष इन्साफ मिलनेके लिये शास्त्रार्थ करने का हमने लिखा सो न्याय युक्तही है. देखो-पंजाबमें जैनियोंके और-आर्यसमाजियोंके अदालतमेंही शास्त्रार्थ हुआथा उससेही जैनियोंको पूरा न्याय मिला, विजय हुईथी.उसीतरह न्यायसे धर्मवाद करनेको वहां हम बहुत खुशीसे तैयार हैं, अब आपभी जलदी पधारो, हम तो सिर्फ न्यायसे इन्साफ चाहते हैं. वहांभी बहुत आदमी देखनेको आसकते हैं, सचको भय नहीं रहता झूठको भय रहता है.इस लिये वो बीचमें आड़ी २ बातोंसे झूठे २ बहाने बतलाकर किसी तरह-

[८४]

सेभी अपनी इज्जतका बचावकरके शास्त्रार्थकरनेसे भगने चाहताहै।

६- आपकी इच्छा धर्म स्थानमेंही सभा करनेकी हो तो भी हम तैयार हैं, देखो- आपकेही गच्छके आपके बडील आचार्य आनंद सागरजीजोअभी मुंबईमें श्रीगौडीजीकेउपाश्रयमेंहैं, उनके व्याख्यानमें हजारों आदिमियोंकीसभाभरतीहै, वहां आपका और हमारा शास्त्रार्थहोतोभी हममेंजूरहै, मगर ऊपर लिखेमुजबनियमानुसार होनाचाहिये. अथवा मुंबईमें अन्य स्थानभी बहुतहैं, जहां आप लिखे वहांही सही. चालकेश्वरमें हमारे गुरुजी महाराजके पास २-३ श्रावकोंके समक्ष आपने कहाथा, कि- आनंदसागरजी शास्त्रार्थ करेंगे, तो मैं साक्षीरहूंगा और यदि मैं शास्त्रार्थ करूंगातो आनंदसागरजीको साक्षी बनाऊंगा सो यह योगभी आपके बन गया है, अब अपनी प्रतिज्ञासे आपको बदलना उचित नहींहै, और सभादक्ष-दंडनायक वगैरह नियमभी मिलकर जलदी करीयेगा.

७- और आप लिखतेहैं, कि “ पर्युषणापर्व निर्णय, छपनेको नव महीने होगये दरेक बयानका पूरेपूरा उत्तर दीजिये” जबाब-महाशयजी श्रावकोंके विशेष पैसे खर्च न होनेके लिये व किताबें छपवानेसे बहुत वर्षोंतक खंडन मंडनका प्रपंच नहीं चलानेके लियेही आपकी किताबोंका उत्तर सभामें देनेका विचार रख्खा है, सो प्रथम विज्ञापनमें लिखभी चुका हूं. इसलिये ९ महीनेका लिखना आपका अनुचितहै, और श्रीमान् पन्यासजी केशरमुनिजीके बनाये ‘ प्रश्नोत्तर विचार ’ और ‘ हर्षहृदयदर्पण ’ का दूसरा भागके पर्युषणासंबंधी लेख, व ‘ प्रश्नोत्तर मंजूरी ’ के तीन (३) भागके ४००-५०० पृष्ठ छपेको आज ४ वर्ष ऊपर हो चुका है, उनकी प्रत्येक बातका उत्तर आजतक आप कुछभी नहींदेसकते, तो फिर ९ महीने किस हिसाबमें हैं, और मैंरे लघुपर्युषणा निर्णयके सब लेखोंकाभी पूरा उत्तर ११ महीनेहो गये तो भी आजतक आप न दे सके, बल्कि सत्य सत्य लेखोंके पृष्ठकेपृष्ठ और पंक्तियोंकी पंक्तियें छोडकर अधूरा२लेख लिखकर उलटार ही जबाब देतेहैं, यह जबाब नहीं कहा जा सकता, सत्यता तभी मानी जा सकेगा कि पूरे पूरा लेख लिखकर अभिप्राय मुजब बरोबर उत्तर दिया जावे, सो तो आपने अपनी दोनों किताबोंमें कहींभी नहीं किया, और उलट पुलट झूठाझूठाही लिख दिखलायाहै, सो यह युक्तही है सत्यको कौन असत्य बना सकताहै। मगर कुक्तियोंसे बात को अपनी तरफ खींचना अलग बात है। देखिये हमने तो आपकी

[८५]

दोनों किताबोंकी उत्सूत्र प्ररूपणासंबंधी १२ भूलेंतो विज्ञापन नं ७में दिखलादी हैं, और भी बहुत हैं सो सभामें विशेष खुलासा होगा. और७वें विज्ञापन का तो पहिले कुछभी उत्तर आपने नहीं दिया. और नवमेंका देनेलगे, यह भी आपका अन्याय है, और सभामें निर्णय होनेवाला है, जिसपरभी आप अभी किताब द्वारा जवाब मांगते हैं, इससे साबित होताहै, कि शास्त्रार्थ करनेकी आपकी इच्छा नहीं है, अन्यथा ऐसा क्यों लिखते, यदि हो तो कब विचार है, सो लिखो आपकी तीसरी पुस्तककाभी उत्तर उस समय सभामें मिलजावेगा मगर दोनों किताबोंमें जैसी उत्सूत्रता भरी है, वैसी तीसरीमेंभी होगी, तो सभामें सिद्धकरके बतलाना मुश्किलहोगा. और उसकीआलोचना लेनीपडेगी. अधिकमहीनेके दिनोकी गिनती, व आषाढचौमासीसे ५० वें दिन दूसरे श्रावणमें या प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्व करना, तथा श्रीवीरप्रभुके ६ कल्याणक मान्यकरने और श्रावणके सामायिकमें प्रथम करेमिमेंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावहीकरना शास्त्रानुसार होनसे इन बातोंको कोईभी निषेधनहीं करसकता.

विशेष सूचना-गये चौमासेमें हमने सब मुनिमहाराजोंको पर्युषणापर्वका निर्णयकरनेकी सभा करनेकेलिये विनतीपत्रसे आमंत्रण भेजाथा. तथा 'श्रीकच्छाजैन एसोसियन सभा'नेभी सब मुनिमहाराजोंका सभा भरकर वर्षोंवर्षके अधिकमाससंबंधी इस विवादके निर्णय करनेकी विनती कीथी, जिसपरभी कोई सभा करनेको न आये, सबने चुप लगादी. अब आप लोगभी चौमासा वगैरहके बहाने बतलाकर सभा न करोगा, तो फिर आपकीभी हार समझी जावेगी. तथा आपके पक्षके सब मुनियोंकीभी सत्यताकी परीक्षा दुनिया स्वयंकर लेवेगी. और सभा करनेका मंजूर कियेबिना व्यर्थ निष्प्रयोजनके विषयांतरके वितंडावादवाले लंबे चौड़े किसीकेभी लेखका उत्तर आजसे नहीं दिया जावेगा. संवत् १९७५ आषाढ वदी ३ गुरुवार, हस्ताक्षर-मुनि-मणिसागर, मुंबई.

देखिये-ऊपर मुजब विज्ञापन छपवाकर जाहिर कियाथा, तोभी न्यायरत्नजीने शास्त्रार्थ करनेको सभामें आनेका मंजूर किया नहीं. विज्ञापन, ७वेंमें लिखेप्रमाणे, अपनी १२भूलोंको सुधारकर उसका प्रायश्चित्तभीलियानहीं, तथा अनुक्रमसे उनभूलोंको शास्त्रप्रमाणोंसे साबितकरके सत्यठहरासके भीनहीं और हमने शास्त्रानुसार सत्य२भातें बतलायाथा. उन्हींको अंगीकारभी किया नही और अपने पकड़ेहुए झूठे

[८६]

हठको छोडाभी नहीं. यह कितना बडा भारी अभिनिवेशिक मिथ्या-
त्वका आग्रह कहाजावे सो दीर्घदर्शीतत्त्वज्ञ जनस्वयंविचार सकतेहैं.

औरभी न्यायरत्नजीने एक हँडबील तथा ' अधिकमासदर्पण ' नामा छोटीसी एक किताब छपवाया, उनमेंभी विज्ञापन ७ वेंमें जो हमने उनकी १२ भूलें बतलायीथी, उन सब भूलोंका अनुक्रमसे पूरे पूराखुलासाकरनेके बदले १भूलकाभी पूरेपुरा खुलासा करसके नहीं और मास वृद्धिके अभावसे पर्युषणाके बाद ७० दिन रहनेका व दू-सरेआषाढमें चौमासी कार्य करनेका तथा श्रावण-पौषसंबंधी कल्याणक तप वगैरह सब बातोंका स्पष्ट खुलासापूर्वक निर्णय ' लघुपर्युषणा'में और सातवे विज्ञापनमें अच्छीतरहसे हमबतला चुकेहैं, तो भी उन्ही बातोंको बालहठकी तरह बारंवार लिखे करना और स्थानांगसूत्रवृत्ति, निशीथचूर्णि, कल्पसूत्रकी टीकायें आदि बहुत शास्त्रोंमें मास बढे तब पर्युषणाके बाद १०० दिन ठहरनेका कहा है, तथा अधिक महीनेके ३० दिन गिनतीमें लिये हैं, इसलिये अधिक महीना होवे तब ७० दिनकी जगह १०० दिन होवें उसमें कोई दोष नहीं है. मगर पर्युषणापर्व किये बिना ५०वें दिनको उल्लंघन करें तो जिनाज्ञा भंगका दोष कहाहै, इसीलिये ५०दिनकी जगह ८०दिनतो क्या परंतु ५१ दिनभी कभी नहीं होसकते इत्यादि बहुत सत्य २ बातोंको उडा-देनेका उद्यम किया सो सर्वथाअनुचितहै, इनसब बातोंका विशेषनिर्णय ऊपरके भूमिकाके लेखमें और इन ग्रंथमें विस्तार पूर्वक शास्त्रोंके प्रमाणोंसहित अच्छी तरहसे खुलासासे छपचुका है, इसलिये यहांपर फिरसे लिखनेकी कोई आवश्यकता नहींहै, पाठक गण ऊपरके लेखसे सब समझ लेंगे ।

अब हम यहां पर 'खरतरगच्छ समीक्षा' के विषयमें थोडासा लिखतेहैं, न्यायरत्नजी: 'खरतरगच्छ समीक्षा ' नामा किताब छपवाने संबंधी बारंवार जाहेर खबर लिखतेहैं, यह किताब आज लगभग १२--१३ वर्षहुए उनोंने बनायाहै, जब हम संवत् १९६५ को श्री-अंतरिक्ष पार्श्वनाथजी महाराजकीयात्रा करनेकेलिये बराड देशमें गये थे, तब बालापुरमें न्यायरत्नजी हमकोमिलेथे, उससमय उस किताबकी कॉपी उन्हींनेहीखास मेरेको चंचायाथा, तब मैने उस किताबपर महानिशीथ वगैरह कितनेही शास्त्रोंका प्रमाण मांगा, तब न्यायरत्नजी बोले अभीमेरे पास महानिशोथसूत्र वगैरह शास्त्र यहांपर मौजूद नहींहै, फिर कभी आगेदेखाजावेगा, पेसा कहकर उस समय बातको

[८७]

अल दिया. अब वोही किताब छपवाना चाहते हैं, उस किताबमें सामायिक—कल्याणक—पर्युषणा—अभयदेवसूरिजी—तिथि वगैरह बातोंसं. बंधी शास्त्रानुसार सत्य २ बातोंको झूठी ठहरानेके लिये शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्राय विरुद्ध होकर अधूरे २ पाठ लिखकर उन पाठोंके अपनी कल्पना मुजब जान बुझकर खोटे खोटे अर्थ करके कुयुक्तियोंसे उत्सृज प्ररूपणारूप और प्रत्यक्ष मिथ्या बहुतजगह लिखा है, उसका थोडासा नमूना पाठकगणको यहांपर बतलाते हैं, जिसमें प्रथम सामायिक संबंधी लिखते हैं :-

१ - श्रावकके सामायिक करनेकी विधि संबंधी सर्व शास्त्रोंमें पहिले करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करनेका लिखा है, देखो—श्रीजिनदासगणिमहत्तराचार्यजी कृत आवश्यक सूत्रकी चूर्णिमें १, श्रीहरिभद्रसूरिजीकृत बृहत्तत्त्वमें २, तिलकाचार्यजी कृत लघुवृत्तिमें ३, देवगुप्तसूरिजी कृत नवपदप्रकरण वृत्तिमें ४, लक्ष्मीतिलकसूरिजी कृत श्रावकधर्म प्रकरण वृत्तिमें ५, श्रीनवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरिजी कृत पंचाशक सूत्रकी वृत्तिमें ६, विजयसिंहाचार्यजीकृत वंदीतासूत्रकीचूर्णिमें ७, हेमचंद्राचार्यजी कृत योगशास्त्र वृत्तिमें ८, तपगच्छाय देवेंद्रसूरिजी कृत श्राद्धदिनकृत्यसूत्रकीवृत्तिमें ९, कुलमंडनसूरिजी कृत विचारामृत संग्रहमें १०, मानविजयजी कृत धर्मसंग्रह वृत्तिमें ११, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें खास तपगच्छादि सर्व गच्छोंके पूर्वाचार्योंने प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करनेका बतलाया है.

२ - श्रीमान् देवेंद्रसूरिजी कृत श्राद्धदिनकृत्य सूत्रवृत्तिका पाठ यहां पर बतलाता हूँ. सो देखिये :-

“ श्रावकेण गृहे सामायिकं कृतं, ततोऽसौ साधुसमीपे गत्वा किं करोति इत्याह—साधुसाक्षिकं पुनः सामायिकं कृत्वा इयाप्रतिक्रम्यागमनमालोचयेत् । तत आचार्यादीन् वंदित्वा स्वाध्यायं काले चावश्यकं करोति ” इत्यादि

इस पाठमें गुरुपास जाकर करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करके आचार्यादिकोंको घंदनाकरके स्वाध्यायकरना बतलाया है और पीछे अयसर आवे तब छ आवश्यक रूप प्रतिक्रमण करनेकाभी बतलाया है ।

३— श्रीहरिविजयसूरिजीके संतानीय श्रीमानविजयोपाध्यायजीकृत भर्मसंग्रह वृत्तिका पाठभी देखो:-

[८८]

“ साध्वाश्रयंगत्वा साधून्ममस्वह्य सामायिकं करोति, तत्सूत्रं यथा - ‘ करेमिभंते ! सामाह्यं सावज्जं जोगं पच्चख्खामि जाव-साहू पज्जुवासामि, दुविहं ति विहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि, तस्स भंते पडिक्कमामि, निं दामि, गरिहामि, अप्पाणं वो-सिरामि ’ ति, एवं कृतसामायिकं इयांपथिक्याप्रतिक्रामति, पश्चा-दागमनमालोच्य यथा ज्येष्ठमाचार्यादीन्वन्दते, पुनरपि गुरुं वंदित्वा प्रत्युपेक्षितासने निविष्टः शृणोति पठति पृच्छति वा ” इत्यादि

इनपाठमेंभी उपाश्रयमें जाकर साधुमहाराजको वंदना करके पहिले करेमिभंतेका पाठउच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावहीकर के अनुक्रमसे बडील आचार्यादिकोंको वंदनाकर फिर शास्त्र सुने, वांचे या धर्म चर्चाकी बातें गुरुसे पूछता रहे. ऐसा खुलासा लिखाहै.

४- श्री लक्ष्मीतिलकसूरिजीकृत श्रावक धर्म प्रकरण वृत्तिका पाठभी यहांपर बतलाताहूं, सो देखो :—

“ चैत्यालये विधि चैत्ये, स्वनिशांते स्वगृहे, साधुसमिपे, पौषो-ज्ज्ञानादीनां धियते-अस्मिन्निति पौषधं पर्वानुष्ठानं, उपलक्षणत्वात्सर्व धर्मानुष्ठानार्थं शालागृहं; पौषधशाला तत्र वा, तत् सामायिकं कार्यं श्राद्धैः सदा नोभयसंच्यमेवेत्यर्थः । कथं तद्विधिना इत्याह- ‘ खमासमणं दाउं, इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् सामाह्यं मुहप-त्तिं पडिलेहेमिति भणियं, बीयखमासणपुव्वं सामाह्यं ठावित्ति, बुत्तु-खमासमण दाणपुव्वं अध्धावणगत्तो पेच्च मंगलं कट्ठि ता ‘ करेमिमं ते सामाह्यं इच्छाह सामाह्यं सुत्तं भणइ, पच्छा इरियं पडिक्कमइ, इत्यादि

देखिये—इस प्राचीन पाठमेंभी मंदिरमें, अपने गृहमें, साधुपा-स उपाश्रयमें, अथवा पौषधशालामें, जब संसारिक कार्योंसे निवृत्ति होवे तब किसीभी समयमें सामायिक करनेका बतलाया है, सो प-हिले खमासमणसे आज्ञा लेकर सामायिक मुहपतिकापडिलेहण करके फिरभी दो खमासमणसे सामायिक संदिसाहणेका तथा सामायिक ढाणेका आदेशलकर विनयसहित करेमिभंतेका पाठ उच्चारण करके पीछेसे इरियावही करनेका खुलासापूर्वक स्पष्ट बतलाया है ।

५- इसीही तरहसे श्री हरिभद्रसूरिजीने आवश्यकबृहद्वृत्तिमें, श्रीनवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरिजीने पंचाशकवृत्तिमें, श्रीहेमचंद्रा-चार्यजीने योगशास्त्रवृत्तिमें इत्यादि अनेक प्रभावक प्राचीन आचार्यों-ने अनेक शास्त्रोंमें प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछे द्वारे-भाचही करनेका खुलासा पूर्वक स्पष्ट बतलाया है ।

[८९]

६- “ एयमखरं पि इकं, जो न रोपइ सुत्तनिहिठ्ठं । सेसं रोअंतो वि हु, मिच्छादिठ्ठी जमालिच्च ॥१॥ ” इत्यादि शास्त्रीय प्रमाणके इस वाक्यसे सर्वशास्त्रोंकी बातोंपर श्रद्धा रखनेवालाभी यदि शास्त्रोंके एक पद या अक्षरमात्रपरभी अश्रद्धाकरे, तो उसको जमालिकीतरह मिथ्या दृष्टि समझना चाहिये । अब इस जगह श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मारथी सज्जनोंको विचार करना चाहिये, कि—श्रीहरिभद्र-सूरिजी, नवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरिजी, हेमचंद्राचार्यजी, लक्ष्मी-तिलकसूरिजी, देवेंद्रसूरिजी, वगैरह महापुरुषोंके कथन मुजब आवश्यक् बृहद्वृत्ति वगैरह प्रामाणिक व प्राचीन शास्त्रोंके पाठोंसे श्रावकके सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करने संबंधी जिनाज्ञानुसार सत्य बातपर श्रद्धा नहीं रखने वाले, तथा इस सत्य बातकी प्ररूपणाभी नहीं करनेवाले, और उसमुजब श्रावकोंकोभी नहीं करवानेवाले, व इससे सर्वथाविपरीत प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते करवानेका आग्रह करनेवालोंको ऊपरके शास्त्रवाक्य मुजब जिनाज्ञाके आराधक आत्मारथी सम्यग्दृष्टि कैसे कहसकतेहैं, सो आपने गच्छके पक्षपातका दृष्टिरागको और परंपराके आग्रहको छोडकर तत्त्व दृष्टिसे सत्यशोधक पाठकगणको खूब विचार करना चाहिये ।

७- ऊपर मुजब सत्यबातको न्यायरत्नजीने ‘खरतर गच्छ समीक्षा’में सर्वथा उडाा दिया है, और इनसत्य बातकेसर्वथा विरुद्ध होकर सामायिक करनेमें प्रथम इरियावही किये बाद पीछेसे करेमिभंतेका उच्चारणकरनेका ठहरानेके लिये शास्त्रोंके आगे पीछेके संबंधवाले पाठोंको छोडकर बिना संबंधवाले अधूरे २ (थोडे २) पाठ लिखकर अपनी मति कल्पना मुजब खोटे २ अर्थ करके व्यर्थही उत्सूत्रप्ररूपणासे उन्मार्गको पुष्ट किया है, उसकाभी यहां पर पाठकगणको निसंदेह होनेकेलिये प्रत्यक्ष प्रमाणसे थोडासा नमूना बतलाता हूं :-

८- श्रीमहानिशीथसूत्रके तीसरे अध्ययनमें उपधान करने संबंधी चैत्यवंदन करनेकेलिये जो पाठ है, सो पहिले दिखलाता हूं, यथा-

“ असुहकम्मक्खयइहा, किंचि आयहियं चिइवंदणाई अणूठ्ठि-इहा, तथात्तयइ चेव उवउसे से भवेज्जा, जयाणं से तयइ उवउसे भवेज्जा, तथा तरुसणं परमेगच्चित्तं समाही हवेइहा, तथाचेव सब्बजगजीवपाणभूयसत्ताणं जहिठ्ठफलसंपत्ती भवेज्जा, ता गोयमा णं अपडिक्कंताप इरियावहियाप नकण्णइ चेवकाजं किंचिइवंदणं सज्जायइहाणाइयंकाउं, इठ्ठफलासायमभिकंखुगाणं, एणं अट्ठेणं गोय-

[९०]

मा एवं बुद्धि, जहाणं ससुत्तथोभयं पंचमंगलं धिरपरिचिभं काउणं तओ इरियावहियं अशीए त्ति. से भयवं कयराए विहिए तं इरिया-वहीयाए अशीए गोयमा जहाणं पंचमंगलं महासुयखंधं. से भयवं-इरियावहीयमहिश्चित्ताणं, तओ किंमहिस्से गोयमा सकत्थयाइयं चे-इयवंदणं विहाणं, णवरं. सकत्थयं एगद्धम बत्तीसाए आयंबिलेहिं इत्यादि ”

इसपाठमें अशुभकर्मोंके क्षयके लिये तथा अपनी आत्माको हित-कारी होवे वैसे चैत्यवंदनादि करने चाहिये, इसमें उपयोगयुक्त हो-नेसे उत्कृष्टचित्तकी समाध्री होती है, इसलिये गमनागमनकी आलो-चनारूप इरियावही किये बिना चैत्यवंदन, स्वाध्याय, ध्यानादिकरना नहीं कल्पता है, अतएव चैत्यवंदनकरनेके लिये पहिले पंचपरमेष्ठि नवकारमंत्रके उपधान वहनकरने चाहिये उसके बाद इरियावही, नमुत्थुणं, अरिहंत चेइयाणं वगैरहके आयंबिल उपवासादि पूर्वक उपधान वहन करने चाहिये.

९ — देखिये ऊपरके पाठमें उपधान वहन करनेके अधिकार में विधिसहित उपयोगयुक्त चैत्यवंदन-स्वाध्याय-ध्यानादिकार्यकरने संबंधी पहिले इरियावही करके पीछेसे चैत्यवंदनादिकरने, ऐसा खु-लासासे बतलाया है. इसलिये ऊपरका पाठ पौषधग्राही उपधान वहन करनेवालों संबंधी है, और पौषध (पौषह) करनेवालोंको तो इरियावही कियेबिना चैत्यवंदन, स्वाध्याय-पठना गुणना, तथा ध्या-नादि नोकरवालीफेरना वगैरह धर्मकार्यकरना नहीं कल्पता है, इसलि-ये यह बात तो अभीवर्तमानमें भी सर्वगच्छवाले उसी मुजब करते हैं. मगर इस पाठमें सामायिकके अधिकारमें, प्रथम इरियावही किये बाद पीछेसे करेमिभंतेका उच्चारणकरने संबंधी कुछभी अधिकारका गंधभी नहीं है. जिसपर भी सूत्रकारमहाराजोंके अभिप्रायविरुद्ध होकर आगे पीछेके उपधानके संबंधवाले संपूर्णपाठको छोड़कर बीचमेंसे थोडासा अधूरापाठ लिखकर उसकाभी अपना मनमाना अर्थकरके सामायिककरने संबंधी प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते ठहराना. सो ऊपर मुजब आवश्यक चूर्णि वगैरह अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध होनेसे सर्वथा उत्सूत्रप्ररूपणारूपही है ।

१० — श्रीवशैकालिकसूत्रकी दूसरीचूलिकाकी ७ वीं गाथा-की टीकामें साधुके गमनागमनादि कारणसे इरियावही करनेका कहा है, सो पाठभी यहांपर बतलाता है. देखो :—

[९१]

“अभीक्षणं, पुनः पुनः पुष्टकारणमावे, निर्विकृतिकश्च, निर्गत विकृतिपरिभोगश्च भवेत् । अनेनपरिभोगोचितविकृतिनामप्यकारणे प्रतिषेधमाह- तथा अभीक्षणं, गमनागमनादिषु, विकृति परिभोगेऽपि चान्ये किमित्याह- कायोत्सर्गकारी भवेत्, ईर्यापथिकीप्रतिक्रमणमकृत्वा न किञ्चिदन्यत् कुर्यादशुद्धतापत्तेरितिभावः । तथा स्वाध्याययोगे, वाचनाद्युपचारव्यापार आचामाम्लादौ पयतोऽतिशय यत्नपरो भवेत्तथैव तस्य फलवत्त्वाद्विपर्यय उन्मादादि दोष प्रसंगादिति ”

ऊपरके पाठमें साधुओंके उपदेशके अधिकारमें—दुध—दही—घी—शक्कर—एकान् वगैरह विगयोंका त्याग करनेका बतलाया है, तथा आहार पानी—देव दर्शन या ठले—भात्रे वगैरह गमनागमनादि कार्योंसे इरियावही किये बिना कायोत्सर्गकरना, स्वाध्याय—सूत्रपाठपढ़ना गुणना, ध्यानादि करना नहीं कल्पे, इस लिये पहिले इरियावही करके पीछे सूत्र वाचनादि कार्योंमें प्रवृत्ति करें, इत्यादि.

११ — इस ऊपरके पाठमेंभी साधुओंके गमनागमनादिकारणसे व स्वाध्यायादि करनेकेलिये इरियावहीकरनेका बतलाया है, मगर श्रावकके सामायिक करनेसंबंधी प्रथम इरियावहीकरके पीछे करेमि, भंते उच्चारण करनेका नहीं बतलाया है, जिसपरभी पंचमहाव्रतधारी स, र्व विरति साधुओंके इरियावहीके पाठका आगे पीछेका संबंध छोड़ कर अधूरे पाठसे सामायिकका अर्थ करना बड़ी भूल है.

१२— इसी तरहसे किसी जगह पौषधसंबंधी इरियावहीके, किसी जगह उपधानसंबंधी इरियावहीके, किसी जगह साधुओंके गमनागमन संबंधी इरियावहीके, किसी जगह प्रतिक्रमण संबंधी इरियावहीके, किसी जगह चैत्यवदन—स्वाध्याय—ध्यानसंबंधी इरियावहीके अक्षरोंको देखकर, उन जगहके प्रसंगसंबंधी शास्त्रकारोंके अभिप्रायको समझे बिनाही अथवा तो अपना झूठा आग्रह स्थापन करनेके लिये आवश्यक श्रुति—बृहद्बृत्ति—लघुबृत्ति—श्रावकधर्मप्रकरणवृत्ति वगैरह अनेकशास्त्रपाठोंके विरुद्ध होकर पौषधादिसंबंधी इरियावहीको सामायिकमें जोड़कर प्रथम इरियावही पीछे करेमि भंते के पाठका उच्चारण करनेका ठहराना सो सर्वथा प्रकारसे अज्ञानतासे या जानबुझकरके उत्सृज्यप्रकरणारूपही मात्तूम होता है.

देखिये— सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमि भंते स्थापन करनेवालोंको अनेक दोषोंकी प्राप्ति होती है, सोही दिखाता हूँ :-

१३ - जैनाचार्योंकी शास्त्ररचना अविस्वादी पूर्वापर विरोध

[९२]

रहित होती है, तथा पूर्वापर विरोधी विसंवादीको शास्त्रोंमें मिथ्या-
त्वी कहा है, और श्री हरिभद्रसूरिजी महाराजने आवश्यक बृहदवृ-
त्तिमें तथा श्रावकप्रज्ञतिवृत्तिमें प्रथम करोमिभंतेका उच्चारण किये-
बाद पीछेसे इरियावही करनेका साफ खुलासा लिखाहै, और महा-
निशीथ सूत्रका उद्धारभी इन्हीं महाराजने किया है, इसलिये महा-
निशीथ सूत्रके पाठसे प्रथम इरियावही पीछे करोमिभंते स्थापन कर-
नेमें आवें, तो श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजको विसंवादी कथनरूप मि-
थ्यात्वके दोष आनेकी आपत्ति आतीहै, इसलिये आवश्यक वृत्ति आ-
दिके विरुद्ध होकर इन्हीं महाराजके नामसे महानिशीथसूत्रके पाठसे
प्रथम इरियावही पीछे करोमिभंते स्थापन करनासो पूर्वापर विसंवाद-
रूप मिथ्यात्वका कारण होनेसे सर्वथा अनुचित है।

१४- महानिशीथसूत्रके पाठसे ' इरियावही किये बिना कुछभी
धर्म कार्य नहीं कल्पे, ' इसलिये सर्व धर्मकार्य इरियावही करके ही
करने चाहिये, ऐसा एकांत आग्रह करेंगे तो भी नहीं बन सकेगा,
क्योंकि देखो-देव दर्शनको या गुरु वंदनको जाती वस्तु १, जिनप्रति-
माको या गुरुको देखतेही नमस्काररूप वंदना करती वस्तु २, तीर्थ-
यात्राको जाती वस्तु ३, नवकारसी, पोरशी, उपवासादि पंचचरखा-
ण करती वस्तु ४, मंदिरमें जघन्य चैत्यवंदन करती वस्तु ५, गुरुम
हाराजको आहारवस्त्रादि बहोराती वस्तु ६, इत्यादि अनेक धर्मकार्य इ-
रियावही कियेबिनाभी प्रत्यक्षपने करनेमें आते हैं, इसलिये इरियावही
किये बिना कुछभी धर्मकार्य नहीं करना, ऐसा एकांत आग्रह करना
सो सर्वथा विवेक बिनाकाही मालूम होताहै, इसलिये कौन २ कार्यो-
में पहिले इरियावही करना, कौन २ कार्योमें पीछेसे इरियावही क-
रना, व कौन २ कार्य इरियावही किये बिनाभी हो सकतेहैं, इन बातों
का गुरुगम्यतासे भेद समझे बिना सामायिकमें प्रथम इरियावही क-
रनेका एकांत आग्रह करना सो अज्ञानतासे सर्वथा शास्त्र विरुद्धहै.

१५-औरभीदेखिये-स्वाध्याय, ध्यानादिमें प्रथम इरियावही कर-
नाकहाहै, उसमें आदि पदसे सामायिकमेंभी प्रथम इरियावही करने-
का आग्रहकियाजावे, तो भी सर्वथाअनुचितहै, क्योंकि, देखो-श्रीस्वरत-
रगच्छनायक श्रीनवांगीवृत्तिकार अमयदेवसूरिजी, तथा कलिकाल
सर्वज्ञ विरुद्ध धारक श्रीहेमचंद्राचार्यजी और खास तपगच्छनायक
श्रीदेवेंद्रसूरिजीआदि पूर्वाचार्योंने महानिशीथसूत्र अवश्यही देखाथा
तथा स्वाध्यायध्यान आदिपदका अर्थभी अच्छीतरहसे जाननेवालेथे

[९३]

तोभी सामायिकमें प्रथम इरियावही करनेका नहीं कहते हुए अपने २ बनाये ग्रंथोंमें सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करनेकाखुलासा लिखगयेहैं, उसका भावार्थ समझोबिनाही उन महाराजोंके विरुद्ध होकर सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करतेहैं, सो उन महाराजोंके वचन उत्थापनरूप और उन महाराजोंके विरुद्ध प्ररूपणा करनेरूप दोषके भागी होते हैं ।

१६- दशवैकालिकसूत्रकी टीकाके पाठसेभी 'इरियावही किये बिना कोईभी कार्यकरे तो अशुद्ध होताहै', इस बात परसे सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करतेहैं सो भी बड़ीही भूलहै, क्योंकि यह तो जैनसमाजमें प्रसिद्धही बात है, कि-दशवैकालिकमूलसूत्रमें और उसकी टीकामें सर्वजगह साधुओंके आचार-विचार-कर्तव्य संबंधीही अधिकार है, उसमें किसी जगहभी श्रावकके सामायिक वगैरह कायोंसंबंधी कुछभी अधिकारनहींहै, इसलिये साधुओंके गमनागमनसे जाने आनेसे इरियावही करके पीछे स्वाध्याय, ध्यानादिधर्म कार्य करने बतलाये हैं, उसके आगे पीछेके संबंध-वाले याठको छोड़कर अधूरे पाठसे सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करना सर्वथा अनुचित है.

१७- श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजने 'आवश्यकसूत्र'की बड़ी टीकामें तथा श्री उमास्वातिवाचक विरचित 'श्रावकप्रज्ञप्ति' की टीकामेंभी सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही कहना खुलासा लिखा है, और इन्ही महाराजने श्रीदशवैकालिकसूत्रकी टीकाभी बनाया है, इसलिये इन्हीं महाराजके नामसे दशवैकालिकसूत्रकीटीकाके पाठसे प्रथम इरियावही स्थापन करनेसे इन महाराजके कथनमें पूर्वापर विरोधभाव विसंवादरूप दोषकी प्राप्ति होतीहै, इसलिये इनमहाराज के अभिप्राय विरुद्ध होकर अधूरे पाठसे सामायिक संबंधी खोटा अर्थ करके विसंवादका झूठा दोष लगाना बड़ी भूल है. यह महाराजतो विसंवादी नहीं थे. मगर संबंध विरुद्ध आग्रह करनेवालेही प्रत्यक्ष मिथ्या भाषणसे बालजीवोंको उन्मार्गमें गेरनेके दोषी ठहरतेहैं.

१८ - श्रीदेवेंद्रसूरिजी महाराजने 'श्राद्धदिनकृत्य'सूत्रकीवृत्तिमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही खुलासा लिखाहै, तथा धर्मरत्न प्रकरणकी वृत्तिमें तो-वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा व धर्मकथारूप पांचप्रकारकीस्वाध्यायकरने संबंधी अधिकारमें सिर्फ परावर्तनारूप (शास्त्रपाठ पढ़े हुए फिरसे याद करने रूप)स्वाध्याय करनेके

[९४]

लिये इरियावही करनेका बतलाया है, उसका आशय समझे बिनाही अपने गच्छके पूर्वज आचार्य महाराजको भी विसंवादरूप मिथ्यात्वका दोष लगानेका भय नहीं करते हुए सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करते हैं, सो भी बड़ी भूल करते हैं.

१९ - और भी देखो धर्मरत्नप्रकरण वृत्तिमें "इरियं सु पडिक्कंतो कड समइयं" इरियावही पूर्वक स्वाध्याय करें; पसा पाठ है, उसमें समइय 'शब्दकी जगह 'सामाइय' शब्द बनाकर दो मात्राज्यादे अधिक पाठमें प्रक्षेपन करके स्वाध्यायकी जगह सामायिकका अर्थ बदलाते हैं, सो यह भी सर्वथा शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणारूप बड़ी भूल है.

२० - श्री धर्मघोषसूरिजीने 'संघाचारभाष्यवृत्ति' में चैत्यवन्दन संबंधी दशत्रिकके अधिकारमें सातवीं त्रिकमें तीनवार भूमिप्रमार्जन करके इरियावही पूर्वक-चैत्यवन्दन करनेका बतलाया है, उसके भी पूर्वापरका संबंध छोड़कर उसपाठका भावार्थ समझे बिना उसपाठसे भी सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करे मिभंते ठहरते हैं, और इन महाराजके ही गुरु महाराज श्री देवेंद्रसूरिजीने प्रथम करे मिभंते पीछे इरियावही लिखा है, उस यातके विरुद्ध प्ररूपण करनेवाले बताते हैं, सो भी बड़ी भूल है.

२१ - वंदीत्तासूत्रकी टीकाके पाठसे भी सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करे मिभंते ठहराते हैं, सो भी सर्वथा अनुचित है, क्योंकि देखो - वंदीत्तासूत्रकी प्राचीन चूर्णि और श्रावकप्रज्ञप्तिवृत्ति वगैरह अनेक प्राचीन शास्त्रोंमें प्रथम करे मिभंते पीछे इरियावही करनेका खुलासा लिखा है और खास वंदीत्तासूत्रकी टीकामें भी नवमा सामायिक व्रतकी विधिसंबंधी आवश्यकचूर्णि, पंचाशकचूर्णि, योग शास्त्रवृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रानुसार सामायिक करनेकी विधि लिखा है उन्हीं सर्व शास्त्रोंमें भी प्रथम करे मिभंते और पीछे इरियावही लिखा है, इसलिये प्राचीन चूर्णि आदि अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध होकर पूर्वापर विसंवादीरूप विरोधी कथन — एकही विषयमें; एकही ग्रंथमें; कभी नहीं हो सकता है, जिसपर भी एकही विषयमें, एकही ग्रंथमें विसंवादी कथन माननेवाले या कहनेवाले शास्त्रविरुद्ध श्रद्धा रखनेवाले सर्वथा अज्ञानी समझने चाहिये.

२२ - पंचाशकसूत्रकी चूर्णिके पाठसे भी नवम सामायिक व्रतमें प्रथम इरियावही पीछे करे मिभंतेका स्थापन करते हैं, सो भी सर्वथा अनुचित है, क्योंकि इन्हीं चूर्णिमें नवम सामायिक व्रत संबंधी प्रथम

[९५]

करेमिभंतेपीछे इरियावहीकरनेका खुलासालिखा है, जिसपरभी चूर्णिके लिखे सत्य पाठको छुपा देना, और चूर्णिकारने रात्रिपौषध वालोंके लिये ११ वा पौषधव्रत संबंधी इरियावही लिखी है, उसको चूर्णिकारके अभिप्राय विरुद्ध होकर ९ वें सामायिक व्रतमें भोले जीवोंको दिखलाना, सो मायावृत्तिरूपप्रपंचसे प्रत्यक्ष झूठबोलकर शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करना संसारवृद्धिका कारण होनेसे आत्मार्थियोंको कदापि योग्यनहीं है। यहांपर लडकोंके खेल जैसी प्रपंचताकी बातें नहीं हैं, किंतु सर्वज्ञ शासनकी बातें हैं, इसलिये एकही ग्रंथमें, एकही विषयमें, एकही पूर्वाचार्यको पूर्वापर विरोधी विसंवादी कथन करने वाले ठहराना, सो बड़ी अज्ञानता है। अथवा जान बुझकर पूर्वाचार्योंकी आशातनाका और शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणाका भय न रखकर इस लोककी पूजा मानताकेलिये अपना झूठा आग्रह स्थापन करनेकेलिये व्यर्थही ऐसी शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करते होंगे, सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने। हम इस बातमें विशेष कुछभी नहीं कहसकते हैं।

२३-इसीतरहसे सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते कहनेका स्थापनकरनेवाले न्यायरत्नजीआदिको पूर्वाचार्योंको विसंवादीके झूठे दोषलगानेके हेतुभूत तथा अनेक शास्त्रोंके विरुद्धप्ररूपणा करनेरूप अनेक दोषोंके भागी होनापडता है, और पूर्वाचार्योंको झूठा दोष लगानेकी आशातनासे तथा शास्त्रकारोंके अभिप्रायविरुद्धप्ररूपणा करनेसे आपने व अपने पक्षके आग्रहकरनेवाले बालजीवोंकेभी संसारवृद्धिका कारणरूप महान् अनर्थ होता है, यही सर्व बातें न्यायरत्नजीने 'खरतरगच्छ समीक्षा' में सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावहीकरनेकी आवश्यक चूर्ण, वृहद्वृत्ति वगैरह शास्त्रानुसार सत्य बातको निषेध करनेके लिये और प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेके लिये महानिशीथ-दशवैकालिक सूत्रकी टीकाकारवगैरह बहुतशास्त्रकारमहाराजोंके अभिप्राय विरुद्ध होकर अधूरेपाठोंसे उलटासंबंध लगाकर उत्सूत्रप्ररूपणासे बड़ा अनर्थ किया है, उसका नमूनारूप थोडासा सामायिक संबंधी पाठकमण को निसंदेह होनेकेलिये हमने ऊपरमें इतना लिखा है। मगर इस प्रकरणका विशेष खुलासा पूर्वक इसीही "बृहत्पुरुषण निर्णय" ग्रंथके पृष्ठ ३०९ से ३२२ तक अच्छी तरहसे छप चुका है, वहांसे विशेष जान लेना और "आत्मनमोच्छेदनभानुः" नामा ग्रंथमेंभी विस्तारपूर्वक शास्त्रोंके पाठोंसहित निर्णय हमारी तरफसे छप चुका है, इस लिये

[१६]

यहांपर फिरसे ज्यादा विशेष लिखनेकी कोई जरूरत नहीं है ।

२४-अब सत्यप्रिय पाठकगणसे हमारा इतनाही कहनाहै, कि-महानिशीथसूत्रके उपधान चैत्यचंदनसंबंधी इरियावहीके अधूरे पाठसे, तथा दशवैकालिककी टीकाके साधुओंके स्वाध्याय करनेसंबंधी इरियावहीके अधूरे पाठसे, श्रीहरिभद्रसूरिजीमहाराजके अभिप्राय विरुद्ध होकर सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करतेहैं, और इन्हीं महाराजने जिनाज्ञानुसारही प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही खुलासा पूर्वक आवश्यकसूत्रकी बड़ी टीकामें लिखा है, उसको निषेध करतेहैं, या उसपर अविश्वास लाकर कुयुक्तियोंसे भोलेंजीवोंकोभी उस बातपर शंकाशील बनातेहैं, वो लोग जिनाज्ञा विरुद्ध होकर उत्सूत्रप्ररूपणा करतेहुए अपने सभ्यकृत्वकोमलिन करतेहैं.

२५-और किसीभी प्राचीन पूर्वाचार्यमहाराजनेअपने बनाये किसीभी ग्रंथमें, किसी जगहभी ९ वें सामायिकव्रतसंबंधी प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते नहींलिखा.मगर खास तपगच्छादि सर्व गच्छोंके सर्वपूर्वाचार्योंने प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही स्पष्ट खुलासा पूर्वक लिखा है, इसलिये इस बातमें पाठांतरसे पहिले इरियावहीभी नहीं कह सकते, जिसपरभी पाठांतरके नामसे पहिले इरियावही स्थापन करें सो भी शास्त्रविरुद्ध होनेसे प्रत्यक्ष मिथ्या है.

२६- और कितनेक अज्ञानी लोग अपनी मति कल्पनासे कहते हैं, कि- पहिले इरियावही करें तो क्या, और पीछे करें तो भी क्या, किसी तरहसे सामायिक तो करनाहै, ऐसा मिश्र भाषण करने वालेभी सर्वथा शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करते हैं, उन लोगोंको सामायिकमें प्रथम करेमिभंते कहनेसंबंधी शास्त्रकारोंके गंभीर अभिप्रायको समझमें नहीं आया मालूम होताहै, नहीं तो ऐसा शास्त्रविरुद्ध मिश्र भाषण कभी नहीं करते. क्योंकि देखो-सर्व शास्त्रोंमें स्वाध्याय, ध्यान, प्रतिक्रमण, पौषधादिधर्मकार्योंमें पहिले इरियावही कहाहै, और सामायिकमें करेमिभंते पहिले कहे बाद पीछेसे इरियावही करनेका कहा है, सो इसमें गुरुगम्यताका अतीव गंभीरार्थवाला कुछभी रहस्य होना चाहिये, नहीं तो सर्व शास्त्रोंमें महान् शासन प्रभावक श्रीहरिभद्रसूरिजी, नवांगीवृत्तिकार अभयदेवसूरिजी, कलिकाल सर्वज्ञविरुद्धधारक हेमचंद्राचार्यजीआदिगीताथेमहाराज प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही कभी नहीं लिखते. इसलिये इनमहाराजोंके गंभीरआशयको समझोबिना इनसे विरुद्ध प्ररूपणा करना बड़ी भूलहै.

[९७]

२७- कितनेक लोग अपना असत्य आग्रह छोड़ सकते नहीं, व सत्य बात ग्रहण भी कर सकते नहीं, इसलिये मोले जीवों को अपने पक्ष में लाने के लिये जान बुझकर कुतर्क करते हैं, कि, श्री आवश्यक सूत्र की चूर्णि-बृहद्वृत्ति- लघुवृत्ति-पंचाशकचूर्णि-वृत्ति-श्राद्धदिनकृत्यसू-त्रवृत्ति-श्रावकधर्म प्रकरणवृत्ति-नवपद प्रकरणवृत्ति-योगशास्त्र वृ-त्ति वगैरह शास्त्रों में सामायिक में पहिले करेमिभंतेका उच्चारण कर-के पीछे से इरियावही करनेका कहा है, सो वह शास्त्र पाठ स्वाध्याय संबंधी हैं ? या चैत्यवंदन-गुरुवंदन संबंधी हैं ? या आलोचना संबंधी हैं ? अथवा सामायिक संबंधी हैं ? इसकी हमको अच्छी तरह से मालूम नहीं पड़ती, उससे वह शास्त्र पाठ सामायिक संबंधी हैं, ऐसा निश्च-य नहीं हो सकता. इसलिये उन शास्त्रपाठों के अनुसार सामायिक में पहि-ले करेमिभंते पीछे इरियावही कैसे किया जावे ? ऐसी २ कुतर्क कर-ते हैं, सो सर्वथा झूठी ही हैं, क्योंकि ऊपरके सर्व शास्त्रपाठों में श्रावकके १२ व्रतों में ९ में सामायिकव्रत संबंधी सामायिक करनेके लिये ही सा-मायिक की विधिसंबंधी खुलासापूर्वक प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछे से इरियावही करनेका लिखा है, उसके विषय में सत्य ग्रहण करनेवाले आत्माधीन भव्य जीवों को निस्संदेह होनेके लिये थोड़े-से शास्त्रों के पाठ भी यहां पर बतलाते हैं.

२८- श्री यशोदेव सूरिजी महाराज कृत श्री पंचाशक सूत्र की चूर्णिका पाठ देखो—

“तिविद्वेण साहुणो णमिऊण सामाइयं करेइ ‘ करेमिभंते ! सा-माइयं’ एवमाइ उच्चरिऊण, तउ पच्छा इरियावहीयाप पडिक्कमइ, आलोपत्ता, वंदित्ता आयरियादि, जहा- रायणिप, पुणरवि गुरुं वं-दित्ता, पडिलेहिच्चा णिविडो पुरुच्छति पढति वा ” इत्यादि.

२९- श्रीचंद्रगच्छीय श्रीविजयसिंहाचार्यजी कृत श्रावकप्रति-क्रमण [वंदित्तासूत्र] की चूर्णिका पाठ भी देखो—

“वंदिऊण त्थोभ वंदणेण गुरुं संदिसाविऊण सामाइय दंडक-मणु कट्टिय, जहा- ‘ करेमिभंते ! सामाइयं, जाव-अण्णाणं वोसिरा-मि’ तओ इरिअं पडिक्कमिय आगमणं आलोपइ, पच्छा, जहा-जेडुं साहुणो वंदिऊण, पढइ सुणइ वा ” इत्यादि.

३०- श्रीलक्ष्मीतिलकसूरिजीकृत श्रावकधर्मप्रकरणवृत्तिका पाठ यहां पर दिखलाता हूं यथा- “अत्र क्रियमाणं श्राद्धानां सामायिकं नि-ष्पत्युतं निर्दिष्टं तत्स्थानमुपदिशति—

[९८]

चैत्यालये स्वनिशान्ति, साधूनामतिकेऽपि वा ॥

कार्यं पौषधशालायां, श्राद्धैस्तद्विधिना सदा ॥ १ ॥

व्याख्या- चैत्यालये विधिचैत्ये, स्वनिशान्ति स्वगृहेऽपि विजन-
स्थान इत्यर्थः । साधुसमीपे, पौषो ज्ञानादीनां धीयतेऽनेनेति पौषधं
पर्वानुष्ठानं उपलक्षणात् सर्वधर्माऽनुष्ठानार्थं शालागृहं पौषधशाला,
तत्र वा तत् सामायिकं कार्यं श्राद्धैः सदा नोभयसंध्यमेवेत्यर्थः । क-
थंतद्विधिना इत्याह-खमासमणं दाउं इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन्
सामाहयमुहपत्तिं पडिलेहेमिस्ति भणिय, बीय खमासमण पुव्वं मुहप-
त्तिं पडिलेहिय, पुणरवि पढम खमासमणेण सामाहयं संदिसाविय, बी-
य खमासमणपुव्वं सामाहयं ठामि स्ति वुत्तं, खमासमणदाणपुव्वं अ-
द्धाविणय गत्तो पंचमंगलं कट्टित्ता ' करेमि भंते ! सामाहयं सावज्जं
जोगं पच्चख्खामि जाव, नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं मणेणं
घायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निं-
दामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ' स्ति सामाहयं सुत्तं भणति, त-
ओ पच्छा इरियं पडिक्कमति, इत्यादिपूर्वसूरिनिर्दिष्टविधानेन । अत्र च
ईर्यां प्रतिक्रम्यैव सामायिकोच्चारणं यत्केचिदाचक्षते तत्सिद्धांतादनु-
त्तीर्णम्, यत उक्तमावश्यकं चूर्णि-बृहद्बृहत्स्यादौ- यथा " करेमिभंते !
सामाहयं सावज्जं जोगं पच्चख्खामि जाव साह पज्जुवासामि दुविहं
तिविहेणमिति, काउण पच्छा इरियं पडिक्कमइ स्ति " इत्यादि

३१-श्रीपार्श्वनाथस्वामीके संतानीय परंपरामें श्रीउपदेशगच्छीय
श्रीदेवगुप्तसूरिजी महाराजने श्री नवपदप्रकरणवृत्तिमेंभी प्रथम करे-
मिभंते पीछे इरियावही सामायिक संबंधी कहा है, सो पाठभी यहाँ
पर बतलाते हैं, यथा :-

" आवश्यक चूर्ण्याद्युक्त समाचारी त्रियं-सामायिकं श्रावकेण
कथं कार्यं ? तत्रोच्यते- श्रावको द्विविधोऽनृद्धिप्राप्तः ऋद्धिप्राप्तश्च,
तत्राद्यश्चैत्यगृहे, साधुसमीपे, पौषधशालायां, स्वगृहे वा. यत्र वा वि-
श्राम्यति तिष्ठति च निर्व्यापारस्तत्र करोति, चतुर्थे स्थानेषु नियमेन
करोति, चैत्यगृहे, साधुमूले पौषधशालायां स्वगृहे वा अवश्यं कुर्वा-
ण इति. एतेषु च यदि चैत्यगृहे साधुमूले वा करोति, तत्र यदि केनाऽ-
पि सह विवादो नास्ति, यदि भयं कुतोऽपि न विद्यते, यस्य कस्यापि
किंचिद् न धारयति, मा तत्कृताकर्षापकर्षौ भूतां, यदि वाऽधम वर्ण्य-
मवर्ण्यमवलोक्य न गृहीयात्, मा मांक्षीत् इति बुद्ध्या यदि वा ग-
च्छन् न किमपि व्यापारं व्यापारयेत् तदा गृहे एव सामायिकं गृही-

[९९]

त्वा चैत्यगृहं साधुमूलं वा यथा साधुः पंचसमितिसमितस्त्रिगुप्ति-
 गुप्तस्तथा याति, आगतश्च त्रिविधेन साधुन नमस्कृत्य तत्साक्षिकं
 पुनः सामायिकं करोति “ करेमिभंते ! सामाह्यं सावज्जं जोगं पच्च-
 खल्लामि जाव साहू पज्जुवासांमि दुविहं ति विहेणं ” इत्यादि सूत्रमु-
 च्चार्य, ततः, ईर्यापथिकीं प्रतिक्राम्यति, आगमनं चालोचयति. ततः,
 आचार्यादीन् यथारत्नाधिकतयाभिवंद्य सर्वसाधून्, उपयुक्तोपविष्टः
 पठति, पुस्तक वाचनादि वा करोति । चैत्यगृहे तु यदि वा साधवो
 न सन्ति, तदा ईर्यापथिकीं प्रतिक्रमणं पूर्वभागमनालोचनं च विधाय
 चैत्यवंदनां करोति, पठनादि विधत्ते, साधुसङ्गावे तु पूर्वं एष विधिः ।
 एवं पौषधशालायामपि । केवलं यथा गृहे आवश्यकं कुर्वाणोगृह्णा-
 ति—तथैव गमनविरहितं इत्यादि । तथा क्वद्विप्राप्तस्तु चैत्यमूलं
 साधुमूलं वा महद्भयैव पति, येन लोकस्य आस्था जायते चैत्यानि
 साधवश्च सत्पुरुषपरिग्रहेण विशेष पूज्यानि भवन्ति, पूजित पूजक
 त्वात् लोकस्य । अतस्तेन गृहे एव सामायिकमादाय नागंतव्यमधि-
 करण भयेन हस्त्यश्वाद्यनानयनप्रसंगात्, आगतश्च चैत्यालये विधिना
 प्रविश्य चैत्यानि च द्रव्य-भावस्तवेनाभिष्टुत्य, यथासंभवं साधुस-
 मीपे मुखपोतिका प्रत्युपेक्षणपूर्वं “ करेमिभंते ! सामाह्यं सावज्जं जोगं
 पच्चखल्लामि जाव साहू पज्जुवासांमि दुविहं ति विहेणं ” मण्णेण वा-
 याए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि
 गरिहामि अप्पाणं वोसरामि ” त्ति उच्चार्य ईर्यापथिक्यादि प्रति
 क्राम्य यथा रत्नाधिकतया सर्वसाधून् आभिवंद्य प्रश्नादि करोति, सा-
 मायिकं च कुर्वाण एष मुकुटमुपनयति कुडलयुंगलनाम मुद्रे च पु-
 ष्प-तांबूल-प्रावरणादिव्युत्सृजति । किंच यदि एष श्रावक एव तदाऽ-
 स्यागमनवेलायां न कश्चिदुत्तिष्ठति, अथ यथा भद्रकस्तदाऽस्यापि
 सन्मानो दर्शितो भवति, इति बुद्ध्या आचार्याणां पूर्वैरचितमासनं धि-
 यते अस्य च, आचार्यास्तु उत्थायैवेतस्ततश्चक्रमणं कुर्वाणा आसते
 तावद् यावदेष्ट आयाति, ततः सममेवोपविशति । अन्यथा उत्था-
 नानुत्थानदोषाविभाज्याः, एतच्च प्रासंगिकमुक्तम् । प्रकृतं तु सामा-
 यिकस्थेन विकथादि न कार्यं, स्वाध्यायादिपरेण आसितव्यं ” इत्यादि.

३२-श्रीतपगच्छनायक श्रीदेवेंद्रसूरिजी महाराज कृत श्राद्धदिन-
 कृत्यसूत्रकी वृत्तिका पाठभी देखो:-

“तओ वियाल वेलाए, अत्थमिए दिवायरे । पुब्बुंसेण विहाणेण, पुणो
 वंदे जिणोत्तमे ॥२८॥ तओ पोसहसालं तु, गंतुण तु पमज्जए । ठाविशं

[१००]

तत्थसूरिं, तथो सामाहयं करे ॥२९॥ काऊणय सामाहयं, हरियंपडि-
कमियं, गमणमालोप । वंदितु सूरिमाइ, सइझायावस्सयं कुणइ ॥३०॥

व्याख्या— सांप्रतमष्टदशं सत्कारं द्वारमाह— ततो वैकालिका-
नंतरं, विकालवेलायां अंतर्मुहूर्त्तरूपायां, तामेव व्यनक्ति अस्तमितेदि-
वाकरे अर्द्धविषादवाक् इत्यर्थः । पूर्वोक्तेन विधानेन पूजाकृत्वेति शेषः ।
पुनर्वदते जिनोत्तमान् प्रसिद्धं चैत्यवंदनं विधिना ॥ २८ ॥ अथैकोन
विंशति वंदनकोपलक्षितमावश्यकं द्वारमाह— ततस्तृतीयं पूजा नंत-
रं श्रावकः पौषधशालांगत्वा यतनया प्रमाष्टिं, ततो नमस्कारं पूर्वकं
व्यवहितं तु शब्दस्यैवकारार्थं त्वात् स्थापयित्वैव तत्र सूरिं स्थापना-
चार्यं, ततो विधिना सामायिकं करोति ॥ २९ ॥ अथ तत्र साधवोऽ-
पि संति श्रावकेण गृहे सामायिकं कृतं, ततोऽसौ साधुसमीपे गत्वा-
किं करोति इत्याह— साधुसाक्षिकं पुनः सामायिकं कृत्वा ईर्याप्रतिक्र-
म्यागमनमालोचयेत् तत आचार्यादीन् वंदित्वा स्वाध्यायं काले चा-
वश्यकं करोति ॥ ३० ॥ इत्यादि ”

३३-अब देखिये-ऊपरके सर्वमान्य प्राचीन शास्त्रपाठोंमें-श्रावकको
सामायिक कैसे करना चाहिये ? इस सवालके जवाबमें सर्व शास्त्र
कार महाराजोंने इस प्रकार खुलासा पूर्वक लिखा है.

१-सामायिक करनेवाले राजादि धनवान् व व्यवहारिक धन
रहित ऐसे दो प्रकारके श्रावक बतलाये.

२- धन रहित श्रावकको भगवान् के मंदिरमें १, उपद्रवरहित
एकांत जगहमें अपने घरमें २, साधु महाराजके पासमें ३, वा पौषध
शालामें ४, ऐसे ४ स्थान सामायिक करनेके लिये बतलाये.

३- जब श्रावकको संसारिक कार्योंसे निवृत्ति होवे [फुरसत
मिले] तब हरेक समय सामायिक करनेका बतलाया.

४-धर्म कार्योंमें अनेक तरहके विघ्न आतेहैं, और उपयोगी वि-
वेकवाले श्रावकको धर्मकार्योंके बिना समय मात्रभी खाली व्यर्थ ग-
मानायोग्य नहीं है, इसलिये संसारिक कार्योंसे फुरसद मिलतेही रहते
चलनेमें यदि किसीके साथ लेने देने वगैरहसे कोईतरहका भयनहीं
होवे तो अपनेघरमें सामायिकलेकर पीछे गुरुपासजानेका बतलाया.

५-जैसे उपवासादिकके पंचव्रत्ताण अपनेघरमें करलिये हों तो
भी गुरुमहाराजकेपास जाकर फिर गुरु साक्षिसे उपवासादि पंच-
व्रत्ताण करनेमें आतेहैं. तैसेही- श्रावकको अपने घरमें सामायिक ले-

[१०१]

करसावध योगका त्याग करके साधुकी तरह पंचसमिति और तीन गुतिसहितउपयोगसे गुरुमहाराजपास आकर फिर सामायिकका उच्चारणकरके पीछे इरियावहीपूर्वक स्वाध्यायादि करनेकाबतलाया.

६-शामको छ आवश्यकरूप प्रतिक्रमणकरनेकेलिये पहिले मंदिरमें देवदर्शन, पूजा आरति वगैरहकरके पीछे उपाश्रय या पौषधशा लामें आकर गुरुके अभावमें भूमिका प्रमार्जनपूर्वक सामायिककरनेके लिये नवकार गुणकर स्थापनाचार्यकी स्थापनकरनेका बतलाया.

७- सामायिक करनेके लिये खमासमण पूर्वक गुरुसे आदेश लेकर सामायिकलेनेसंबंधी मुहपत्तिका पडिलेहणकरनेका बतलाया.

८- मुहपत्तिका पडिलेहणकरके प्रथम खमासमण पूर्वक सामायिक संदिसाहणेका, तथा फिर दूसरा खमासमण पूर्वक सामायिक ठाणेका आदेश लेनेका बतलाया.

९- विनय सहित मस्तक नमाकर नवकारपूर्वक ' करेमिभंते ! सामाह्यं ' इत्यादि सामायिकका पाठ उच्चारण करनेका बतलाया.

१०- करेमिभंतेका पाठ उच्चारण कियेबाद पीछेसे इरियावही-करनेकाबतलाया सो 'इरियावही' कहनेसे इरियावही, तस्स उत्तरी, अन्नत्थ उससिपणं, कहकरके ४ नवकार या १ लोमस्सका काउसग्ग करनेका और ऊपर संपूर्ण लोमस्स कहनेका समझलेना चाहिये.

११- जैसे पौषधवाला देवदर्शनादिक कार्योंसे गमनकरके आया होंवे वो इरियावही पूर्वक आगमनकी आलोचना करे, अर्थात्-इरियासमिति इत्यादि अष्टप्रवचनमाताके विराधनाकी आलोचनाकरके मिच्छामि दुक्कडं देताहै, तैसेही-यदि श्रावक अपने घरसे सामायिक लेकर इरियासमिति आदि पांच समिति और तीन गुति सहित उपयोगसे गुरुपास आया होंवे तो फिर गुरु साक्षिसे 'करेमि भंते !' इत्यादि सामायिक लेकर पीछे इरियावहीपूर्वक इरियासमिति इत्यादि आगमनकी आलोचना करनेका बतलाया.

१२-सामायिक लेकर पीछे इरियावही करके आगमनकी आलोचना करे, बाद यथा योग्य आचार्यादिक बडीलोंको अनुक्रमसे सर्व साधुओंको वंदना करनेका बतलाया.

१३ — 'पूर्वसूरिनिर्दिष्टविधानेन' तथा 'पडिलेहिता' अर्थात्-जगह आसनादिकका प्रमार्जन पडिलेहण पूर्वक बैठने स्वाध्यायादि करनेका आदेश लेकर अपना धर्मकार्य करनेका बतलाया.

१४- सामायिक लिये बाद गुरुके साथ धर्म वार्ता करें या कोई

[१०२]

शंका होंवे तो गुरुसे पूछे या पुस्तकादि वांचे, अथवा दूसरा कोई पुस्तकादि वांचता होंवे तो उपयोगयुक्त सुनता रहे.

१५- अपने घरसे सामायिक लेकर भगवान्‌के मंदिरमें आया होंवे, वहां पासमें साधु न होंवे तो भी भगवान्‌के समक्ष फिरसे सामायिक लेकर इरियावही पूर्वक आगमनकी आलोचना करके पीछे चैत्यवन्दन, शास्त्रपाठ पढ़ना गुणनादि धर्म कार्य करनेका बतलाया.

१६— उपाश्रयमें गुरु महाराज होंवे, तो उपर मुजब सामायिक करनेकी विधि बतलाई है, ऐसेही पौषधशालामेंभी सामायिक करनेकी विधि समझ लेना चाहिये.

१७— उपाश्रयमें गुरु महाराज न होंवे, या समयके अभावसे कारणवश गुरु पास जाकर सामायिक करनेका अवसर न होंवे और केवल अपने घरमेंही छ आवश्यकरूप प्रतिक्रमण करनेकेलिये सामायिक ग्रहण करें, तो भी ऊपर मुजब समासमणपूर्वक सामायिक मुहपत्तिके पडिलेहणका, सामायिक संदिसाहणेका व ठाणेका आदेश लेकर नवकारपूर्वक करेमिभंतेका उच्चारणकरके पीछेसे इरियावही पूर्वक अपना धर्मकार्य करें, मगर वहांसे गुरु पास जाने वगैरह कार्योंसे गमनागमन नहीं होनेसे आगमनकी आलोचना न करें. परंतु शेष बाकीकी उपर मुजब सर्व विधि करनेका बतलाया.

१८- यहांपर कोई पहिले इरियावही करके पीछे करेमिभंतेका उच्चारण करनेका कहतेहैं, वो लोग शास्त्रोंके भावार्थको नहीं जाननेवालेहैं, क्योंकि आवश्यकचूर्णि-बृहद्वृत्ति वगैरह प्राचीनशास्त्रोंमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही साफ खुलासा पूर्वक कहा है ।

१९- कभी गुरुके अभावमें अपनेघरमें या पौषधशालामें सामायिक करें, तब वहां “जाव नियम पज्जुवा सामि” ऐसा पाठ उच्चारणकरें और उपाश्रयमें गुरु समक्ष सामायिक करें, तब वहां “जाव-साह पज्जुवा सामि ” ऐसा पाठ उच्चारण करें और इरियावही पूर्वक अपने धर्मकार्योंमें समय व्यतीत करनेका बतलाया.

२०- राजा-महाराजादि महर्द्धिक होंवे, उन्हींको शहरकेरस्तोंमें नंगे पैर पैदल चलना योग्य न होनेसे वो अपने घरसे सामायिक लेकर गुरु पास उपाश्रयमें नहीं जावें, किंतु-हार्थी, अश्व, पदातिक आदिक राज्यक्रद्धिकी सौभा युक्त मेरी भंभादि वार्जित्र सहित बडे आडंबर-से सामायिक करनेकेलिये गुरुपास आवें, उससे शासनकी प्रभाव-

[१०३]

ना होंवे, तथा भगवान् ऊपर और गुरुमहाराज ऊपर लोगोंकी श्रद्धा बढे, बहुत जीवोंको धर्म प्राप्तिका महान् लाभ होंवे, इसलिये घरसे सामायिक लेकर नंगे पैरसे पैदल हरियासमितियुक्त आनेके बदले बडे आडंबरसे गुरुपास आकर पीछे सामायिक करें.

२१ — राज्यक्रद्धिकी सोभा युक्त गुरुपास आकर जो नजदीक भगवान्का मंदिर होंवे तो पहिले वहां मंदिरमें जाकर विधिसहित उपयोग युक्त भावसे- केशर चंदनादिसे पहिले द्रव्य पूजा करें बाद पीछे चैत्यवंदन स्तवनादिसे भाव पूजा करें उसके बादमें गुरु पास आकर “यथासंभवं साधु समीपे सुखपीतिका प्रत्युपेक्षणपूर्व” अर्थात्- समासमणपूर्वक मुहपत्तिकापडिलेहणकरके सामायिक संदिसाहणे वगैरहके आदेश लेकर ऊपर मुजब विधिसे पहिले करे- मिभंतेका उच्चारणकरके पीछे हरियावही पूर्वक स्वाध्यायादि करें.

२२- राजादिक सामायिक करें तब तक राज्यचिन्ह मुकुटादिकको अलग रखें, त्याग करें.

२३-इसप्रकार सामायिक करनेवाले वहां विकथादि कर्मबंधन केहेतुभूत कोईभी कार्य न करें, किंतु स्वाध्याय ध्यानादि कर्मोंकी निज्जराके हेतुभूत धर्मकार्य करनेमें अपना समय व्यतीत करें, इत्यादि,

२४- अब देखिये-ऊपर मुजब सर्वमान्य प्राचीन शास्त्रपाठोंपर विवेक बुद्धिसे तत्त्व दृष्टिपूर्वक बिचार किया जावे तो सामायिक करनेके लिये प्रत्येकवार समासमण सहित ‘सामाहय मुहपत्ति पडिले- हेमि’ ‘सामाहयसंदिसावेमि’ ‘सामाहयंठावेमि’ इत्यादि वाक्योंसे सामायिक करनेका आदेश लेकर नवकारपूर्वक विनयसहित ‘करेमिभंते । सामाहयं’ इत्यादि संपूर्ण सामायिकका पाठ उच्चारण कियेबाद पीछेसे हरियावही करनेका सुस्पष्टतासे साफ खुलासा पूर्वक सब शास्त्रकार सर्व गच्छोंके पूर्वाचार्योंने लिखा है, सो अल्प बुद्धिवालाभी ऊपरके शास्त्र पाठोंपरसे सामायिकका अधिकारको अच्छी तरहसे समझ सकताहै. जिसपरभी ऊपरकी तमाम सर्व बातोंको छोडकर “ऊपरके शास्त्रपाठ आलोचना संबंधी हैं, या स्वाध्याय संबंधी हैं, वा वंदनासंबंधी हैं, अथवा सामायिक संबंधी हैं. इसकी हमको अच्छी तरहसे मात्तूम नहीं पडती, इसलिये ऊपरके शास्त्र प्रमाणोंसे सामायिकमें प्रथम करेमि भंते और पीछे हरियावही कैसे किया जावे?” ऐसी २ कुतर्क जान बुझकरके या ऊपरके शास्त्रपाठोंको घांचे, विचारे, समझे बिनाही परंपराकी अज्ञानतासे करते हैं, सो तो श्री-

[१०४]

ज्ञानीजीमहाराज जाने. मगर ऐसी २ कुतर्क करके जिनाज्ञानुसार प्रत्यक्ष अनेक शास्त्र प्रमाण मुजब सत्य बात परसे भोलें जीवोंकी भ्रष्टा उडादेते हैं, और जिनाज्ञाविरुद्ध कोईभी शास्त्रप्रमाण बिनाही अपने झूठे हठवादके आग्रहकी बातको स्थापन करनेकेलिये शास्त्रोंके सत्यर पाठोंपरभी झूठीर शंका लाकर उत्सूत्र प्ररूपणासे उन्मार्ग को पुष्ट करते हैं, सो यह काम संसार बढानेवाला अनर्थ भूत होनेसे आत्मारथी भवामिरुयोंको तो करना योग्यनहींहै. इसविषयको विशेष तत्त्वज्ञ पाठक गण स्वयं विचार लेवेंगे.

३५-कितनेक कहतेहैं, 'सामायिकमें प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही करनेसंबंधी आवश्यक सूत्रकी चूर्णि-वृहद्वृत्ति वगैरह शास्त्रपाठोंमें सामायिकमुहपत्ति पडिलेहणके, सामायिक संदिसाहणके, सामायिक ठाणेके आदेशलेनेवगैरह सबपूरी विधिनहींहै, ऐसा कहनेवालेभी प्रत्यक्षही मिथ्या भाषण करके जिनाज्ञाका उत्थापन करतेहैं, क्योंकि देखो-भावकधर्म प्रकरणवृत्ति तथा वंदित्तासूत्रकी चूर्णि वगैरह शास्त्रपाठोंमें सामायिक मुहपत्ति पडिलेहणके, सामायिक संदि-साहणके, सामायिकठाणेवगैरहके आदेशलेकर नवकारपूर्वक विनय-सहित 'करेमि भंते' इत्यादि पाठ उच्चारण करके पीछेसे इरियावही किये बाद स्वाध्यायादि करनेका संक्षेपमेंभी साफ बतलायाहै, उसके भावार्थमें गुरुगम्यतासे सामायिकमें सब पूरीविधि समझना चाहिये.

३६-आवश्यक निर्युक्ति, उत्तराध्ययनादि शास्त्रोंमें सामान्यतासे संक्षेपमें प्रतिक्रमणकी विधि बतलायाहै, परंतु उसका विस्तारपूर्वक विशेष अधिकार भावपरंपरानुसार पूर्वाचार्योंके सामाचारियोंके ग्रंथोंसे जाननेमें आताहै, और उसी मुजबही अभी प्रतिक्रमणकी सर्व-क्रियार्थ करनेमें आतीहै. मगर कोई अज्ञानी आवश्यकनिर्युक्ति-उत्तराध्ययनादिशास्त्रोंकी प्रतिक्रमण विधिको अधूरी कहकर निषेधकरें और उसकेविरुद्ध ढूंढियोंकी तरह अपनी मतिकल्पना मुजब प्रतिक्रमण की विधिको स्थापन करें, तो आवश्यकतादि आगमार्थरूप पंचांगीके उत्थापनसे उत्सूत्रप्ररूपणारूप मिथ्यात्वके दोषके भागी होनापडता-है, तैसेही- आवश्यक चूर्णि, वृहद्वृत्ति वगैरह ऊपरमुजब शास्त्रपाठोंमें सामायिक संबंधीभी सूचनारूप संक्षेपमें सामान्यतासे शास्त्रका र महाराजोंने सामायिककी विधि लिखीहै. उसका विस्तारसे विशेष अधिकार भावपरंपरानुसार पूर्वाचार्योंके सामाचारियोंके ग्रंथोंसे जानना चाहिये और उसी मुजबही आत्मारथी भव्य जीवोंको सा-

[१०५]

सांयिककी सबपूरी विधि कर लेना चाहिये, जिसके बदले उसको अधूरी विधि कहकर निषेध करने वालोंको व उसके सर्वथा विरुद्ध अपनी कल्पनामुजब करवाने वालोंको श्रीआवश्यकसूत्रादि आगमार्थरूप पंचांगिके उत्थापनसे उत्सृजप्ररूपणारूप दोषके भागी होनापडता है, इसलिये आत्मार्थी भवभिरुयोंको ऐसा करना योग्य नहीं है।

३७- औरभी देखिये जैसे-जिनमंदिरमें विधियुक्त 'द्रव्य भाव पूजा कर निजधर गया' ऐसा किसी शास्त्रमें संक्षेपमें सूचनारूप अधिकार आया होवे, उसका विशेष भावार्थ तत्त्वदृष्टिसे समझे बिनाही उसमें स्नान करने, पवित्र वस्त्र पहिरने, मुख कोश बांधने, केशर चंदनादि सामग्री लेने वगैरहके अक्षर न देखकर उसको जिनपूजाकी अधूरी विधि कहकर सर्वथा जिनपूजाका निषेध करने वालोंको अज्ञानी समझनेमें आतेहैं, क्योंकि उपयोगयुक्त भावसे हमेशा जिनपूजा करने वाले तो जिनपूजाकी सब पूरी विधिको अच्छी तरहसे जाननेवाले होते हैं, उन्हेंके लिये विशेष लिखनेकी कोई जरूरत नहीं है, किंतु 'द्रव्य भाव पूजा' कहनेसे उपयोग युक्त स्नान करने, पवित्र वस्त्र धारण करने, मुखकोश बांधने, जिन मंदिरमें प्रवेश करने, निसीही कहने, मंदिरकी सार संभाल लेने, ३ प्रदिक्षणा देने, केशर-चंदन-धूप-दीप-अक्षतादि सामग्री लेने, और चैत्यचंदन-शकस्तव-जिनगुण स्तुति आदिसे वश त्रिकसहित उपयोगसे पूजा करने वगैरहकी सब बातें तो अपने आपही समझलेतेहैं, इसलिये 'द्रव्य भाव पूजा' कहनेसे संक्षेपमें जिनपूजाकी सब पूरी विधि समझनी चाहिये, तैसेही-सामायिककी विधिको जानने वाले उपयोग युक्त हमेशा सामायिक करनेवालोंके लिये तो- 'अपने घरसे सामायिकलेकर साधुकीतरह इरिया समिति पूर्वक उपयोगसे गुरुपास आवे' इस वाक्यसे, तथा 'गुरुको वंदनाकरके फिर सामायिकका उच्चारण करे बाद इरियाव-हीपूर्वक पढे सुने वा पूछे' इस वाक्यसे सामायिक करनेके लिये पवित्रवस्त्र धारणकरनेका तथा मुहपत्ति आदि सामग्री लेनेका और खमासमणपूर्वक सामायिक संबंधी मुहपत्ति पडिलेहणादिकके भा-देखलेने वगैरहसे सामायिककी सब विधिपूरी समझ लेना चाहिये, जानकारोंकेलिये उसजगह इससे विशेष लिखें तो पुनराक्ति दोष आवे, पिष्टपेयण जैसे होधे, उससे वहां 'जागृतको जगाने' की तरह विशेष लिखनेकी कोई जरूरत नहीं है, इसलिये गुरुगम्यतासे तत्त्व-दृष्टिपूर्वक विवेकबुद्धिसे शास्त्रकार महाराजोंके गंभीर आशयको स-

[१०६]

मझे बिना अधूरी विधिके नामसे सामायिकमें प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही करनेकी सत्यबातको सर्वथा उड़ादेना सो उत्सृष्टप्र-
रूपणारूप होनेसे आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है.

३८-देखो विवेकबुद्धिसे खूब विचारकरो- श्रीजिनदासगणिमह-
त्तराचार्यजी पूर्वधर, श्रीहरिभद्रसूरिजी, अभयदेवसूरिजी, देवगुप्तसूरि
जी, हेमचंद्राचार्यजी, देवेंद्रसूरिजी, आदिगीतार्थ शासन प्रभावक महा-
राजोंको तो सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावहीकी बात तत्त्व
ज्ञानसे जिनाज्ञानुसार सत्यमालूमपड़ी, इसलिये अपनेर बनाये ग्रंथोंमें
निसंदेहपूर्वक लिखगये तथा आत्मार्थी भव्यजीवभी शंकारहित सत्य
बात समझकर उस मुजब सामायिककी सब विधिभी करतेये और
अमी करतेभी हैं। जिसपरभी कितनेक लोग अपने तपगच्छ नायक
श्री देवेंद्रसूरिजी महाराज वगैरह पूर्वाचार्योंकेभी विरुद्ध होकर इस-
बातमें सर्वथा विपरीत रीतिसे प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्था-
पन करके जिनाज्ञाके आराधक बनना चाहतेहैं और प्रथम करेमिभंते
पीछे इरियावहीको शास्त्रविरुद्ध ठहराकर निषेध करतेहैं. अब विचारक-
रना चाहिये, कि- प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही स्थापन करनेवाले
जिनाज्ञाके आराधक ठहरतेहैं, या प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते
स्थापन करनेवाले जिनाज्ञाके आराधक ठहरतेहैं, यदि-प्रथम इरिया
वही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेवाले जिनाज्ञाके आराधक बनेंगे,
तो प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही स्थापन करने वाले प्राचीन
सर्व पूर्वाचार्य जिनाज्ञाविरुद्ध मिथ्यात्वकी खोटी प्ररूपणा करनेवाले
ठहरेंगे. और यदि प्राचीन सर्व पूर्वाचार्य प्रथम करेमिभंते पीछे इ-
रियावही स्थापन करनेवाले जिनाज्ञाके आराधक सत्यप्ररूपणा कर-
ने वाले मानेंगे, तो, उन सर्व पूर्वाचार्योंके विरुद्ध होकर प्रथम इरि-
यावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेवाले जिनाज्ञा विरुद्ध मिथ्या-
त्वकी खोटी प्ररूपणा करनेवाले ठहर जावेंगे. तथा इस बातमें पाठा-
तरभी न होनेसे पूर्वापर विरोधी दोनों बातेंभी कभी सत्य ठहर स-
कतीनहीं. और प्राचीन सर्व गीतार्थ पूर्वाचार्योंकोभी खोटी प्ररूपणा
करनेवालेभी कभी ठहरासकतेनहीं. मगर उन्हीं गीतार्थ महाराजोंके
विरुद्ध आग्रह करनेवालेही खोटी प्ररूपणा करनेवाले ठहरतेहैं, इस-
लिये सर्व गीतार्थ पूर्वाचार्योंको जिनाज्ञाके आराधक सत्य प्ररूपणा
करनेवाले समझ करके उन सर्व महाराजोंकी आज्ञा मुजब सामा-
यिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही मान्य करना और इनके

[१०७]

विरुद्ध प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंतेकी शास्त्र विरुद्ध और पूर्वा-
चार्योंकी आज्ञाबाहिर कल्पितवात को छोड़ देना यही जिनाज्ञाके आरा-
धकभवामिक निकटभव्य आत्मार्थियोंको उचित है. ज्यादा क्या लिखें.

३९- कितनेक लोग शंका करते हैं, कि-पौषध, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय,
ध्यानादि कार्योंमें पहिले इरियावही करनेका कहा है, और सामायिक-
कर्म प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही कर
नेका कहा है, उसका क्या कारण होना चाहिये ? इसका समाधान
यह है कि-पौषध-प्रतिक्रमणादिक कार्य तो आत्माको निर्मल करनेके
हेतुभूत क्रियारूप हैं सो मनकी स्थिरतासे हो सकते हैं, इसलिये मन-
की स्थिरता करनेकेलिये गमनागमनकी आलोचनारूप इरियावहीकर
के पीछे इनकार्योंमें प्रवृत्ति करें तो शांततापूर्वक उपयोग शुद्ध रहता है,
इसलिये इनकार्योंमें पहिले इरियावही करनेका कहा है. मगर सामा-
यिकको तो श्रीभगवती-आवश्यकतादि आगमोंमें “ आया छलु सा-
माहं ” इत्यादि पाठोंसे सामायिकको खास आत्मा कहा है, इसलिये
आत्माकी स्थापना करनेकेलिये और आत्माके साथ कर्मबंधनके हेतुरूप
आतेहुए आश्रवको रोकनेकेलिये प्रथम करेमिभंतेका पञ्चखण्ड क-
रनेका कहा है. पहिले आत्माकी स्थापनारूप और आश्रवनिरोधरूप
सामायिकका उच्चारण होगया, तो, उसके बादमें पीछे आत्माको नि-
र्मल करनेके लिये स्वाध्याय ध्यानादि कार्य करनेके लिये इरियावही
करनेकी आवश्यकता हुई. इसलिये पीछेसे इरियावहीपूर्वक स्वाध्याय,
ध्यानादि धर्मकार्य करने चाहिये, और आत्माकी स्थापनारूप व आश्रव
निरोधरूप जबतक सामायिकके पञ्चखण्ड न होंगे, तब तक एक-
वार तो क्या मगर हजारवार इरियावही करतेही रहेंगे तो भी आ-
श्रवनिरोध बिना निज आत्मगुणकी प्राप्ति कभी नहीं होसकेगी, इस-
लिये सर्वशास्त्रोंकी आज्ञामुजब पहिले आत्माकी स्थापनारूप सामा-
यिकके पञ्चखण्ड करके पीछेसे आत्माकी शुद्धिके लिये इरियाव-
ही पूर्वक स्वाध्यायादि धर्मकार्य करने चाहिये. इस प्रकार सामायि-
कमें प्रथम करेमिभंते कहने संबंधी शास्त्रकारोंके गंभीर आशयको स-
मझे बिना पौषधादि कार्योंकी तरह सामायिकमेंभी प्रथम करेमिभंते
का उच्चारण किये पहिलेसेही इरियावही स्थापन करनेका आग्रह
करना आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है।

४०- कितनेक महाशय कहते हैं, कि-श्रीनवकारमंत्रके पीछे इरिया-

[१०८]

वहीके उपधानकहेहैं, मगर इरियावहीके पहिले करेमिभंतेके उपधान नहींकहेहैं, इसलिये सामायिकमेंभी पहिले इरियावही करना योग्यहै, ऐसा कहनेवालोंको सामायिकके स्वरूप संबंधी शास्त्रकारमहाराजों के अभिप्रायको समझमें नहीं आया मालूम होताहै। क्योंकि देखिये-शास्त्रोंमें सामायिकको आत्मा कहा है, और इरियावही वगैरह क्रियारूपसूत्र कहेहैं, और आत्माके उपधान तो कभी होसकतेनहीं, किंतु आत्माकी शुद्धिरूप क्रियाके उपधान होसकतेहैं। आत्मा तो स्वयं उपधान करनेवालाहै, और उपधान क्रियारूपहै, सामायिकरूप आत्माके उपधान तो इरियावहीके पहिले या पीछेभी किसी शास्त्रमें नहींकहेहैं, इसलिये आत्माके निजगुणरूप सामायिक संबंधी और इरियावही वगैरह आत्माकी शुद्धिरूप क्रियासंबंधी शास्त्रकार महाराजोंके भावार्थको समझेबिनाही पहिले इरियावहीके उपधान करनेका पाठ देखकर सामायिकमेंभी पहिले इरियावही स्थापन करतेहैं, उन्हेंको अज्ञानताहै,

४१- कितनेक आग्रहीलोग नवांगीवृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजी के नामसे अथवा उन्हेंके शिष्य श्रीपरमानंदसूरिजीके नामसे सामायिकमें पहिले इरियावही पीछे करेमिभंते कहने संबंधी श्रीअभयदेवसूरिजीकृत 'सामाचारी' ग्रंथका पाठ भोले जीवोंको बतलातेहैं, सोभी प्रत्यक्ष मिथ्याहै, क्योंकि-देखो श्रीनवांगीवृत्तिकार महाराजने खास 'पंचाशक' सूत्रकीवृत्तिमें सामायिकमें प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही खुलासापूर्वक लिखीहै, सर्व प्राचीन पूर्वाचार्यभी ऐसेही लिखे गयेहैं, यही बात जिनाज्ञानुसार है। इसलिये इन्हीं महाराजने खास 'सामाचारी' ग्रंथमेंभी प्रथम करेमिभंते और पीछे इरियावही लिखी थी, उसपाठको निकाल देना और प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते कहनेका पाठ अपनी मति कल्पना मुजब नवीन बनवाकर बड़े प्रौढ प्रामाणिक पुरुषोंके बनाये ग्रंथमें प्रक्षेप करके भोले जीवोंको बतलाकर उन्मार्ग चलाना यह बड़ा भारी दोषहै, देखिये-कोईभी पूर्वाचार्य महाराजने सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते नहीं लिखी, किंतु प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही सर्व प्राचीन पूर्वाचार्योंने सर्वशास्त्रोंमें लिखीहै। तो फिर श्रीनवांगीवृत्तिकारक जैसे प्रौढ प्रामाणिक सर्व सम्मत यह महाराज सर्व पूर्वाचार्योंके विरुद्ध होकर प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते कैसे लिखेंगे, ऐसा कभी नहीं हो सकता। इसलिये इन महाराजके नामसे प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते करनेका इन्होंने बाले प्रत्यक्ष मिथ्यावादी हैं।

[१०९]

४२- औरभी देखो खूब विचारकरो- शास्त्रोंमें विसंवादी कथन करनेवालोंको मिथ्यात्वी कहेंहैं, और जैनाचार्य तो अविस्वादीहोतेहैं। इसलिये श्रीनवांगीवृत्तिकारक यह महाराजभी विसंवादीनहींथे। किंतु अविस्वादीथे, इसलिये इन्हीं महाराजके बनाये वृत्ति-प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमेंसे एकही विषयमें पूर्वापर विरोधी विसंवादी वाक्य किसीभी ग्रंथमें किसी जगहभी देखनेमें नहीं आते, इसलिये इन महाराजकी बनाई सामाचारीमेंभी विसंवादी वाक्य नहींहैं, किंतु 'पंचाशकसूत्रवृत्तिके अनुसार प्रथम करोमिभंते पीछे इरियावही करने का पाठथा, उसको उडा करके इन महाराजके सत्य कथनके पूर्वापर विरोधी विसंवादीरूप प्रथमइरियावही पीछेकरोमिभंतेकहनेका पाठबनाकर भोलेजीवोंको बतलाकर खोटी प्ररूपणा करनेवालोंकी बड़ी भारीभूलहै। यह महाराज तो विसंवादी कथन करनेवाले कभी नहीं-ठहरसकते,मगर पेसे महापुरुषोंके नामसे झूठापाठ बनानेवालेही मिथ्यात्वीठहरतेहैं। अबपाठकगणसे मैराइतनाहीकहनाहै, कि-नवांगीवृत्तिकारकने या उन्हींकेशिष्योंने अथवा अन्यकिसीभी जिनास्त्राके आराधक पूर्वाचार्य महाराजने किसीभी ग्रंथमें सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करोमिभंते किसी जगहभी नहीं लिखी, व्यर्थ भोले जीवोंको भरमानेका काम करना आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है।

४३- कितनेक श्रीउत्तराध्ययनसूत्रकी बड़ी टीकाके नामसे सामायिकमें प्रथमइरियावही पीछेकरोमिभंते करनेका ठहरातेहैं, सोभी प्रत्यक्ष मिथ्याहै, क्योंकि देखो उत्तराध्ययन सूत्रमें या इनकी बड़ी टीकामें सामायिक करनेसंबंधी प्रथमइरियावही पीछेकरोमिभंते करनेका कुछभी अधिकारनहींहै, किंतु-२९वें अध्यायनमें "सामाहणं भंते ! जीवे किं जणेइ ? सावज्जजोग विरइं जणयइ ॥ चउवीसत्थणं भंते ! जीवे किं जणेइ ? दंसण विसोहिं जणइ ॥

व्याख्या- 'सामायिकेन' उक्तरूपेण सहावयेन वर्त्तते इति सावद्याः-कर्मबंधनहेतवो योगा-व्यापारास्तेभ्यो विरतिः-उपरमः सावद्ययोगविरतिस्तां जनयति, तद्विरति सहितस्यैव सामायिक संभवात्, न चैवं तुल्यकालत्वेनानयोः कार्यकारण भावासंभव इति वाच्यं, केषुचित्तुल्यकालेष्वपि वृक्षच्छायादिवत्कार्यकारण भावदर्शनाद्, एवं सर्वत्रभावनीयं ॥ सामायिकं च प्रतिपत्तुकामेन तत्प्रणेताःस्तोतव्याः ते च तत्त्वतस्तीर्थकृत एवेति, तत्सूत्रमाह 'चतुर्विंशतिस्तवेन' एतद्व-सर्पिणी प्रभवतीर्थकृतदुत्कीर्तनात्मकेन दर्शनं सम्यक्त्वं तस्यविशुद्धिः-

[११०]

तदुपधातिक कर्मापगमतो निर्मलीभवनं दर्शनविशुद्धस्तां जनयति”

ऐसा कहकर सामान्यतासे सामायिक, चउवीसत्थो, वंदन, प्र-
तिक्रमण, काउसग आदि कर्तव्योंका फलबतलाया है। मगर वहां सा-
मायिक करनेकी विधिमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते उच्चारण
करनेका नहीं बतलाया। इसलिये उत्तराध्ययन सूत्रवृत्तिके नामसे प्र-
थम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेवालोंकी बड़ी भूल है।

४४-अब आत्मार्थी तत्त्वग्राही पाठकगणसे मैरा यही करना है, कि-
श्रीमहानिशीथसूत्रका उद्धार श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजने किया है।
श्रीदशवैकालिकसूत्रचूलिकाकी बड़ी टीकाभी इन्हीं महाराजने बनाया
है, तथा आवश्यक सूत्रकी बड़ी टीकाभी इन्हीं महाराजने बनाया है।
आवक प्रज्ञप्तिकी टीकाभी इन्हीं महाराजने बनाया है, अब देखो-आव-
श्यक बड़ीटीकामें व आवकप्रज्ञप्तिटीकामें सामायिक विधिमें प्रथम
करेमिभंते पीछे इरियावही करनेका खुलासा पूर्वक पाठ है तथा महा-
निशीथसूत्रके तीसरे अध्ययनमें उपधान चैत्यवंदनसंबंधी इरियावही
करनेका पाठ है, और दशवैकालिक चूलिकाकी टीकामें साधुके गम-
नागमनसंबंधी इरियावही करके स्वाध्यायादि करनेका पाठ है, इसलिये
भिन्न २ अपेक्षावाले इन शास्त्रपाठोंके आपसमें किसी तरह काभी विसं-
वाद नहीं है, और विसंवादी शास्त्रोंको व विसंवादी कथन करनेवा-
लोंको शास्त्रोंमें मिथ्यात्वी कहे हैं। इसलिये जैनशास्त्रोंको व पूर्वा-
चार्योंको अविसंवादी कहनेमें आते हैं, इसी तरह श्रीहरिभद्रसूरिजी
महाराजभी अविसंवादी होनेसे इन्हीं महाराजके बनाये ऊपरके सर्व
शास्त्रोंको अविसंवादी कहनेमें आते हैं, और श्रीआवश्यकसूत्रकी बड़ी
टीका व आवकप्रज्ञप्ति टीकामें सामायिक करने संबंधी प्रथम करे-
मिभंते पीछे इरियावही करनेका पाठ मौजूद होने परभी महानिशीथ,
दशवैकालिक चूलिकाकी टीकाके भिन्न २ अपेक्षावाले अधूरे २ पाठों-
का उलटा २ अर्थकरके शास्त्रकारोंके अभिप्रायविरुद्ध होकर सामा-
यिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेसे ऊपरके
शास्त्रपाठोंमें और इन्हीं शास्त्रोंके करनेवाले श्रीहरिभद्रसूरिजी महा-
राजके वचनोंमें एकही विषय संबंधी आपसमें पूर्वापर विसंवाद-
रूप दूषण आता है, मगर इन्हीं शास्त्रपाठोंमें व इन्हीं महाराजके कथनमें
किसी प्रकारसेभी कभी विसंवादका दूषण नहीं आ सकता, यह तो
सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंतेका स्थापन करनेके
आग्रह करनेवालोंकी ही पूर्ण अज्ञानता है, कि-ऐसे अविसंवादी आस-

[१११]

शास्त्रोंको व ऐसे शासनप्रभावक गीतार्थ महापुरुषोंको विसंवादीका झूठा कलंक लगानेकाभी भय न करके अपना आग्रहकी प्रत्यक्ष असत्य बातको दृढ़करनेके लिये ऐसे २ अनर्थ करते हैं। इसलिये आत्मार्या भव भिरुयोंको ऐसा असत्य आग्रह छोड़कर प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावहीकरनेकी सत्यबातको श्रद्धापूर्वक अंगीकार करनाही जिनाज्ञानुसार होनेसे श्रेयरूपहै। इसीतरहसे आवश्यक चूर्णि-बृहद् वृत्ति-लघुवृत्ति-पंचाशकचूर्णि-वृत्ति-श्रावकधर्म प्रकरणवृत्ति-योगशास्त्रवृत्ति वगैरह अनेकशास्त्रानुसार सामायिकमें प्रथमकरेमिभंते पीछे इरियावहीकी सत्य बातको निषेध करनेवाले और महानिशीथ-दशवै कालिक-पंचाशक चूर्णि-उत्तराध्ययन-संघाचार भाष्य वृत्ति-धर्मरत्न प्रकरण वृत्ति वगैरह शास्त्रकारमहाराजोंके अपेक्षा विरुद्ध और अधूरे २ पाठोंके नामसे या किसीप्रकारकीभी कुयुक्तिसे सामायिकमें प्रथम इरियावही और पीछे करेमिभंते स्थापन करनेवाले आगमपंचांगीके अनेक शास्त्रपाठोंके उत्थापनकरनेके दोषी बनतेहैं। और खास अपने तपगच्छादिक सर्व गच्छोंके पूर्वाचार्योंकीभी आज्ञालोपने वाले बनते हैं [इसका विशेष खुलासा निर्णय उपरमें देखो] और तपगच्छमें पहिले तो प्रथमकरेमिभंते पीछेइरियावही करतेथे, इसलिये श्रीदेवेंद्रसूरिजी, श्रीकुलमंडनसूरिजी वगैरहोंने अपनेरचनाये ग्रंथोंमें प्रथमकरेमिभंते और पीछे इरियावही करनेका खुलासापूर्वक लिखाहै, मगर थोड़े समयसे अपने प्राचीन पूर्वाचार्योंके कथन विरुद्ध प्रथम इरियावही करनेका आग्रह चल पडा है, मगर जिनाज्ञाके आराधक आत्मार्याओंको ऐसा आग्रहकरना योग्यनहींहै। देखो-‘सेनप्रश्न’ में श्रीविजयसे नसूरिजीने सर्व पूर्वाचार्योंके और अपने गच्छकेभी पूर्वाचार्योंके विरुद्धहोकर सामायिकमें प्रथमइरियावही पीछेकरेमिभंते करनेका कहा है, मगर तोभी उन्हींकेही संतानीय अंतेवासी श्रीमानविजयजी और सुप्रसिद्धन्यायाविशारदश्रीयशोविजयजीने ‘धर्मसंग्रह’वृत्तिमें आवश्यक चूर्णि-पंचाशकचूर्णि-योगशास्त्रवृत्ति आदि अनेक शास्त्रानुसार प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करनेका खुलासा लिखा है, इसी तरहसे आत्मार्याधियोंको अपने गच्छका या गुरुकाभी झूठ पक्षपातको त्याग करके प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावहीकी जिनाज्ञानुसार सत्य बातको आवश्यकमेवही ग्रहण करना उचित है।

न्यायरत्नजी शांतिविजयजीने महानिशीथ, दशवैकालिकादिक शास्त्रोंके भिन्न २ अपेक्षावाले अधूरे २ पाठोंसे शास्त्रकारमहाराजोंके

[१११]

अभिप्रायविरुद्ध होकर सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते-का स्थापन करनेके लिये 'खरतरगच्छ समीक्षा' में अनेक तरहसे शास्त्रविरुद्ध व कुयुक्तियोंसे अनर्थ किये हैं, उसका खुलासा ऊपरके लेखसे पाठकगण स्वयं विचार लेंगे। इसी तरहसे आनंदसागरजीने 'धर्म संग्रह' की प्रस्तावनामें, चतुरविजयजीने 'संबोधसत्तारप्रकरण वृत्ति' की टिप्पणिकामें, श्रीकांतिविजयजी अमरविजयजीने 'जैनसिद्धांतसामान्यारो' में, धर्मसागरजीने इरियावही षट्त्रिंशिका-प्रवचन परीक्षादिकमें और भी कोई भी महाशय कोई भी ग्रंथमें सामायिकमें प्रथम करेमिभंते पीछे इरियावही करनेका निषेधकरके, प्रथम इरियावही पीछे करेमिभंते स्थापन करनेवाले सब शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा करनेवाले ऊपरके लेखसे समझ लेने चाहिये।

और पर्युषणासंबंधी, तथा छ कल्याणक संबंधी भी न्यायरत्नजीने अनेक शास्त्रविरुद्ध और कुयुक्तियोंके संग्रहसे पेसेर ही अनर्थ किये हैं, उन सबका खुलासा समाधान पूर्वक निर्णय इसी ग्रंथमें और इस ग्रंथके प्रथम भागकी भूमिकाके ४७ प्रकरणोंमें और सुबोधिकादिककी २८ भूलोंवाले लेखमें अच्छी तरहसे खुलासा सहित छप चुका है। इसलिये यहां पर फिरसे विशेष लिखनेकी कोई जरूरत नहीं है, सत्य तत्वाभिलाषी पाठक गण वहांसे समझ लेंगे। और भी न्यायरत्नजीने श्रीअभयदेवसूरिजी संबंधी व तिथि संबंधी जो जो शास्त्र-विरुद्ध बातें लिखी हैं, उन सबका खुलासा श्रीमान् पण्यासजी श्री केशर मुनिजीने 'प्रश्नोत्तरमंजरी' के तीनों भागोंमें अच्छी तरहसे छपवाकर प्रसिद्ध किया है, उनके वांचनेसे सब खुलासा हो जावेगा। और मैं भी तीसरे भागकी उद्धोषणमें थोड़ासा नमूनारूप लिखूंगा तब वहां जैनमुनियोंको रेल विहार निषेध, व व्याख्यानके समय मुह पत्तिका बांधना और देशकालानुसार विशेष लाभ जानकर स्त्री-पुरुषोंकी समामें साध्वियोंको धर्म शास्त्रका व्याख्यान करना [धर्म का उपदेश देना] वगैरह बातों संबंधी भी खुलासा लिखनेमें आवेगा। पाठक गण वहांसे सर्व निर्णय समझ लेना। इति शुभम्।

विक्रम संवत् १९७८ वैशाख वदी पंचमी बुधवार.

हस्ताक्षर श्रीमान्-उपाध्यायजी श्रीसुमतेसागरजीमहाराजके लघु शिष्य मुनि--मणिसागर. जैन धर्मशाला, खानदेश—धूलिया.

मुनि महाराज श्रीसुमति सागरजीके लघु शिष्य



मुनि श्रीमणिसागरजी इस ग्रन्थके लेखक ।
 ज्ञाति वीशापोरवाल । वड़गांम मारवाड़ ।
 मं सारीपन्न श्रीतपगच्छ दीक्षा श्रीस्वरतरगच्छ मे
 जन्म संवत् १८४३ । दीक्षा १८६० ।

॥ ओम् ॥

॥ श्रीपञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः ॥

श्रीपर्युषणा निर्णय नामाग्रंथः प्रारभ्यते

नत्वा श्रीशासनाधीशं, विघ्न व्यूह विदारणं,
पर्युषणादि कार्याणां निर्णयः क्रियते खलु ॥१॥
आत्मार्यिनाञ्च लाभाय, पाखण्ड पथ शान्तये
वाणी गुरु प्रसादेन, शास्त्रयुक्त्यनुसारतः ॥२॥ युग्मम्

विघ्नोंके समूहको नाश करने वाले शासन नायक श्रीवर्द्ध-
मानस्वामीको नमस्कार करके श्रीसरस्वती देवी तथा श्रीगुरु
महाराजके प्रसादसे, शास्त्रोंके प्रमाण पूर्वक तथा युक्तियोंके
अनुसार, आत्मार्यि भव्यजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी प्राप्ति रूप
लाभके वास्ते और उत्सूत्रपरूपणा रूप पाखण्डमार्गकी शा-
न्तिके लिये श्रीपर्युषणपर्यादि सम्बन्धी कार्योंका निश्चयके साथ
निर्णय करता हूँ। सो इस ग्रन्थमें सम्बन्ध तो मुख्य करके
अधिक भासके ३० दिनोंकी गिनतीके प्रमाण करनेका है।
और दो आवण अथवा दो भाद्र पद होनेसे आषाढ़ चौमासी
से ५० दिने दूसरे आवणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें श्रीपर्यु-
षणपर्याका आराधन करने सम्बन्धी निर्णयरूप कथन कर-
नेका इस ग्रन्थमें मुख्य विषय है और वर्तमानकालमें गच्छोंके
पक्षपातसे आपसमें जूदी जूदी परूपणाके होनेसे भोले-
जीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी शुद्ध अर्द्धामें मिथ्यात्वरूप भ्रम
पड़ता है, उसीको निवारण करनेके लिये पञ्चाङ्गी प्रमाण पूर्वक
युक्ति अनुसार इस ग्रन्थकी रचना करता हूँ, सो इसको

(२)

अवलीकन करनेसे असत्यको छोड़कर सत्यको ग्रहण करके मोक्षामिलायी जन अपने अःत्म कल्याणमें उद्यत करें, एही इस ग्रन्थकारका तथा इस ग्रन्थका मुख्य प्रयोजन है। और इस ग्रन्थका अधिकारी तो वही होगा जो कि अपने गच्छ संघी परंपराके पक्षपातका कदाग्रह रहित तथा जिनाज्ञा इच्छक और शास्त्रोक्त शुद्ध व्यवहारको अङ्गीकार करनेवाला तम्य-क्वधारी मोक्षामिलायी, नतु अभिनिवेशिक मिथ्यात्वो बहुलसंसारी गड्ढरीह प्रवाही।

भङ्गलाचरण और सम्बन्ध चतुष्टय कहे बाद सर्वज्ञान पुरुषोंको निवेदन करनेमें आता है कि-वर्तमानकालमें संवत् १९६६ के लौकिक पञ्चाङ्गमें दो श्रावण हीनेमें श्री-सरतर गच्छादिवाले पञ्चाङ्गी प्रमाण पूर्वक तथा श्रीपूर्वाचार्योंकी आज्ञामुजब आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने दूतरे श्रावणमें श्रीपर्युषणपर्वका आराधन करते हैं जिन्हेंको प्रथम श्रीधर्मविजयजीने अपनी सति कल्पनासे कोई भी शास्त्रके प्रमाण बिना जैनपत्राद्वारा आज्ञा भङ्गका दूषण लगाकरके कुसंपके दृष्टका बीज लगाया तथा प्रत्यक्ष श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें यावत् ८० दिने श्रीपर्युषणपर्वका आराधन करके भी मायावृत्तिसे आप आज्ञाके अराधक बनना चाहा, तथा उन्हींकाही अनुकरण करके दूसरे काशी से श्रीधर्मविजयजीने अपने गिण्य विद्याविजयजीके नामसे 'पर्युषणा विचार' का लेख प्रगट कराया जिसमें भी दसूडा भाषणोंका तथा कुयुक्तियोंका संग्रह करके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे शास्त्रोंके आगे पीछेके पाठोंको छोड़करके बिना सम्बन्धके झूठे झूठे पाठ लिखकर शास्त्रकार महारजोंके

(३)

अभिप्रायसे विरुद्ध होकरके दूसरे आराधनमें ५० दिने श्रीपर्युषण पर्यंका आराधन करने वालोंपर खूबही आक्षेपोंकी बड़े जोरसे वर्षा करी और पञ्चाङ्गोंके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको उत्थापन किये और जो संप्रसंगिककार्य होते थे जिन्होंने विघ्नकारकलेखोंकी १० पृष्ठकी पुस्तक प्रगट कराके कुसंपके वृक्षको उत्पन्न कराया और तीसरे जैन पत्रवालेने भी इन्होंनेही अनुसार चल करके दूराग्रहके हठसे पर्युषणा विचारके लेखका गुजरातीमें भाषान्तर जैनपत्रके २३ वें अङ्ककी आदिमें प्रगट कराके उत्थापन साधनोंके फल विनाश प्राप्त करनेके लिये और गच्छरदाग्रहके भगड़ेको बढ़ानेके लिये श्रीजिनाज्ञाके आराधक पुत्रोंको अनेक तरहसे आक्षेपरूप कटुक वचन लिखके कुसंपके वृक्षको बढ़ानेका कारण किया ।

इनतीनोंमहाशयोंके इसतरहकेलेखोंको मैंने अवलोकन किये तो जिनाज्ञा विरुद्ध एकान्त अपने गच्छ संबन्धी आग्रहके पक्षगतसे दूसरोंको सिध्दा दूषण लगानेवाले और आत्मार्थि भव्यजीवोंको श्रीजिनाज्ञाका आराधन करनेमें विघ्न रूप मालूम हुए तब इस विघ्नको दूर करनेकी इच्छाहुई इसलिये मोक्षामिलायी जिनाज्ञा इच्छक भव्य जीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी शुद्ध श्रद्धामें दृढ़ करनेके वास्ते और उत्तुंगभाषक गच्छरदाग्रहियोंको हितशिक्षाके लिये शास्त्रानुसार तथा शास्त्रानुसार पूर्वक श्रीपर्युषणपर्यंका आराधन सम्बन्धी वर्तमानिक विश्र्वादका निर्णय करना उचित समझा सो करके तत्त्वान्वेति पुरुषोंको दिखाता हूँ :—

श्रीगणधर महाराज कृत श्रीनिशीय सूत्रमें १, श्रीपूर्वाचार्यकी कृत श्रीनिशीयसूत्रके छपु भाष्यमें २, तथा बृहद्वा-

(४)

ष्यमें ३, और श्रीजिनदासगणि महत्तराचार्यजी पूर्वधर कृत
 श्रीनिशीथसूत्रकी चूर्णिमें ४, श्रीभद्रबाहु स्वामीजी कृत श्री-
 दशाश्रुत स्कन्ध सूत्रमें ५, श्रीपूर्वाचार्यजी कृत तत्सूत्रकी चूर्णिमें ६,
 श्रीपाश्चंद्रगच्छके श्रीब्रह्मपिंडीकृत तत्सूत्रकी वृत्तिमें ७, श्रीपूर्वा
 चार्यजी कृत श्रीवृहत्कल्पसूत्रके लघुभाष्यमें ८, बृहद्भाष्यमें ९, तथा
 चूर्णिमें १०, और श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्तिसूरिजी कृत श्रीवृ-
 हत्कल्पसूत्रकी वृत्तिमें ११, श्रीसुधर्मस्वामीजी कृत श्रीसमवा-
 यांगजी सूत्रमें १२, तथा श्रीखरतरगच्छ नायक सुप्रसिद्ध श्रीम-
 बांगीवृत्तिकार श्रीअभयदेव सूरिजी कृत तत्सूत्रकी वृत्तिमें
 १३, और उक्त महाराज कृत श्रीस्थानांगजीसूत्रकी वृत्तिमें १४,
 श्रीभद्रबाहुस्वामीजी कृत श्रीकल्पसूत्रमें १५, तथा निर्युक्तिमें
 १६, और श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत श्रीकल्प-
 सूत्रकी श्रीसंदेहविषयविधि वृत्तिमें १७, तथा निर्युक्तिकीवृत्तिमें
 १८, और विधिप्रपा नाम श्रीसमाचारी ग्रन्थमें १९, और
 श्रीखरतरगच्छके श्रीलक्ष्मीवल्लभगणिजी कृत श्रीकल्पसूत्रकी
 कल्पद्रुमकलिकावृत्तिमें २० तथा श्रीखरतरगच्छके श्रीसमय-
 सुन्दरजी कृत श्रीकल्पकल्पलतावृत्तिमें २१ और उक्त महा-
 राज कृत श्रीसमाचारीशतकनाम ग्रन्थमें २२, श्रीतपगच्छके
 श्रीकुलभण्डनसूरिजी कृत श्रीकल्पावचूरिमें २३, तथा श्रीत-
 पगच्छके श्रीधर्मसागरजी कृत श्रीकल्पकिरणावली वृत्तिमें २४,
 और श्रीअयविजयजी कृत श्रीकल्पदीपिकावृत्तिमें २५, और
 श्रीविनयविजयजी कृत श्रीसुषोचिकावृत्तिमें २६, श्रीसंधवि-
 जयजी कृत श्रीकल्पप्रदीपिकावृत्तिमें २७, श्रीविजयविमल
 गणिजी कृत श्रीगच्छाचारपयन्नाकीवृत्तिमें २८ श्रीअञ्जलगच्छके
 श्रीचन्द्रसागरजी कृत श्रीकल्पावचूरिरूपवृत्तिमें २९, श्रीखरतर

(५)

गच्छके श्रीजिनपतिसूरिजी कृत श्रीसमाचारीय्यमें ३० तथा श्रीसंघपट्टकवृहद्वृत्तिमें ३१ और श्रीहर्षराजजी कृत श्रीसंघ-पट्टककी लघुवृत्तिमें ३२, और श्रीपूर्वाचार्योंके बनाये तीन श्रीकल्पान्तरवाच्योंमें ३५ इत्यादि पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें आषाढ़ चौमासीसे ५० दिन जानेसे अवश्यमेव पर्युषणा करना कहा है उसीकेही अनुसार तथा श्रीपूर्वाचार्योंकी आज्ञा-मुजब वत्तमानकालमें दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणमें अथवा दो भाद्रपद होनेसे प्रथम भाद्रपदमें ५० दिने पर्युषणा करनेमें आती है इसी विषयकी पुष्टिके लिये पाठक-वर्गकी निःसन्देह होनेके वास्ते शास्त्रोंके थोड़ेसे पाठ भी लिख दिखाता हूं ।

१ श्रीकल्पसूत्रके पृष्ठ ५३ से ५४ तकका पर्युषणा संबंधी पाठ नीचे लिखे मुजब जानो, यथा—

तेणं कालेणं तेणं समणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवी सहराए मासे विहक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥१॥ सेकेणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राए मासे विहक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ । जठणं पाएणं, अगारीणं अगाराइं, कडियाइं, उक्कंपियाइं, खन्नाइं, लिताइं, घट्टाइं, मट्ठाइं, संधूपियाइं, खाउ दगाइं, खायनिट्ठमणाइं, अप्पणो अट्ठाए कडाइं, परिभुत्ताइं, परिणामियाइं भवंति ॥ सेतेणट्ठेणं एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसहराए मासे विहक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥२॥ जहाणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राए मासे विहक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ । तहाणं गणहरावि वासाणं सवीसइ राए मासे-वइक्कंते वासावासं पज्जोसवंति ॥ ३ ॥ जहाणं गणहरावि

(६)

वामाणं सखीसहराणुमासे जाव पज्जोमविति । तद्वाणं गणहर
सीसावि वामाणं जाव पज्जोमविति ॥५॥ जहाणं गगहरमीसा
वामाणं जाव पज्जोमविति । तद्वाणं थेरावि वामावासंजाव
पज्जोमविति ॥५॥ जहाणं थेरा वामाणं जाव पज्जोमविति ।
तद्वाणं जे इमे अज्जताए ससणा निग्गंथा विहरंति एएवि-
अणं वामाणं जाव पज्जोमविति । ६॥ जहाणं जे इमे अज्ज-
ताए ससणा निग्गंथावि वामाणं सखीसहराए मासे विह-
क्कुत्ते वामवासं पज्जोमविति । तद्वाणं अम्हंपि आयरिया
उवज्झाया वामाणं जाव पज्जोमविति ॥७॥ जहाणं अम्हंपि
आयरिया उवज्झाया वामाणं जाव पज्जोमविति । तद्वाणं
अम्हेवि वामाणं सखीसहराए मासे विहक्कुत्ते वसावासं
पज्जोमवेनो । अंतरावियसे कप्पइ नोसे कप्पइ तं रयणिं
उवायणावित्तए ॥८॥ इत्यादि

भाषार्थः—तिसकाल तिससमयके विधे श्रमणभगवान्
श्रमिहाश्रीरस्वामी वर्षा संबंधी आषाढ़ चौमासीसे बीस
दिन सहित एक मास याने ५० दिन जानेसे वर्षावासमें
पर्युषणा करते भये, ॥१॥ यहां पर शिष्य पूछता है कि
हे भगवान् किन कारणसे ऐसा कहते हो तब गुरु महाराज
उत्तर देते हैं कि प्राय करके गृहस्थ लोग भगवान् का महा-
त्सव जान करके इस समय वर्षा बहुत होगी ऐसा विचार
करके अपने घरोंको चटाइयोंसे आच्छादित करेंगे, चूनादि
से सेवेदी करेंगे, घास तृणादिसे उपरमें बंदोबस्त करेंगे,
भीखरसे लिपन करेंगे आसपासमें बाड़ वगैरहने नाबतता करेंगे,
सुई नीची भूमीको नोड़कर बराबर करेंगे, पाषाणादिसे धस
करके धीकणी करेंगे, मकानोंको धूरादिसे सुगंधयुक्त करेंगे और

(9)

अपने धरोंके ऊपरका वर्षा संबंधी पानी निकलनेके लिये प्रणा लिका करेंगे, और सब घरका पानी निकलनेके वास्ते नवीन खाल बनावेंगे, अथवा पहिलेका खाल होवे उसीका सुधारा करेंगे, और उपयोगी सवित वस्तुओंको अवितकरके रखेंगे, इत्यादि अनेक तरहके आरम्भादि कार्य पहिलेनेही अपने लिये करलेवेंगे इसलिये उपरोक्त दोषोंका निमित्त कारण न होने के वास्ते आपाढ़ चौमासीसे १ मास और २० दिन गये बाद भगवान् पर्युषणा करते थे ॥२॥ जैसे १ मास और २० दिन गयेबाद भगवान् पर्युषणा करते थे तैसेही गणधरमहाराजभी १ मास और २० दिन गयेबाद पर्युषणा करते थे ॥३॥ जैसे गणधर महाराज पर्युषणा करते थे, तैसेही गणधरमहाराजके शिष्य प्रशिष्यादि भी पर्युषणा करने थे ॥४॥ जैसे गणधर महाराजके शिष्यादि पर्युषणा करने थे तैसेही स्थविर भी करते थे ॥५॥ जैसे स्थविर करते थे तैसेही वर्तमानमें अमण निर्ग्रन्थ विवरने वाले हैं सो भी उपरोक्त विधिके अनुसार पर्युषणा करते हैं ॥६॥ जैसे वर्तमानमें अमण निर्ग्रन्थ पर्युषणा करते हैं तैसेही हमारे आचार्य उपाध्याय ५० दिने पर्युषणा करते हैं ॥७॥ जैसे हमारे आचार्य उपाध्याय ५० दिने पर्युषणा करते हैं तैसेही हमभी आपाढ़ चौमासीसे ५० दिने पर्युषणा करते हैं जिसमें भी कारण योगे ५० दिन के भीतर पर्युषणा करना कल्पता है परन्तु कारण योगसे ५० वे दिनकी रात्रिकोभी उल्लंघन करना नहीं कल्पता है, याने ५० वें दिनकी रात्रिको उल्लंघन करनेवाले को जिनका विरुद्ध दूषणकी प्राप्ति होवे ।

अब देखिये उपरोक्त सुप्रसिद्ध श्रीकल्पसूत्रानुसार दूसरे

(८)

आवणमें पर्युषणा करनेवालोंको वृथा द्वेषबुद्धिसे आज्ञा-
भङ्गका दूषण लगाना और दो आवण होते भी आषाढ़
बीजासीसे दो मास उपर बीस दिन याने ८० दिने (प्रत्यक्ष
पंचाङ्गी बिरुद्ध अपनी मति कल्पनासे) पर्युषणा करके भी
आज्ञाके आराधक बनना सो गच्छेद्दाग्रहि उत्सूत्र आवण
करनेवालोंके सिवाप और कौन होगा सो विवेकी सज्ज-
नोंको विचार करना चाहिये । और दो आवण होतेभी
भाद्रपदमें तथा दो भाद्रपद होनेसे भी दूसरे भाद्रपदमें
८० दिने पर्युषणा करनेवाले महाशयोंको हर वर्ष पर्युषणा
में प्राय करके सब जगह पर बंचाता हुआ मूलमन्त्ररूप
उपरोक्त सूत्रपाठको विवेक बुद्धिसे विचारके असत्यको छोड़
कर सत्यको ग्रहण करना चाहिये ।

और अब ऊपरके सब पाठकी सब व्याख्याओंके सबपाठ
बहुत विस्तार हो जानेके कारणसे नहीं लिखता हूँ परंतु
(अन्तरा वियसे कप्पइ नेसे कप्पइ तं रयणिं उवायणा
वित्तए) इस अन्तके पाठकी थोड़ीनी व्याख्याओंके पाठ
लिखके पाठक वर्गको विशेष निःसन्देह होनेके लिये लिख
दिखलाता हूँ ।

२ श्रीखरतरगच्छके श्रीमसयसुन्दरजी कृत श्रीकल्पकल्प-
लता वृत्तिके पृष्ठ १११ से ११२ तकका तत्पाठः—

अन्तरावियसेकप्पइ पज्जोमवित्तए । अन्तरापि च अर्वा-
गपि कल्पते पर्युपितुं, “नोसेकप्पइ तं रयणिं” परं न कल्पते
तां रजनींभाद्रपद शुरुपञ्चमीं, “उवाइणावित्तएत्ति,” अत्ति-
कमितुं । उषनिवासे इत्यागमिकोधातुः, इह पर्युषणाद्विधा-
गृहिजाता गृह्यजाताचः तत्र गृहिणामज्जातायां वर्षा योग्य

(९)

पीठफलकादौ प्राप्तं कल्पोक्तद्रव्यं, क्षेत्र, काल, भाव, स्थापना क्रियते, सा स्थापना आषाढपूर्णिमायां, योग्यक्षेत्राभावे तु पञ्च पञ्च दिनवृद्ध्या यावद्भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीं एकादशसु पर्व तिथिषु क्रियते, ग्रहिजातायां तु यस्यां साम्बत्सरिकातिचारा-लोचनं १, लुञ्चनं २, पर्युषणायां कल्पसूत्राकर्णनं वा कथनं ३, वैत्यपरिपाटी ४, अष्टमंतपः ५, साम्बत्सरिकंचप्रतिक्रमणं क्रियते, यथाचव्रत पर्यायवर्षाणि गण्यन्ते सा भाद्रपदशुक्ल-पञ्चम्यां, युगप्रधान कालकसूर्यादेशाच्चतुर्थ्यामपि जनप्रकटा कार्या यत्तु अभिवर्द्धितवर्षे दिनविंशत्या पर्युचितव्यं, तत्सिद्धान्तटिप्पणानुसारेण तत्रहि युगमध्येपौषो युगान्तेच आषाढ एव वर्द्धते, तान्येतानि च अधुना न सम्यग् ज्ञायन्ते अतो दिनपञ्चाशतैव पर्युचितव्यम् ॥

३ और श्रीखरतरंगचक्रके श्रीलक्ष्मीवल्लभगणिजी कृत श्रीकल्पद्रुमकलिकावृत्तिके पृष्ठ २४२सै२४३ तकका तत्पाठः—

(सूत्रम्) अन्तरावियसे कप्पइ-इत्यादि, अर्थ-अन्तरापिच अर्वांगपि महाहायविशेषात् भाद्रपद शुक्लपञ्चमीतः इतः कल्पते पर्युषणापर्वकृतं, परं न कल्पते तां रजनीं भाद्रपद शुक्ल-पञ्चमीं अतिक्रमिषु । पूर्वं उत्सर्गनयः प्रोक्तः अन्तरावियसे इत्यादिना अपवादनयः प्रोक्तः । एकादशसु पञ्चकेषु कुर्वत्सु आषाढ पूर्णिमादित्रये प्रथमं पर्व, एवमग्रे पञ्चभिः पञ्चभिर्दिवसैः एकैकं पर्व, एवं कुर्वतां साधूनां पञ्चाशद्दिनैः एकादश पर्वाणि भवन्ति, एतेषु एकादशपर्वदिवसेषु पर्युषणापर्वं कर्तव्यं । पर्वसु एकस्मिन्दिने न्यूनैः कारण विशेषेण पर्युषणा कर्तव्या, परं एकादशभ्यः पर्वभ्यः उपरि अधिके एकस्मिन्दिनि दिने गते पर्युषणा पर्वं न कर्तव्यमुपरिदिनं नोल्लङ्घनीय मित्यर्थः ।

(१०)

अधिकमासेऽपि गणनीय अधिकमासाभावे तु सरलमास गण-
नया आषाढचतुर्मासात् पञ्चाशद्दिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमी दिने
पर्युषणा पर्व भवति, श्रीकालिकाचार्याणांभादेशात् भाद्र-
पदशुक्लपंचमीतः इतः चतुर्थ्यांक्रियते, भाद्रपदशुक्लपञ्चम्या
रात्रिमुल्लङ्घ्य अग्रेपर्युषणा न कल्पते अनादि सिद्धानां तीर्थे-
कराणां आज्ञया । इदानीमपि चतुर्थ्या पर्युषणां कुर्वतः
साधवो गीतार्थास्तीर्थेकराज्जाराधका ज्ञेया ॥

४ और श्रीतपगच्छके श्रीकुलमंडन सूरिजीकृत श्रीकल्पा-
वधूरिके पृष्ठ ११२ में तत्पाठः—

अन्तरा वियसे कप्पइ, अंतरापि च अर्वांगपि कल्पते,
“पण्णोरुवेयउ” पर्युषितुं परं “नोसेकप्पइ” न कल्पते
“तं रयणिं उवायणा वित्तए” तारंजनीं भाद्रपद शुक्लपञ्चमीं अ-
तिक्रमितुं ॥ उषनिवासे इत्यागनिकोधातुः ॥ इहहि पर्पु-
षणा द्विधा गृहिज्ञाताज्ञातभेदात् तत्र गृहिणा न ज्ञाता यस्यां
वर्षायोग्य पीठ फलकादौ प्राप्तं यत्नेन कल्पोक्त द्रव्य, क्षेत्र,
काल, भाव, स्थापना क्रियते सा आषाढपूर्णिमायां, योग्य-
क्षेत्राभावे तु पंच पंच दिन वृद्ध्या यावद्भाद्रपदसित पंचमीं,
साधैकादशशु पर्वतिथिषु, क्रियते, गृहिज्ञाता यस्यां तु सांव-
त्सरिकातिचारालोचनं, लुञ्चनं, पर्युषणायां कल्पसूत्रकथनं,
वैश्यपरिपाटी, अष्टमं, सांवत्सरिकप्रतिक्रमणंचक्रियते, पयाच
व्रतपर्याय वर्षाणि गणयन्ते, सा नभस्य शुक्लपञ्चम्यां कालक-
सूर्यादेशाच्चतुर्थ्यामपि जनप्रकटाकार्या, यत्पुनरभिवर्द्धित
वर्षे दिनविशत्या पर्युषितव्यमित्युच्यते, तत्सिद्धान्त टिप्प-
नानुसारेण तत्रहि युगमध्ये पीषो युगान्ते आषाढ एव वहुंते
नान्येमासास्तानिचअधुना न सम्यग् ज्ञायन्तेऽतो दिन पञ्चा-
शतैव पर्युषणा सङ्गतेतिवृत्ताः ॥

(११)

५ और श्रीतपगच्छके श्रीधर्म्मसागरजी कृत श्रीकल्पकिर-
णावलीवृत्तिके पृष्ठ २५७ से २५८ तकका तत्पाठः—

तत्र अन्तरापिच अर्वागपि कल्पते पर्युषितुं परं न
कल्पते तां रजनीं भाद्रपद शुक्ल पंचमीं, “उवायणा वितएत्ति”
अतिक्रमितुं, उषनिवासे इत्यागनिकोधातुः। वस निवास इति
गणसंश्रन्धीवाधातुः। इहहि पर्युषणा द्विविधा गृहि ज्ञाता-
ज्ञातभेदात् तत्र गृहिणागज्ञाता यस्यां, वर्षायोग्य पीठकल
कादौ प्राप्तयेतनेन कल्पोक्तद्वय, क्षेत्र काल, मास, स्थापनाक्रियते
सा चाषाढपूर्णिमायां, योग्यक्षेत्राभावेत्, पंच पंच दिन वृद्ध्या
दशपर्वतिथि क्रमेण यावत् भाद्रपदसितपंचमीमेवेति गृहि-
ज्ञाता तु द्विधा साम्बत्सरिक कृत्यविशिष्टा गृहिज्ञातमात्राच्च
तत्र साम्बत्सरिक कृत्यानि, “सांबत्सरप्रतिक्रान्ति १ लुच्चनं २
चाष्टवन्तपः ३ सर्वाहर्द्धक्षिपूत्राच ४ सङ्कस्य क्षामणं मिथः ५”
एतत्कृत्य विशिष्टा भाद्रपदसितपंचम्यां कालकाचार्यादेशाच्च-
तुर्ध्यामपि जनप्रकटाकार्या, द्वितीया तु अभिवर्द्धितवर्षे चातु-
र्मासिक दिनादारभ्य विंशत्यादिनैः वयमत्रस्थितास्म इति
पृच्छतां गृहस्थानां पुरो वदन्ति सातु गृहिज्ञात मात्रैव,
तदपि जैनटिप्पनकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पीषो युगा-
स्तेषाषाढ एव वर्द्धते नाऽन्येमासाः तच्चाधुना सम्यग्ज्ञाय-
तेऽतः पंचाशतैवदिनैः पर्युषणासङ्गतेति वृद्धाः ॥

६ और श्रीतपगच्छके श्रीजयविजयजी कृत श्रीकल्पदीपि-
का वृत्तिके पृष्ठ १३० से तत्पाठः—

अन्तरापिचसेकल्पइति, अन्तरापि च अर्वागपि क-
ल्पते पर्युषितुं, परं न कल्पते तां रजनीं भाद्रपदशुक्लपंचमीं
“उवायणा वितएत्ति” अतिक्रमितुं, उषनिवासे इत्यागनि

(१२)

को धातुः, वस निवास इति गणसंबंधी धातुः। इह हि पर्युषणा द्विविधा गृहिज्ञाताज्ञातभेदात् तत्र गृहिणामज्ञाता यस्यां वर्षायोग्य पीठ फलकादौ प्राप्ते कल्पोक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, स्थापना क्रियते, सा च आषाढपूर्णिमायां योग्यक्षेत्राभावे तु पंच पंच दिन वृद्ध्या दशपर्वतिथि क्रमेण यावत् भाद्र पदसित पंचमीमेवेति। गृहिज्ञाता तु द्विधा सांवत्सरिककृत्य-विशिष्टा गृहिज्ञातमात्रा च तत्र सांवत्सरिक कृत्यानि, “सांवत्सरिकप्रतिक्रमणं १, लुंचनं २, अष्टमं तपः ३, चैतदपरिपाटी, संचक्षामणं” एतत्कृत्यविशिष्टा भाद्रपदसित पंचम्यां कालकाचार्योद्देशाच्चतुर्थ्या जनप्रकट कार्या, द्वितीया तु अग्निवर्द्धितवर्षे चातुर्मासिकदिनादारभ्य विंशत्यादिनैः वयमग्नस्थितास्म इति पृच्छतां गृहस्थानां पुरो वदन्ति सा तु गृहिज्ञातमात्रव तदपि जैनटिप्पणकानुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगांते च आषाढ एव वर्द्धते नान्येमासाः तच्चाधुना सम्यग् न ज्ञायते अतः पंचाशतैवदिनैः पर्युषणासङ्गतेति वृद्धाः ॥

१ और श्रीतपगच्छके श्रीविनयविजयजी कृत श्रीसुख-
बोधिकावृत्तिके पृष्ठ १४६ में तथा च तत्पाठः—

अंतरावियसेकप्पइ, अंतरापिचअर्वांगपि कल्पते पर्युषितुं परं न कल्पते तां रात्रिं भाद्रपदशुक्लपंचमीं, “उवायणा वित्तपत्ति” अतिक्रमितुं, तत्र परिणामस्त्येन उषणं वसनं पर्युषणा, साद्विधा गृहस्थैज्ञाता गृहस्थैरज्ञाता च, तत्र गृहस्थैरज्ञाता यस्यां वर्षायोग्य पीठफलकादौ प्राप्ते कल्पोक्त-द्रव्य क्षेत्र काल भाव स्थापना क्रियते सा आषाढपूर्णिमायां, योग्य क्षेत्राभावे तु पंच पंच दिन वृद्ध्या दशपर्वतिथि क्रमेण यावत् भाद्र पद सितपंचम्याम्, एवं गृहिज्ञाता तु द्विधा

(१३)

साम्बत्सरिककृत्याविशिष्टा गृहिज्ञातमात्राच, तत्र साम्ब-
त्सरिककृत्यानि 'सांवत्सर प्रतिक्रांति १ लुञ्चनं २ चाष्ट-
मंतपः ३ न शीहंदूक्तिपूजाय ४ संचयसामर्णमिषः ५ ॥ १ ॥'
एतत्कृत्याविशिष्टा भाद्रपदमित पंचम्यामेव कालिकाचार्या-
देशाच्चतुर्ष्यामपिकार्या, केवलं गृहिज्ञातातु सा यद् अभि-
षट्तिनवर्षे वातुर्मासिकदिनादरभ्य विंशत्यादिनैर्वयमत्रस्थिता-
स्म इति पृच्छतां गृहस्थानां पुरोवदन्ति तदपि जैनटिप्पनका-
नुसारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगंतेचाषाढएव वर्द्धते
नाम्येमासास्तटिप्पनकन्तु अधुनासम्यग् न ज्ञायते अतः
पंचाशतैवदिनैः पर्युषणायुक्तेतिवृद्धाः ॥

उपरीक्त श्रीखरतरगच्छ तथा श्रीतपगच्छ उन दोनों गच्छ-
वालोंके उ पाठोंका संक्षिप्त भावार्थः—अंतरा विषसे कप्पइ ।
अन्तरापिच अर्वागपि कल्पते पर्युषितुं इत्यादि
कहनेसे-जो आपाढ़ चौमासीसे ५० दिने पर्युषणा करनेमें
आती है जिसमें कारण योगे ५० दिनके अंदर ४९ वे दिन
पर्युषणा करना कल्पता है पन्तु ५० वे दिनकी जो भाद्रपद
शुक्लपंचमीकी रात्रि है उसीको उल्लंघन करना नहीं कल्पता है
और उषधातुमे उषणा बनता है तथा परिउषसर्ग लगनेसे
पर्युषणा बन जाता है सो उषधातु निवास अर्थमें वर्तती है
अथवा गण संबंधी वस धातु भी निवासार्थमें वर्तती है और
ग्रामानुग्राम विहार करनेका निवारण करके सर्वथा प्रकारसे
वर्षाकाले एकस्यानमें निवास करना सो पर्युषणा कही जाती
है वो पर्युषणा इहां दो प्रकारकी है गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई
तथा गृहस्थी लोगोंकी नहीं जानी हुई जिसमें गृहस्थी लोगों
की नहीं जानी हुई पर्युषणा जिसमें वर्षाकालके उचित

(१४)

पाट पाटलादि द्रव्योंका योग बननेसे यत्र करके शास्त्रोक्त विधिसे द्रव्य क्षेत्र काल और भावकी स्थापना करनी जिसमें उपयोगी वस्तुओंका संग्रहसो द्रव्य स्थापना, और विहारका निषेध परन्तु आहारादि कारणसे मर्यादा पूर्वक जानेका नियम सो क्षेत्रस्थापना, और वर्षाकालमें जघन्यसे ७० दिन तक तथा सध्यमसे १२० दिन तक और उत्कृष्टसे १८० दिन तक एक स्थानमें निवास करना सो कालस्थापना, और रागादि कर्मबन्धके हेतुओंका निवारण करके इरियासमिति आदिका उपयोग पूर्वक वर्तव्य करना सो भावस्थापना, इस तरहसे वो द्रव्यादि चतुर्विध स्थापना आषाढ़ पूर्णिमामें करनी परन्तु योग्य क्षेत्रके अभावमें तो आषाढ़ पूर्णिमासे पांच पांच दिनकी वृद्धि करके दशपंचक तिथियोंमें क्रममें यावत् भाद्रपद सुदी पंचमी तक, आषाढ़ पूर्णिमासे दशपंचकमें परन्तु आषाढ़ सुदी १० भी के निवासकी गिनतीसे एकादशपंचकमें जहां द्रव्यादिका योग मिले वहां पूर्वोक्त कहे वैसे दोषोंका निमित्त कारण न होनेके लिये अज्ञात पर्युषणा स्थापन करनी और आषाढ़ चौमासीसे ५०दिने गृहस्थी लोगोंकीजानी हुई पर्युषणा जिसमें वार्षिकातिचारोंकी आलोचना करनी, केशोंकालुंघन करना, श्रीकल्पसूत्रका सुनना वा पठनकरना, अष्टमत्प करना, चैत्यपरिपाटी (जिन मन्दिरोमें दर्शनकरने) और सांख्यसरिक प्रतिक्रमण करना, और सर्वसंघको ज्ञानमें करना और दीक्षापर्यापके वर्षोंकी गिनती करना सो ज्ञातपर्युषणा भाद्रपदशुक्ल पंचमीमें होती थी, परन्तु पुन प्रधान श्रीकालका चार्य्यजीमहाराजके आदेशसे भाद्रशुक्लचतुर्थीके दिन करनेमें आती है। सो गीतार्थों की आचरणा होनेसे श्रीजिनाम्ना

(१५)

मुजबही जाननी सी भाद्र पदकी पर्युषणा मासवृद्धि के अभावसे चन्द्रसंवत्सर संबंधिनी जाननी । और मासवृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित संवत्सरमें तो आषाढचौमासीसे बीस दिन करके याने आषणशुक्लपंचमी को गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई पर्युषणा करनेमें आती थी सो तो जैन सिद्धान्त का टिप्पणानुसार युगके मध्यमें पौषमास और युगके अन्तमें आषाढ़मासकी वृद्धि होती थी परन्तु और किसी भी मासकी वृद्धि का अभाव था । वो टिप्पणा तो अभी इस कोलमें अच्छी तरहसे देखनेमें नहीं आता है इसलिये मासवृद्धि हो तो भी ५० दिनेसे पर्युषणा करनी योग्य है इस तरहसे वृद्धाचार्य कहते हैं अर्थात् मासवृद्धि होनेसे जैनपंचांगानुसार बीस दिने आषणमें पर्युषणा करनेमें आती थी परन्तु जैनपंचांगके अभावसे लौकिक पंचांगानुसार मासवृद्धि दो आषण अथवा दो भाद्रपद होता भी उसीकी गिनती पूर्वक ५० दिने दूसरे आषणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करनेकी प्राचीनाचार्योंकी आज्ञा है इसी ही कारणसे श्रीलक्ष्मीवर्धन गणिजीने अधिकमासकी गिनती पूर्वक ५० दिने पर्युषणा करनेका खुलासा लिखा है । उसी मुजब अतमायिंर्योंको पक्षपात छोड़कर वर्तना चाहिये ।

और श्रीधर्मसागरजी श्रीजयविजयजी श्रीविजयविजयजी इन तीनों महाशयोंके बनाये (श्रीकल्पकिरणवली श्रीकल्प दीपिका श्रीसुखबोधिका इन तीनों वृत्तियोंके) पर्युषणा सम्बन्धी पाठ ऊपरमें लिखे हैं उसीमें इन तीनों महाशयोंने, ज्ञात याने गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई पर्युषणा दो प्रकारकी लिखी है और अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ चौमा-

(१६)

सीसे बीस दिने पर्युषणा करनेमें आती थी उसीको वार्षिक कृत्योत्तरहित केवल गृहस्थ लोगोंके कहने मात्रही ठहराई है सो कदापि नहीं बन सकता है क्योंकि अधिक मास होनेसे बीस दिनकी पर्युषणाकोही जैन पंचाङ्गके अभावसे अधिक मास होता भी ५० दिने पर्युषणा पूर्वाचार्योंने ठहराई है इस लिये बीस दिनकी पर्युषणा कहनेमात्रही ठहरानेसे ५० दिनकी पर्युषणा भी कहनेमात्रही ठहरायेगी और वार्षिक कृत्य उसी दिन करनेका नहीं बनेगा इसलिये जैसे मासवृद्धि के अभावसे ५० दिने ज्ञात पर्युषणमें वार्षिक कृत्य होते हैं तैसेही मासवृद्धि होनेसे बीस दिनकी ज्ञात पर्युषणमें वार्षिक कृत्य मानने चाहिये क्योंकि ज्ञात पर्युषणा एकही प्रकारकी शास्त्रोंमें लिखी है परन्तु बीस दिने ज्ञात पर्युषणा करके फिर आगे वार्षिक कृत्य करे ऐसा तो किसी भी शास्त्रमें नहीं लिखा है इसलिये जहां ज्ञात पर्युषणा वहांही वार्षिक कृत्य शास्त्रोक्त युक्ति पूर्वक सिद्ध होते हैं इसका विशेष विस्तार इनही तीनों महाशयोंके लिखे (अधिक मासकी गिनती निषेध सम्बन्धी पूर्वोपरविरोधि) लेखोंकी आगे समीक्षा होगी वहां लिखनेमें आवेगा ।

अब देखिये बड़ेही आश्चर्यकीधात है कि श्रीतपगच्छके इतने विद्वान् मुनीमंडली वगैरह महाशय उपरोक्त व्याख्याओंको हर वर्ष पर्युषणाके व्याख्यानमें बांचते हैं इसलिये उपरोक्त पाठार्थोंको भी जानते हैं तथापि मिथ्या हठवादसे मोले जीवोंको कदाग्रहमें गेरनेके लिये पीष अथवा आषाढ़के अधिक होनेसे उन्नीसकी गिनती पूर्वक जैनपंचांगानुसार प्राचीनकालमें आषाढ़ चौमासीसे बास दिने अर्धण सुदोमें

(१७)

पर्युषणा होती थी परन्तु जैन पंचांगके अभावसे वर्त्तमान-
कालमें भी लौकिक पंचाङ्गानुसार अधिक मास होनेसे उसीकी
गिनती पूर्वक ५० दिने दूसरे आवर्णमें अथवा प्रथम भाद्र-
पर्युषणा करनेकी पूर्वाचार्यों की मर्यादा है ऐसा उपरोक्त
पाठार्थोंसे खुलासा दिखता है तथापि उपरोक्त पाठार्थोंका
भावार्थ बदला करके मासवृत्तिके अभावसे ५० दिने भाद्र-
पदमें पर्युषणा कही है उसीकोही वर्त्तमानमें मासवृत्ति
देा आवण होते भी ८० दिने जिनाज्ञा विरुद्धका भय न
करते हुए भाद्रपदमें ठहरानेका कृपा आयह करते हैं
सो क्या लाभ प्राप्त करेंगे । तथा उपरोक्त व्याख्याओंमें
“अभिवर्द्धित वर्षे” इस शब्दसे श्रीखरतरगच्छके श्रीसमय
सुन्दरजी तथा श्रीतपगच्छके श्रीकुलसंवनसूरिजी श्रीचर्म-
सागरजी श्रीजयविजयजी श्रीविनयविजयजी इन सभी
महाशयोंके लिखे वाक्यसे अधिक मासकी गिनती प्रत्यक्षपणे
सिद्ध है इसलिये अधिकमासकी गिनती निषेध भी नहीं
हो सकती है तथापि कोई निषेध करेगा तो सप्तसूत्र भाष्यरूप
होनेसे श्रीअनंत तीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी
और अपनेही गच्छके पूर्वजोंकी आज्ञा उल्लंघनका दूषण
लगेगा क्योंकि श्रीअनंत तीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि पूर्वा-
चार्योंने तथा श्रीखरतरगच्छके और श्रीतपगच्छादिके पूर्व-
जोंने अधिकमासके दिनोंकी गिनती पूर्वक तेरह मासोंका
अभिवर्द्धितसंवत्सर कहा है इसका विस्तार आगे शास्त्रोंके
पाठार्थों सहित तथा युक्ति पूर्वक लिखनेमें आवेगा—

और भी ओपाध्वंद्वगच्छके श्रीबल्लभार्थिजी कृत श्रीदशाश्रुत
स्कन्ध सूत्रकी वृत्तिके पृष्ठ ११२ से ११५ तकका पर्युषणा स-
म्बन्धी पाठ यहां दिखाता हूं तथाच तत्पाठ :—

(१८)

तेणं कालेणं तेणं समणमित्यादि । व्याख्यातार्थः वाचा-
 षन्ति आषाढवातुर्मासिक दिनादारभ्य सविंशति रात्रेनासे
 व्यतिक्रान्ते भगवान् “पञ्जोसवेइति” पर्युषणामकार्षीत् ।
 परिसामस्त्येन उषणं निवासः । इत्युक्तेशिष्यः प्रश्नयितुमाह
 सेकेणट्ठेणमित्यादि प्रश्नवाक्यं सुबोधं गुरुराह । जठणमित्यादि
 निर्वद्धवाक्यं यतः णं प्राग्वत् । पणमित्यादि अगारिणां गृह-
 स्थानां, अगाराणि गृहाणिः, कट्टियाइंसि कठयुक्तानि, उक्कं-
 पियाइं-धवलितानि, उक्काइं-तृणादिभिः, लिप्ताइं-लिप्तानि
 उगणाद्यैः क्वचित् गुताइंसि पाठ स्तत्र गुप्तानि वृत्तिकरणं द्वार-
 पिधानादिभिः, घट्टाइं-विषमभूमिभंजनात्, मट्टाइं श्लक्ष्णीकृतानि
 क्वचित्सम द्वाइंसि पाठ स्तत्र समन्तात् सृष्टानि मत्तणीकृतानि,
 संधूपियाइंसि-सौगन्ध्यापादनार्थं धूपनैर्वासितानि, खातो-
 दगाइं कृतप्रणालीरूपजलमार्गाणि, खायनिदुमणाइं-निदुमणं
 खालं गृहात्सलिलं येन निर्गच्छति, अप्पणोअट्टाए आत्मार्थं
 स्वार्थं गृहस्थैः कृतानि परिकर्मितानि करोति, काण्हं करो-
 तीत्यादि विविधपरिकर्मार्थत्वात्, परिभुतानि तैः स्वयं
 परिभुज्यमानत्वात्, अतएव परिणामितानि अचिन्तीकृतानि
 भवन्ति, ततः सविंशतिरात्रे नासे गते अनी अधिकरणदोषा
 न भवन्ति । यदि पुनः प्रथममेव साधयः स्थितास्म इति ब्रयुस्तदा
 ते प्रप्रणितामानवस्थानेन सुभित्तं सम्भाठयं गृहिणस्तप्तायो
 गोलकल्पा दंताल क्षेत्रकर्षण, गृहच्छादनादीनि कुर्युः, तथा
 चाधिकरणदोषा अतः पच्चाशद्दिनैः स्थिता स्म इति वाक्यं,
 गणहराविसि गणधरापि एवमेवाकार्षु, अज्जत्ताए इति अद्य-
 कालीना आर्य्यतया व्रतस्य विरा इत्येके, अम्हंपित्तिअस्माक-
 नपि आचार्य्योपाध्याया, अम्हेविसि वयसपीत्यर्थः ॥ अन्तरा-

(१९)

वियसे कप्पइ इत्यादि अन्तरापि च अर्वागपि कल्पते युज्यते पर्यु-
 वितुं परं न कल्पते तां रजनीं माद्रपदशुक्लपञ्चमीं उवायणा
 वित्तपुति अतिक्रान्तिं। उष निवासे इत्यागमिको धातुः पर्युषितुं
 वस्तुनिति सूत्रार्थः ॥ अत्र अन्तरा विपसे कप्पइ इति कथ-
 नात् पर्युषणा द्विधा सूचिता, गृहिणाताज्ञातभेदात् । तत्र
 गृहिणामज्ञाता यस्यां, वर्षायोग्य पीठफलकादौ प्राप्ते यत्नेन
 कल्पोक्त-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव स्थापना क्रियते, सा आषाढ
 शुक्लपौर्णमास्यां, योग्यक्षेत्राभावेतु पञ्च पञ्च दिन वृद्ध्या याव-
 द्माद्रपदसितपञ्चम्यां सायैकादशसु पर्वतिथिषु क्रियते । गृहि-
 ञ्जाता तु यस्यां सांवत्सरिकातिचारालोचनं, लुचनं, पर्युषणा
 कल्पसूत्राकर्णनं, चैत्यपरिपाटी, अष्टमं, सांवत्सरिकप्रतिक्रमणं
 च क्रियते, यथा च व्रतपर्याय वर्षाणि गणयन्ते सा नक्षत्रस्य
 शुक्लपञ्चम्यां, एतावता यदा माद्रपदशुक्लपञ्चम्यां सांवत्सरिक-
 प्रतिक्रमणं कृतं ततः ऊर्द्ध्वं न कल्पते विहृतुं, ततस्तदवधि
 विहर्तव्यं । अन्तरापिचैकादशसु पर्वतिथिषु क्रियते निवासी
 नतु प्रतिक्रमणं । कैश्चिदुच्यते यत्र वासस्तत्रैव प्रतिक्रमणमपि
 वेद्यं, यदियत्रैव वासस्तत्रैव प्रतिक्रमणंचेतत्प्राषादशुक्ल पञ्च-
 दश्यामपि तत्कर्त्तव्यं न चैवं दृष्टमिष्टं वा, ततो नियत
 निवासएव वासोयुक्त इति परमार्थः । अनुमेवार्थं श्रीसुधर्म-
 स्वामिठ्यासः प्रतिपादयति । श्रीसमवायांगे यथा समये
 भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राम मासे विइकन्ते सत्तरि-
 एहिराइदिपुहिंसेसेहि वासावासं पज्जोसवेइति । ठ्याख्यातु
 समणे इत्यादि वर्षाणां चातुर्मासप्रमाणस्य वर्षाकालस्य सविं-
 शतिदिवसाधिके मासे व्यतिक्रान्ते पञ्चाशतिदिनेष्वतीते-
 ष्वित्यर्थः । सप्तत्यां च रात्रि दिवसेषु शेषेषु संवत्सरप्रतिक्रम-

(२०)

एकप चर्म्मदिवसे भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामित्यर्थः । वर्षास्यावासे
वर्षावासः वर्षावस्थानं 'पञ्जोसवेइति' परिवसति सर्वथा क-
रोति पञ्चाशद्दिनेषु व्यतिक्रान्तेषु तथाविध वसत्यभावादि
कारणे स्थानान्तरमप्याश्रयति, परं भाद्रपदशुक्लपञ्चमयां तु
वृक्षमूलादावपि निवसतीति हृद्यं । चन्द्रसंवत्सरस्यैवायं
नियमः नास्तिवर्द्धितस्येत्यादि । तथाहि निर्युक्तिकारः—एतथठ
पणगं पणगंकारणीयं जाव मवीमइमासे ॥ सुदुदसमी ठियाण-
आसाढीपुस्सिमो सरणं ॥१॥ इयसत्तरी जहसा असीइ णउइं
दसुत्तर सयंइ ॥ जइ वास मग्गसिरे दसरायातिणि उक्कोसा ॥२॥
काउण मासकप्पं तत्थेव ठियाण जइवास मग्गसिरे सालं-
खणाणं उम्मासितो जेतोग्गहोहोइ ॥३॥ सुगमाश्चेमा मवर-
साद्यगाथा द्वयस्य चूर्णिः ॥ आसाढपुस्सिमाए ठियाण जति
तण डगलादीणि गहियाणि पञ्जोसवणाकप्पो ण कहितो तो
सावणखहुल पञ्चमीए ध्वज्जोसवेति । असति खेत्ते सोवणखहुल-
दसमीए । असति खेत्ते सावणखहुलपस्सरसोए एवं पञ्च पञ्च
उत्सारं तेण जाव असतिखेत्ते भट्ठवयसुदुपञ्चमीए । अतोपरेण
ण वहति अतिकमितुं आसाढपुस्सिसा तो आढसं मग्गंताणं जाव
मट्ठवय जोगहस्स पञ्चमीए एतन्तरेजतिवासखेत्तं ण लद्धं ताहे
रुख्खसहेट्ठेठितो तोवि पञ्जोसवेयव्व एतेषु पव्वेषु जहालंभे
पञ्जोसवेयव्वमिति अपव्वे ण वहति अत्र पूर्वोक्तानि एकादश-
पव्वीणि अन्यानि तु वसतिमाश्रित्य अपव्वीणि ज्ञेयानि
संवत्सरप्रतिक्रमणं तु भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामेवेति द्रव्य क्षेत्र
काल भाव स्थापना तु सम्प्रत्यध्ययने दर्शितैवेति न पुनरुच्यते
तत्तएवावसेया । नवरं कल्पमाश्रित्य जघन्यतो नभस्य सितप-
ञ्चम्यारारभ्य कार्तिकचातुर्मासंयावत् सप्ततिदिनमानं एतावता

(२१)

बदा सप्तम्या अहोरात्रेण चालुमोसिकंप्रतिक्रमणं विहितं तद-
नन्तरं प्रत्युषे विहृतं तस्य कारणान्तराभावे । तत्सद्भावे तु मार्ग-
शीर्षेणापि सह आषाढ मासेनापि च सह वरमासा इति ।
यत् पुनरभिवर्द्धितवर्षे दिन विंशत्या पर्युषितव्यमिति, उच्यते
तत्सिद्धान्त टिप्पनानुसारेण तत्र हि प्रायो युगमध्ये पौषो
युगान्ते आषाढएव वर्द्धते तानि च नाधुना सम्यग् ज्ञायन्ते
अतो लौकिकटिप्पनानुसारेण यो मासो यत्र वर्द्धते स तत्रैव
गणयितव्यः नान्याकल्पनाकार्या द्रष्टुं परित्यज्याऽदृष्टक-
ल्पनानसङ्गता आम्नायाऽपरिज्ञानात् कल्पनापि न निश्चयि-
तयेति सांप्रतं तु कालकाचार्याचरणाच्चतुर्थ्यामपि पर्युषणां
विदधति इत्यादि ।

देखिये ऊपरके पाठमें श्रीसमवायाङ्गजी यथा तद्वृत्ति
और श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रको नियुक्ति तथा चसीकी
चूर्णके पाठोंके प्रमाण पूर्वक दिनोंकी गिनतीसे आषाढ़
चौमासीसे ५० वें दिन मासवृद्धिके अभावसे चन्द्रसंवत्सरमें
निश्चय निवास पूर्वक ज्ञात पर्युषणामें सांवत्सरिक प्रतिक्रम-
णादि करनेका प्रगटपने खुलासे दिखाया है और योग्य
क्षेत्रके अभावसे ५० वें दिनकी रात्रिको भी उल्लंघन न करते हुए
जंगलमें वृक्ष नीचे पर्युषणा करलेनेका भी खुलासा लिखा है
और चन्द्रसंवत्सरमें ५० दिने पर्युषणा करनेसे कार्तिक तक
स्वभावसेही ३० दिन रहते हैं सो जघन्यकालावग्रह कहा
जाता है और प्राचीनकालमें जैन पंचाङ्गानुसार पौष या
आषाढ़की वृद्धि होनेसे अश्विर्वर्द्धितसंवत्सरमें आषाढ़ चौमा-
सीसे बीस दिने श्रावण सुदीमें ज्ञात पर्युषणा करनेमें आती
थी तब भी पर्युषणाके पिछाड़ी कार्तिक तक स्वभावसेही

(५२)

१०० दिन रहते थे इसलिये वर्तमानमें मास वृद्धि दो आव-
णादि होते भी पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रखनेका आ-
ग्रह करना सो अज्ञानतासे प्रत्यक्ष अनुचित है और जैन पंचाङ्ग
इस कालमें अच्छी तरहसे नहीं जाना जाता है इसलिये
उसीके अभावसे लौकिक पंचाङ्गानुसार जिस महीनेकी
जिस जगह वृद्धि होवे उसीकोही उसी जगह गिनना चा-
हिये परन्तु अन्य कल्पना नहीं करनी, अर्थात् जैन पञ्चाङ्गके
अभावसे लौकिक पञ्चाङ्गानुसार पौष, आषाढ़के सिवाय
चैत्र, आश्विनादि मासोंके वृद्धिकी गिनती निषेध करनेके लिये
गच्छायहसे अपनी भति कल्पना करके अन्यान्य कल्पनायें
भी नहीं करनी चाहिये क्योंकि लौकिक पंचाङ्गानुसार
चैत्र, आश्विनादि मासोंकी वृद्धि होनेका प्रत्यक्ष प्रमाणको
छोड़ करके पौष आषाढ़की वृद्धि होनेवाला जैन पंचाङ्ग
वर्तमानमें प्रचलित नहीं होते भी उसी सम्बन्धी मास
वृद्धिका अप्रत्यक्ष प्रमाणको ग्रहण करनेका आग्रह करना
भी भी योग्य नहीं है क्योंकि जैन पञ्चाङ्गके अभावसे
लौकिक पंचाङ्गानुसार वर्ताव करते भी उसी मुजब मास
वृद्धिकी गिनती नहीं करना ऐसा कोई भी शास्त्रका प्रमाण
नहीं होनेसे गच्छायहकी युक्ति रहित कल्पना भी मान्य
नहीं हो सकती है और आषाढ़ बीमासीसे ५० दिने दूसरे
आश्विनामें पर्युषणा करना सो तो शास्त्रोक्त प्रमाण पूर्वक
तथा युक्ति सहित प्रसिद्ध न्यायकी बात है ।

और अब प्राचीनकालमें जैन पंचाङ्गानुसार पर्युषणा
की मर्यादावाला एक पाठ वाचक वर्गको ज्ञात होनेके लिये
दिखाता हूं श्रीचैत्रवालगण्डके श्रीजगन्नाथ सूरिजीकी परंपरामें

(२३)

श्रीतपगच्छके श्रीक्षेत्रकीर्ति चुरिजी कृत श्रीवृहत्कल्पसूत्रकी
वृत्तिका तीसरा खण्डका तीसरा उद्देशके पृष्ठ ५८ से ५९ तकका
पाठ नीचे भुजब जानो, यथा—

अथ यस्मिन् काले वर्षावासे स्थातव्यं यावन्तं वा कालं
येन विधिना तदेतदुपदर्शयति । आषाढपुष्णिमाए वासा-
वाससु हेति अतिगमनं मग्नसिरबहुल दसमीउ जावएकंमि
खेसंसि ॥ आषाढपूर्णिमायां वर्षावास प्रयोग्य क्षेत्रे गमनं
प्रवेशः कर्त्तव्यं भवति तत्र चापवादतो मार्गशीर्षे बहुलदशमी
यावदेकत्र क्षेत्रे वस्तव्यं एतच्च चिह्निसप्त वर्षादिकं वक्ष्यमाणं
कारणमङ्गीकृत्यात्, उत्सर्गतस्तु कार्तिकपूर्णिमायां निर्गन्तव्यं
इदमेव भावयति ॥ बाह्विद्विया वसन्नेहिं खेसंगाहितु वास पा-
सगं कप्पंकथेतुद्वयणा सावणबहुलस्त पञ्चाहे ॥ यत्राषाढमास-
कल्पं कृतस्तत्रान्यत्र वा प्रत्यासन्नग्रामेस्थिता वर्षावासयोग्य-
क्षेत्रेष्वप्यप्यसाधुसामाधारीं ग्राहयन्ति, ते च वृषभा वर्षा प्रयोग्यं
संस्तारकं तृण ढगल जार मल्लकादिकमुपधिं गृह्णन्ति, तत आ-
षाढपूर्णिमायां प्रविष्टाः प्रतिपदमारभ्य पञ्चभिरहोभिः पर्यु-
षणा कल्पं कथयित्वा आवण बहुल पञ्चम्यां वर्षाकाले सामा-
चार्याः स्थापनां कुर्वन्ति पर्युषयन्तीत्यर्थः ॥ इत्थं अणभिग-
द्विय वीसतिरायं सवीसइ मासं तेण परमभिगद्वियं गाह्णिपायं
कस्तिओजाव ॥ अत्रेति आवण बहुल पञ्चम्यादौ आत्मना पर्यु-
षितेऽपि अणभिग्रहीतमनवधारितं गृहस्थानां पुरतः कर्त्तव्यं
किमुक्तं भवति यदि गृहस्थाः पृच्छेयुरार्यायूपमत्र वर्षाकाले
स्थितावा न वेति एवं पृष्टे सति स्थितावयमत्रेति सावधारणं
न कर्त्तव्यं, किन्तु तत्संदिग्धं, यथा नाद्यापि निश्चितः स्थिता
अस्थिता चेति, इत्थमणभिग्रहीतं कियन्तं कालं वक्तव्यं उच्यते

(२४)

यद्यभिवर्द्धितो सौ संवत्सरस्ततो विंशतिरात्रि दिनानि, अथ चान्द्रोसौ ततः स विंशतिरात्रं मासं यावदनभिगृहीतं कर्त्तव्यं, तेन विभक्ति व्यत्यया ततः परं विंशति रात्र मासा श्लोद्ध्वमभिगृहीतं निश्चितं कर्त्तव्यं गृहिज्ञातञ्च गृहस्थानां पृच्छतां ज्ञापना कर्त्तव्या, यथा वयमत्र वर्षाकालेस्थिता एतच्च गृहिज्ञातं कार्त्तिकमासं यावत् कर्त्तव्यं किं पुनः कारणम् कियति काले व्यतीत एव गृहिज्ञातं क्रियते नावोगित्यत्रोच्यते ॥ अस्मिन्नाह कारणेहिं अहवा वासं य सुदुर्तु आरब्धं अभिवर्द्धित्येति वीसा इत्यरेषु सवीसह मासो ॥ कदाचित्तत्क्षेत्रे अशिवं भवेत् आदिशब्दात् राजदुष्टादिकं वा भयमुपजायेत एवमादिभिः कारणै, अथवा तत्र क्षेत्रे न सुष्ठु वर्षे वर्षितुमारब्धं येन धान्यनिष्पत्तिरुपजायते ततश्च प्रथममेव स्थिता वयमित्युक्ते पश्चादशिवदि कारणे समुपस्थिते यदि गच्छन्ति ततो लोको ब्रूयात् अहो एते आत्मानं सर्वज्ञ पुत्र तयास्थापयन्ति परं न किमपि जानन्ति सुषावाद् वा भावन्ते स्थिता स्म इति भणित्वा सम्प्रति गच्छन्तीति । अथाशिवदि कारणेषु सञ्जातेषु अपि न गच्छन्ति तत आश्चायतिक्रमणादि दोषा अपिच स्थिता स्म इत्युक्ते गृहस्थाश्चिन्तयेयुरवश्यं वर्षे भविष्यति येनेति वर्षा रात्रमत्र स्थिताः ततो धान्यं विक्रीणीयुः गृहं वाच्छादयेयुः इलादीनि वा स्थापयेयुः यतएव मनो अभिवर्द्धितवर्षे विंशतिरात्रे गते इतरेषु च त्रिषु चन्द्रसंवत्सरेषु सविंशतिरात्रे मासे गते गृहिज्ञातं कुर्वन्ति ॥ एतच्च पणनं पणनं कारणीयं, जाय सवीसह मासो, सुष्ठु दसमी ठियाण, आसाढीपुक्षिमोसरणं ॥ अत्रेति अश्वत्थपूणि-जायां स्थिताः पञ्चाङ्गं यावदेव संस्कारकं इगलादि गच्छन्ति

(२५)

रात्रौ च पर्युषणाकल्पं कथयन्ति ततः श्रावण बहुलपञ्चम्यां
 पर्युषणां कुर्वन्ति, अथाषाढपूर्णिमायां क्षेत्रं न प्राप्तास्तत एव-
 नेव पञ्चरात्रं वर्षावास प्रयोग्यमुपधिं गृहीत्वा पर्युषणा कल्पं
 च कथयित्वा श्रावणबहुलदशम्यां पर्युषणयन्ति एवं कारणेन
 रात्रि दिवानां पंचकं पंचकं वर्द्धयता तावत्स्थेयं यावत्
 सविंशति रात्रौ मासः पूर्णः । अथवा ते आषाढशुद्ध दशम्यामेव
 वर्षाक्षेत्रे स्थितास्ततस्तेषां पंचरात्रेण ङगलादौ गृहीते पर्यु-
 षणा कल्पे च कथिते आषाढ पूर्णिमायां समवसरणं पर्युषणं
 भवति एषउत्सर्गः ॥ अत उर्द्ध्वं कालं पर्युषणमनुतिष्ठतां सर्वो-
 ऽप्यपवादः । अपवादोऽपि सविंशतिरात्रात् मासात् परतो
 नातिक्रमयितुं कल्पते यद्येतावत्कालेऽपि गते वर्षायोग्यक्षेत्रं न
 लभ्यते ततो वृक्षमूलेऽपि पर्युषितव्यं ॥ अथ पंचक परिहा-
 णिसधिकृत्य ज्येष्ठकल्पावग्रहप्रमाणमाह । इयसत्तरी
 जहसा असीद्व णउद्धं दसुत्तरसयंच जइवास मगसिरे दसराया
 तिणि सक्कोसा ॥ इयइति उपदर्शने ये किलाषाढपूर्णि-
 मायाः सविंशतिरात्रे मासे गते पर्युषयन्ति तेषां सप्ततिदिव-
 सानि ज्ञान्येता वर्षा वासावग्रहो भवति, भाद्रपदशुद्धपंचम्या-
 नन्तरं कार्तिकपूर्णिमायां सप्ततिदिनसद्भावात् । एवं भाद्र-
 पदबहुलदशम्यां पर्युषयन्ति तेषामशीतिर्दिवसा मध्यमेता
 वर्षाकालावग्रहः । श्रावणपूर्णिमायां नवतिर्दिवसाः । श्रावण
 बहुलदशम्यां दशोत्तरशतं दिवसा मध्यमएवकालावग्रहो भ-
 वन्ति ॥ समवायांगेनुक्तमपि इत्थं वक्तव्यं । भाद्रपदामावास्यायां
 पर्युषणे क्रियमाणे पंचसप्ततिर्दिवसाः । भाद्रपदबहुलपंचम्यां
 पंचाशीति । श्रावणशुद्धदशम्यां पंचनवतिः । श्रावणामावस्यां
 पंचोत्तरशतं । श्रावण बहुलपंचम्यां पंचदशोत्तरशतं । आषाढ

(२६)

पूर्णमासां तु पर्युषिते विंशत्युत्तरं दिवसगतं भवति ॥ एव
मेतेषां प्रकाराणां वर्षावासानामेकक्षेत्रे स्थित्वाकार्तिक
चातुर्मासिक प्रतिपदि निर्गन्तव्यं । अथ मार्गशीर्षे वर्षा भवति
कर्दमाकुलाः पश्यान् ततोऽपवादेनैक दशरात्रं भव-
तीति । अथ तथापि वर्षा नोपरतै ततो द्वितीय दशरात्रं
तथा सति अथैव नपि वर्षा न तिष्ठति ततस्त्वृतीयमपि
दशरात्रमासेवेत एव त्रीणि दशरात्राणि उत्कर्षतस्तत्र क्षेत्रे
आसितव्यं मार्गेशिर यौर्णमासीं यावदित्यर्थः ॥ तत उर्ध्वं
यद्यपि कर्दमाकुला पश्यान् वर्षं वा गोदमनुपरतं वर्षति
यद्यपि च पानीयैः पूर्यमाणैस्तदानीं गम्यते तथापि अवश्यं
निर्गन्तव्यं एवं पञ्चमासिको ज्येष्ठकल्पावग्रहः सम्पन्नः ॥
अथ तमेव पादमासिकमाह । काउण मासकल्पं तत्पेव ठियाण
जंइवास मार्गसिरे सालंबणाणं छम्मासिओ जेट्ठो गगहोहोइति ।
यस्मिन् क्षेत्रे आषाढमास कल्पकृतः तदन्यद्वर्षावासयोग्य
तथाविधं क्षेत्रं न प्राप्तं ततो मासकल्पं कृत्वा तत्रैव वर्षा-
वासं स्थितानां ततश्चातुर्मासानन्तरं कर्दमवर्षादिभिः कारणै-
रतीते मार्गशीर्षमासे निर्गतानां पादमासिको ज्येष्ठकल्पावग्र-
हो भवति एकक्षेत्रे अवस्थानमित्यर्थः ॥

देखिये ऊपरके पाठमें अधिकरण दोषोंका निमित्तकारण ।
और कारण योगे गमन करना पड़े तो साधुधर्मकी अवहे-
लना न होनेके लिये वर्षायोग्य उपधिकी प्राप्ति होनेसे योग्य-
क्षेत्रमें अज्ञात याने गृहस्थी लोगोंकी नहीं जानी हुई अनिश्चित
पर्युषणा स्थापन करे वहां उसी रात्रिको पर्युषणा कल्प कहे
(श्रीकल्पसूत्रका पठन करे) और योग्यक्षेत्रके अभावसे पांच
पांच दिनकी वृद्धि करते चन्द्रसंवत्सरमें ५० दिन तक तथा
अभिषर्द्धित संवत्सरमें २० दिनतक अज्ञात पर्युषणा करे परन्तु

(२७)

२० दिने तथा ५० दिने ज्ञात याने गृहस्थी लोगोंकी जाकी हुई प्रसिद्ध पर्युषणा करे सो यावत् कार्तिकतक उसी क्षेत्रमें ठहरे और जघन्यसे ७० दिन, तथा मध्यमसे १२० दिन और उत्कृष्टसे १८० दिनका कालावग्रह होता है ।

और भी पर्युषणा सम्बन्धी-भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, समाचारी, तथा प्रकरणादि ग्रन्थोंके अनेक पाठ मौजूद हैं परन्तु विस्तारके कारणसे यहां नहीं लिखता हूं। तथापि श्रीदशाश्रुत स्कन्ध सत्रकी चूर्णि, श्रीनिशीथचूर्णि, श्रीवृहत्कल्पचूर्णि वगैरह कितनेही शास्त्रोंके पाठ आगेप्रशांगोंपात लिखनेमें भी आवेंगे ।

अब मेरा सत्यग्रहणामिलाषी श्रीजिनाज्ञा इच्छुक सज्जन पुरुषोंको इतनाही कहना है कि वर्तमानकालमें जैन पञ्चाङ्गके अभावसे लौकिक पञ्चाङ्गानुसार जिस मासकी वृद्धि होवे उसीके ३० दिनोंमें प्रत्यक्ष पने सांसारिक तथा धार्मिक व्यवहार सब दुनिपानें करनेमें आता है तथा समय, आवलिका, मुहुर्तादि शास्त्रीय कालके व्यतीतकी व्याख्यानुसार और सूर्योदयसे तिथि वारोंके परावर्तन करके दिनोंकी गिनती निश्चयके साथ प्रत्यक्ष सिद्ध है तथापि उसीकी गिनती निषेध करते हैं सो निष्केवल हठवादसे संसारवृद्धिकारक उत्सूत्र भाषणरूप बाल जीवोंकी मिथ्यात्वमें गेरनेके लिये कृपा प्रयास करते हैं इसलिये अधिक मासके दिनोंकी गिनती पूर्वक उपरोक्त व्याख्याओंके अनुसार आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने दूसरे आवणमें वा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करना सो श्रीजिनाज्ञाका आराधनपना है। इसलिये-मैं-प्रतिज्ञा पूर्वक आत्मार्थियोंको कहता हूं कि-वर्तमानिक श्रीतपगच्छके मुनिमण्डली वगैरह विद्वान् महाशय पक्षपात रहित हो करके विवेक बुद्धिसे उपरोक्त श्रीकल्पसूत्रकी व्याख्याओंका तात्पर्यार्थको विचारेंगे तो मासवृद्धि होनेसे अपने पूर्वजोंकी

(२८)

मर्यादाके प्रतिकूल तथा पञ्चाङ्गीके प्रमाणोंके भी विरुद्ध होकरके गच्छाग्रहके पक्षपातसे दो श्रावण होते भी प्रत्यक्षपक्ष ८० दिने भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका वृथा आग्रह कदापि नहीं करेंगे। और उपरोक्त शास्त्रानुसार तथा युक्ति पूर्वक ५० दिने दूसरे श्रावणमें वा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करनेवाले श्रीजिनाज्ञाके आराधक पुरुषों पर द्वेष बुद्धिसे वृथा उत्सूत्र रूप मिथ्याभाषणसे आज्ञा भङ्गका दूषण लगाकर बाल-जीवोंको धर्ममें गेरनेका साहस भी कदापि नहीं करेंगे।

और फिर अपनी चातुराईसे आप निर्दूषण बननेके लिये जैन शास्त्रोंमें अधिक मासको गिनतीमें नहीं गिना है ऐसा उत्सूत्र भाषणरूप कहके अज्ञजीवोंके आगे मिथ्यात्व फैलाते हैं उसीका निवारण करनेके लिये और भव्य जीवोंको निःसन्देह होनेके लिये इसजगह अधिक मासकी गिनतीके प्रमाण करने सम्बन्धी पञ्चाङ्गीके अनेक प्रमाण यहां दिखाता हूँ।

श्रीसुधमंस्वाभीजी कृत श्रीचन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रमें १, तथा श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रमें २, और संवत् १३० के अनुमान श्रीसलयगिरिजी कृत उपरोक्त दोनों सूत्रोंकी दोनों वृत्तियोंमें ४, श्रीभद्रबाहुस्वामिजीकृत श्रीदशवैकालिकसूत्रके चूलिकाकी नियुक्तिमें ५, तथा श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत तत् नियुक्तिकी वृहद्वृत्तिमें ६, श्रीनिशीथसूत्रके लघुभाष्यमें, वृहद्भाष्यमें ७, चूर्णिमें ८ श्रीवृहत्कल्पके लघुभाष्यमें, वृहद्भाष्यमें ९, चूर्णिमें १० और वृत्तिमें ११ श्रीसमवायांगजीमें १२, तथा तद्वृत्तिमें १३ और श्रीस्थानांगजीसूत्रकी वृत्तिमें १४, श्रीनेमीचन्द्रसूरिजी कृत श्रीप्रवचनसारोद्धारमें १५, श्रीसिद्धसेनसूरिजी कृत तत्सूत्रकी वृहद्वृत्तिमें १६, श्रीउदयसागरजी कृत तत्सूत्रकी लघुवृत्तिमें १७, श्रीजिसपतिसूरिजीकृत श्रीसमाचारी ग्रन्थमें १८, श्रीसंघपट्टक लघुवृत्तिमें, वृहद्वृत्तिमें १९ श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत श्रीविधिप्रपासमाचारीमें २० और श्रीसमय

[२९]

सुन्दरजी कृत श्रीसमाचारी शतकमें २१ और श्रीपाञ्चम्य गच्छके श्रीब्रह्मर्षिजी कृत श्रीदशाश्रुतस्कन्ध सूत्रकी वृत्तिमें २२ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें अधिकमासकी गिनतीमें प्रमाण किया हैं इसलिये जिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी पुरुष अधिकमासकी गिनती कदापि निषेध नहीं कर सकते हैं इस जगह भव्य जीवोंकी निःसन्देह होनेके वास्ते थोड़ेसे अधिकमासकी गिनतीके विषयवाले पाठ लिख दिखाता हुं—

श्रीतपगच्छके पूर्वज कहलाते श्रीनेमिचन्द्र सूरिजी महा-
राज कृत श्रीप्रवचनसारोद्धार मूलसूत्र गुजराती भाषा सहित
मुंबईवाले भावक भीमसिंह माणककी तरफसे श्रीप्रकरण
रत्नाकरके तीसरे भागमें छपके प्रसिद्ध हुवा हैं जिसके पृष्ठ
३६४ में ३६५ तक नीचे मुजब भाषा सहित पाठ जानो—

अवतरणः—मासाण पञ्चभेयत्ति एटले मासना पांच-
भेदोनुं एकसोने एकतालीसमुंद्वार कहे छे । मूलः—मासाय
पंचसुत्ते, नस्कते चंदीओय रिउमासो ॥ आइचकोविये अवरो,
भिवइदिओ तहय पंचमओ ॥८०४॥

अर्थः—सूत्र जे श्रीअरिहंत परमात्मानुं प्रवचन तेने विषे
मास पांच कह्या छे । तेसा प्रथमजे नक्षत्रनी गणनाये थाय
तेनी रीतकहे छेः—चंद्रमाचारके० संचरतो जेटले काले अभि-
जितादिकथी विचरतो उतरावाढ़ा नक्षत्र सुधी जाय तेने
प्रथम नक्षत्र मास कहिये । बीजो चंदीओयके० चंद्रथकीथाय
ते अंधारा पड़वाचकी आरंभीने अजवाली पूर्णिमा सुधी
चंद्रमास केहेवाये । त्रीजोरिओके० ऋतु ते लोक रुढ़िये साठ
अहोरात्रीये ऋतु कहिये । तेनो अर्द्धमास एटले त्रीस अहो-

[૩૦]

રાત્રી પ્રમાણનો તે ઋતુમાસ જાણવો । ચોથો, આદિત્ય જે સૂર્ય તેહનું અયન એકોને ઝાણી દિવસનું હોય । તેનો છટ્ટોભાગ તે આદિત્ય માસ કહિયે । પાંચમો અભિવર્દિત તે તેર ચંદ્રમાસે થાય । ચાર ચંદ્રમાસે સંવત્સર જાંખવો પરન્તુ જેવારે એક વધે તેવારે તેને અભિવર્દિત માસ કહિયે એનુંજ પ્રમાણ વિશેષ દેખાડે છે । મૂલ—અહરત્તસિત્તવીસં તિસત્ત સત્તદ્વિ ભાગ નસ્કતો ॥ ચંદ્રોઅ ડણત્તીસ વહદ્વિભાગાય વત્તીસં ॥ ૯૦૫ ॥

અર્થ:—સતાવીસ અહોરાત્રી અને એક અહોરાત્રીના શરૂસઠ ભાગ કરિયે તેવા એકવીસ ભાગે અધિક એક નક્ષત્ર માસથાય । અને માસના ડગળત્રીસ અહોરાત્રી તેના ઉપર એક અહોરાત્રીના બાસઠભાગ કરિયે એવા ચત્રીસ ભાગે અધિક એક ચંદ્રમાસ થાય ।

મૂલ:—ઉડમાસો તીસદિસો, આઠ્ઠ્ઠોવિ તીસ હોઈ અર્ધંચ । અભિવર્દ્ધિઓઅ માસો ચડવીસ સણ છેણ ॥ ૯૦૬ ॥

અર્થ:—ઋતુમાસ તે સંપૂર્ણ ત્રીસદિવસ પ્રમાણનો જાણવો તથા આદિત્યમાસ તે ત્રીસદિવસ અને ઉપર એક દિવસના સાઠિયા ત્રીસભાગ કરિયે તેટલા પ્રમાણનો જાંખવો । અને અભિવર્દિતમાસ તે ચડવીસે અધિક એકશતહેદ એટલે ભાગ તેજ દેખાડે છે ॥ ૯૦૬ ॥ મૂલ:—ભાગાણિગવીસસયં, તીસાણેગા-

હિયા દિણાણંચ । એજહ નિપ્પત્તિં, લહંતિ સમયાક્રતહ-નેયં ॥ ૯૦૭ ॥ અર્થ:—તે પૂર્વોક્ત એકસોને ચોવીસભાગ એક અહોરાત્રના કરિયે તેવા એકસો એકવીસભાગ અને એક-દિવસે અધિક ત્રીસ એટલે એકત્રીસ દિવસ અર્થાત્ એકત્રીસ દિવસને એક અહોરાત્રીના એકસો ચોવીસભાગ માંહેલા

[૩૧]

એકસોને એકવીસભાગ ઉપર એટલું અભિવર્ધિત માસનું પ્રમાણ જાણવું એવીતેણે પાંચમાસની જેમ નિઃપ્પતિ એટલે પ્રાપ્તિથાય છે તેસમયકે જિજ્ઞાન્ત થકી જાંખવી રૂતિ ગાથાચતુષ્ઠ્યાર્થ ॥ ૯૦૭ ॥ અવતરણઃ—વરિમાણપંચમેયત્તિ એટલે વર્ષના પાંચમેડનું એકસોને બેતાલીસમુ દ્વાર કહે છે ।

મૂલઃ—સંવહરારાઠ પંચત “ચંદે ચંદે ભિવહ્દિએ ચેવ । ચંદે ભિવહ્દિએતહ બાસઠ્ઠિમાસે હિ જુગમાણં ॥૯૦૮॥ અર્થઃ—ચંદ્રાદિક સંવત્સર પાંચકહ્યાછે તેમા પૂર્વોક્તચંદ્રમાસે જે નીપન્યોતે ચંદ્ર-સંવત્સર જાંખવી । તેનુ પ્રમાણ ત્રણસે ચોપનદિવસ અને એક દિવસના બાસઠભાગ કરિયે તેવા બારમાગ ઉપર જાણવા તેમજ બીજા ચંદ્રસંવત્સરનું પણ માનજાણવું । હવે ચંદ્રસંવત્સર થી એક અધિકમાસ થાય એટલે તેને અભિવર્ધિત સંવત્સરજાંખવી તેનુ પ્રમાણ ત્રણસે ચાસીદિવસ અને એક દિવસના બાસઠ-ભાગ કરી તેમાંના ચુતાલીસમાગ એવી એક અભિવર્ધિત સંવત્સર જાણવી એકત્રીસ અહોરાત્ર અને એકદિવસના એકસો ચોવીસમાગ કરિયે તેમાંહિલા એકસો એકવીસમાગ ઉપર એ અભિવર્ધિત માસનું માન જાણવું । હવે પૂર્વોક્ત માને અભિ-વર્ધિત સંવત્સર બે અને ચંદ્રસંવત્સર ત્રણ એવા પાંચ સંવત્સરે એક યુગમાન થાય છે તે બાસઠચંદ્રમાસ પ્રમાણક છે । સારાંશ એકયુગમાં ત્રણ ચાંદ્રસંવત્સર તે ચાંદ્રસંવત્સરના પ્રત્યેક બાર-માસ મલી છત્રીસ ચાંદ્રમાસ અને બે અભિવર્ધિત સંવત્સર તેમાં એક અભિવર્ધિત સંવત્સરના તેરે ચાંદ્રમાસ એ પ્રમાણે બીજા વર્ષના પણ તેરે મલી એકંદર છત્રીસમાસ અને પૂર્વોક્ત ચાંદ્રમાસ છત્રીસ મલીને બાસઠ ચાંદ્રમાસે એક યુગનું માન-થાય ॥ ૯૦૮ ॥ રૂતિ—

[३२]

देखिये उपरमें श्रीतपगच्छके पूर्वज श्रीनेमिबंदूसूरिजीने अधिक मासकी गिनती मंजूर करके तेरह चंद्रमाससे अभिवर्द्धित संवत्सर कहा और एकयुगके खासठ (६२) मासकी गिनती दिखाइ अधिक मासके दिनोंकी भी गिनती खुलासे लिखी हैं इस लिये वर्तमानमें श्रीतपगच्छवाले महाशयोको अपने पूर्वजके प्रतिकूल होकर अधिकमासकी गिनती निषेध करनी नहीं चाहिये किन्तु अधिकमासकी गिनती अवश्य-मेव मंजूर करनी योग्य हैं ।

औरसुनिये—श्रीमलयगिरिजी कृत श्रीचंद्रप्रज्ञप्ति सूत्र वृत्तिके पृष्ठ ९९ से १०० तक तत्पाठ—

युगसंवत्सरो युगपूरकः संवत्सरः पंचविधः प्रज्ञप्तस्तद्व्यथा । चंद्रश्चांद्रोऽभिवर्द्धितश्चैव उक्तं च चंदो चंदो अभिवर्द्धितोऽयं, चंदो अभिवर्द्धितो चैव । पंचसहस्रं जुगमिणं, दिदृते लोकादसीहिं ॥ १ ॥ पदम विइयाउ चंदातइयं अभिवर्द्धियं विद्याणाहिं । चंदे चैव चठयं पंचममभिवर्द्धियं जाण ॥ २ ॥ तत्र द्वादशपूर्णमासी परावर्त्ता यावता कालेन परिसमाप्तिं मुपयाति तावत्कालं विशेषश्चंद्रसंवत्सरः । उक्तं च । पुन्निम परियहा पुण बारम मासे हवइ चंदो । एकश्च पूर्णमासी परावर्त्त एकश्चांद्रोमासस्तस्मिंश्च चंदे मासेऽहोरात्र परिमाणं विंतायामेकोनत्रिंशद्दहोरात्रा द्वाविंशच्छ द्वाषष्टि भाग अहोरात्रस्य एतत् द्वादशभिर्गुण्यते जातानि त्रीणि शतानि चतुःपञ्चाशदधिकानि रात्रिदिवानां द्वादशश्च द्वाषष्टि-भागा रात्रिदिवसस्य एवं परिमाणश्चांद्रः संवत्सरः तथा यस्मिन् संवत्सरे अधिकमास सम्भवेन त्रयोदश चंद्रस्य मासा भवन्ति सोऽभिवर्द्धित संवत्सरः ॥ उक्तं च ॥ तेरसय चंद्रमासा

[३३]

वासो अभिवद्भिओय नायव्वो । एकस्मिन् चंद्रमासे अहो-
 रात्रा एकोनत्रिंशद् भवन्ति द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागरूप अहो-
 रात्रस्य एतच्चानन्तरं चोक्तं तत एष राशिस्त्रयोदशभिर्गुणितो
 जातानि त्रीणि अहोरात्रशतानि त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिं-
 शच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य एतावद्दहोरात्रप्रमाणोऽभि-
 वर्द्धितसंवत्सर उपजायते कथमधिकमाससम्भवो येनाभिवर्द्धित
 संवत्सर उपजायते कियता वा कालेन सम्भवतीति उच्यते
 इह युगं चंद्राऽभिवर्द्धितरूप पञ्चसंवत्सरात्मकं सूर्यसंवत्सरा-
 पेक्षया परिभाव्यमानं मन्यूनातिरिक्तानि पञ्चवर्षाणि
 भवन्ति सूर्यमासश्च सार्द्धत्रिंशदहोराणि प्रमाणं चंद्रमास
 एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्य ततो
 गणितपरिभावनया सूर्यसंवत्सर सत्कं त्रिंशन्मासातिक्रमे
 एकश्चंद्रमासोऽधिको लभ्यते तथाच पूर्वचार्य्यप्रदर्शितेयं क-
 रणं गाथा ॥ चंदस्स जो विसेसो आइच्चवस्स य हविज्ज मासस्स
 तीसइ गुणिओ संतो हवइ हु अहिमासओ एक्को ॥१॥ अस्याऽक्षर-
 गमनिका आदित्यस्य आदित्य संवत्सरः सम्बन्धिनो मासस्य
 मध्यात् चंद्रस्य चंद्रमासस्य यो भवति विश्लेष इह विश्लेष
 कृते सति यदवशिष्यते तदुपचारात् विश्लेषः स त्रिंशता
 गुण्यते गणितः सन् भवत्येकोऽधिकमासः तत्र सूर्यमासपरि-
 माणात् सार्द्धत्रिंशदहोरात्ररूपात् । चन्द्रमासपरिमाणमेकोन-
 त्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्त्वेवं रूपं शो-
 द्यते तत स्थितं पञ्चाद्दिनमेकमेकेन द्वाषष्टिभागेन न्यूनं तच्च
 दिनं त्रिंशता गुण्यते जातानि त्रिंशद्दिनानि एकश्च द्वाषष्टिभाग
 त्रिंशता गुणितो जातास्त्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः ते त्रिंशद्दिनेभ्यः
 शोध्यन्ते ततस्थितानि शेषाणि एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिं-

[३४]

शत्रु द्वापष्टिभागादिनस्य एतावत्परिमाणश्चन्द्रमास इति
 भवति सूर्यसंवत्सर सत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे एकोऽधिक-
 मासो युगे च सूर्यमासाः षष्टिस्तो भूयोऽपि सूर्यसम्बत्सरः
 सत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे द्वितीयोऽधिकमासो भवति । उक्तं च
 सट्टीये अहयाए हवइ हु अहिमासगो जुगहंमि बावीसे
 पवसए हवइ हु बीओ जुगंतंमि ॥१॥ अस्याऽपि अक्षरगमनिका
 एकस्मिन् युगे अनन्तरोदित स्वरूपे पर्वणां पक्षाणां षष्टौ
 अतीताया षष्टिसंख्येषु पक्षेषु अतिक्रान्तेषु इत्यर्थः । एत-
 स्मिन्नवसरे युगावर्गे युगावर्गप्रमाणे एकोऽधिकोमासो भवति
 द्वितीयस्त्वधिकमासो द्वात्रिंशत्पधिके पर्वशते अतिक्रान्ते
 युगस्यान्ते युगपर्यवसाने भवति तेन युगमध्ये तृतीयसंवत्सरे
 अधिकमासः पञ्चमे चेति द्वौ युगे अभिवर्द्धितसंवत्सरौ संप्रति
 युगे सर्वसंख्यया यावन्ति पर्वणि भवन्ति तावन्ति निर्दिष्टः
 प्रतिवर्षं पर्वसंख्यामाह । ता पढमस्सण नित्यादि ता इति
 तत्र युगे प्रथमस्य णमिति वाक्यालंकृतौ चन्द्रस्य संवत्स-
 रस्य चतुर्विंशतिपर्वणि प्रज्ञप्तानि द्वादशमासात्मको हि
 चान्द्रः संवत्सरः एकैकस्मिंश्च मासे द्वे द्वे पर्वणि ततः सर्व
 संख्यया चन्द्रसंवत्सरे चतुर्विंशतिः पर्वणि द्वितीयस्य चान्द्र-
 संवत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वणि भवन्ति अभिवर्द्धितसंव-
 त्सरस्य षड्विंशतिः पर्वणि तस्य त्रयोदशमासात्मकत्वात्
 चतुर्थस्य चान्द्रसंवत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वणि पञ्चमस्याऽभि-
 वर्द्धित संवत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वणि । कारणमनन्तर-
 मेवोक्तं तत एवमेवोक्तं नैव प्रकारेण सपुष्पा वरेणंति पूर्वापर
 गणितमिलनेन पञ्चसंवत्सरिके युगे चतुर्विंशत्पधिकं पर्वशतं
 भवतीत्याख्यातं सर्वैरपि तीर्थरुद्धिर्नया चेति ।

[३५]

और भी इन महाराज कृत श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति सूत्रा वृत्तिके
पृष्ठ १११ से ११२ तक तत्पाठ—

युगसंवत्सरेणमित्यादि । ता युगसंवत्सरो युगपूरकः संव-
त्सरपंचविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा । चंद्रश्चांद्रोऽभिवद्धितश्चांद्रोऽभि-
वद्धितश्चैव ॥ उक्तं च ॥ चंदो चंदो अभिवद्धिओय चंदोऽभि-
वद्धिओ चैव पंचतहियं युगमिणं दिदृते लोक दंसीहि ॥ १ ॥
पढम बिद्वयाउ चंदा तद्वयं अभिवद्धिअं वियाणा हि चंदेचैव
चउत्तयं पंचममभिवद्धियं जाण ॥ २ ॥ तत्र द्वादशपौर्णमासी
परावर्त्ताया यावता कालेन परिसनाप्तिमुपयांति तावत्
कालविशेषश्च संवत्सरः ॥ उक्तं च ॥ पुस्मिन् परियहा
पुण बारसमासे हवइ चंदो ॥ एकश्च पौर्णमासी परावर्त्त
एकश्चंद्रमास स्तस्मिं चांद्रमासे रात्रि दिवसपरिमाणचिन्तायां
एकोनत्रिंशद्द्वोरात्रा द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा रात्रि दिव-
सस्य एतद्द्वादशभिर्गुण्यते जातानि त्रीणि शतानि चतुःपञ्चा-
शदधिकानि रात्रि दिवानां द्वादश च द्वाषष्टिभागा रात्रि
दिवसस्य एवं परिमाणश्चान्द्रः संवत्सरः । तथा यस्मिन् संव-
त्सरे अधिकमास सम्भवेत् त्रयोदशचन्द्रमासा भवन्ति सोऽभि-
वद्धितसंवत्सरः ॥ उक्तं च ॥ तेरस्य चंद्रमासा वासो अभि-
वद्धिओय नायद्धो ॥ एकस्मिं चंद्रमासे अहोरात्रा एकोनत्रिं-
शद्भवन्ति द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा अहोरात्रस्य एतच्छानन्तर-
मेवोक्तं । तत एष राशिस्त्रयोदशभिर्गुण्यते जातानि त्रीणि
अहोरात्रशतानि त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टि-
भागा अहोरात्रस्य एतावद्द्वोरात्र प्रमाणोऽभिवद्धितसंवत्सर
उपजायते कथमधिकमाससम्भवो येनाभिवद्धितसंवत्सर
उपजायते कियता वा कालेन सम्भवतीति उच्यते । इह युगं

[३६]

चन्द्राभिवर्द्धितरूप पञ्चसंवत्सरात्मकं सूर्यसंवत्सरापेक्षया परि
 भाव्यमानमन्यूनानातिरिक्तानि पञ्चवर्षाणि भवन्ति सूर्यमासश्च
 सार्द्धं त्रिंशद्दहोरात्रिप्रमाणं चन्द्रमास एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वा-
 त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्य ततो गणितसंभावनया सूर्य-
 संवत्सर सत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे एकश्चन्द्रमासोऽधिको लभ्यते ।
 स च यथा लभ्यते तथा पूर्वावर्त्यप्रदर्शितेयं करणं गाथा ॥
 चंद्रस्तजो विसेसो आइच्छस्तइ हविज्ज मासस्त तीसइ
 गुणिओ संतो हवइ हु अहि मासगो एको ॥१॥ अस्याक्षरगमनिका
 आदित्यस्य आदित्यसंवत्सरसम्बन्धिनो मासस्य मध्यात् चंद्रस्य
 चंद्रमासस्य यो भवति विश्लेष इह विश्लेष कृते सति यदव-
 शिष्यते तदप्युपचाराद्विश्लेषः स त्रिंशता गुण्यते गुणितः सन्
 भवत्येकोऽधिकमासः तत्र सूर्यमासपरिमाणात् सार्द्धं त्रिंश-
 द्दहोरात्ररूपं चंद्रमासपरिमाणमेकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च
 द्वाषष्टिभागा दिनस्येत्येवं रूपं शोध्यते ततः स्थितं पञ्चादिन-
 मेकमेकेन द्वाषष्टिभागेन न्यूनं तच्च दिनं त्रिंशता गुण्यते
 जातानि त्रिंशद्दिनानि एकश्च द्वाषष्टिभाग त्रिंशता गुणितो
 जातास्त्रिंशद्द्वाषष्टिभागास्ते त्रिंशद्दिनेभ्यः शोध्यन्ते तत
 स्थितानि शेषाणि एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टि-
 भागा दिनस्य एतावत्परिमाणश्चान्द्रोमास इति भवति सूर्य
 संवत्सर सत्क त्रिंशन्मासातिक्रमे एकोऽधिकमासो युगे च
 सूर्यमासाः षष्टिस्तो भूयोऽपि सूर्यसंवत्सर सत्क त्रिंशन्मासाति-
 क्रमे द्वितीयोऽधिकमासो भवति । उक्तं च सट्ठीए अइयाए हवइ
 हु अहि मासगो जुगद्धं नि बावीसे पवत्तए हवइहु बीओ जुग-
 तंनि ॥१॥ अस्यापि अक्षरगमनिका एकस्मिन् युगे अनंतरोदित
 स्वरूपे पर्वणां पक्षाणां षष्टौ अतीतायां षष्टिसंख्येषु पक्षेष्वति-

[३९]

क्रान्तेषु इत्यर्थः एतस्मिन्नवसरे युगार्द्धयुगार्द्धप्रमाणे एकोऽधिको मासो भवति द्वितीयस्त्वधिकमासो द्वात्रिंशत्यधिके पर्वशते (पक्षशते) अतिक्रान्ते युगस्यान्ते युगस्य पर्यवसाने भवति तेन युगमध्ये तृतीयसम्बत्सरे अधिकमासः पञ्चमे चेति द्वौ युग अभिवर्द्धितसम्बत्सरौ तस्मिन्प्रति युगे सर्वसंख्यया यावन्ति पक्षाणि भवन्ति तावन्ति निर्दिष्टुः प्रतिवर्षं पर्वसंख्या साह ॥ तापदमस्तन मित्यादि ता इति तत्र युगे प्रथमस्य णमिति वाक्यालंकृतौ चान्द्रस्य सम्बत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि द्वादशमासात्मको हि चांद्रः सम्बत्सरः एकैकस्मिंश्च मासे द्वे द्वे पर्वाणि ततः सर्वसंख्यया चान्द्रसंबत्सरे चतुर्विंशतिः पर्वाणि भवन्ति द्वितीयस्यापि चांद्रसम्बत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि भवन्ति अभिवर्द्धित सम्बत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वाणि तस्य त्रयोदशमासात्मकत्वात् चतुर्थस्य चांद्र सम्बत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि पञ्चमस्याभिवर्द्धितसम्बत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वाणि कारणमनन्तरमेवोक्तं तत एवमेव उक्तैर्नैव प्रकारेण सपुत्रावरेणन्ति पूर्वापरिगणितमिलनेन पञ्चसांघत्सरिके युगे चतुर्विंशत्यधिकं पर्वशतं भवतीत्याख्यातं सर्वैरपि तीर्थकद्धर्मपा चेति ।

देखिये उपरके दोनुं पाठमें सुलासा पूर्वक प्रथम चन्द्र संबत्सर दूगरा चन्द्र संबत्सर तीसरा अभिवर्द्धित संबत्सर चौथा फिर चन्द्रसंबत्सर और पांचमा फिर अभिवर्द्धित संबत्सर इन पांच संबत्सरों सें एक युगकी संपूर्णता लोकदर्शी केवली भगवान् नें देखी हैं कही हैं जिसमें एक चन्द्र मासका प्रमाण एकीनतीस संपूर्ण अहोरात्रि और एक अहोरात्रिके बाग़ठ भाग करके बतीस भाग ग्रहण करनेसे २९ ।

[३८]

३२। ६२ अर्थात् २९ दिन ३० घटीका और ५८ पल प्रमाणे एक चन्द्रमास होता हैं इसको बारह चांद्रमासों से बारह गुणा करने से एक चन्द्रसंवत्सरमें तीनसे चौपन संपूर्ण अहोरात्रि और एक अहोरात्रिके बासठ भाग करके बारह भाग ग्रहण करनेसे ३५४। १२। ६२ अर्थात् ३५४ दिन ११ घटीका और ३६ पल प्रमाणें एक चन्द्रसंवत्सर होता हैं और जिस संवत्सरमें अभिक्रमास होता हैं उसीमें तेरह चन्द्रमास होने से अभिवर्द्धित नाम संवत्सर कहते हैं जिसका प्रमाण तीनसे तैंयाशी अहोरात्रि और एक अहोरात्रिके बासठ भाग करके चौमालीस भाग ग्रहण करनेसे ३८३। ४४। ६२ अर्थात् ३८३ दिन ४२ घटीका और ३४ पल प्रमाणे एक अभिवर्द्धित संवत्सर तेरह चन्द्रमासोंकी गिनतीका प्रमाण से होता हैं इस तरहके तीन चन्द्रसंवत्सर और दोय अभिवर्द्धित संवत्सर ऐसे पांच संवत्सरों से एक युग होता हैं अब एक युगके सर्वपर्वोंकी गिनती कहते हैं प्रथम चन्द्र संवत्सरके बारहमास जिसमें एक एक मासकी दोय दोय पर्वणि होनेसे बारहमासों की चौवीश (२४) पर्वणि प्रथम चन्द्र संवत्सरमें होती हैं तैसे ही दूसरा चन्द्र संवत्सरमें भी २४ पर्वणि होती हैं और तीसरा अभिवर्द्धित संवत्सरमें छवीश (२६) पर्वणि मासवृद्धि होने से तेरहमासोंकी होती हैं तथा चौथा चन्द्र संवत्सरमें २४ पर्वणि होती हैं और पांचमा अभिवर्द्धितसंवत्सरमें २६ पर्वणि होती हैं सो कारण उपरके दोनु पाठमें कहा हैं इन सर्व पर्वोंकी गिनती मिलनेसे पांच संवत्सरोंके एक युगकी एकसो चौवीश (१२४) पर्वणि अर्थात् पाक्षिक होती हैं यह १२४

[३९]

पर्वकी व्याख्या सर्वतीर्थङ्कर महाराजों ने अर्थात् अनन्त तीर्थङ्करों ने कही हैं तैसे ही वृत्तिकार मलयगिरिजीने चन्द्र प्रज्ञप्तिकी तथा सूर्यप्रज्ञप्तिकी वृत्तिमें खुलासे लिखी हैं और श्रीचंद्रप्रज्ञप्ति वृत्तिमें पृष्ठ १११ से ११३ में तथा १३४ में और श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तिमें पृष्ठ १२४ से १२८ तक नक्षत्र संवत्सर १ चन्द्र संवत्सर २ ऋतु संवत्सर ३ आदित्य (सूर्य) संवत्सर ४ और अभिवर्द्धित संवत्सर ५ इन पांच संवत्सरों का प्रमाण विस्तार पूर्वक वर्णन किया है जिसकी इच्छा होवे सो देखके निःसन्देह होना इस जगह विस्तार के कारण से सब पाठ नहीं लिखते हैं ।

और भी श्रीसुधर्मस्वामिजी कृत श्रीसमवायांगजी मूलसूत्र तथा श्रीखरतरगच्छनायक श्रीअभयदेव सूरिजी कृत वृत्ति और श्रीपार्श्वचन्द्रजी कृत भाषा सहित (श्रीमक-सूदाबाद निवासी राय बहादुर धनपतसिंहजीका जैनागम संग्रह के भाग चौथेमें) छपके प्रसिद्ध हुवा हैं जिसके ६१ मा और ६२ मा समवायाङ्गमें मासोंकी गिनतीके सम्बन्ध वाला पृष्ठ ११९ और १२० का पाठ नीचे मुजब जानो यथा—

पंचसंवच्छरियस्सणं जुगस्सरिज्ज मासेणं मिज्जमाणस्स इग-
सठिं उज्ज मासापन्नता ।

अथैकषष्टिस्थानकं तत्र पञ्चेत्यादि पञ्चभिः संवत्सरैर्नि-
वृत्तमिति पञ्चसंवत्सरिकं तस्य णमित्यलङ्कारे युगस्य कालमान-
विशेषस्य ऋतुमासेन चन्द्रादिमासेन मीयमानस्य एकषष्टिः
ऋतुमासाः प्रज्ञप्ताः इह चायं भावार्थः युगं हि पञ्चसंवत्सरा
निष्पादयन्ति तद्यथा—चन्द्रश्चन्द्रोऽभिवर्द्धितश्चन्द्रोऽभिवर्द्धित-
श्चेति तत्र एकोनत्रिंशदहोरात्राणि द्वात्रिंशच्छ द्विषष्टिभागा

[४०]

अहोरात्रस्येत्येवं प्रमाणेन २९।३२।६२। कृष्णप्रतिपदा-
 रभ्य पौर्णमासी निष्ठितेन चन्द्रमासेन द्वादशमास परि-
 माणश्चन्द्रसंवत्सरस्तस्य च प्रमाणमिदम् त्रीणि शतान्यह्नां
 चतुःपञ्चाशदुत्तराणि द्वादश च द्विषष्टिभागा दिवसस्य ३५४।
 १२।६२। तथा एकत्रिंशदह्नां एकविंशत्युत्तरं च शतं चतु-
 र्विंशतीत्युत्तरशतभागानां दिवसस्येत्येवं प्रमाणोऽभिवर्द्धित-
 मास इति एतेन ३१।१२१।१२४। च मासेन द्वादशमास
 प्रमाणोऽभिवर्द्धित संवत्सरो भवति स च प्रमाणेन त्रीणि
 शतान्यह्नां त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्विषष्टिभागा
 दिवसस्य ३२३।४४।६२। तदेवं त्रयाणां चन्द्रसंवत्सराणां
 द्वयोरभिवर्द्धित संवत्सरयोरेकी करणे जातानि दिनानां
 त्रिंशदुत्तराणि अष्टादशशतानि अहोरात्राणां १८३० ऋतु-
 मासश्च त्रिंशताहोरात्रैर्भवतीति त्रिंशताभागहारे लब्धा
 एकषष्टिः ऋतुमासा इति ।

हिचे ६१ मो लिखे छे । चन्द्र १ चन्द्र २ अभिवर्द्धित ३
 चन्द्र ४ अभिवर्द्धित ५ एम पांचवर्षनो १ युगथाय ते ऋतु-
 मासे करी मीयमानछे चन्द्रमासनोमान २९ अहोरात्रि अने १
 अहोरात्रिना ३२ भाग ६२ ठिया ते कृष्णपक्षनी पडिवाथी
 पौर्णमासीये पूरोथाय एहमासमान १२ गुणोकीजे तिवारे
 वर्षनो मान ३५४ अहोरात्रि अने १ अहोरात्रिना १२ भाग
 ६२ ठियाथाय तेहने त्रिगुणो कीजे तिवार १०६२ अहोरात्रि
 अने १ अहोरात्रिना ६२ ठिया ३६ भागथाय एम अभिवर्द्धित
 मासनो मान ३१ अहोरात्रि अने १ अहोरात्रिमा १२४ भाग
 हाइय १२१ भाग प्रमाणे थाय तेहने १२ गुणो कीजे तिवारे
 अभिवर्द्धित वर्षनो मान ३२३ अहोरात्रि अने १ अहोरात्रिना

[४९]

४४ भाग ६२ ठिया तेहने बेगुणा कीजे १६१ सातसी सहसठ अहोरात्रि अने १ अहोरात्रिना २६ भाग ६२ ठिया थाय तेहने पहिले ३ चन्द्रवर्षना मानमांहि घातिये तिवारे १८३० अहोरात्रिथाय ऋतु मासनी मान ३० अहोरात्रिनु तेमाटे १८३० ने भागें हरिये तो १ युगने विबे ६१ ऋतुमास थाय ।

पंचसंवच्छरिणं जुगे बावठिं पुन्निमाउ बावठिं अमा-
वसाउ पन्नता

अथ द्विषष्टिस्थानकं पंचेत्यादि तत्र युगे त्रयश्चन्द्रसंवत्सरा भवन्ति तेषु षट्त्रिंशत् पौर्णमास्यो भवन्ति द्वौचाभिवर्द्धित-
संवत्सरौ भवतस्तत्र चाभिवर्द्धितसंवत्सरस्त्रयोदशभिश्चन्द्र-
मासैर्भवतीति तयो षट्त्रिंशतिः पौर्णमास्य इत्येवं द्विषष्टिस्ता
भवन्ति इत्येवमनावास्यापीति ।

हिवे ६२ मो लिखे छे । पांचसंवत्सरानी युगहोय तेह मांहि ६२ पुनिम अने ६२ अमावस्या कह्ये १ युगमाहीं ३ चन्द्रवर्ष होय तेहमांहि मास ३६ बारेत्रिक ३६ पूर्णिमा अने ३६ अमावस्या होय अने युगमाहि २ अभिवर्द्धित वर्ष होय तेहना मास २६ होय तेमाटे पूनित्र २६ अमावस्या २६ सर्व पांच वर्षनामिलि ६२ पूर्णिमा अने ६२ अमावस्या होय ॥

देखिये पञ्चमगणधर श्रीसुधर्मस्वामिजीने भी उपरके श्रीसमवायाङ्गजीके मूलसूत्र पाठमें और श्रीअभयदेवसूरिजी वृत्तिकारने भी अधिक मासकी गिनती बरोबर किवी और चंद्रमासोंसे चंद्रसंवत्सरका प्रमाण तथा अभिवर्द्धितमासोंमें अभिवर्द्धितसंवत्सरका प्रमाण दिनोंकी गिनतीसे खुलासा करके एक युगके बासठ चंद्रमासके हिसाबसे ६२ पूर्णिमाभी तथा ६२ अमावस्या और चंद्रमासकी गिनतीके प्रमाणसे

[४२]

६२ चन्द मासके १८३० दिन एक युगकी पूर्ति करनेवाले दिखाये हैं तथापि वर्तमानिक श्रीतपगच्छादि वाले मेरे धर्मबन्धु अधिक मासकी गिनती निषेध करते हैं जिनोंको विचार करना चाहिये ॥

और भी श्रीतपगच्छके पूर्वार्णवजी श्रीक्षेमकीर्तिसूरिजी कृत श्रीवृहत्कल्पवृत्ति खंभायतके भंडारवालीके दूसरे उद्देशे दूसरे खण्डमें—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से ६ प्रकारके मासोंकी व्याख्या किवी हैं जिसमें से इस जगह एक काल मासकी व्याख्या वर्तमानिक श्रीतपगच्छवालोंकी अपने पूर्वजका वचन याद करानेके वास्ते और भव्य जीवोंकी निःसन्देह होनेके लिये पृष्ठ १८८ वें का पाठ दिखाते हैं तथाच तत्पाठ—

कालमासः श्रावणादिः यद्वा कालमासो नक्षत्रादिकः पञ्चविधस्तद्यथा नक्षत्रमासः चंद्रमासः ऋतुमास आदित्यमास अभिवर्द्धितमास अमीषामेव परिमाणमाह गाथाः नक्षत्तो खलु मासो, सत्तावीसं हवन्ति अहोरत्ता ॥ भागाय एकवीसं, सत्तद्वि कएण वेएणं ॥१॥ अउण तीसं चंदो, विसद्वि भागाय हुंति बतीता ॥ कम्मो तीसइ दिवसो, वीसा अध्वं च आइएवो ॥२॥ अभिवर्द्धिइ इक्कीसा चउवीसं भाग सयं वइतिगहीणं भावे सुलाइभ उपगयं पुण कम्म मासेणं ॥३॥ नक्षत्रेषु भवो नक्षत्रः स खलु मासः सप्तविंशत्यहोरात्राणि सप्तषष्ठी कृतेन छेदेन त्रिंशत्स्यहोरात्रस्यैकविंशति सप्तषष्ठीभागाः तथाहि चंद्रस्य भरणपार्श्वश्लेषा स्वाति ज्येष्ठा शतभिषग् नामानि षट् नक्षत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तभोग्यानि तिस्र उत्तराः पुनर्वसु रोहिणी विशाखा चेति षट् पञ्चदत्वारिंशन्मुहूर्त्तभोग्यानि शेषाणि तु

[४३]

पञ्चदशनक्षत्राणि त्रिंशन्मुहूर्तानीति जातानि सर्वसंख्यया
 मुहूर्तानामष्टाशतानि दशोत्तराणि एतेषां च त्रिंशन्मुहूर्तैरहो-
 रात्रमिति कृत्वा त्रिंशता भागो ह्रियते लब्धानि सप्तविंशति
 रहोरात्राणि अभिजिद्गोश्वैकविंशति सप्तषष्ठीभागा इति
 तैरप्यधिकानि सप्तविंशतिरहोरात्राणि सकल नक्षत्रमण्ड-
 लोपभोगकालो नक्षत्रमासो उच्यते १ चंद्रे भवद्वांद्रः कृष्ण-
 पक्षप्रतिपदारभ्य यावत् पौर्णमासी यरिसमाप्तिस्तावत्
 कालमानः स च एकीनत्रिंशदहोरात्राणि द्वात्रिंशत् द्वाषष्टि-
 भागा अहोरात्रस्य २ कर्ममास ऋतुमास इत्येकीऽर्थः स त्रिंश-
 द्विसप्तमाणः ३ आदित्यमासस्त्रिंशदहोरात्राणि रात्रि दिव-
 सस्य चार्धं दक्षिणायनस्यो उत्तरायणस्य वा षष्ठभागमान
 इत्यर्थः ४ अभिवर्द्धितो नाम मुख्यतस्त्रयोदशचंद्रमास प्रमाणः
 संवत्सरः परं तत् द्वादशभागप्रमाणो मासोऽपि अवयवे समु-
 दायोपचारादभिवर्द्धितः स चैकत्रिंशदहोरात्राणि चतुर्विंश-
 त्युत्तरशतभागी कृतस्य चाहोरात्रस्त त्रिकहीनं चतुर्विंशति-
 भागानां भवति एकविंशमिति भावः एतेषां चानयनाय इयं
 करण गाथा॥ जुगमासैहिं उभइए, जगंभिलद्वं हविज्ज नायव्वं॥
 मासाणं पंघन्ह, विषयं राइदियपमाणं॥१॥ इह सूर्यस्य दक्षिण
 सुत्तरं वा अयनं त्र्यशीत्यधिकदिनशतात्मकं द्वि अयने वर्ष-
 मिति कृत्वा वर्षे षट्षट्यधिकानि त्रिणि शतानि भवन्ति पञ्च-
 संत्तराद्युगमिति कृत्वा तानि पञ्चभिर्गुण्यन्ते जातानि अष्टा-
 दशशतानि त्रिंशद्विषाणां एतेषां नक्षत्रमासदिवसानेनाय
 सप्तषष्टिर्युगे नक्षत्रमासा इति सप्तषष्ट्या भागा ह्रियते लब्धाः
 सप्तविंशतिरहोरात्रा एकविंशतिरहोरात्रस्य सप्तषष्ठीभागाः १
 तथा चंद्रमास दिवसानयनाय द्वाषष्टिर्युगे चंद्रमासा इति

[४४]

द्वाषट्वा तस्यैव युगदिन रात्रेर्भागा ह्रियते लब्धाहि एकोन-
त्रिंशद्दहोरात्राणि द्वात्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः एवं युगदिवसाना-
मेवैकषष्टियुगे कर्ममासा इत्येकषट्त्वा भाग ह्रियते लब्धानि
कर्ममासस्य त्रिंशत् दिनानि ३ तथा युगे षष्टि सूर्यमासा
इति षट्त्वा युगदिनानां भाग ह्रियते लब्धाः सूर्यमासदि-
वसास्त्रिंशद्दहोरात्रस्याहुं च ४ तथा युगदिवसा एव अभि-
वर्द्धितमासा दिवशानयनाय त्रयोदशगुणाः क्रियन्ते जा-
ताणि त्रयोविंशतिसहस्राणि सप्तशतानि नवत्यधिकानि
तेषां चतुश्चत्वारिंशते सप्तभि शतैर्भागो ह्रियते लब्धा एक-
त्रिंशद्विवसा शेषाख्यवतिष्ठन्ते षट्त्रिंशत्यधिकानि सप्तशतानि
चतुश्चत्वारिंशत्सप्तशतभागानां ततः उभयेषामप्यङ्कानां षड्-
भिरपवर्तना क्रियते जातामेकविंशशतं चतुर्विंशत्युत्तरशत-
भागानामिति उक्ताः पञ्चापि कालमासाः ॥ १ ॥

देखिये उपरके पाठमें श्रीतपगच्छके मुख्याचार्यजी
श्रीक्षेमकीर्तिसूरिजी अपने (स्वयं) नक्षत्रमास १ चंद्रमास २
ऋतुमास ३ आदित्यमास ४ और अभिवर्द्धितमास ५ इन
पांचमासोंकी व्याख्या करते पांचमा अभिवर्द्धित मासकी
और अभिवर्द्धित संवत्सरकी विशेष व्याख्या खुलासे कर
दिखाइ हैं कि—

अभिवर्द्धितनाम संवत्सर मुख्य तेरह चंद्रमासोंसें होता हैं
एक चंद्रमासका प्रमाण गुनतीस दिन वन्नीस बासटीया भाग
अर्थात् २९ दिन ३० घटीका और ५८ पल प्रमाणे होता हैं
जिसकों तेरह चंद्रमासोंसें तेरह गुना करने सें दिन ३८३।
४४। ६२ भाग अर्थात् ३८३ दिन ४२ घटीका और ३४ पल
प्रमाणे एक अभिवर्द्धित संवत्सर होता हैं चंद्रमासकी व्याख्या

(४५)

उपरमें लिखी है सोही तेरह चंद्रमास के अभि
वर्द्धितसंवत्सर का प्रमाणको बारह भागमें करनेसे एक भाग
में ३१।१५४।१२९ होता है सोही प्रमाण एक अभिवर्द्धित मासका
जानना, याने ३१ अहोरात्रि और एक अहोरात्रि के १२४
भाग करके उपरके तीन भाग छोड़कर बाकीके १२९ भाग
ग्रहण करना अर्थात् ३१ दिन तथा ५८ घटीका और ३३ पलसे
दश अक्षर उच्चारणमें न्यून इतने प्रमाणका एक अभिवर्द्धित
मास होता है सो अवयवोंके उच्चारणसे अभिवर्द्धित मास
कहते हैं अर्थात् जिस संवत्सरमें जब अधिक मास होता है
तब तेरह चंद्रमास प्रमाणे अभिवर्द्धित संवत्सर कहते हैं उसी
के तेरहवा चंद्रमासके प्रमाणको बारह भागोंमें करके बारह
चंद्रमासोंके साथ मिलानेसे बारह चंद्रमासोंमें तेरहवा
अधिकमासके प्रमाणों (अवयवों) की वृद्धि हुई इसलिये
अवयवोंके उच्चारणसे मासका नाम अभिवर्द्धित कहा जाता
है ऐसे बारह अभिवर्द्धित मासोंसे जो हुवा - संवत्सरका
प्रमाण उसीको अभिवर्द्धित संवत्सर कहते हैं परंतु अधिक
मासके कारणसे तेरह चंद्रमासोंसे अभिवर्द्धित संवत्सर
होता है सो गिनतीके प्रमाणमें तो तेरहाही मास गिने जावेंगे
सो तो श्रीप्रवचनसारोद्धार, श्रीचंद्रप्रज्ञप्तिवृत्ति, श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति
वृत्ति श्रीसमवायांगजीसूत्रवृत्ति के जो पाठ उपरमें छप गये
हैं उनपाठोंसे खुलासा दिखता है ।

और पाँचाही प्रकारके मासोंके निज निज मास प्रमाण
से निज निज संवत्सरका प्रमाण तथा निज निज मासके
और निज निज संवत्सरके प्रमाणसे पाँच वर्षोंसे एक युगके
१८३० दिनोंकी गिनती का हिसाब संबंधी आगे यंत्र (कोष्ठक)
लिखनेमें आयेगे जिससे पाठक वर्गको सरलता पूर्वक
जल्दी अच्छी तरहसे समझमें आसकेगा ।

(४६)

और भी अधिक मासकी गिनती प्रमाण करने सम्बन्धी सूत्र, निर्युक्ति, माध्य, पूर्णि वृत्ति और प्रकरणादि शास्त्रोंके पाठ मौजूद हैं परंतु विस्तारके कारण से यहां नहीं लिखता हूँ तथापि बिबेकी जनता उपरोक्त पाठार्थोंसे भी स्वयं समझ जावेंगे ।

अब इस जगह जिनाज्ञा विरुद्ध प्ररूपणा से तथा वर्तने वर्तानेसे संसार वृद्धिका भय रखनेवाले और जिनाज्ञाके आराध्यक आत्मारथी निष्पक्षपाती सज्जनपुरुषोंको मैं निवेदन करता हूँ कि देखो उपरमें श्रीचन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तिमें तथा श्रीसूर्य प्रज्ञप्तिवृत्तिमें सर्व (अनन्त) श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके कथनानुसार श्रीमलयगिरिजीने । तथा श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें श्रीगणधर महाराज श्रीसुबर्णस्वामीजीने और श्रीसमवायाङ्ग जी सूत्रकी वृत्तिमें श्रीखरतरगच्छके श्रीअभयदेवसूरिजीने और श्रीप्रवचनसारोद्धारमें श्रीतपगच्छके पूर्वज श्रीनेमिचन्द्र सूरिजीने । तथा श्रीवृहत्कल्पवृत्तिमें श्रीतपगच्छके श्रीक्षेत्र-कीर्ति सूरिजीने इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें अधिकमासको प्रमाण करके गिनतीमें मंजूर किया है जैसे चारे मासकी गिनतीमें कोई न्यून्याधिक नहीं हैं तैसे ही अधिकमास होनेसे तेरहमासोंकी गिनतीमें भी कोई न्यून्याधिक नहीं हैं किन्तु सभी हीबरो बर हैं सो उपरोक्त पाठार्थोंसे प्रत्यक्ष दिखता है सो विशेष करके अधिक मासकोभी मुहूर्तोंमें, दिनोंमें, पक्षों में, मासोंमें वर्षोंमें, गिनकर पांचसंवत्सरोके एकयुगकी गिनती के दिनोंका, पक्षोंका, मासोंका, वर्षोंका प्रमाण श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने और श्री खरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छादिके पूर्वजोंने कहा है सो

[४७]

आत्मारथी जिनाज्ञाके आराधक पुरषोंको प्रमाण करने योग्य हैं ।

इस संसारकी अनन्त काल हो गये हैं जिसमें अनन्त चौबीशी व्यति हो गइ चन्द्र सूर्यादिके विमान भी अनन्त कालसें सरू हैं इस लिये जैनज्योतिष भी अनन्त कालसें प्रचलित हैं जिसमें अधिक मास भी अनन्त कालसें चला आता हैं—मास वृद्धिके अभावसें बारह मासके संवत्सरका नाम चन्द्र संवत्सर हैं और मासवृद्धि होनेसें तेरह मासकी गिनतीके कारणसें संवत्सरका नाम अभिवर्द्धित संवत्सर हैं तीन चन्द्रसंवत्सर और दोय अभिवर्द्धित संवत्सर इन पांच संवत्सरोसें एकयुग होता हैं एकयुगमें पांच संवत्सरोके बासठ (६२) मासोंकी बासठ (६२) पूर्णिमासी और बासठ (६२) अमावस्याके एकसौ चौबीश (१२४) पर्वणि अर्थात् पाक्षिक अनन्त तीर्थङ्करादिकोंने कही हैं जितसें अनन्तकाल हुए अधिकमासकी गिनती दिन, पक्ष, मास, वर्षादिमें चली आती हैं किसीने भी अधिकमासकी गिनती का एकदिन मात्र भी निषेध नहीं किया हैं तथपि बड़े आफतोस की बात हैं कि, वर्तमानिक श्रीतपगच्छादिवाले अधिकमास की गिनती बड़े जोरके साथ बारंबार निषेध करके एकमासके ३० दिनोंकी गिनती एकदम छोड़ देते हैं और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर महाराजोंकी श्रीगणधर महाराजोंकी श्रीपूर्वधर पूर्वाचार्योंजी की तथा इनलोगोंके खास पूज्य श्रीतपगच्छके ही प्रभाविकाचार्योंजी की आज्ञा भङ्गका भय नहीं करते हैं और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरदि पूर्वाचार्योंजी की आज्ञा मुजब वर्तमानमें श्रीखरतरगच्छादिवाले अधिक-

[४८]

मासको प्रमाण करके गिनतीमें संजूर करते हैं जिन्होंको आज्ञा भङ्गका मिथ्या दूषण लगाके उलटा निषेध करते हैं फिर आप आज्ञाके आराधक बनते हैं यह कितनी बड़ी आश्चर्यकी बात है ।

श्रीअनन्त तीर्थङ्करादिकोंने अधिकमासको गिनतीमें प्रमाण किया है इसलिये जिनाज्ञाके आराधक आत्मारथी पुरुष कदापि निषेध नहीं कर सकते हैं तथापि वर्तमानमें जो अधिक मासको गिनतीमें निषेध करते हैं जिन्होंको श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी और अपने पूर्वजोंकी आज्ञाभङ्गके सिवाय और क्या लाभ होगा सो निर्यक्षाती आत्मारथी पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ।

प्रश्न:—अजी तुम तो श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी शास्त्रोंसे अधिकमासको दिनोंमें पक्षोंमें, मासोंमें, वर्षोंमें, गिनती करनेका प्रत्यक्षप्रमाण उपरोक्त शास्त्रोंके प्रमाणसे दिखाया है परन्तु वर्तमानिक श्रीतपगच्छादिवाले अधिकमास तो एककाल चूलारूप हैं इसलिये गिनतीमें नहीं लेना एता कहते हैं सो कैसे ।

उत्तर:—भो देवानुंप्रिये वर्तमानिक श्रीतपगच्छादिवाले अधिकमासको कालचूला कहके गिनतीमें निषेध करते हैं सो कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि अधिकमासको कालचूला किस कारणसे कही है जिसका अभिप्राय और कालचूला कहनेसे भी विशेष करके गिनती करने योग्य हैं तथा कालचूलाकी ओपमा बहुत उत्तम श्रेष्ठ शास्त्रकारोंने दिवी है सो हमतो क्या कुल जैन श्वेतांबर जिनाज्ञाके आराधन करनेवाले आत्मारथी सभी पुरुषोंको मान्य करने योग्य हैं

[४९]

और गिनती भी करने योग्य है जिसका कारण शास्त्रोंके प्रमाण सहित दिखाते हैं श्रीजिनदास महत्तराचार्यजी पूर्वधर महाराज कृत श्रीनिशीथ सूत्रकी चूर्णि श्रीमोहन-लालजी महाराजके सुरतका ज्ञानभंडारसें आई थी जिसके प्रथम उद्देशके पृष्ठ २१ में तत्पाठ—

इयाणिं चूलेति दारं ॥ णाम ठवणा गाहा णिस्केव गाहा ॥ कंठा ॥ णाम ठवणाउमयाउ दव्वचूला दुविहा आगमतो णो आगमतोय आगमउ जाणए अणुवउते णो आगमतो जाणय भव्वसरीरं जाणयभव्वसरीरवइरित्ता तिधा य दव्वचूला गाहा पुव्वइं ॥ कंठं ॥ पढमो वज्जहो वधारणे वित्तिउरु मुव्वये पुव्वइ जहा संखंमि ॥ उदाहरणा ॥ सच्चित्तचूडा कुक्कुटचूला सा मंसपेसी चैव केवला लोकप्रतिता मीसाचूडा मोरसिहा तस्स मंसपेसीए रोमाणि भवन्ति अचित्ता चूला मणीकुंतगा वा आदिसद्दाउ सीहकख पासाद थूभअग्गाणि ॥ दव्वचूलागता ॥ इदाणिं खेत्तचूला सा तिविहा ॥ अह तिरिय उद्ध ॥ गाहा ॥ अह इति अधोलोकः तिरिय इति तिरियलोकः उद्ध ॥ इति ऊर्ध्वलोकः लोगस्स सद्दो पत्तेगं चूला इति सिहा-होति । भवति । इमाइति प्रत्यक्षो तु शब्दो क्षेत्रावधारणे अहोलोका दीण पच्छद्वेण जहा संखं उदाहरणा सीमंतग इति सीमंतगो णरगो रयणप्यभाय पुढवीउ पढमो सो अह लोगस्स चूला । मंदरोमेरु सो तिरियलोगस्सचूला!तिक्रान्तत्वात् अहवा तिरिय लोगपति ठियस्समेरोवरि चत्तालीसंजीयणा चूला सो तिरिय लोगचूला वसद्दो समुच्चये पाय पूरणे वा इसित्ति अप्पभावे पइति प्रायो वृत्त्याभार इति भारक्कंतस्स पुरिसस्स गायं प्राय सो इसिणयं भवति जाव एवं ठितासा पुढवी

[५०]

इलिपभाराणाम इति एतमभिहाणं तस्स साथ सव्वट्ट सिद्धि
 विनाणाउ उवरिं वारसेहि जोयणेहिं भवति तेण सा उट्टलोए
 भवति । गता खेतचूला । इयाणिं काल भावचूलाउ दोविएण
 गाहाए भस्सति । अहिमासउउकाले । गाहा । बारसमास वरि-
 साउ अहिउमासो अहिमासउ अहिवड्ढिय वरिसे भवति
 सोय अधिकत्वात् कालचूला भवति तु सट्ठोर्थप्प दरिसणेण
 केवलं अधिको कालो कालचूला भवति अंतो विवड्ढमाणो
 कालो कालचूलाए भवति एवं जहाउसप्पिणीए अंते अंति दूस
 समाए सा उरुसप्पिणीए अंते कालरुसचूला भवति । कालचूला
 गता । इयाणिं भावचूला । भवणं भावः पर्याय इत्यर्थः॥ तस्स
 चूला भावचूला सोय दुविहा आगमउय णो आगमउय आग-
 मउजाणए उवउत्तेण णो आगमउय इमाचेव तुसट्ठो । खउवसम
 भावविसेसेण दट्ठवो इमाइति । पकप्प भयण चूला एण
 सट्ठोवधारणे चूलेगठिता चूलात्तिवा विभूसणंति वा सीहरंति
 वा एते एगठो॥ चूलेति दारंगयं ॥ इति श्रीनिशीथसूत्रके पहिले
 उद्देशे की चूर्णिके पृष्ठ २२ तक

और भी १४४४ ग्रन्थकार सुप्रसिद्ध महान् विद्वान् श्री-
 हरिभद्रसूरिजी कृत श्रीदशवैकालिकसूत्रके प्रथम चूलिकाकी
 दृढतद्वृत्तिका पाठ सुनिये श्रीदशवैकालिकमूलसूत्र, अवबूरि,
 भाषार्थ, दीपिका और दृढतद्वृत्ति सहित मुम्बईमें छपके प्रसिद्ध
 हुवा हैं जिसके पृष्ठ ६४० और ६४१का चूला विषयका नीचे
 मुद्रण पाठ जानो—यथा—

अधुनौघतचूडे आरभ्यते अनयोश्चायमभिसम्बन्धः । इहा
 नन्तराभ्ययने भिक्षुगुणयुक्त एव भिक्षुरुक्तः सचैवं भूतोऽपि
 कदाचित् कर्मपरतन्त्रत्वात् कर्मणश्च बलवत्त्वात्सीदेत

[५१]

एतत् स्थिरीकरणं कर्तव्यमिति तदर्थाधिकारवच्चूडाद्वयमभि-
धीयते तत्र चूडाशब्दार्थमेवाभिधातुकाम आह॥ द्रव्ये खेत्ते काले,
भावमिअ चूलिआय निस्केवो॥ तं पुण उत्तरत्तं, सुअ गहि-
अत्थं तु संगहणी ॥ २६ ॥ व्याख्या ॥ नाम स्थापनेक्षुसात्वा-
दनादृत्याह द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे च द्रव्यादिविषयश्चूडाया
निक्षेपो न्यास इति । तत्पुनश्चूडाद्वयमुत्तरतन्त्रमुत्तरसूत्रम्
दशवैकालिकस्याधारपञ्चचूडावत् एतच्छेत्तरतन्त्रं श्रुतगृही-
तार्थमेव दशवैकालिकाख्य श्रुतेन गृहीतोऽर्थोऽस्येति विग्रहः
यद्येवमपार्थक्यमिदम् । नेत्याह संप्रहणी तदुक्ता नुक्तार्थ-
संक्षेप इति गाथार्थः द्रव्यचूडादिव्याचिख्यासयाह ॥ द्रव्ये
सच्चित्ताई, कुक्कुट चूडामणी मऊराइ ॥ खेत्तमि लोगनिक्कुड
मंदरचूडा अ कूडाइ ॥ २७ ॥ व्याख्या ॥ द्रव्य इति द्रव्यचूडा
आगम नोआगम ज्ञशरीरेतरादिव्यतिरिक्ता त्रिविधा स
चित्ताद्या । सचित्ता अचित्ता मिश्राच । यथा संख्यमाह—
कुक्कुट चूडा सचित्ता मणिवूडा अचित्ता मयूरशिखामिश्रा ।
क्षेत्र इति क्षेत्रचूडा लोकनिष्कुटा उपरिवर्तिनः मन्दरचूडा
च पाण्डुकम्बला । चूडादयश्च तदन्यपर्वतानां क्षेत्रप्राधा-
न्यात् आदिशब्दादधोलोकस्य सीमंतकः तिर्यग् लोकस्य
मन्दर ऊर्ध्वलोकस्येषत्प्राग्भार इति गाथार्थः ॥ अद्वरित्त
अहिगमासा, अहिगा संवत्सराअकालंमि ॥ भावे खउ वस-
मिए, इमाउ चूडामुणे अवा ॥ २८ ॥ व्याख्या ॥ अतिरिक्ता
उचितकालात् समाधिका अधिकमासका प्रतीताः अधिकाः
संवत्सराश्च षष्ठाब्दाद्यपेक्षया काल इति कालचूडा भाव इति
भावचूडा क्षायोपशमिके भावे द्वयमेव द्विप्रकारा चूडा
मन्तव्या विज्ञेया क्षायोपशमिकत्वाच्छ्रुतस्येति गाथार्थः
तत्रापि प्रथमा रतिवाक्यचूडा इत्यादि ।

[५२]

और भी श्रीजिनभद्र गणितमात्रमणजी महाराज युग-
प्रधान महाप्रभाविक प्रसिद्ध है जिन्होंने शिष्य श्रीशीलाङ्गा-
चार्यजी भी महाविद्वान् श्रीआचाराङ्गादि ११ अङ्गरूप
सूत्रोंकी टीका करनेवाले प्रसिद्ध है जिसमें श्रीआचाराङ्गजी
तथा श्रीसूयगहाङ्गजी सूत्रकी टीका तो सुप्रसिद्धिसे वर्त रही
हैं और बाकी श्रीस्थानाङ्गजी आदि नवसूत्रोंकी टीका
विच्छेद होगई थी जिससे श्रीअभयदेवसूरिजीने दूसरी बार
बनाई है सो प्रसिद्ध है श्रीशीलाङ्गाचार्यजी विक्रम संवत्
६५० के लगभग हुये हैं सो श्रीआचाराङ्गजी सूत्रकी व्याख्या
रूप टीका करते दूसरे श्रुतस्कन्धकी व्याख्याके आदिमें ही
चूलाका विस्तार किया है परन्तु यहाँ थोड़ासा लिखता
हुं श्रीमकमुद्रावाद निवासी धनपतिसिंह बहादुरकी तरफ
से श्रीआचाराङ्गजी मूलसूत्र, भाषार्थ, दीपिका और बृहत्
वृत्ति सहित छपके प्रसिद्ध हुवा है जिसके दूसरा श्रुतस्कन्धके
पृष्ठ ४में से चूलाविषयका थोड़ासा पाठ नीचे मुजब जानो
यथा—

चूड़ाया निक्षेपः नामादिः षड्विधः नामस्थापने सुखे
द्रव्यचूड़ा व्यतिरिक्ता सवित्ता कुक्कुटस्य अविता मुकुटस्य
चूडामिश्रामयूरस्य, क्षेत्रचूड़ा लोकनिःकुटरूपा कालचूड़ा
अधिकशक्त स्वभावा भावचूड़ात्त्वमेव क्षयोपशमिक-
भाववर्तित्यात् तथा (इसके पहले तीसरे पृष्ठमें) कालाग्र-
मधिकमासकः यदिवाय शब्दः परिमाणवाचक इत्यादि—

देखो ऊपरोक्तशास्त्रोंके कर्तामें श्रीजिनदासमहत्तराचार्यजी
पूर्वधरगीतार्थ पुरुष प्रसिद्ध है तथा श्रीहरिभद्र सूरिजी भी
पूर्वधर गत गीतार्थ पुरुष प्रसिद्ध हैं और श्रीजिनभद्रगणि

[५३]

क्षमाश्रमणजी महाराजके पट्टधरशिष्य श्रीशीलांगाचार्यजी महाराज भी महाप्रभाविक गीतार्थ पुरुष प्रसिद्ध है। इस लिये उपरके पाठ सर्व जैनश्वेतांवर आत्मारथी पुरुषोंको प्रमाण करने योग्य हैं ऊपरके पाठमें नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सैं, छ (६) प्रकारकी चूला कही हैं जिसमें नाम, स्थापना, तो प्रसिद्ध हैं और द्रव्य चूलादि की व्याख्या खुलासा किवी हैं कि,—द्रव्यचूला दो प्रकारकी प्रथम आगसरूप शास्त्रोंमें कही हुई और दूसरी नो आगम से मति, अवधि, मनपर्यव, तथा केवल ज्ञानसे जानी हुई द्रव्य चूला से भव्य शरीर अर्थात् ज्ञानीजी महाराज अपने ज्ञानसे पहलेसे ही देखके जानलेवें कि यह मनुष्य आगामी काले साधु आदि धर्मी पुरुष होने वाला हैं ऐसा जो मनुष्य का शरीर जिसको द्रव्य चूला कहते हैं, कारण कि, इस संसारमें अनन्तीवार शरीर पाया परन्तु उत्तम पदवी पाने योग्य शरीर पाना बहुत मुश्किल हैं तथापि अब पाया जिससे धर्मप्राप्तिका योग्य होवे ऐसे शरीर को ज्ञानी महाराजने भव्यशरीर कहा हैं सो उस शरीरको अनन्ते सब शरीरोंसे उत्तम कहो तथा श्रेष्ठ कहो अथवा चूलारूप कहो सबीका तात्पर्य एकार्थका हैं—और भी प्रसिद्ध द्रव्य चूला तीनप्रकारकी कही है जिसमें प्रथम कुक्कुट (मुरगा) के मस्तक उपर शिखररूप मांसपेसी सहित होनेसे उसीको सच्चित्तचूला कही जाती हैं तथा दूसरी मोर (मयूर) के मस्तक उपर शिखररूप मांसपेसी ओर रींस सहित होनेसे उसीको मिश्रचूला कही जाती हैं और तीसरी मणि तथा कुन्त और मुकुटादिकके उपर शिखररूप होवे उसीको अद्वि

[५४]

चूला कही जाती हैं इन्हींको चूलाकी ओपमा देनेका यही कारण है कि सब भवभवयोंसें विशेष सोभाकारी सुन्दर उत्तम होनेसें शिखरकी अर्थात् चूलाकी ओपमा शास्त्रकारोंने दिवी हैं, द्रव्यचूलारूप भव्यशरीरको गिनतीमें करके प्रमाण करने योग्य हैं, द्रव्यनिक्षेपावत् अर्थात् रावण कृष्ण श्रेणिकादि अथी द्रव्य निक्षेपमें गिने जाते हैं परन्तु जब केवल ज्ञान पावेंगे तब भाव निक्षेपमें गिने जावेंगे तैसेही भव्यशरीर जो द्रव्यचूलामें हैं सो जब साधु आदि धर्मकी प्राप्ति होगी तब भावचूलामें गिना जावेगा। द्रव्यचूला की गिनती नहीं करोगे तो आगे भावचूलामें कैसे गिना जावेगा इस लिये द्रव्यचूलाकी गिनती प्रमाण करने योग्य हैं।

और क्षेत्रचूला भी तीनप्रकार की कही हैं जिसमें प्रथम अधोलोकमें रत्नप्रभा पृथ्वीके सीमन्तनामा नरकावासा अधोलोकके उपर जो शिखररूप है उसीको अधोलोक चूला कही जाती हैं तथा दूसरी तिर्यग् (तीरछा) लोकमें सुप्रसिद्ध जो मेरुपर्वत हैं उसीको तिर्यग् लोकचूला कहते हैं कारण कि तिर्यग् लोकका प्रमाण उंचा १८०० सो योजनका हैं परन्तु मेरुपर्वत तो एक लक्ष योजनका होनेसें तिर्यग्लोकको भी अतिक्रान्त (उल्लङ्घन) करके उंचा चला गया इस लिये तिर्यग्लोकके उपर शिखररूप होनेसें मेरुपर्वतको चूलामें गिना जाता हैं तथा मेरुके उपर जो ४० योजनकी चूलीका हैं सो भी मेरुके शिखररूप होनेसें चूलामें गिनी जाती हैं और मेरुके चार धनोमें १६ तथा १ चूलीकाका मिलके १७ सन्दिरोमें २०४० श्रीजिनेश्वर भगवान् की शाश्वती प्रतिमाजी हैं इसलिये क्षेत्रचूलाका प्रमाण एक अंशमात्र भी

[५५]

गिनतीमें नहीं छुटसकता हैं और तीसरी ऊर्द्ध (उंचा) लोकमें सर्वार्थ सिद्धि विमानसें बारह योजन पर ईषत्प्राग्भारा नाम पृथ्वी जो सिद्धसिला ४५००००० लक्ष योजन प्रमाणे लंबी और चौड़ी हैं तथा बीचमें आठ योजन की जाड़ी हैं जिसके उपर श्रीअनन्त सि भगवान् विराजमान हैं ऐसी जो सिद्ध सिला सो ऊर्द्धलोकके शिखररूप होनेसें चूलामें गिनी जाती हैं यह क्षेत्रचूल भी प्रमाण करके गिनतीमें करने योग्य हैं ।

और कालचूला उसीको कहते हैं कि जो बारह चन्द्र मासोंसें चन्द्रसंवत्सर एकवर्ष होता हैं जिसका उचितकाल हैं उसमें भी एक अधिक मासकी वृद्धि हो कर बारह मासोंके उपर पड़ता हैं सो लोकोंमें प्रसिद्ध भी हैं और अनादि कालसें अधिकमासका एसाही स्वभाव है सो प्रमाण करने योग्य हैं और अधिकमास ज्यादा पड़नेसें संवत्सरका नाम भी अभिवर्द्धित होजाता हैं बारहमासोंका कालके शिखररूप अधिकमास ज्यादा होनेसें उसको कालचूला कही जाती है तथा जैन ज्योतिषके शास्त्रोंसें साठ (६०) वर्षोंकी अपेक्षासें एक वर्षकी भी वृद्धि होती थी जिसको भी कालचूला कहते हैं और उत्सर्पिणिके अन्तमें भी जो काल वर्त्त सोभी कालचूलामें गिना जाता है तथा कालचूलारूप जो अधिकमास है उसीको प्रमाण करके गिनतीमें मंजूर करना चाहिये क्योंकि अधिकमासकी कालचूलाकी जो ओपमा है सो निषेधकवाची नहीं है किन्तु विशेष शोभाकारी उत्तम होनेसें अवश्य ही गिनती करनेके योग्य है । तथापि वर्तमानिक श्रीतपगच्छादिवाले जो महाशय अधिकमास को

[५६]

कालबूला कहके गिनती में नहीं लेते हैं और निषेध भी करते हैं। जिन्होंने मेरा इतना ही पूछना है कि आप लोग अधिक मासको कालबूला जानके गिनती नहीं करते हो तो अभिवर्द्धित नाम संवत्सर कैसे कहते हो और अभिवर्द्धित नाम संवत्सर तो कालबूलारूप अधिकमास ज्यादा होनेसे तेरह चन्द्रमासोंकी गिनती करनेसे ही होता है तथाहि—

अभिवर्द्धित्यभिवर्द्धितः अभिवर्द्धितश्चासौ संवत्सरोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः अभिवर्द्धितश्चात्राभिवृद्धिरूपः अभिवृद्धिस्तु अधिकमासे नैव बोधव्य अनयारीत्या अयं संवत्सर अन्वर्थसंज्ञा लब्धवान् अन्वर्थसंज्ञायाः कारणतातु अधिकमासनिष्ठैव कारणत्वावच्छिन्नस्तु शिरोभौलिमुकुटहीरायमाणोऽधिकमास एव अधिकमासनिहृत्तिश्चेत्थं यतोऽत्र संवत्सरे द्वादशमासेभ्योऽधिकः पतति अतोऽधिकमासः एतद्गणनामन्तरेण तु अन्वर्थसंज्ञायारसङ्गत्यापत्तिरेवेति ध्येयम् ।

अर्थः जो और संवत्सरोकी अपेक्षासे ज्यादा हो याने अधिक महिनावालो होय सो अभिवर्द्धित संवत्सर इस संवत्सरमें वृद्धि जो है सो अधिकमास ही करके है इस कारणसे इस संवत्सरका अर्थानुसार अभिवर्द्धित नाम हुवा अर्थानुसार अभिवर्द्धित नाम रखनेमें अधिकमास कारण हुवा और अभिवर्द्धितनाम कार्य्य हुवा इनोका कार्य्य कारण भाव सिद्ध हुवा कारणताधर्मयुक्त होनेसे यह अधिकमास सब मासोंके मस्तकके शोभा करने वाला जो मुकुट जिसकी शोभा करने वाला जो हीरारत्न उसकी तुल्य हुवा और जिस कारणसे इस महिने का नाम अधिकमास हुवा सो

[५७]

कारण यह है कि यह मास इस संवत्सरमें वारहमासोंसे अधिक पड़ा इसलिये इसका नाम भी अर्थानुसार है इसकी गणनाके बिना अर्थानुसार नाम अभिवर्द्धित संवत्सरका न होगा न होनेसे असङ्गति दोष रहता है यह चिन्तन करना चाहिये। अब अधिक मासकी गिनती नहीं करने वाले महाशय तेरह चन्द्रमासोंके बिना अभिवर्द्धित संवत्सर कैसे बनावेंगे क्योंकि तेरह चन्द्रमासोंके बिना अभिवर्द्धित-संवत्सर नहीं हो सकता हैं तथा अभिवर्द्धित संवत्सरके बिना एकयुगके ६२ चन्द्रमासोंकी ६२ अमावस्या और ६२ पूर्णिमासोंकी १२४ पाक्षिकोंकी गिनती नहीं बन सकेगा इस लिये कालचूलारूप अधिक मासकी गिनती करनेसे अभिवर्द्धित संवत्सर तेरह चन्द्रमासोंकी गिनतीसे होता है सोही श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधर पूर्वाधरादि पूर्वाचार्य तथा खरतरगच्छके और तपगच्छादिके पूर्वाचार्योंने अधिक-मासकों दिनोंमें पक्षोंमें मासोंमें वर्षोंमें गिनतीमें प्रमाण करके एकयुगके ६२ चन्द्रमासोंके १२३० दिनोंकी गिनती कही है सो उपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंसे लिख आये हैं जितसे जिनाज्ञाके आराधक आत्मारथी पुरुषोंको अधिक मासकी गिनती मंजूर करनी चाहिये इसके लिये आगे युक्ति भी दिखावेंगे इति कालचूला सम्बन्धी किञ्चित् अधिकार—

और चौथे भावचूला भी आगमसें तथा नो आगमसें क्षयोपशमादिकी व्याख्या प्रसिद्ध हैं और श्रीदशवैकालिकजी सूत्रकी दो चूला तथा श्रीआवाराङ्गजी सूत्रकी दो चूला और मन्त्राधिराज महाप्रज्ञलकारी श्रीपरमेष्ठि-मन्त्रकी चार चूला इत्यादि सब भावचूला कही जाती हैं

[५८]

सो विभूषणा कही, शोभारूप कही, शिखररूप कही, विशेष सुन्दरता मुगटरूप कही अथवा चूलारूप कही, सब मतलबका तात्पर्य एकार्थका हैं इसलिये गिनती करने योग्य है और जैसे द्रव्य, भाव, नाम, स्थापनासें चार निक्षेपे कहे हैं सो मान्य करने योग्य है तथापि द्रव्य, स्थापनादि का निषेध करने वालोंको (श्रीखरतरगच्छवाले तथा श्रीतपगच्छादि वाले सर्व धर्म्मवन्धु) मिथ्यात्वी कहते हैं तैसे ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे जो चूला कही है सो अनादि-कालसें प्रवर्त्तना सरू हैं श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंने प्रमाण कियीं है सो आत्मार्थियोंको प्रमाण करके मान्य करने योग्य है तथापि क्षेत्रकालादि चूलाओंको गिनतीमें मान्य नहीं करते उलटा निषेध करते हैं और जो मान्य करते हैं जिन्होंको दूषण लगाते हैं ऐसे श्रीतीर्थङ्करादि महाराजों के विरुद्ध वर्तने वाले विद्वान् नामधारक वर्तमानिक महा-शयोंको आत्मार्थी पुरुष क्या कहेंगे जिसका निष्पक्षपाती श्रीखरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छादिके पाठक वर्ग स्वयं विचार लेंगे—

और अधिक मासको कालचूला कहनेसें भी गिनतीमें निषेध कदापि नहीं हो सकता है किन्तु अनेक शास्त्रोंके प्रमाणसें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार अवश्यमेव गिनतीमें प्रमाण करणा योग्य है तथापि जैन सिद्धान्त समाचारीकारनें कालचूलाके नामसें अधिकमासकी गिनती उत्सूत्रभाषणरूप निषेध कियी है जिसका उतारा प्रथम इसजगह लिख दिखाते हैं और पीछे इसकी समालोचनारूप समीक्षा कर दिखायेंगे, जैनसिद्धान्त समाचारीके पृष्ठ ९०की

[५९]

पंक्ति १६॥ से पृष्ठ ९१ की पंक्ति १३ वीं तक चूला सम्बन्धी लेखका उतारा नीचे मुजब जानो—

[हम अधिक मासकों कालचूला मानते हैं सो अब दिखाते हैं, चूला चार प्रकारकी शास्त्रोंमें कथन करी है, यथा—निशीथे दशवैकालिक वृत्तौ च ॥ तथाहि—‘चूला चातुर्विध्यं । द्रव्यादिभेदात् तत्र द्रव्यचूला ताच्च चूलादि १ क्षेत्रचूला मेरोश्चत्वारिंशद्योजन प्रमाण चूलिका २ कालचूला युगे तृतीयपञ्चमयोर्वर्षयोरधिकमासकः ३ भावचूला तु दशवैकालिकस्य चूलिकाद्वयं ४ इति ॥

(भावार्थः) जैसे निशीथमूत्र विषे और दशवैकालिक वृत्ति विषे है तैसें दिखाते हैं, चूला चार प्रकारकी है, द्रव्यादि भेद करके तिसमें द्रव्यचूला उसकों कहते हैं कि-जो मुरगादिके शिरपर होती है, १ क्षेत्रचूला यह है कि-मेरुपर्वतकी चालीश योजन प्रमाण जो चूला है, २ काल चूला उसकों कहते हैं कि-जो तीसरे वर्ष और पाँचमें वर्षमें अधिक मास होता है, ३ भावचूला उसकों कहते हैं कि-जो दशवैकालिक की चूलिका है ॥ ४ ॥

(पूर्वपक्ष) कालचूला कहनेसें आपकी क्या सिद्धि हुई ?

(उत्तर) हे परीक्षक ! कालचूला कहनेसें यह सिद्ध होता है कि-चूलावाले यदार्थके साथ प्रमाणका विचार करना होवे तो उस पदार्थसें चूला न्यारी नहीं गिनी जाती है जैसे मेरुका लक्ष योजन प्रमाण कहेंगे तब चूलिकाका प्रमाण भिन्न नहीं गिर्णगे ।

तैसें चतुर्मासके विचारमें और वर्षके विचार करनेके

[६०]

अक्षरमें अधिक मासका विचार न्यारा नहीं करेंगे, इस वास्ते अधिक मासकों कालचूला कहते हैं] ।

उपरके लेखकी समीक्षा करते हैं कि—प्रथमतो जैन सिद्धान्त समाचारीकारनें निशीथ सूत्रके नामसें चूलाका पाठ लिखा है सो सूत्रमें बिलकुल नहीं है किन्तु निशीथ सूत्रकी चूर्णमें जिनदास महत्तराचार्यजीने चूलासम्बन्धी व्याख्या किवी है और दशवैकालिक सूत्रकी वृत्तिके पाठका नाम लिखा सोभी नहीं है किन्तु दशवैकालिक सूत्रकी प्रथम चूलिका की वृहत् वृत्तिमें पाठ हैं और उपरमें जो चूला चातुर्विध्यं इत्यादि पाठ लिखा है सो न तो चूर्णिकारका है और न वृत्तिकारका है क्योंकि चूर्णिकारनें और वृत्तिकारनें द्रव्यचूला, आगन नो आगमसे भव्यशरीर और सचित्त, अचित्त, मिश्र, तथा क्षेत्रचूला भी सिद्धुगिला और मेरुपर्वत अथवा मेरुचूलिका इत्यादि कालचूला भाव चूलाकी विस्तारसे व्याख्या किवी हैं सो हम उपरमें सम्पूर्ण पाठ लिख आये हैं । जिसकी और जैनसिद्धान्त समाचारी कारका लिखा पाठको वांचकवर्ग आपसमें मिलावेंगे तो स्वयं मालुम हो सकेगा कि जैनसिद्धान्त समाचारीकारने जो पाठ लिखा है सोनिकेवल बनावटी है क्योंकि हमने उपरमें सम्पूर्ण पाठ लिखा है जिसके साथ इस पाठका अक्षर अक्षर और पंक्ति पंक्ति नहीं मिलती है तथा चूर्णिकार की प्राकृत संस्कृत मिली हुयी भाषा है और वृत्तिकारकी निर्युक्ति सहित व्याख्या किवी हुई है । जिनसें उपरका पाठ बिलकुल भाषा वर्णणादिमें बरोबर नहीं है इस लिये उपरका पाठ बनावटी हैं—सो प्रत्यक्ष दिखता है तथापि

[६१]

जैन सिद्धान्त सनाचारी कारनें (यथा निशीथे दशवैकालिक वृत्तौच—इस वाक्यसें जैसे निशीथ सूत्र विषे और दशवैकालिक वृत्तिविषे है तैसे दिखाते हैं) एसा लिखके भोले जीवोंको शास्त्रके नाम लिख दिखाये परन्तु शास्त्रकारका बनाया पाठ नहीं लिखा एसा करना आत्मारथी उत्तम पुरुषको योग्य नहीं है और पाठका भावार्थ लिखे बाद पूर्वपक्ष उदायके उत्तर लिखा है जिसमें भी शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप बिलकुल सर्वथा अनुचित लिख दिया है क्योंकि (चूलावाले पदार्थके साथ प्रमाण का विचार करना होवे तो उस पदार्थसें चूला न्यारी नहीं गिनी जाती है) इन अक्षरो करके चूलाकी गिनती भिन्न नहीं करनी करते है सो भी मिथ्या है, क्योंकि शास्त्रकारों ने चूला की गिनती भिन्न करके मूलके साथ मिलाइ है सोही दिखाते है कि—देखो जैसे श्रीमन्त्राधिराज महामङ्गलकारी श्रीपरमेष्टि मन्त्रमें मूल पांचपदके ३५ अक्षर है तथा चार चूलिका के ३३ अक्षर हैं सो मूलके साथ मिलने से नवपदोसें चूलिकायों सहित ६८ अक्षरका श्रीनवकार परमेष्टि मन्त्र कहा जाता है और श्रीदशवैकालिकजी मूलसूत्रके दश अध्ययन है तथा दो चूलिका है जिसको भी शास्त्रकारोंने अध्ययन रूप ही मान्य किवी है और निर्युक्ति, चूर्णि, अवबूरि, वृहद्वृत्ति, लघुवृत्ति, शब्दार्थवृत्ति वगैरह सबी व्याख्याकारोंने जैसें दश अध्ययनोंका अनुक्रमे सम्बन्ध मिलायके व्याख्या किवी है तैसें ही दो चूलिकारूप अध्ययनकी भी अनुक्रमणिका सम्बन्ध मिलायके व्याख्या किवी है और व्याख्यायोंके श्लोकोंकी संख्या भी चूलिकाके साथ सामिल करनेमें आती

[६२]

है ऐसे ही श्रीआचारांगजीकी चूलिका, श्रीव्यवहार सूत्रजी की चूलिका, श्रीमहानिशीथसूत्रकी चूलिका वगैरह सभी चूलिकायोंकी गिनती शास्त्रोंके साथ श्लोकोंकी संख्यामें आती है तथा व्याख्यानवृत्तमें भी चूलिका साथ सूत्र वांचनेमें आता है। परन्तु चूलिकाकी गिनती नहीं करनी ऐसे तो किसी भी जैन शास्त्रमें नहीं लिखा है इस लिये जो जो चूलावाले पदार्थ है उसीके प्रमाणका विचार और गिनतीका व्यवहारमें चूलाका प्रमाण सहित गिना जाता है और क्षेत्र चूलाके विषयमें जैनसिद्धान्त समाचारीकारनें लिखा है कि (जैसे मेरुका लक्षयोजनका प्रमाण कहेंगे तब चूलिकाका प्रमाण भिन्न नहीं गिनेंगे) इन अक्षरोंको लिखके मेरुपर्वतके उपर जो चालीस योजनके प्रमाणवाली चूलिका है। जिसके प्रमाणकी गिनती मेरुसे भिन्न नहीं कहते हैं सोभी अनुचित है क्योंकि शास्त्रोंमें मेरुके लक्ष-योजनका प्रमाण तथा चूलिकाका चालीस योजनका प्रमाण खुलासा पूर्वक भिन्न कहा है सोही दिखाते हैं कि—खास जैन सिद्धान्त समाचारीकारके ही परम पूज्य श्रीरत्नशेखर सूरिजीनें लघुक्षेत्र समाप्त नामा ग्रन्थ बनाया है सो गुजराती भाषा सहित श्रीमुंबईवाला आवक श्रीमसिंहमाणक की तरफसे श्रीप्रकरण रत्नाकरका चौथाभागमें छपके प्रसिद्ध हुवा है जिसके पृष्ठ २३४ में मेरुकी चूलिकाके सम्बन्धवाली ११३ भी गाथा भाषा सहित नीचे मुजब जानो यथा—

तदुपरि चालीमुच्छा, वटामूलुवरि वारचउपिहुला
वेरुलिया वरचूला, सिरिभवन प्रमाण चेइहरा ॥ ११३ ॥

अर्थ:—तदुपरि के, ते लाखयोजन प्रमाणना उंघा

[६३]

मेरुपर्वत उपरे, चालीसुच्छा के०, चालीस योजननी उंची, अने, षट् के०, वर्तुल तथा, मूलुवरि बारवउपिहुला के०, मूलने विधे बार योजन पहोली अने उपर चारयोजन पहोली, तथा, वेरुलिया के०, वैडूर्यनामे जे नीलारत्न तेनी, वर के०, प्रधान, चूला के०, चूलिका छे तेवली चूलिका केहवी छे, सिरिभवण पमाण चेइहरा के०, श्रीदेवीना भवन सरखा चैत्यग्रह एटले जिन भवण तेणे करि महा-शोभित छे इति गाथार्थ ॥ ११३ ॥ उपरकी श्रीरत्नशेखर सूरिजी कृत गाथासे पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे कि, प्रगट पनेसे लक्षयोजनका मेरुके उपरकी चूलिकाके चालीस योजन का प्रमाण भिन्न गिना हैं तथापि जैनसिद्धान्त समाचारीकार भिन्न नही गिनना कहते हैं सो कैसे बनेगा तथा और भी सुनिये जो चूलिकाके प्रमाणको भिन्न नही गिनौंगे तो फिर चूलिकाके उपर एक चैत्य है जिसमें १२० शाश्वती श्रीजिनेश्वर भगवान्की प्रतिमाजी है उन्हींकी गिनती कैसे करतेगे क्योंकि मेरुमें तो १६ चैत्य कहे है जिसमें १८२० प्रतिमाजी है । तथा एक चूलिकाके चैत्यकी १२० प्रतिमाजीकी गिनती शास्त्रकारोंने भिन्न किवी है सो, जैनमें प्रसिद्ध है । इस लिये चूलिकाकी गिनती अवश्यमेव करनी योग्य है तथापि जो मेरुके चूलिकाकी गिनती भिन्न नही करते हैं जिन्हेंको एक चैत्यकी १२० शाश्वती जिन प्रतिमाजीकी गिनतीका निषेधके दूषणकी प्राप्ति होनेका प्रत्यक्ष दिखता है ।

और भी आगे कालचूलाके विषयमें जैन सिद्धान्तसमाचारीके कर्त्ताने ऐसे लिखा है कि (तैसे चतुर्मासके विचारमें और वर्षके विचार करनेके अवसरमें अधिक मासका विचार

[६४]

न्यारा नही करेंगे इस वास्ते अधिकमासको कालचूला कहते हैं) इन अक्षरोंकी लिखके अधिक मासको का चूला कहनेसे चतुर्मासकी और वर्षकी गिनतीमें नही ले ऐसा कहते हैं सो भी अयुक्त है क्योंकि अधिक मास कालचूला कहनेसे भी अवश्यमेव गिनतीमें लेना योग्य सो उपरमें विस्तारसे लिख आये है, इसलिये अधिक मासकी गिनती कदापि निषेध नही हो सकती है श्रीतीरादि महाराजोंने प्रमाण किबी है और अधिकमासको व चूलाकी ओपमा देनेवाले श्रीजिनदास महत्तराचार्यजी पूर्व महाराज भी अधिक मासकी गिनती निश्चयके साथ कहें सोही दिखाते हैं श्रीनिशीथसूत्रकी चूर्णिके दशवें उद्देश परपुषणाकी व्याख्याके अधिकारमें पृष्ठ ३२२का तथा च तत्पाः

अभिवद्दिद्य वरिसे वीसती राते गते गिहिणा तं का तिसुचन्दवरिसे सवीसति राते गते गिहिणा तं का जत्य अधिमासगो पड़ति वरिसे तं अभिवद्दिद्य वा भस्सति जत्य ण पड़ति तं चन्द वरिसं—सीय अधिमास जुगस्सगंते मज्जे वा भवंति जतितो णियमा दो आस भवंति अहमज्जे दो पोसा—सीसो पुच्छति जम्हा अभिवद्दि वरिसे वीसति रातं, चन्द वरिसे सवीसति मासो उच्च जम्हा अभिवद्दिद्य वरिसे गिम्हे चेव सो मासो अतिव्व तम्हा वीस दिना अणभिग्गहियं करंति, इयरेसु तिसु वरिसेसु सवीसति मासो इत्यर्थः ॥

देखिये उपरके पाठमें अधिक मास जिस वर्षमें पड़ते हैं उसीको अभिवर्द्धित संवत्सर कहते हैं जहाँ अधिक मास जिस वर्षमें नही पड़ना है उसीको चन्द्र संवत्सर कहते

[६५]

सो अधिक मास नियम करके होनेसे युगके मध्यमें दो पौष तथा युगके अन्तमें दो आषाढ़ होते हैं जब दो आषाढ़ होते हैं तब ग्रीष्म ऋतुमें चेव निश्चय वो अधिकमास अतिक्रान्त (व्यतिथि) होगया इस लिये अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ़ चौमासीसे वीश दिन तक अनियत वास, परन्तु वीशमें दिन जो श्रावण शुक्लपञ्चमी उसी दिनसे नियत वास निश्चय पर्युषणा होवे और चन्द्र संवत्सरमें पचास दिन तक अनियत वास, परन्तु पचासमें दिन जो भाद्रपदशुक्लपञ्चमी उसी दिनसे नियत वास निश्चय पर्युषणा होवे—

अब उपरके पाठसे पाठकवर्ग पक्षपात रहित होकर स्वयं विचार करेंगे तो प्रत्यक्ष निर्णय हो सकेगा कि खरस चूर्णिकार महाराजने मास वृद्धिको गिनतीमें चेव (लिखा) अवश्यमेव कहा है और प्रथम उद्देशिका जो पहिले पाठ लिखचुके हैं जिसमें कालचूलाकी भी उत्तम ओपमा दिवी है सो अधिक मासकी गिनती करनेसेही अभिवर्द्धित नाम संवत्सर बनता है सो विशेष उपर लिख आये है तथापि जैन सिद्धान्त समाचारीके कर्त्ताने चूर्णिकार महाराजके स्मृत्यर्थमें कालचूला कहनेसे अधिक मासकी गिनती नहीं करना ऐसा लिखनेमें क्या लाभ उठाया होगा सो पाठकवर्ग विचार लेना-इति ॥

तथा और इसके अगाड़ी श्रीतपगच्छके अर्वाचीन (थोड़े कालके) तथा वर्त्तमानिक तपागी, वैरागी, संयमी, उत्क्रष्टि क्रिया करनेवाले जिनाज्ञा मुजब शास्त्रानुसार चलने वाले शुद्धरूपक सत्यवादी और सुप्रसिद्ध विद्वान् नाम धराते भी प्रथम श्रीधर्मसागरजीने श्रीकल्पकिरावलीमें

[६६]

दूसरे श्रीजयविजयजीनें श्रीकल्पदीपिकामें तीसरे श्रीविनय विजयजीनें श्रीसुखकोधिकामें चौथे न्यायांभोनिधिजी श्री-आत्मारामजीनें जैन सिद्धान्तसमाचारी नामा पुस्तकमें पांचवें। न्यायप्रवर्तकी श्रीशान्तिविजयजीनें मानवधर्मसंहिता पुस्तकमें छठे श्रीवज्रभविजयजीनें वर्तमानिक जैन पत्र द्वारा सातवें श्रीधर्मविजयजीनें पर्युषणा विचारनामकी छोटीसी १० पृष्ठकी पुस्तकमें और आठवां आवक भगुभाई फतेचंदने भी पर्युषणा विचार नामका लेख खास जैन पत्रके २३ में अङ्कके आदिमें। इन सभीमहाशयोंने जैन शास्त्रोंके अति गम्भिरार्थका तात्पर्य गुरुगमसें समझे बिना श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंके तथा खास श्रीतपगच्छकेही पूर्वाचार्योंके भी विरुद्ध होकर शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप अधूरे अधूरे पाठ लिखके (परभवका भय न रखते मिथ्या) अपनी अपनी इच्छानुसार अधिक मास की गिनती निषेध सम्बन्धी अनेक तरहके विकल्प श्रीखर-तरगच्छादिवालोंके ऊपर आक्षेपरूप किये हैं।

जिसको पढ़नेसें भोले श्रीत्रोंकी श्रद्धा भङ्ग होनेका कारण जानके निरपेक्षयाती आत्मार्थी जिनाज्ञाके आराधक सत्य-ग्रही भव्य जीवोंकी सत्यासत्यका निर्णय दिखानेके लिये उपरोक्त महाशयोंके लिखे हुए लेखोंकी समालोचनारूप समीक्षा शास्त्रानुसार तथा ग्रन्थकार महाराजके अभिप्राय सहित और युक्तिपूर्वक लिख दिखाता हूँ—

प्रश्नः—तुम उपरोक्त महाशयोंके लिखे हुए लेखोंकी समीक्षा करोगें जिसमें जैन सिद्धान्त समाचारी की पुस्तक श्रीआत्मारामजी की बनाई हुई नहीं है किन्तु उनके शिष्य

[६९]

श्रीकान्तिविजयजी तथा श्रीअमरविजयजीनें बनाई है ऐसा उस पुस्तकमें छाया है फिर श्रीआत्मारामजीका नाम उपरमें क्यों लिखा है और पर्युषणा विचार नामकी छोटी पुस्तकके लेखक भी श्रीधर्मविजयजी नहीं है किन्तु उनके शिष्य विद्याविजयजी हैं फिर श्रीधर्मविजयजीका नाम उपरमें क्यों लिखा है ।

उत्तर:—भो देवानुप्रिय ! मैंने उपरमें श्रीआत्माराम जीका और श्रीधर्मविजयजीका नाम लिखा है जिसका कारण यह है कि जैन शास्त्रानुसार गुह महाराजकी आज्ञा बिना शिष्य कोई कार्य नहीं कर सकता है इस लिये शिष्यके जो जो कार्य करनेकी जरूरत होवे सो सो गुह महाराजसे निवेदन करे जब गुह महाराज योग्यता पूर्वक कार्य करने की आज्ञा दें तब शिष्य गुह महाराजकी आज्ञानुसार जो कार्य करना होवे सो कर सकता है उन कार्यके लाभालाभके अधिकारी गुह महाराज होते हैं परन्तु शिष्य गुह महाराजकी आज्ञानुसार कार्यकारक होता है इस लिये उस कार्यको करानेके मुख्य अधिकारी गुह महाराज हैं इस न्यायके अनुसार प्रथम श्रीकान्तिविजयजीनें तथा श्रीअमरविजयजीनें, जैन सिद्धान्तसमाधारीकी पुस्तक बनानेके लिये श्रीआत्मारामजीसे आज्ञा मांगी होगी और बनाये गये भी अवश्यमेव दिखाई होगी जिसको श्रीआत्माराम जीने पढ़के छपानेकी आज्ञा दी होगी तब छपके प्रसिद्ध हुई है जो श्रीआत्मारामजी बनानेकी तथा छपके प्रसिद्ध करनेकी आज्ञा न देते तो कदापि प्रसिद्ध नहीं हो सकती इस लिये जैन सिद्धान्त समाधारीकी पुस्तकके प्रगटकारक

[६८]

श्रीआत्मारामजी ठहरे, आप कोई कार्य करना अथवा आप आज्ञा देकर कोई कार्य कराना सो भी बरोबर है जिससे मैंने श्रीआत्मारामजीका नाम लिखा है इसी न्यायसे श्रीधर्मविजयजीका भी नाम जानो—कदाचित् कोई ऐसा कहेगा कि गुरु महाराजकी आज्ञाविनाही प्रसिद्ध कर दिवी होगी तो इसपर मेरा इतनाही कहना है कि गुरु महाराजकी आज्ञा विना जो कोई भी कार्य शिष्य करे तो उसकी गुरु आज्ञा विराधक अविनित तथा अनन्तसंसारो शास्त्रकारोंने कहा हैं ऐसेको हितशिक्षारूप प्रायश्चित्त दिया जाता हैं तथापि अविनित पनेमें नहीं माने तो अपने गच्छसे अलग करनेमें आता है सो बात प्रसिद्ध है इसलिये जो श्रीआत्मारामजीकी आज्ञासे जैन सिद्धान्तसमाचारीकी पुस्तक तथा श्रीधर्मविजयजीकी आज्ञासे पर्युषणा विचारकी पुस्तक प्रसिद्ध हुई होवे तब तो उस दोनो पुस्तकमें शास्त्रकारोंके विस्तारमें अथूरे अथूरे पाठ लिखके उत्सूत्रभाषणरूप अनुचित बाते लिखी है जिसके मुख्य लाभार्थी दोनो गुरुजन है इसी अभिप्रायसे मैंने भी दोनो गुरुजनके नाम लिखे हैं—

और अब उपरोक्त महाशयोंके लिखे लिखोंकी समीक्षा करते हैं जिसमें प्रथम इस जगह श्रीविनयविजयजी कृत श्रीकल्पसूत्रकी सुबोधिका (सुखबोधिका) वृत्तिविशेष करके श्रीतपगच्छमें प्रसिद्ध हैं तथा वर्तमानिक श्रीतपगच्छके साधु आदि प्रायः सब कोई शुद्ध श्रद्धापूर्वक सरल जानके उसीको हर वर्ष गांव गांवके विषे श्रीपर्युषणापर्वमें वांचते हैं जिसमें अधिक मासकी गिनती निषेध करनेके लिये लिखा हैं जिसको यहाँ लिखकर पीछे उसीमें जो अनुचित है

[६९]

जिसकी समीक्षा करके दिखावंगा जिससे आत्मार्थी प्राणि-
योंकी सत्यासत्यकी स्वयंमालुम हो सकेगा श्रीसुखबोधिका
वृत्ति मेरे पास हैं जिसके पृष्ठ १४६ की दूसरी पुठीकी आदि
से लेकर पृष्ठ १४७ की दूसरी पुठीकी आदि तकका नीचे
मुजब पाठ जानो यथा—

अन्तरावियत्ति अर्वांगपि कल्पते परं न कल्पते तां रात्रिं
भाद्रशुक्लपञ्चमी उवायणा वित्तएत्ति अतिक्रमयितुं तत्र परि-
सामस्येन उषणं वसनं पर्युषणा सा द्वेधा गृहस्थज्ञाता गृहस्थै
अज्ञाताश्च तत्र गृहस्थै अज्ञाता यस्यां वर्षायोग्य पीठफल-
कादौ प्राप्तं कल्पोक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, स्थापना क्रियते
साधाबाह्यपूर्णमायां योग्यक्षेत्राभावे तु पञ्च पञ्चदिन वृद्ध्या
दशपर्वतिथि क्रमेण यावत् भाद्रपद सितपञ्चम्यां एवं गृहि-
ज्ञाता तु द्वेधा सांवत्सरिक कृत्यविशिष्टा गृहिज्ञातमात्राश्च
तत्र सांवत्सरिक कृत्यानि॥संवत्सरप्रतिक्रान्ति १ लुञ्जनं २ बाह्यमं
तपः ३ सर्वाहर्द्रुक्तिपूजा च ४ संघस्य क्षामणं मिथः ५ ॥ १ ॥
एतत्कृत्यविशिष्टा भाद्रसितपञ्चम्यामेव कालिकाचार्यादेशा-
च्चतुर्थ्यामपि केवलगृहिज्ञाता तु सा यत् अभिवर्द्धिते वर्षे
चतुर्मासदिनादारभ्य विंशत्यादिनैः ययमत्र स्थितास्म इति
पृच्छतां गृहस्थानां पुरो वदन्ति । तदपि जैनटिप्पनकानुसारेण
यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगान्ते चाषाढौ वर्द्धते नान्येमासा-
स्तटिप्पनकंतु अधुना सम्यग् न ज्ञायते ततः पञ्चाशतैश्च दिनैः
पर्युषणायुक्तेति वृद्धाः अत्र कश्चिदाह ननु श्रावणवर्द्धौ
श्रावणसित चतुर्थ्यामेव पर्युषणायुक्ता नतु भाद्रसितचतुर्थ्यां
दिनानामशीत्यापत्तेः । वासाणं सवीसद्वराण मासेवद्वक्तंते इति
वचनबाधा स्यादिति चेन्मैवं अहो देवानां प्रिय एषमाश्विन-

[७०]

वृद्धौ चतुर्मासककृत्य माश्विनसितचतुर्दश्यां कर्तव्यं स्यात्
 कार्तिकसितचतुर्दश्यां करणे तु दिनानां शतापत्या ॥ समणे
 भगवं महावीरे वासाणं सबीसइराए मासे वइक्कंते सत्तरिरा-
 इंदिएहिं ॥ इति समवायांगवचनवाधा स्यात् । नच वाच्यं चतु-
 र्मासकानां ही आषाढादिमासप्रतिबद्धानि तस्मात्कार्तिक-
 चतुर्मासिकं कार्तिकसितचतुर्दश्यामेव युक्तं दिनगणनायां
 त्वाधिकमासः कालचूलेत्यविषक्षणादिनानां सप्ततिरेवेति
 कुतः समवायांगवचनवाधा इति यतो यथा चतुर्मासकानि
 आषाढादिमास प्रतिबद्धानि तथा पर्युषणापि भाद्रपदमास
 प्रतिबद्धा तत्रैव कर्त्तव्या दिनगणनायां त्वाधिकमासः काल-
 चूलेत्यविषक्षणादिनानां पञ्चाशदेव कुतोऽशीतिवार्तापि
 नच भाद्रपदप्रतिबद्धं तु पर्युषणा अयुक्तं बहुष्वागमेषु तथा
 प्रतिपादनात् ॥ तथाहि ॥ “अन्नया पज्जोसवणादिवसे आगए
 अज्जकालगेण सालवाहणो भणिओ, भट्ठवयजुएह पंचमीए
 पज्जोसवणा” ॥ इत्यादि ॥ पर्युषणाकल्पचूर्णौ तथा “तस्य
 य सालवाहणो राया, सो अ सावगो, सो अ कालगउजं
 इंतं सोऊण निगओ, अभिभूहो समणसंघो अ, महाविभूईए
 पविट्ठो कालगज्जो, पविट्ठेहिं अ भण्णिअं, भट्ठवयसुद्धुपंचमीए
 पज्जोसविज्जइ, समणसंघेण पड्विस्सं, ताहे रखा भण्णिअं,
 तट्ठिवसंमम लोगणुवत्तीए इंदो अणुजाणेयव्वो होहिति साहू
 चेइए अणुपज्जुवासिस्सं, तो उट्ठीए पज्जोसवणा किज्जइ,
 आयरिएहिं भण्णिअं, न वड्ढति अतिकुम्मितुं, ताहे रखा
 भण्णिअं, ता अखागए चउत्थीए पज्जोसविज्जति, आयरिएहिं
 भण्णिअं, एवं भवउ, ताहे चउत्थीए पज्जोसवितं एवं जुगप्प-
 हाणेहिं कारणे चउत्थी पवत्तिआ, सा चेवाणुमतासव्वसाहू-

[११]

णमित्यादि ॥ श्रीनिशीधवूर्णौ दशमोद्देशके एवं यत्र कुत्रापि पर्युषणानिरूपणम् तत्र भाद्रपदविशेषितमेव नतु क्वाप्यागमे भद्रवयसुद्रुपंचमीए पञ्जोसविज्ज इति पाठवत् अभिवर्द्धिअ वरिसे सावणसुद्रुपंचमीए पञ्जोसविज्जइति पाठ उपलभ्यते ततः कार्तिकमासप्रतिबद्ध चतुर्मासिकः कृत्य करणे यथा नाधिकमासः प्रमाणं तथा भाद्रमासप्रतिबद्ध पर्युषणाकरणेऽपि नाधिकमासः प्रमाणमिति त्यजकदाग्रहम् ।

श्रीविनयविजयजी कृत उपरके पाठका संक्षिप्त भावार्थः—
अन्तरा विधत्तेति इत्यादि कहनेसे आषाढपूर्णिमासे पचासमें दिन भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी जिसके अन्तरमे कारण योगे पर्युषणा करना कल्पे परन्तु पञ्चमीको उल्लङ्घन करना नहीं कल्पे वर्षाकालमें सर्वथा एकस्थानमें निवास करना सो पर्युषणा-जिसमें योग्यक्षेत्रके अभावसे पांच पांच दिनकी वृद्धि करते दशपर्वतिथिमें यावत् पचासमें दिन भाद्रपदशुक्लपञ्चमीको परन्तु श्रीकालकाचार्यजीसे चतुर्थी को गृहस्थी लोगोंको साधुके वर्षाकालका निवास अर्थात् पर्युषणाकी मालुम होती थी सो चन्द्रसंवत्सरकी अपेक्षासे परन्तु मास वृद्धि होनेसे अभिवर्द्धितनाम संवत्सरमें बीशदिने गृहस्थीलोगोंको साधुके निवास (पर्युषणा) की मालुम होती थी सो जैन टिप्पनाके अनुसार एकयुगके मध्यमें पोषकी तथा अन्तमें आषाढकी वृद्धि होती थी इसके सिवाय और मासोंके वृद्धिका अभावथा तब चन्द्रमें पचास दिनका तथा अभिवर्द्धितमें बीशदिनका नियम था, परन्तु अब वर्तमानकाले जैन टिप्पना नहीं वर्तता है तथा लौकिक टिप्पनामें हरेकमासोंकी वृद्धि होती है इस लिये—पंचाशत्तैश्चदिनैः पर्युषणायुक्तेति वृद्धाः—अर्थात् इस

[92]

कालमें मास वृद्धि हो अथवा न हो परन्तु पचासदिने पर्युषणा करना योग्य है ऐसे वृद्धावाय्य कहते हैं यहाँ कोई कहते हैं कि इस न्यायानुसार वर्तमान कालमें जब दो श्रावण होते हैं तब तो पचास दिनकी गिनतीसे दूजा श्रावण सुदी चौथके दिन पर्युषणा करना योग्य है परन्तु दो श्रावण होते भी माद्रव सुदी चौथके दिन पर्युषणा करना योग्य नहीं है क्योंकि ८० दिन होजावेंगे, और श्रीकल्पसूत्रमें—वासाणं सवोसद्धराण मासे वीइकृते—अर्थात् आषाढ़ चौमासीसे एक मास और वीशदिन उपर, कुल पचाशदिन जानेसे पर्युषणा कहा है तथापि ८० दिने करनेसे सूत्रका इस वाक्यको बाधा आती है इस लिये ८० दिने पर्युषणा करना योग्य नहीं है,—ऐसा प्रश्नरूप वाक्य सुनके इसका उत्तर रूप वाक्य श्रीविनय विजयजी अपनी विद्वत्ताके जोरसे कहते हैं कि अहो देवानां प्रिय-अहो इति आश्चर्य्य हेमूर्ख-अधिकमासकी गिनती करके दो श्रावण होनेसे दूजा श्रावणमें ५० दिने पर्युषणा करना कहता है तो दो आश्विन (आसोज) मास होनेसे १० दिन की गिनती से दूजा आश्विन मासमें तेरेको चतुर्मासिक कृत्य करना पड़ेगा तथापि कार्तिक मासमें चतुर्मासिक कृत्य करेगा तो १०० दिन हो जावेंगे, क्योंकि समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसद्धराण मासेवइकृते रुत्तरिएराइं दिएहिं इति । श्रीसमवायांगजीमें पीछाड़ीके १० दिन रहना कहा है इसवास्ते दूजा आसोजमें चौमासिक कृत्य करना पड़ेगा तथापि कार्तिकमें करेगा तो १०० दिन होजावेंगे तो श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके वचनको बाधा आवेगी इस लिये अधिक मासकी गिनती करनेसे दूजा श्रावणमें पर्युषणा करना योग्य

[७३]

है। ऐसा नहीं कहना क्योंकि चतुर्मासिक कृत्य आषाढ़ादि-मासोंमें करनेका नियम हैं तिस कारणसे दो आश्विनमास होवे तोभी कार्तिक चौमासी कार्तिक शुदी चतुर्दशीके दिन करना योग्य है जिसमें अधिकमास कालचूला होनेसे दिनों की गिनतीमें नही आता है इसलिये दो आश्विन होवे तो भी कार्तिकमें १०० दिने चौमासी किया ऐसा नही समझना किन्तु ५० दिने ही किया गया ऐसा कहनेसे श्रीसम-वायाङ्गजी सूत्रके वचनमें बाधा नहीं आती हैं इस कारणसे जैसे चतुर्मासिक आषाढ़ादि मासोंमें करनेका नियम हैं तैसे ही पर्युषणा भी भाद्रपद मासमें करनेका नियम हैं जिससे उसी (भाद्रवे) में करना चाहिये जिसमें भी अधिकमास आवे तो दिनोंकी गिनतीमें नही लेनेसे दो श्रावण होते भी भाद्रवेमें पर्युषणा करनेसे ५० दिने ही किया ऐसा गिना जाता है इस लिये ८० दिनोंकी वार्ता भी नही समझना तथा पर्युषणा भाद्रवेमें करनेका नियम है सो ही बहुत आगमोंमें कहा है तैसा ही श्रीविनयविजयजीने यहाँ श्रीपर्युषणा कल्पवृत्तिका तथा श्रीविशीथ चूर्णिका पाठ लिख दिखाया जिसमें भी श्रीकालकाचार्यजी महाराज आषाढ़ चतुर्मासीके पीछे कारणयोगे विहार करके सालिवाहनराजा की प्रतिष्ठानपुर नगरीमें आने लगे तब राजा और श्रमण सङ्घ आचार्यजी महाराजके सामने आये, और महा महोत्सवपूर्वक नगरीमें प्रवेश कराया और पर्युषणा पर्व नजिक आये थे जब आचार्यजी महाराजके कहनेसे भाद्रव शुदी पञ्चमीके दिन पर्युषणा करनेके लिये सर्व सङ्घने मंजूर किया तब राजाने कहा कि महाराज उसी (पञ्चमी) के

दिन मेरे नगरीके लोगोंकी सम्मतीसे इन्द्रध्वजका महोत्सव होता है जिससे एक दिनमें दो कार्यके महोत्सव बननेमें तकलीफ होगा इस लिये पर्युषणा छुटकी करो तब आचार्यजी महाराजने कहा कि छुटकी पर्युषणा करना नहीं कल्पे जब फिर राजाने कहा कि धौधकी करो तब आचार्यजीने कहा यह बन सकता है, युगप्रधान महाराजकी इस बातको सर्व सद्गुरु भी प्रमाण किये है इत्यादि श्रीनिशीथ चूर्णिके दशवे उद्देशमें इसी प्रकारसे पर्युषणाकी व्याख्या है सो भाद्रव मासमें करने की हैं जैसे ही मासवृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित संवत्तर (वर्ष)में श्रावण शुदी पञ्चमीकी पर्युषणा करनी ऐसा पाठ कोई भी आगममें नहीं मिलता है तिस कारणसे कार्तिकमास बद्ध (आश्वी) चतुर्मासिक कृत्य करनेमें जैसे अधिक मास प्रमाण नहीं है तैसे ही भाद्रव मास प्रतिबद्ध पर्युषणा करने में भी अधिकमास प्रमाण नहीं है इति अधिकमासकी गिनती करनेका कदाग्रहको छोड़ो—

उपरका लेख अधिकमासको गिनतीमें निषेध करनेके लिये श्रीविजयविजयजीकृत श्रीसुखबोधिकावृत्तिके उपरोक्तपाठसे हुवा है इसी ही तरहके मतलबका लेख श्रीधर्मसागरजीने श्रीकल्पकिरणावली वृत्तिमें तथा श्रीजयविजयजीने श्रीकल्प दीपिका वृत्तिमें अपने स्वहस्ते लिखा है सो यहाँ गौरवता ग्रन्थ बढ़ जानेके भयसे नहीं लिखते हैं जिसकी इच्छा होवे सो किरणावलीके तथा दीपिकाके नवमा व्याख्यानाधिकारे देख लेना इस तीनों महाशयोंके लेख प्रायः एक सदृश (तुल्य) है जिसमें भी विशेष प्रसिद्ध सुखबोधिका होनेसे मैंने उपर लिखा है सोही भावार्थः तथा पाठ तीनों महा-

[७५]

श्योंके जान लेना—अब तीनों महाश्योंके लेखकी शास्त्रानुसार और युक्तिपूर्वक समीक्षा करता हूँ—इन तीनों महाश्योंका मुख्य तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि अधिकमासको गिनतीमें नहीं लेना इस बातको पुष्ट करनेके लिये अनेक तरहके विकल्प लिखे हैं जिसको और अबमें समीक्षा करता हूँ उभीकी मोक्षाभिलाषी सत्यग्राही पुरुष निष्पक्षपातसे पढ़के सत्यासत्यका स्वयं विचारके गच्छका पक्षपातके दृष्टि रागका फंदको न रखते असत्यको छोड़ना और सत्यको ग्रहण करना येही सज्जन पुरुषोंकी मुख्य प्रतिज्ञाका काम है अब मेरी समीक्षा की सुनिये—श्रीधर्मसागरजी तथा श्रीजयविजयजी और श्रीविजयविजयजी इन तीनों श्रीतपगच्छके विद्वान् महाश्योंकी प्रथमतो अधिक मासकी कालचूला जानके गिनतीमें निषेध करना ही सर्वथा अनुचित है क्यों कि श्रीअनन्ततीर्थेन्द्रगणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने तथा श्रीतपगच्छके पूर्वज और प्रभाविकाचार्योंने अधिक मासकी दिनोंमें, पक्षोंमें, मासोंमें, वर्षोंमें, गिनती खुलासा पूर्वक किवी है तथा कालचूलाकी उत्तम ओपमा भी शास्त्रकारोंने गिनती करने योग्य दिवी है और कालचूलाकी ओपमा देनेवाले श्रीजिनदास महत्तराचार्यजी पूर्वधर भी अधिक मासको निश्चयके साथ गिनते हैं जिसका और श्रीतीर्थेन्द्रादि महाराजोंने अधिक मासको गिनतीमें लिया है जिसके अनेक शास्त्रोंके प्रमाणों सहित विस्तार पूर्वक उपरमें लिख आया हूँ जिन शास्त्रोंके पाठोंसे जैनश्वेताम्बर सामान्य पुरुष आत्मार्थी होगा और शास्त्रोंके विरुद्ध परूपनासे संसारवृद्धिका भय रखनेवाला सम्यक्स्थी नामधारी होगा सो भी कदापि

[७६]

अधिक मासकी गिनती निषेध नहीं करेगा तथापि श्रीतपगच्छके तीनो महाशय विद्वान् नाम धराते भी अपने बनाये ग्रन्थोंमें अपने स्वहस्ते श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंके विरुद्ध होकर अधिक मासकी गिनती निषेध करते हैं सो कैसे बनेगा अपितु कदापि नहीं इस लिये इन तीनो महाशयोंका कालचूलाके नामसे अधिक मासकी गिनतीमें निषेध करना सर्वथा जैन शास्त्रोंके विरुद्ध है तथा और भी सुनिये जैन शास्त्रोंमें पांच प्रकारके मासोंसे और पांच प्रकारके संवत्सरोसे एक युगके दिनोंका प्रमाण श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंने कहा है सो सर्वही निश्चयके साथ प्रमाण करके गिनती करने योग्य है जिसके कोष्टक नीचे मुजब जानो यथा—

मासोंके नाम	दिनोंका प्रमाण	और उपर एक अहोरात्रिके	
		भाग करके	ग्रहण करना
नक्षत्र मास	२७	६७	२१
चन्द्र मास	२९	६२	३२
ऋतु मास	३०	०	०
सूर्य मास	३०	६०	३०
अभिवर्द्धित मास	३१	१२४	१२१

संवत्सरोके नाम	दिनोंका प्रमाण	और उपर एक अहोरात्रिके	
		भाग करके	ग्रहण करना
नक्षत्र संवत्सर	३२७	६७	५१
चन्द्र संवत्सर	३५४	६२	१२
ऋतु संवत्सर	३६०	०	०
सूर्य संवत्सर	३६६	०	०
अभिवर्द्धित सं०	३८३	६२	४२

[७७]

मासोंकी गिनती तथा मासोंके नाम	संवत्सरोँके तथा मासोंके प्रमाणसेँ	एक युगकेदिनों का प्रमाण
६७ नक्षत्र मासके	पाँच नक्षत्र संवत्सर और उपर सात नक्षत्र मास जानेसे	एक युगके १८३० दिन
६२ चन्द्र मासके	पाँच संवत्सर जिसमें बारह बारह मासोंके तीन चन्द्र संवत्सर और तेरह तेरह मासोंके दो अभिवर्द्धित संवत्सर ऐसे पाँच संवत्सर जानेसे	एक युगके १८३० दिन
६१ ऋतु मासके	पाँच ऋतु संवत्सर और उपर एक ऋतुमास जानेसे	एक युगके १८३० दिन
६० सूर्य मासके	पाँच सूर्य संवत्सर जानेसे	एक युगके १८३० दिन
५७ अभिवर्द्धित मास तथा उपर ७ दिन और एक अहोरात्रिके १२४ भाग करके ४७ भाग ग्रहण करनेसे	चार अभिवर्द्धित संव- त्सरके उपर नव (९) अभिवर्द्धित मास और ७ दिनके उपर एक अहो रात्रिके १२४ भाग करके ४७ भाग ग्रहण करे जि- तना काल जानेसे	एक युगके १८३० दिन

[७८]

उपरोक्त कोष्ठकों में पाँच प्रकारके मासोंका प्रमाणसे पाँच प्रकारके संवत्सरोका प्रमाण, और एक युगके १८३० दिन का प्रमाण श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने कहा है जिसके अनुसार श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्त्ति सूरिजीने भी श्रीवृहत्-कल्पवृत्तिमें लिखा है सो पाठ भी उपर लिख आया हुआ है जैन शास्त्रोंमें सूर्य मासकी गिनतीकी अपेक्षासे एकयुगके ६०सूर्य मासोंके पाँच सूर्य संवत्सरोमें एक युगके १८३० दिन होते हैं जिसमें सूर्यमासकी अपेक्षा लेकर गिनती करनेसे मासवृद्धिका ही अभाव है परन्तु एकयुगके १८३० दिनकी गिनती बरोबर सामिल होनेके लिये खास ऋतुमासोंकी अपेक्षासे पाँच ऋतु संवत्सरोमें सिर्फ एकही ऋतुमास बढ़ता है और चन्द्रमासों की अपेक्षासे पाँच चन्द्रसंवत्सरोमें दो चन्द्रमास बढ़ते हैं तथा नक्षत्रमासोंकी गिनतीकी अपेक्षासे पाँच नक्षत्रसंवत्सरोमें सात नक्षत्रमास बढ़ते हैं और अभिवर्द्धित मासोंकी गिनतीकी अपेक्षासे तो चार अभिवर्द्धित संवत्सर उपर ९ अभिवर्द्धित मास और सात (७) दिन तथा एक अहो रात्रिके १२४ भाग करके ४७ भाग ग्रहण करे जितना काल जानसे (नक्षत्रमास, चन्द्रमास, ऋतुमास, सूर्यमास, और अभिवर्द्धित, मास इन सबोंके हिसाबके प्रमाण से) एक युगके १८३० दिन होजाते हैं सो उपरके कोष्ठोंमें खुलासा है उपरका प्रमाण श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि पूर्वाचार्यों का तथा श्रीखरतरच्छके और श्रीतपगच्छके पूर्वज पुरुषोंका कहा हुआ होनेसे इन महाराजोंकी आशातनासे डरनेवाला प्राणी १८३०दिनोंकी गिनतीमेंका एक दिन तथा घड़ी अथवा पल मात्र भी गिनतीमें निषेध नहीं कर सकता है तथापि

[७९]

श्रीतपगच्छके अर्वाचीन तथा वर्तमानिक त्यागी, वैरागी संयमी, उत्क्रष्टिक्रिया करनेवाले जिनाज्ञाके आराधक शुद्ध परूपक भद्राधारी सम्यकत्वी विद्वान् नाम धराते भी महान् उत्तम श्रीतीर्थङ्कर गणधर और पूर्वधरादि पूर्वाचार्य तथा खास श्रीतपगच्छकेही पूर्वजपूज्य पुरुषोंकी आशातनाका भय न रखते चन्द्रमासोंकी अपेक्षासे जो अधिक सास होता है जिसकी गिनती निषेध करके उत्तम पुरुषोंके कहे हुवे पाँच प्रकारके मासोंका तथा संवत्सरोका प्रमाणकों भङ्ग करके एकयुगके दिनोंकी गिनतीमें भी भङ्ग डालते हैं जिन्होंकी विद्वत्ताको मैं कैसी ओपमा लिखु इसका विचारकरता था जिसमें श्रीआत्मरामजीकाही बनाया अज्ञानतिमिर भास्कर ग्रन्थका लेख मुझे उसी वस्तुयाद आया सो लिख दिखाता हूँ अज्ञानतिमिर भास्कर ग्रन्थके पृष्ठ २९४ के अन्तसे पृष्ठ २९६ के आदि तक का लेख नीचे मुजब जानो—

संविज्ञ गीतार्थ मोक्षाभिलाषी तिस तिसकाल सम्बन्धी बहुत आगमेंके जानकार और विधिमार्गके रसीये बहुमान देनेवाले संविज्ञ होनेसे पूर्वसूरि चिरन्तन मुनियोंके नायक जो होगये हैं तिनोंने निषेध नहीं करा है ; जो आवरित आवरण सर्वधर्मी लोक जिस व्यवहारको मानते हैं तिसकों विशिष्ट भ्रुत अवधि ज्ञानादि रहित कौन निषेध करे ? पूर्व पूर्वतर उत्तमाचार्योंकी आशातनासे डरनेवाला अपितु कीई नहीं करे बहुल कर्मोंके वज्रके ते पूर्वोक्तगीतार्थों ऐसे विधारते हैं जाज्वल्यमान अग्निमें प्रवेश करनेवालेसे भी अधिक साहस यह है उत्सूत्र प्ररूपणा, सूत्र निरपेक्ष देशना, कटुक विपाक, दारुण, खोटे फलकी देनेवाली, ऐसे जानते हुए भी

[८०]

देते हैं, मरीचिवत्, मरीचि एक दुर्भाषित वचनसें दुःखरूप समुद्रकों प्राप्ता हुआ ; एक कोटा कोटी सागर प्रमाण संसार में भ्रमण करता हुआ जो उत्सूत्र आचरण करे सो जीव चीकणे कर्मका बन्ध करते हैं । संसारकी वृद्धि और माया सृष्टा करते हैं तथा जो जीव उन्मार्गका उपदेश करे, और सन्मार्गका नाश करे सो गूढ़ हृदयवाला कपटी होवे, धूर्त-चारी होवे शल्य संयुक्त होवे सो जीव तिर्यंच गतिका आयु-बन्ध करता है । उन्मार्गका उपदेश देनेसें भगवन्तके कथन करे चारित्रिका नाश करता है, ऐसे सम्यग् दर्शनसें भ्रष्टकों देखना भी योग्य नहीं है, इत्यादि आगम वचन सुनके भी स्व अपने आग्रहरूप ग्रहकरी ग्रस्त चित्तवाला जो उत्सूत्र कहता है क्योंकि जिसका उरला परला कांठा नहीं है ऐसे संसार समुद्रमें महादुःख अंगीकार करने से ।

प्रश्न—क्या शास्त्रकों जानके भी कोई अन्यथा प्ररूपणा करता है ।

उत्तर—करता है सोई दिखाते हैं देखनेमें आते हैं—दुषमकालमें वक्रजड़ बहुत साहसिक जीव भवरूप भयानक संसार पिशाचसें न डरने वाले निजमतिकल्पित कुयुक्तियों करके विधिमार्गकों निषेध करने में प्रवर्तते हैं कितनीक क्रियाओं जे आगममें नहीं कथन करी है तिनको करते हैं और जे आगमने निषेध नहीं करी है चिरंतन जनोंने आचरण करी है तिमको अविधि कह करके निषेध करते हैं और कहते हैं—यह क्रियाओ धर्मीजनोंकों करने योग्य नहीं है ।

उपरमें श्री आत्मारामजीके लेखमें जो पूर्वाचार्योंने आवरीत (प्रमाण) करी हुई बातको निषेध करनेवालाकों

[८१]

यावत् सम्यग् दर्शनसे भ्रष्टकों देखना भी योग्य नहीं है इत्यादि कहा तो इस जगह पाठकवर्ग बुद्धिजन पुरुष विचार रोंकि श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने चंद्रमासकी अपेक्षासे जो अधिकमासकी वृद्धि होती है जिसको गिनतीमें प्रमाण किया है, तथापि श्रीतपगच्छके तीनो महाशय तथा वर्तमानिक विद्वान् नाम धराते भी निषेध करते हैं जिन्होंका त्याग, वैराग्य, संयम और जिनाज्ञाके शुद्ध श्रद्धाका आराधकपना कैसे बनेगा और शुद्ध परूपनाके बदले प्रत्यक्ष अनेक शास्त्रोंके प्रमाण विरुद्ध, उत्सूत्र भाषणका क्या फल प्राप्त करेंगे सो पाठकवर्ग स्वयं विचार लेना—

और श्रीधर्मसागरजी श्रीजयविजयजी और श्रीविजयविजय जी ये तीनो महाशय इतने विद्वान् हो करके भी गच्छ कदा-ग्रहका पक्षपातसे श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्ध परूपनाके फल विपाकका बिलकुल भय न करते सर्वथा प्रकार से अधिक मासकी गिनती निषेध कर दिवी तथा औरभी अपने लिखे वाक्यका भी क्या अर्थ भूल गये सो अधिक मासकी गिनती निषेध करते अटके नहीं क्योंकि इन तीनो महाशयोंके लिखे वाक्यसे भी अधिक मास गिनतीमें सिद्ध होता है सोही दिखाते हैं (अभिवर्द्धित वर्षे चतुर्मासिक-दिनादारभ्य विंशत्यादिनैर्वयमत्र स्थिताः स्म) यह वाक्य तीनो महाशयोंने लिखा है इस वाक्यमें अभिवर्द्धित वर्ष (संवत्सर) लिखा है सो अभिवर्द्धित वर्ष मास वृद्धि होनेसे तेरह चन्द्रमासोंकी गिनतीसे होता है इसमें अधिक मासकी गिनती खुलासा पूर्वक प्रमाण होती है और अधिकमासकी गिनतीके बिना अभिवर्द्धित नाम संवत्सर नहीं बनता है

[८२]

क्योंकि अधिक मासकी गिनती नहीं करनेसे चारह चन्द्र-मासोंसे चन्द्र संवत्सर होता है परन्तु अभिवर्द्धित नाम नहीं बनेगा जब अधिक मासकी गिनती होगी तब ही चारह चन्द्रमासोंसे अभिवर्द्धित नाम संवत्सर बनेगा जिसका विस्तार उपर लिख आये हैं इस लिये अधिक मासकी गिनती तीनों महाशयोंके वाक्यसे सिद्ध प्रत्यक्ष पने होती है और फिरभी इन तीनों महाशयोंने (जैन टिप्पणकानु-सारेण यतस्तत्र युगमध्ये पौषो युगान्ते च आपादो एव वर्धते नान्येमासाः तच्चाधुना सम्यग् न ज्ञायते ततः पञ्चा-शतैव दिनैः पर्युषणा संप्रतिष्ठेति वृद्धाः) यह भी अक्षर लिखे हैं सो इन अक्षरोंसे भी सूर्यवत् प्रकाशकी तरह प्रगट दिखाव होता है कि जैन टिप्पणामें पौष और आपादकी वृद्धि होती थी सो टिप्पण इस कालमें नहीं हैं इस लिये पचास दिने पर्युषणा करना योग्य है यह श्रीतपगच्छके पूर्वज वृशवायोंका कहना है सो बातभी सत्य है क्योंकि इन तीनों महाशयोंके परमपूज्य श्रीतपगच्छके प्रभाविक श्रीकुल-मरघन सूरिजीने भी लिखी है जिसका पाठ इसी पुस्तकके नवमें (९) पृष्ठमें छप गया है—

अधिक मासकी गिनती अनेक जैन शास्त्रोंसे तथा उपरके वाक्यसे भी सिद्ध होती है और पचास दिने पर्यु-षणा करना अपने पूर्वजोंकी आज्ञासे तीनों महाशय लिखते हैं जिससे पाठकवर्ग विचार करे तो शीघ्रही प्रत्यक्ष मालुम हो सकता है कि वर्तमानमें दो श्रावण होतो दूजा श्रावणमें अथवा दो भाद्रपद होतो भी प्रथम भाद्रपदमें पचास दिनोंकी गिनतीसे ही पर्युषणा करना चाहिये यह न्याय स्वयं सिद्ध है

[८३]

इस तीनों महाशयोंने प्रथम अभिवर्द्धित वर्षे इत्यादि वाक्य लिखे जिससे अधिक मासकी गिनती सिद्ध हुई और (पञ्चाशतैश्च दिनैः पर्युषणा युक्तेति वृथाः) यह वाक्य लिखके इस कालमें पचास दिने पर्युषणा करना ऐसे सिद्ध किया जिसमें जैन टिप्पणाके अभावसे भी पचास दिनका तो निश्चय रक्खा इस लिये वर्तमान कालमें पर्युषणा सर्वथा भाद्रव पदमें ही करनेका नियम नहीं रहा क्योंकि श्रावण मासकी वृद्धि होने से दूजा श्रावणमें और दो भाद्रव होनेसे प्रथम भाद्रवमें पचास दिनकी गिनती पूरी होती है यह मतलब तीनों महाशयोंके लिखे हुये वाक्यसेभी सिद्ध होता है तथाविच उपर का मतलबको ये तीनों महाशय जानते भी गच्छके पक्षपात के जोरसे अपनी विद्वत्ताकी लघुता कारक और अग्रमाण रूप विसंवादी (पूर्वापर विरोधि) वाक्य अपने स्वहस्ते लिखते बिलकुल विचार न किया और आपाढ़ चौमासीसे दो श्रावण होनेके कारणसे भाद्रव शुद्धी तक ८० दिन प्रत्यक्ष होते हैं जिसको भी निषेध करनेके लिये (पर्युषणापि भाद्रपदमास प्रति धृदा तत्रैव कर्तव्या दिनेगणनायां तत्त्विक मासः कालचूलेत्य विवक्षणाद्दिनानां पञ्चाशतैव कुतोऽशीति वास्तापि) इन असरोंकी तीनों महाशयोंने लिखे है जिसमें मास वृद्धि होनेसे भी भाद्रपदमें पर्युषणा करना और दो श्रावण होवे तोभी भाद्रवेमें पर्युषणा करनेसे ८० दिन होते हैं ऐसी वास्तापि नहीं करना क्योंकि अधिक मास कालचूला होनेसे दिनोंकी गिनतीमें नहीं आता है इस लिये ५० दिने पर्युषणा किया समझना ऐसे मतलबके वाक्य लिखना तीनों महाशयोंके पूर्वापर विरोधी तथा पूर्वाचार्योंकी आज्ञा

[८४]

खण्डनरूप सर्वथा जैन शास्त्रोंसे और युक्तिसे भी प्रतिकूल हैं क्योंकि प्रथमतो अधिक मासकी गिनतीमें लेनेसेही अभिवर्द्धित नाम संवत्सर बनता है सो अभिवर्द्धित संवत्सर तीनो महाशयोंने उपरमें लिखा है जो अभिवर्द्धित संवत्सर का नाम श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंकी आज्ञानुसार कायम तीनो महाशय रखेंगे तो अधिकमास कालचूला है सो दिनोंकी गिनतीमें नहीं आता है ऐसे मतलबका लिखना तीनो महाशयोंका सर्वथा मिथ्या हो जायगा—

और अधिकमास कालचूला है सो दिनोंकी गिनतीमें नहीं आता है ऐसे मतलबकी कायम रखेंगे तो जो अधिकमास की गिनतीसे अभिवर्द्धित नाम संवत्सर होता है सो नहीं बनेगा यह दोनो बात पूर्वापर विरोधी होनेसे नहीं बनेगे इस लिये अबजो ये तीनो महाशय अधिकमासकी दिनोंकी गिनतीमें नहीं लेंवेंगे तब तो श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि तथा श्रीतपगच्छके नायक पूर्वाचार्योंने अधिक मासकी दिनों की गिनतीमें लिया है जिन महाराजोंके विरुद्ध उत्सूत्र भाषणरूप तीनो महाशयोंका बबन होगया सो आत्मार्थियोंकी सर्वथा त्यागने योग्य हैं इस लिये तीनो महाशयोंकी जिनाज्ञा विरुद्ध परूपणाका भय होता तो अधिकमासकी गिनती निषेध किवी जिसका मिथ्या दुष्कृत्यादिसे अपनी आत्मा को उत्सूत्र भाषणके कृत्योंसे बचानी थी सो तो वर्तमान कालमें रहे नहीं है परलोक गयेको अनेक वर्ष होगये हैं परन्तु वर्तमान कालमें श्रीतपगच्छके अनेक साधुजी विद्वान् नाम धराते हैं और उन्हीं तीनो महाशयोंके लिखे वाक्यको सत्य मानते हैं तथा हर वर्ष उसीको पर्युषणमें घाँवते हैं

[८५]

जिसमें प्रायः करके गांव गांवमें श्रीतपगच्छके सब साधुजी अधिकमासकी गिनती निषेध जैन शास्त्रोंके विरुद्ध करते हैं जिससे श्रीतीर्थङ्करगणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य तथा श्रीतपगच्छके पूर्वज पुरुषोंकी आज्ञाभङ्गका कारण होता है सो आत्मार्थी पुरुषोंको करना उचित नहीं हैं इसलिये जो श्रीतपगच्छके वर्तमानिक मुनिमहाशयोंकी जिनाज्ञा विरुद्ध परूपणाका भय होवे तो अधिकमासकी गिनती निषेध करनेका छोड़ देना ही उचित है और आजतक निषेध किया जिसका मिथ्या दुष्कृत्य देकर अपनी आत्माकी उत्सृज भाषणके पापकृत्योंसे बचानी चाहिये, तथापि विद्वत्ताके अभिमानसे और गच्छके कदाग्रहका पक्षपातके जोरसे उपर की बातको अङ्गीकार नहीं करते हुए अधिकमासकी गिनती निषेध करते रहेगे तो आत्मार्थीपना नहीं रहेगा तथा अधिकमासकी गिनती निषेध जैन शास्त्रोंके विरुद्ध होनेसे कोई आत्मार्थी प्रमाण नहीं कर सकता है इस लिये जैन शास्त्रानुसार श्रीतीर्थङ्करगणधरादि महाराजोंकी तथा अपने पूर्वाचार्योंकी आज्ञा मुजब अधिकमासकी गिनती सर्वथा प्रकारसे अवश्यमेव प्रमाण करनी सोही सम्यक्त्व धारी पुरुषोंका काम है जैनटिप्पणानुसार पौष तथा आषाढ़मासकी वृद्धि होती थी जब भी गिनतीमें लेते थे इस कारणसे तेरह चन्द्रमासोंसे संवत्सरका नाम अभिवर्द्धित होता था, सो वर्तमान कालमें भी अनेक जैन शास्त्रोंमें प्रतिष्ठ है तथा श्रीधर्मसागरजी श्रीजयविजयजी श्रीविनयविजयजी, ये तीनों महाशय भी अभिवर्द्धित संवत्सर लिखते हैं जिसमें अधिकमासकी गिनती आजाती है इस मतलबका

[५६]

विचार न करते संलटा विरुद्धार्थ में तीनों महाश्रयोंने अपने स्वयं विसंवादी (पूर्वापरविरोधि) वाक्यरूप अधिक मास कालचूला है सो दिनोंकी गिनतीमें नहीं आता है ऐसा लिख दिया, और विसंवादी वाक्यका विचार भी न किया । विसंवादी पुरुषका दुनियांमें भी कोई भरोसा नहीं करता है तथा राजदरबारमें भी विसंवादी पुरुष झूठा अप्रमाणिक होता है और जैनशास्त्रोंमें तो श्रावककों भी धर्म व्यवहारमें विसंवादी वचन बोलनेका निषेध किया है सोही दिखाते हैं श्रीआत्मारामजीने अज्ञानतिमिरभास्कर ग्रन्थके पृष्ठ २५६में श्रावककों यथार्थ कहना अविसंवादी वचन धर्म व्यवहारमें ॥ तथा श्रीधर्मसंग्रह वृत्तिके ग्रन्थमें भी यही बात लिखी है और श्रीधर्मरत्नप्रकरण वृत्तिमें भी यही बात लिखी है सोही दिखाते हैं । श्रीधर्मरत्नप्रकरण वृत्ति गुजरातीभाषा सहित श्रीपालीताणामें श्रीविद्याप्रसारकवर्ग है जिसकी तरफसे छपके प्रसिद्ध हुवी है जिसके दूसरे भागमें पृष्ठ २१४ विषे यथा—

ऋजुप्रगुणं व्यवहरणमृजुव्यवहारो भावश्रावकलक्षणश्च-
तुर्द्धा चतुःप्रकारी भवति तद्यथा—यथार्थभणनमविसंवादि
वचनं धर्मव्यवहारे ।

अर्थ—ऋजु एटले सरल चालवुं ते ऋजुव्यवहार ते चार
प्रकारनो छे जेसके एकतो यथार्थ भणन एटले अविसंवादी
बोलवुं ते धर्मनीबाबतमां ।

देखिये अब उपरमें श्रावककों भी धर्म व्यवहारमें विसं-
वादीरूप मिथ्याभाषण बोलनेका जैन शास्त्रोंमें नहीं कहा
है । तो फिर विद्वान् साधुजी होकर विसंवादी वाक्य

[८१]

अपने बनाये ग्रन्थमें लिखना क्या उचित है । कदापि नहीं और इसी ही श्रीधर्मरत्नप्रकरणके दूसरे भागमें पृष्ठ २४६ की आदिसे पृष्ठ २४७ की आदि तकका लेखमें विसंवादी आदि वाक्य बोलने वालेको जो फलकी प्राप्ति होती है सो दिखाते है यथा—

अन्यथा भणनमयथार्थजल्पनमादिशब्दाद्वचक क्रिया दोषोपेक्षासद्भावमैत्री परिग्रहस्तेषु सत्सु आवकस्येति भावः—अबोधेर्धर्माप्राप्तेर्बीजं मूलकारणं परस्य मिथ्या दृष्टि-
नियमेन निश्चयेन भवतीति शेषः ।

तथाहि—आवकमेतेषु वर्त्तमानमालोक्य वक्तारः सम्भवन्ति ॥ धिगस्तु जैनं शासनं ? यत्र आवकस्य शिष्टजन-
निन्दितेऽलीकभाषणादौ कुरुर्मेणि निर्वृतिर्नोपदिश्यते ॥ इति निन्दाकरणादमी प्राणिनो जन्मकोटिष्वपि बोधिं न प्राप्नुवन्तीत्यबोधि बीजमिदमुच्यते ततश्चाबोधिबीजाद् भव-
परिवृद्धिर्भवति तन्निन्दाकारिणस्तन्निमित्तभूतस्य आवकस्यापि यद्वाचि—शासनस्योपघातेयो—नाभोगेनापि वर्त्तते सत-
न्मिथ्यात्वहेतुत्वादन्वेषां प्राणिनानिति ॥ १ ॥ बध्नात्यपि तदेवालं परं संसारकारणं विपाकदाहणं घोरं सर्वानर्थं विवर्द्धनं (मिति) ॥ २ ॥

टीकानो अर्थः—अन्यथा भणन एटले अयथार्थ भाषण आदि शब्द थी वचक क्रिया दोषोनी उपेक्षा तथा कपट मैत्री लेवी अदोषो होय तो आवक बीजा मिथ्या दृष्टि जीवने नक्कीपणे अबोधिनुं बीजथइ पड़ेले एटले के तेथी बीजा धर्मपामी शक्ता नहीं । कारणके अदोषोमां वर्तता आवकने जोइ तेओ येखबोलेके “जिन शासनने धिक्कार

[८८]

थाओ” के ज्यां आवकोने आवा शिष्टजनने निन्दनीय मृषा भाषण वगेरा कुकर्म थी अटकाववानो उपदेश करखामां नथी आवतो ओवी रीते निन्दा करवाथी ते प्राणिओ क्रोड़-जन्मो लगी पण ओधिने पामी शकता नथी तेशी ते अबोधिबीज कहवार्यें छे अने ते अबोधिबीजथी तेवी निन्दा करनारनो संसारवधे छे एटलुंज नहीं पण तेना निमित्त भूत आवकनो संसार वधे छे, जे माटे कहेलुं छे के—जे पुरुष अजाणतां पण शासननी लघुता करावे ते बीजा प्राणिओंने तेवी रीते मिथ्यात्वनो हेतु थई तेना जेटलाज, संसारनु कारण कर्म बांधवा समर्थ थई पड़े छे के जे कर्मविपाक दारुण घोर अने सर्व अनर्थनुं वधारनार थइ पड़े छे ॥ १-२ ॥

उपरमें अन्यथा अयथार्थ भाषण अर्थात् विसंवादी वाक्यरूप मिथ्याभाषणादि करने वाला आवक निश्चय करके मिथ्या दृष्टि जीवोंको विशेष मिथ्यात बढ़ानेवाला होता है और उससे दूसरे जीव धर्म प्राप्त नहीं कर सकते हैं किन्तु ऐसे आवकको देखके जैन शासनकी निन्दा करने वालोंकी संसारकी वृद्धि होती है । और विसंवादीरूप मिथ्याभाषण करनेवाला आवक भी निन्दा करानेका कारणरूप होनेसे अनन्त संसारी होता है तो इस जगह पाठकवर्ग बुद्धिजन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि श्रीधर्मसागरजी श्रीजय-विजयजी श्रीविनयविजयजी ये तीनों महाशय इतने विद्वान् होते भी अनेक जैनशास्त्रोंके विरुद्ध और अपने स्वहस्ते अभिवर्णित संवत्सर उपरमें लिखा है जिसका भी भङ्ग कारक अधिकमास की गिनती निषेधरूप विसंवादी मिथ्या वाक्य भी अपने स्वहस्ते लिखते अनन्त संसार वृद्धिका भी

[४९]

भय नहीं करते हैं तो अब ऐसे विद्वानोंको आत्मार्थी कैसे कहे जाये और अधिक मासकी गिनती निषेधरूप विसंवादी निष्ठा वाक्य इन विद्वानोंका आत्मार्थी पुरुष कैसे ग्रहण करेंगे अपितु कदापि नहीं तथापि जो अधिक मासकी गिनती निषेध श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा विरुद्ध होते भी वर्तमानिक पक्षपाती जन करते हैं जिन्हेंको सम्यक्त्वरूप रत्न कैसे प्राप्त होगा इस बातको पाठकवर्ग स्वयं विचार सकते हैं—

और जैनशास्त्रानुसार अधिकमासके दिनोकी गिनती करनाही युक्त है इस लिये अधिकमास कालचूला है सो दिनोंकी गिनतीमें नहीं आता है ऐसा मतलब तीनो महाशयोंका शास्त्रोंके विरुद्ध है सो उपरोक्त लेखसे प्रत्यक्ष दिखता है इन शास्त्रों के न्यायानुसार वर्तमानकालमें दो आवण होनेसे भी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेसे ८०दिन प्रत्यक्ष होते हैं सो बात जगत् भी मान्य करता है तथापि ये तीनो महाशय और वर्तमानिक श्रीतपगच्छके महाशय भी मंजूर नहीं करते हैं तो इस जगह एक युक्ति भी दिखलाने के लिये श्रीतपगच्छके विद्वान् महाशयोंसे मेरा इतना ही पूछना है कि आपाढ़ चतुर्मासीसे किसी पुरुष वा स्त्रीने उपवास करना सख किया तथा उसी वर्षमें दो आवण हुवे तो उस पुरुष वा स्त्रीको पचास (५०) उपवास कब पूरे होवेंगे और अशी (८०) उपवास कब पूरे होवेंगे इसका उत्तरमें श्रीतपगच्छके सर्व विद्वान् महाशयोंको अवश्यमेव निश्चय कहना ही पड़ेगा कि— दो आवण होनेसे पचास उपवास दूजा आवण शुदी में और ४० उपवास दो आवण होनेके कारणसे भाद्रपदमें पूरे होवेंगे

[९०]

इस युक्तिसे अधिक मासकी गिनती निश्चय के साथ श्रौतप-
गच्छके विद्वान् महाशयोंके कहने से भी सिद्ध होगई तथा
अनेक शास्त्रानुसार ५० दिने दूजा आवण शुदीमें श्रीपर्युषणा
पर्वका आराधन करनेवाले जिनाज्ञा के आराधक सिद्ध हो गये
और दो आवण होते भी भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करने
वाले, शास्त्रोंकी मर्यादाके विरुद्ध होनेमें कोई शंका भी
करेगा अपितु नहीं, तथापि इन तीनों महाशयोंने (दो आवण
होते भी भाद्रपद तक ८० दिनकी वास्ता भी नहीं समझना)
ऐसे मतलबको लिखा है सो कैसे सत्य बनेगा तथापि
वर्तमानिक श्रौतपगच्छके मुनिमहाशय विद्वान् होते भी
उपरकी इस मिथ्या बातको सत्य मानके बारंबार कहते
हैं जिन्हों की मृषावादका त्यागरूप दूजामहाव्रत कैसे
रहेगा सो भी विचारने की बात है, इस उपरोक्त न्यायानु-
सार भी अधिक मासकी गिनती निषेध कदापि नहीं हो
सकती हैं तथापि तीनों महाशय करते हैं सो सर्वथा महा
मिथ्या है इसलिये दो आवण होनेसे भाद्रव शुदी तक ८०दिन
अवश्यमेव निश्चय होते हैं जिससे गिनती निषेध करना ही
नहीं बनता है और मासवृद्धि होनेसे भी पर्युषणा भाद्रपद
मास प्रति ब्रह्म है ऐसा लिखना भी तीनों महाशयोंका सर्वथा
जैनशास्त्रोंसे प्रतिकूल है क्योंकि प्राचीनकालमें भी मासवृद्धि
होती थी जब भी बीस दिने आवण शुक्लपञ्चमी के दिन पर्यु-
षणा करनेमें आते थे जैसे चन्द्र संवत्सरमें पचास दिनके
उपरान्त सर्वथा विहार करना नहीं कल्पे तैसे ही अभिवर्द्धित
संवत्सरमें बीस दिनके उपरान्त सर्वथा विहार करना नहीं
कल्पे और बीस दिन तक अज्ञात पर्युषणा परन्तु बीसमें

[९]

दिनसे ज्ञात पर्युषणा करे सो १००दिन यावत् कार्तिकपूर्णिमा तक चसी क्षेत्रमें ठहरे ऐसा श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्ति मूरिजी कृत श्रीवृहत्कल्पवृत्तिका पाठमें विस्तारपूर्वक कहा है ऐसे ही अनेक शास्त्रोंमें कहा है जिसके पाठ श्री श्रीवृहत्कल्प वृत्तपादिकके कितने ही पहिले लिख आया हुं और आगे भी लिख दिखायुंगा और खास तीनों महाशयोंके लिखे पाठसे भी अभिवर्द्धितमें तीस दिने ब्राह्मणशुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करनेमें आतेथे इसका विशेष खुलासाके साथ आगे विस्तार पूर्वक लिखुंगा जिससे वहाँ प्राचीनकालका तथा वर्तमानिक कालका अच्छी तरहसे निर्णय हो जायेगा—

और आगे वन तीनों महाशयोंने श्रीपर्युषणा कल्प-चूर्णिका तथा श्रीनिशीथचूर्णिका पाठ लिखके सासवृद्धि वर्तमानिक दो ब्राह्मण होसे भी आद्रथ मासमें ही पर्युषणा करने का दिखाया है इस पर मेरा मतना ही कहना है कि इन तीनों महाशयोंने (श्रीपर्युषणा कल्पचूर्णिकमें और श्रीनिशीथ-चूर्णिकमें ग्रन्थकार महाराजके पर्युषणा सम्बन्धी विस्तारपूर्वक पाठ लिखाया जिसके) आगे और पीछे का संपूर्ण सम्बन्धका पाठको छोड़के ग्रन्थकार महाराजके विस्तृतार्थमें उत्सृज-भाषणरूप जाणर इतिसे जखूर श्रीडासा पाठ लिखके भोले जीदोंके शास्त्रके पाठ लिख दिखाये और अपनी विद्वत्ताकी बात दृष्टिरादियोंमें बसाई है इस लिये इस जगत् अव्य जीदोंको निःसन्देह होनेसे सत्य बातपर सुदुग्महा हो करके सत्यबात पकड़ कर इस लिये दोनो चूर्णिकार पूर्वधर महाराज कृत संपूर्ण पर्युषणा सम्बन्धी पाठ यहाँ लिख दिखाता हुं श्रीपूर्वधर पूर्वाचार्यजी कृत श्रीपर्युषणा कल्प

[९२]

(दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रका अष्टम अध्यायनके) चूर्णिके पृष्ठ ३१ से ३२ तक तत्पाठः—

आसाढचाठम्मासियं पडिक्कमंति, पंचहिं दिवसेहिं पज्जो सवणा कप्पं कट्ठेति, सावण बहुल पंचमीए पज्जोसवेति णव वाहिद्वितेहिं ण गहिता णित्थरादीणि, ताहे कथं कहंता चेव गिगहंति मलयादीणि एवं आसाढपुस्सिमाए ठिता, जाव मगसिरबहुलस्स दसमी, तावएगंमि खेत्ते अच्छेज्जा, तिन्निवा दस्सराता, एवंतिन्निपुण दस राता, चिस्कलादीहि कारणेहिं ॥ एत्थउ गाथा पत्थंति पज्जोसविते, सवीसति राय मासस्स आरात्तो जति गिहत्था पुच्छंति, तुम्हे अज्जो वासा रत्तंठिता, अहवा ण ठिता एवं, पुच्छितेहिं, जति अहिवदिद्वय संवच्छरे, जत्थ अहिमासतो पडिति तो, आसाढपुस्सिमाओ वीसति राते गते भस्सति, ठितामोति आरतो ण कथयति वोत्थं ठिता मोति, अथ इतरे तिन्निथंद संवच्छरा तेसु सवीसति राते मासे गते भस्संति, ठितामोति आरतो ण कथयति वोतुं ठिता मोति, किं कारणं असिवादि, गाथा कयाइ, असिवादीणि उप्प ज्जेज्जा जेहिं निग्गमणं होज्जा ताहेति, गिहत्था मस्संज्ज, ण किंचि एते जाणंति, मुसावात वाउलावेंति, जेणं ठितामोति भणित्ता, निग्गत्ता, अहवा वासं ण सुद्ध आरद्धं, तेण लोगो भीता धणंज्जं पितुं, ठितो साहूहिं भणितो ठियामोति जाणति, एते वरिसास्सति तो सुयामो धस्सं विक्किणामो, अधि करणं घराणियत्थप्पंति, हलादीणय संवप्पं करेंति, जम्हा एते दोसा, तम्हा वीसती राते आगते, सवीसति राते वा मासे आगते, ण कथंति वोतुं ठितामोति ॥ एत्थउ गाथा ॥ आसाढपुस्सिमाए ठिताणं जतितण्डगलादीणि गहियाणि, पज्जोसवणा कप्पोय

[९३]

ण कहितो, तो सावण बहलपञ्चमीएपञ्जोसर्वेति असति
 खेते सावण बहलदसमीए, असति खेते सावणबहलरस पस-
 रसीए, एवं पंचपंच उसारं तेण जाव,असति भट्टव सुट्ट पंचमीए,
 अतो परेण ण वहति अतिकमित्तुं, आसाढपुस्सिमातो अढत्तं
 मगंताणं, जाव भट्टवय जोएहस पञ्चमीए एत्यन्तरे जति ब लं
 ताहे रुक्कस्स हेठ्ठेठितो तोविपञ्जोसवेयव्वं, एतेसु पव्वेसु जहा
 लंभे पञ्जोसवेयव्वं, अपव्वे ण वहति, कारिणिया चउत्थीवि
 अज्ज कालएहिं पवित्तिता कहं पुण उज्जेणीए णगरीए,
 बलमित्त भाणुमित्तो रायाणो, तेसिं भाइणेज्जो अज्ज कालए
 पद्दाविता,तेहिराईहं पटुट्टेहिं, अज्ज कालतो निव्विसत्तोक्त्तो
 सोपतिट्ठाणं आगतो, तत्थय सालवाहणो राया सावगो तेण
 समणपुयणत्थणो पवित्तितो ॥ अंतं पुरंच भणितं अमावसाए
 उववासं काउइअट्टमिमाईसु उववासं काउ ॥ इति पाठां-
 तरं ॥ पारणए साहूण भिरकं दातुं पारिज्जव ॥ अन्नय पञ्जो
 सवणादिवसे आसस्से आगते अज्ज कालएण सालवाहणो
 भणितो, भट्टवय जोएहस्स पंचमीएपञ्जोसवणा, रसा भणितो
 तट्टिवसं सम इंदो अणुजातव्वो होहिति तो निप्यज्ज वासि-
 ताणि चेतियाणि साहूणोय भविस्संतित्ति कोऊं तो छट्ठीए
 पञ्जोसवणा भवतु, आयरिएण भणितं न वहति अतिक्रामेसु,
 रसा भणिय तो चउत्थीए भवतु आयरिएण भणितं एवं
 होउत्ति ॥ चउत्थीए कतो पञ्जोसवणा एवं चउत्थीविजाता
 कारणिता, सुट्ट दसमी ठिताण आसाढी पुस्सिमो सरणति
 जत्थ आसाढमासकप्पो कतो तत्थ खेतं वासावासं पाउगं
 अस्सच णत्थि खेतं वासावासं पाउगं अथवा अज्जासे चव
 अस्सी खेतं वासावास पाउगं सव्वं पडिपुसं संधारग इग-

[९४]

लगाइ कययभूमीय बहु वासं च गावुं अणोरयं आदृतं, ताहे आसाढपुसिमाए चेव पञ्जोसविज्जति, एवं पंचाहं परिहाणि सविकृतयोच्यते, इय सत्तरी गाथा, इय प्रदर्शने आसाढचाठ नासिया तो सवीसति राते मासे गसे पञ्जोसर्वेति, तेसिं सत्तरी दिवसा जहसतो जेट्ठोग्गहो सर्वाति, कहं पुण सत्तरी, चत्तंयहं मासाणं सवीसं दिवस सतं भवति, ततो सवीसति रातो मासा, पयासं दिवसा सो वितो सेसा सत्तरी, दिवसा जे भदयय बहुलस्त दसमीए पञ्जोसर्वेति, तेसिं असीति दिवसा जेट्ठोग्गहो, जे सावण पुसिमाए पञ्जोसर्वेति तेसिं णवतिदिवसा जेट्ठोग्गहो, जे सावण बहुल दसमी ठिता तेसिं दसुत्तरं दिवससतं जेट्ठोग्गहो, एवमादीहिं पग्गारेहिं वरिसारत्तं एग खेत्ते अत्थिता कसिय चाठनासिए णिगंतव्वं, अह वासं ण उवरमति, तो मग्गसिरे मासे जं दिवसं पक्क सट्ठिपं जात तद्विवसं चेव निगंतव्वं, उक्कोसेण तिन्नि दसराया न निग्गच्छंज्जा मग्गसिर पुसिमाएत्ति भणियं होइर मग्गसिर पुसिमाए परेण, जइविप्लवंतेहिं तहवि णिगंतव्वं, अथ न निग्गच्छंति तो चउलहुग्ग, एवं पंचमासिचं जेट्ठोग्गहो जाओ, काउण गाथा ॥ आसाढनासकप्पं कावं जत्थ अन्नं वासा यासे पाठायं जत्थ आसाढनासकप्पो कओ तत्थेव पञ्जोसविते आसाढ पुसिमाए वा सालंबणाणं मग्गसिरं पिसव्वं, वासा णतो विरमति तेण या निगता असीवादीणिवा वाहिपवं सालंबणाणं छमासि तो जेट्ठोग्गहो ॥ इत्यादि ॥

और श्रीजिनदास महत्तराचार्यजी पूर्वधर महाराज कृत श्रीनिशीथ सूत्रकी चूर्णिके दशमे उद्देशेके पृष्ठ ३२९ से पृष्ठ ३२४ तक का पर्युषणा सम्बन्धीका पाठ नीचे मुजब जानो, यथा—

[९५]

वासावासैकंनि खेत्तकंनि काले पवेसियद्धं, अतो भस्सति,
 आसादपुस्सिमा ॥ गाहा ॥ वायवंति उस्सग्गेण पज्जोसवेयद्धं,
 अहवा प्रवेष्टव्यं, तंमि पविठा उस्सग्गेण कत्तिय पुस्सिमं जाव
 अच्छंति, अववादेण भग्गसिर बहल दसनी जाव तंमि
 एग खेत्ते अच्छंति, दसरायगाहणातो अयवातो दंसितो अणे
 वि दो दसराता अच्छेज्जा, अववातेणं मार्गसिरसासं तन्नैवास्त्ये-
 त्यर्थः ॥ कहं पुण वासा पाउग्गं खेत्तं पविसंति, इमंण विहिंथा
 वाहिठिता ॥ गाहा ॥ वाहिठियस्ति जत्थ, आसादनासकप्पो कतो
 अणत्थया आसस्से ठिता वा समायारी खेत्तं, वसस्सेहिं गाहेति
 चाववन्तीत्यर्थः ॥ आसादपुस्सिमाए पविठा, पडिबयाठ
 आरम्भ पंचदिणा, संघारण तण हलगद्धार मत्तादीयं गियहति,
 तंमिचेवपणगेरातिए पज्जो सयसा कप्पं कहेंति, ताहे सावण
 बहल पञ्चमीए वायकालं सामायारिं ठवेति, एत्थउअ
 ॥ गाहा ॥ एत्थंतिएत्थ, आसादपुस्सिमाए, सावण बहलपञ्चमीए,
 वासावासं पज्जोसविएवि, अप्पणो अणभिग्गहियं, अहवा
 जति गिहत्था पुच्छंति अज्जो तुम्हे, अत्थेव वारिसाकालं
 ठिया, अहवा ण ठिया, एवं पुच्छिएहिं, अणभिग्गहियंति
 सन्दिधं वक्तव्यं, अह अन्यउवाह्यपि निश्चयो भवतीत्यर्थः ॥
 एवं सन्दिधं कियत्कालं वक्तव्यं ॥ उच्यते ॥ वीसतिरायं,
 वीसतीमासं, जति अभिवट्ठियवरिसं, तो, वीसतिरायं,
 जाव अणभिग्गहियं, अह चंदवरिसं तो सवीसतिरायं,
 जाव अणभिग्गहियं भवति तेणं तत्कालात्परतः अप्पणो
 अभिरामुख्येन गृहीतं, अभिगृहीतं इदं व्यवस्थिता इति,
 इहट्ठियामो वरिसाकालंति किं पुण कारणंति, वीसति राते,
 सवीसतिराते वा मासे गते, अप्पणो अभिग्गहियं गिहिणा

[९६]

तंवा कहेंति ॥ आरतो न कहेंति उच्यते ॥ असिवादि गाहा
 कयाइ ॥ असिवं भवे आदिगाहणतो रायदुठाइ वा वासं ण
 सुदु आरद्धं वासितुं, एवमादिहिं कारणेहिं, जइ अच्छंति तो
 आणा तीता दोसा, अहगच्छंति ततो गिहत्था भणंति एते,
 सव्वणुपुत्तगा ण किञ्चिजाणंति, मुत्तावायंभासंति, ठिता-
 मोत्ति भणित्ता जेण शिग्गता लोगो वा भणिज्ज साहूएत्थ
 वरिसारत्तं ठिता, अवस्सं वासं भविस्सति, ततो थस्सं
 विक्रणति, लोगो घरादीनिच्छादेंति, अह हलादिकं माणि-
 वामंठवेति, अणिगाहिते गिहिणा तेय आरतो कतो,
 जम्हा एवमादिमा अधिकरणदोसा, तम्हा अभिवट्ठिद-
 यवरिसे, वीसतीराते गते गिहिणा तं करेंति, तिसु चंदवरिसे
 सवीसति राते मासे गते गिहिणा तं करेंति, जत्थ अधि-
 मासगो पडति वरिसे, तं अभिवट्ठिदयवरिसं भस्सति, जत्थ ण
 पडति, तं चंदवरिसं सोय अधिमासगो जुंगस्सगंते मज्जे
 वा भवन्ति, जइ तो नियमा दो आसाढा भवन्ति, अहमज्जे
 दो पोसा, सीसो, पुच्छति जम्हा अभिवट्ठिदयवरिसे वीसति-
 रातं, चन्दवरिसे सवीसतिमासो ॥ उच्यते ॥ जम्हा अभि-
 वट्ठिदयवरिसे, गिम्हे चेव सो मासो अतिक्रंतो, तम्हा वीस
 दिना अणभिगाहियं तं करेंति, इयरेसु तिसु चंदवरिसेसु सवी-
 सतिमासा इत्यर्थः ॥ एत्थ पणगं गाहा ॥ एत्थउ आसाढपुस्सि
 माए, ठिया इगलादीयं गिएहंति, पज्जोसव्वणाकप्पंच कहेंति,
 पंचदिणा ततो सावण बहुल पच्चमीए, पज्जोसर्वेति, खेत्ता
 भावे कारणेण पणगेषु वुद्धे दसमीए, पज्जोसर्वेति, एवं पण
 रसीए, एवं पणग्गवद्धी, तावकज्जति, जाव सवीसति मासो,
 पुणो सोय सवीसति मासो भट्ठवयसुद्ध पच्चमी पयुज्जति,

[९७]

अह्वा आसाद सुद दसमीए वासा खेत पविठा, अह्वा, अत्य
 आसाद नासकप्याकओ तं वासप्याउगं खेत, अणं चणत्थि
 वास पाउगं ताहे तत्थेव पज्जोसर्वेति, वासं च गाढं अणु वरयं
 आषाढपुसिनाहिं तत्थेव पज्जोसर्वेति, एकारसीओ आढवेउ
 ङगलादी तं येगहंति पज्जोसवणा कप्पं कहेंति, ताहे आसाद
 पुसिनाए पज्जोसर्वेति, एस उस्सागो, सैस काल पज्जोसवे-
 ताणं सवो अववातो, अववातेवि सवोसति रातमासा तो परेण
 अतिक्रामेउ न वटति, सवोसति राते मासे पुणे जतिवासखेतं
 न लभ्भति तो रुक्क हेट्टेवि पज्जोसवेयध्वं तं पुसिनाए
 पञ्चमीए दसमीए एवमादि पध्वेसु पज्जोसवेयध्वं, णोअपध्वे ॥
 सीसी पुच्छति इयाणिं कइं चउत्थिए अपध्वे पज्जोसवि-
 ज्जति, आयरिओ भणति, कारणिया चउत्थी, अज्जकाल
 गायरियाहिं पवत्तिया, कइं भणत्ते कारणं, कालगायरिओ
 विहरंतो, उज्जेणिं गतो तत्थ वासावासो वासातरंठितो
 तत्थ ॥ नगरीए बलमित्तो राया, तरुस कणिट्टो शाया भाणु-
 मित्तो जुवराया, तैसिं भगणी भाणुसिरी णासं तरुस पुत्तो
 बलभाणू णास, सोयपगितिभट्टविणीययाए साहू तो पज्ज
 वासति आयरिहिं सैधम्मो कहिंतो पडिबुट्टो पद्धावितोय, तेहि
 य बलमित्त भाणुमित्तोहिं कालगज्जापज्जोसविनेणिवित्तो
 कत्तो, आयरिया भणंति जहा, बलमित्त भाणुमित्त काल-
 गायरियाणं भाणिजेज्जा भवंति, माउलोत्ति, काउ महंतं
 आयरं करेति, अभसुठाणदियंतं च पुरोहियस्स अप्पत्तियं
 भणातिय, एसमुदपासंडोवेतादितादिरोहणेअ अतो पुणो
 पुणो उज्जावेंतो, आयरिएण णिप्पठप्पसिण वागरणो कतो,
 ताहे.सो पुरोहितो आयरियस्स पट्टुट्टो, रायाणं आणुत्तीमेहिं

[૯૮]

વિપ્પરિણામેતિ એતે રિસિતો મહાણુભાષા એતે જેણં ગચ્છન્તિ
 તેણ પહેણં જતિ રણો શાગચ્છતિ પતાણિ વા અસમિતો
 અસિવં ભવતિ, તમ્હા વિસજ્જાહં તાહે વિસજ્જિતા અણે
 મણંતિ, રક્ષા ડવાણેણ વિસજ્જિતા કહં સવ્વં મિણગારકિલ
 રક્ષા અસેસક્ષા કરાવિતા, તાહે ણિગગતા એવનાદિયાણ
 કારણાણ અણુક્રમેણ ણિગગતા વિહરંતા પતિઠ્ઠાણં ણયરં,
 તેણ પવિઠા પતિઠ્ઠાણ સમણસંઘસ્સય અજ્જકાલમેહિંસદિઠં,
 જાઘાહં આગચ્છામિ તાવ તુમ્હેહિં શો પજ્જોસવિય્ઘં, તત્થ
 સાલવાહણોરાયા સો સાવગો સોયકાલગજ્જંએતં સોસંજણિગતો
 અભિમુહો સમણસંઘોય મહસા વિભૂતીએ પવિઠો, "કાલગજ્જો
 પવિઠેહિં મણિયં મદ્દવય સુદ્ધ પચ્છનીએ પજ્જોસવિજ્જતિ,
 સમણસંઘેણ પઢિવસ્સં, તાહે રક્ષા મણિયં તદ્દિવસં સમ લોગાણુ-
 વતીએ હન્દો અણુજાપવ્વો હોહેત્તિ, સાહૂવેતિતેણ પજ્જવાસે
 સ્સત્તી તો હટ્ઠીએ પજ્જોસવણાકિજ્જડ, આયરિએહિં મણિયં,
 ણ ઘટ્ઠતિ, અતિકામેડ તાહે રક્ષા મણિયં, તો અણાગએ, ચર-
 ત્થીએ પજ્જોસવિજ્જતિ, આયરિએહિં મણિયં એવં ભવડ, તાહે
 ચરત્થીએ પજ્જોસવિયં, એવં જુગપ્પહાળેહિં ચરત્થી કારણે
 પવત્તિતા, સાચેવાણુમત્તા સવ્વ સાધૂણં, રક્ષા અંતે પુરિયાઠ
 મણિતા તુમ્હે અમાઘતાએ ડવાયાસંકાડં પઢિવયાએ સવ્વ
 સ્સજ્જ મોજ્જ વિહીહિં સાધૂ ઉત્તરપારણએ પઢિલામેત્તા પારે
 જ્જાહા, પજ્જોસવણાએ અઠ્ઠમતિકાડ પઢીવયાએ ઉત્તર-
 પારણયં ભવતિ તંચ સવ્વભોગેણ ધિકયંતતોપમિતિ મરહઠ-
 વિસપસવણ પૂવ્વઉત્તિવણોપયજ્જલે ॥ હયાણિં પંચગપરિહાણિ-
 નધિકૃત્ય કાલાવપ્રાહોચ્ચતે ॥ હય સત્તરી ગાહા ॥ હય
 હત્તિ સરપ્રદ્યંતે જે આ શાકુશાડન્નાદિયા તો સઘીસતિ રાતે

[૯૯]

માસે ગતે પજ્જોસવેંતિ, તેસિં સત્તરી દિવસા જહસો વાસા કાલોગાહો ભવતિ, કહં સત્તરી ઉચ્ચતે, ચઠ્ઠહં માસાણં વિસુત્તરં દિવસસતં ભવતિ, સવીસતિ માસો પમાણં દિવસા, તે વીસુત્તરમજ્જતો સાધિતો, સેસા સત્તરી, જે મદ્દવપ બહુલદસ મીએ પજ્જોસવેંતિ, તેસિં અસતિ દિવસા મજ્જિતો વાસા કાલો ગાહો ભવતિ, સાવણપુસિનાએ પજ્જોસવેંતિ તેસિં જિઝતિ દિવસા મજ્જિતો ચેવ વાસકાલો ગાહો ભવતિ, જે સાવણ બહુલદસમી પજ્જોસવેંતિ તેસિં દસુત્તરં સતં મજ્જિતો ચેવ વાસા કાલોગાહો ભવતિ, જે આસાદપુસિનાએ પજ્જોસવેંતિ, તેસિં વીસુત્તરં દિવસસયં જેઠો વાસોગાહોભવહ સેસન્તરેસુ દિવસ પમાણં વત્તવ્વં, પમાતિપ્પગારેહિં વરિસારસં ઇગ્ગહેત્તે, કસિય ચઠમ્માસિય, પઢિવયાએ અવસ્સ ણિગ્ગંતવ્વં, અહ મગ્ગસિર માસે વાસતિ ચિસ્કજ્ઞાજલાઝલાયંથા તો અવવાતેણ એકં ઉક્કોસેણં તિસિ વા દસરાયા જાવતમ્મિહેત્તે અચ્છંતિ, માર્ગસિરપૌર્ણમાસીયાવેત્થયઃ ॥ મગ્ગસિર પુસિનાએ જં પરતો જતિચિસ્કજ્ઞા પંથા વાસં વા ગાદં અણાધરયં વાસતિ, જતિ વિપ્પલંવંતેહિં તહાવિ અવસ્સં ણિગ્ગંતવ્વં, અહ ણ ણિગ્ગચ્છતિ, તો ચઠગુરુગા, એવં પચ્ચમાસિ તો જેઠો ગાહો જાતો, કાઝણ માસ ગાહા, જંમિ હેત્તે કતો આસાદમાસકપ્પો તંચ વાસાવાસં પાઝગં હેત્તે અણંસિઅલદ્દે વાસ પાઝગે હેત્તે જત્થ આસાદમાસકપ્પો કતો તત્થેવ વાસાવાસં ઠિતા તીસે વાસા વાસે ચિસ્કજ્ઞાદિએહિં કારણેહિં તત્થેવ મગ્ગસિરં ઠિતા એવં સાલંવણાણ કારણે અવંવાતેણ છ માસિતો જેઠો ગહો ભવતીત્થયઃ ॥

ઉપરોક્ત દોનું પાઠ મેરે દેખનેમેં આપેચે વૈસેહી છપા દિયે હેં

[१००]

इसलिये कुछ विशेष अशुद्धता होवे तो दूसरी शुद्ध पुस्तक से उपरोक्त दोनों पाठका मिलान करके वाँचना अब उपरोक्त दोनों पाठका संक्षिप्त भावार्थः सुनो—वर्षाकालके लिये एक क्षेत्रमें प्रवेश करना ठहरना सो कितना काल तक सोही कहते हैं आपाड़पूर्णिमासे लेकर उत्तरार्गसे पर्युषणा करे अथवा प्रवेश करे सो यावत् कार्तिक पूर्णिमा तक रहे और अपवादसे मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी तक यावत् रहे तथा फिर भी कारणयोगे दो दशरात्रि (बीशदिन) याने मार्गशीर्ष पूर्णिमा तक भी रहना कल्पे सो प्रथम किस विधिसे प्रवेश करके पर्युषणा करे वह दिखाते हैं—जहां आपाड़मानकल्प रहा होवे वहाँ अथवा अन्य क्षेत्रमें आपाड़पूर्णिमाके दिन चौमासी प्रतिक्रमण क्रिये बाद प्रतिपदा (एकम) से लेकर पाँच दिनमें उपयोगी वस्तु ग्रहण करके पञ्चमी रात्रि याने श्रावण कृष्णपञ्चमीकी रात्रिकी पर्युषणा कल्प कहके वर्षा-कालकी समाचारी को स्थापन करे, याने पर्युषणा करे, सो अधिकरण दोष न होने के कारणसे और उपद्रवादि कारणसे दूसरे स्थानमें जायेतो अवहेलना न होवे इसलिये अनि-श्चय पर्युषणा करे, अधिकरण दोषोंका वर्णन संक्षेपसे पहिलेही लिखा गया है इसलिये पुनः नही लिखना हुं और निश्चय पर्युषणा कब करे सो कहते हैं कि अभिवर्द्धित वर्षमें बीशदिने और चन्द्रवर्षमें पचाशदिने निश्चय पर्युषणा करे, क्योंकि जैसे युगान्तमें जब दो आपाड़ होते हैं तब ग्रीष्म ऋतुमें चेव निश्चय अधिक मात्र व्यतीत होजाता है इसलिये अभिवर्द्धित वर्षमें आपाड़ चौमासी प्रतिक्रमण क्रिये बाद प्रतिपदासे बीशदिन तक अनिश्चय पर्युषणा

[१०१]

परन्तु वीशमें दिन श्रावणशुक्लपञ्चमीसे निश्चय प्रसिद्ध पर्युषणा होवे, और चन्द्रवर्षमें पचाश दिन तक अनिश्चय पर्युषणा परन्तु पचाशमें दिन भाद्रपद शुक्लपञ्चमीसे निश्चय प्रसिद्ध पर्युषणा होवे, सो जब आपादपूर्णिमासेही योग्यक्षेत्र मिले और उपयोगी वस्तुका योग्य होवे तो ग्रहण करके चौराती प्रतिक्रिया किये बाद उसी रात्रिको पर्युषणा कल्प कहे याने जो अकेला साधु होवे तब तो उस रात्रिको श्रीकल्पसूत्रका पठन करके अनिश्चय पर्युषणा स्थापन करे और साधुओंका समुदाय होवे तो सर्व साधु कायोत्सर्गमें सुने और बृद्धसाधुजी मधुर स्वरसे श्रीपर्युषणा कल्पका उच्चारण करके अनिश्चय पर्युषणा स्थापन करे तथा योग्यक्षेत्र न मिले तो फिर पाँच दिन तक दूसरे स्थान (गांव) में जाके उपयोगी वस्तु ग्रहण करके श्रावण कृष्ण पञ्चमीको पर्युषणा करे इसी तरहसे योग्यक्षेत्राभावादि कारणों अपवादसे पांच पांच दिनकी वृद्धि करते यावत् भाद्रपदशुक्लपञ्चमीको अवश्यही पर्युषणा निश्चय करे तथापि भाद्रपदशुक्लपञ्चमी तक योग्यक्षेत्र नहीं मिलेतो जङ्गलमें वृक्ष नीचे भी अवश्यही पर्युषणा करे परन्तु पञ्चमीकी रात्रिको उल्लङ्घन करना नहीं कल्पे और भाद्रपद शुक्लपञ्चमीके पहले आपाद पूर्णिमासे योग्यता मिलनेसे अनिश्चय पर्युषणा स्थापन करनेमें आते है जिसमें स्थापन करे उसी रात्रिको श्रीपर्युषणा कल्प कहके पर्युषणा स्थापे जिसको गृहस्थी लोगोंके न जानी हुई पर्युषणा कहते हैं और पचासमें दिन भाद्रपद शुक्लपञ्चमी की निश्चय प्रसिद्धसे पर्युषणा उसीमें सांवत्सरिक प्रतिक्रियादि करे जिसको गृहस्थी लोगोंके

[१०२]

जानी हुई पर्युषणा कहते हैं और भाद्रपद शुक्लपञ्चमी के उपरान्त विहार करना सर्वथा नहीं कल्पे इस लिये योग्य-क्षेत्रके अभावसे वृक्ष नीचे भी अवश्यही निवास (पर्युषणा) करना कहा है जैसे चन्द्रवर्षमें पचास दिनका निश्चय है तैसे ही अभिवर्द्धितवर्षमें बीशदिने श्रावण शुक्लपञ्चमीकी निश्चय पर्युषणा करने का नियम था परन्तु बीशदिनमें श्रावण शुक्लपञ्चमीकी रात्रिको उल्लङ्घन करना सर्वथा प्रकारसे नहीं कल्पे इस तरह पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमादि पर्वतिथिमें पर्युषणा करे, परन्तु अपर्वमें नहीं, जब शिष्य पूछता है कि आप अपर्वमें पर्युषणा करना नहीं कहते हो फिर चतुर्थीका अपर्वमें कैसे पर्युषणा करते हो तब आचार्यजी महाराज कहते हैं कि कार्त्तिक से चतुर्थी को पर्युषणा करनेमें आते हैं सोही कारण उपरोक्त पाठानुसार जैन इतिहासों में तथा श्रीकल्पसूत्र की व्याख्याओंमें प्रसिद्ध है और इसीपुस्तकमें पहिले संक्षेप से लिखागया है इस लिये यहां भाषार्थमें विस्तारके कारणसे नहीं लिखता हूं, अब जघन्य, मध्यम, और उत्कृष्ट से पर्युषणाके कालावप्रहका प्रमाण कहते हैं कि चार मासके १२० दिनका वर्षाकाल होता है तब आषाढ चौमासी प्रतिक्रमण किये बाद पचासदिने पर्युषणा करे तो सत्तर (७०) दिवस जघन्यसे कार्तिक चौमासी तक रहते हैं परन्तु योग्यक्षेत्र मिलनेसे भाद्रव कृष्ण दशमी को ही पर्युषणा कर लेवे उसीको ८० दिन मध्यमसे रहते हैं तथा श्रावण पूर्णिमा को पर्युषणा करे तो ९० दिन मध्यमसे रहते हैं । इसी तरह यावत् श्रावण कृष्णपञ्चमी को पर्युषणा किवी हो तो ११५ दिन मध्यम से रहते हैं और आषाढ पूर्णिमासे ही

[१०३]

पर्युषणा किसी होवे तो उत्कृष्ट से १२० दिन रहते हैं पीछे उत्तरगंसे कार्तिक पूर्णिमाको अवश्य विहार करे, परन्तु वर्षादि कारणसे बिखल कर्दमादि कारण योगे अपवाद से मार्ग-शोर्ष पूर्णिमा तक भी रहना कल्पे पीछे तो अपवाद से भी अवश्य निकले विहार करे, नहीं करे तो प्रायश्चित्त आवे जहां आपाढमास कल्प किया होवे वहां ही चौमासी ठहरे तथा मार्गशोर्ष पूर्णिमाको विहार करे तो उत्कृष्ट छ मासका कालावयव होता है इत्यादि—

अब पाठकवर्ग देखिये उपरका दोनुं पाठ प्राचीनकाल में पूर्वधरोंके समयका उपविहारी महानुभाव पुरुषोंको जैन ज्योतिषानुसार बर्तने का है जिसमें उत्तरगंसे आपाढ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमातक पर्युषणा करे और अपवादसे श्रावण कृष्ण ५ । १० । ३० । श्रावण शुक्ल ५ । १० । १५ । भाद्र कृष्ण ५ । १० । ३० । और भाद्र शुक्ल ५ । इन दिनोंमें जहां योग्यक्षेत्र मिले वहां ही पर्युषणा करे । परन्तु पञ्चमीको उल्लङ्घन नहीं करे, जिससे जयन्त्यमें ७० दिनकी पर्युषणा होती है तथा मध्यमसे । ७५ । ८० । ८५ । ९० । १०५ । ११० । ११५ । ऐसे नव प्रकारकी पर्युषणा होती है और उत्कृष्टसे १२० दिन की पर्युषणा होती है ।

जिसमें चन्द्र संवत्सरमें अपवादसे भी पचास दिन की भाद्रवशुक्ल पञ्चमीको उल्लङ्घन नहीं करे जिससे पीछाड़ीके ७० दिन रहते हैं तैसेही अभिवर्द्धित संवत्सर में अपवादसे भी बीसमें दिनकी श्रावणशुक्लपञ्चमी को उल्लङ्घन नहीं करे जिससे पीछाड़ीके कार्तिकपूर्णिमा तक १०० दिन रहते हैं और श्रावण शुक्लपञ्चमीको सांवत्सरिक

[१०४]

प्रतिक्रमणादि भी पूर्वधरोंके समयमें जैन ज्योतिषानुसार करनेमें आतेथे सो उपरमें लिख आया हुं और आगे भी खुलासापूर्वक लिखुंगा वहां विशेष निर्णय होजावेगा—

और आषाढ़ चौमासी प्रतिक्रमण किये बाद योग्यतापूर्वक पांच पयुष दिने पर्युषणा करे सो सिर्फ एक श्रीकल्पसूत्रका रात्रिको पठण करके पर्युषणा स्थापन करे परन्तु अधिकरण दोष उत्पन्न होने के कारणसे गृहस्थी लोगों को कहे नहीं और अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीशदिने तथा चन्द्रसंवत्सरमें पचासदिने वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करने से गृहस्थी लोगों को पर्युषणाकी मालुम होती है सो यावत् कार्तिकपूर्णिमा तक उसी क्षेत्रमें साधु ठहरे सर्वथा प्रकारसे एक स्थानमें निवास करना सो पर्युषणा कही जाती है इस लिपे आषाढ़ चौमासी पीछे योग्यतापूर्वक जहां निवास करे उसीको पर्युषणा कहते हैं सो अज्ञात पर्युषणा कही जाती है और चन्द्रसंवत्सरमें पचास दिने तथा अभिवर्द्धितमें बीशदिन सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करने से ज्ञात पर्युषणा कही जाती है इसका विशेष विस्तार आगे भी करने में आवेगा—

और श्रीदशाश्रुतस्कन्धवृत्तिके तीस (३२)के पृष्ठमें (पढमंकाल ठवणा भणानि किंकारखं जेण एवं सुत्तं काल ठवणाएसुत्ता देसेणं पढवेयव्वं कालो समयदिओ, गाथा—असंखेज्जसमया आवलिया एवं सुत्तालावणजावसंवच्छां एत्थपुणउदूवद्धे वासारतेणपयगतं अधिकारेत्यर्थः) इत्यादि व्याख्या प्रथम किवी हैं सो इस पाठमें कालकी व्याख्यासूत्रानुसार करनी कही है । समयदि काल करके असंख्याते समझ जानेसे एक

[१०५]

आवलिका होती हैं १,६७,७७,२१६ आवलिका जाने से एक मुहूर्त होता है त्रींश मुहूर्तसे एक अहोरात्रिरूप दिवस होता है ऐसे पन्द्रह दिवसोंसे एकपक्ष होता हैं दो पक्षसे एकमास होता है इसी तरह से अनुक्रमे वर्ष, युग, पूर्वाङ्ग, पूर्व, पत्यो-पम, प्रागरादि कालकी व्याख्या अनेक जैन शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक प्रसिद्ध है ।

अब इस जगह पाठकवर्ग सज्जन पुरुषोंसे मेरेकी इतना ही कहना है कि श्रीदशाश्रुतस्कन्धचूर्णिमें और श्रीनिशीथ चूर्णिमें खुलासा पूर्वक अधिकमासको निश्चयके साथ प्रमाण करके गिनतीमें भी लिया है और अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीशदिने तथा चन्द्रसंवत्सरमें पचास दिने निश्चय पर्युषणा कही हैं और मासवृद्धिके अभावसेही भाद्रपद शुक्लतुर्थीको पचास दिनकेअन्तरमें कारणयोगे श्रीकालकाचार्यजीने पर्युषणा किवी सी दिखाया है और पचासदिने योग्यक्षेत्रके अभावसे जंगलमें वृक्ष नीचे भी पर्युषणा करनी कही है परन्तु पचासमें दिनकी रात्रिको उलझन करना भी नहीं कल्पे इत्यादि विस्तारपूर्वक संपूर्ण सम्बन्धके दोनो पूर्वधर महाराज कृत पाठ उपरोक्त दिये गये हैं जिसको विचारो और श्रीधर्म-सागरजी तथा श्रीजयविजयजी और श्रीविजयविजयजी इन तीनों महाशयोंने दोनों चूर्णिकार पूर्वधर महाराजके विरुद्धार्थमें वर्तमानमें मासवृद्धि दो श्रावण होनेसे भी आषाढ़ चौमासीसे यावत् ८० दिने भाद्रपदमें पर्युषणा सिद्ध करनेके लिये आगे और पीछेके सम्बन्धके पाठको और अधिकमासके प्रमाण करनेके पाठको छोड़कर अधूरा बिना सम्बन्धका थोड़ासा पाठ लिखके भोले जीवोंकी शास्त्रोंके नामसे पाठ

[१०६]

लिख दिखाया जिसमें भाद्रपदका ही नाममात्र लिखा परन्तु मासवृद्धिके अभावसे भाद्रपद है किंवा मासवृद्धि होते भी भाद्रपद है जिसका कुछ भी लिखा नहीं और चूर्णिकार महाराजने समयादिसे कालका प्रमाण दिखाया है जिसमें अधिक मास भी गिनतीमें सर्वथा आता है तथापि तीनो महाशयोंने निषेध कर दिया और मासवृद्धिके अभावसे भाद्रपदकी व्याख्या चूर्णिकारने किवी थी जिसको भी मासवृद्धि होते लिख दिया इस तरहका तीनो महाशयोंको विरुद्धार्थका अधूरा थोड़ासा पाठको विचारो और निष्पक्षपातसे सत्यासत्यका निर्णय करो जिसमें असत्यको छोड़ो और सत्यको ग्रहण करो जिससे आत्म कल्याणका रस्ता पावो यही सज्जन पुरुषोंकी मेरा कहना है ।

और बुद्धिजन सर्व सज्जन पुरुष प्रायः जानते भी होवेंगे कि—जैन शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें एक मात्रा, बिंदु तथा अक्षर वा पद की उलटी जो परूपना करे तथा उत्थापन करे और उलटा वर्तें वह प्राणी भिष्या दृष्टि संसारगामी कहा जाता है, जमालीवत् अनेक दृष्टान्त जैनमें प्रसिद्ध है तथापि इन तीनों महाशयोंने तो संसार वृद्धिका किञ्चित् भी भय न किया और चूर्णिकार महाराजने अधिक मासकी गिनती विस्तार पूर्वक प्रमाण किवी थी जिसको निषेध कर दिवी और अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने प्रसिद्ध पर्युषणा कही थी जिसके सब पाठको उत्थापन करके यावत् ८० दिने पर्युषणा चूर्णिकार महाराजके विरुद्धार्थमें स्थापन करके भोले जीवोंको कदाग्रहमें गेरे हैं, हा, हा, अति खेदः ॥—

(१८७)

और इसके अगाड़ी फिर भी तीनों महाशयोंने प्रत्यक्ष नायावृत्तिसे उत्सृज भावणरूप अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध लिखके अपनी बात जमाई है कि (एवं यत्र कुत्रापि पर्युषणा निरूपणम् तत्र भाद्रपदविशेषितमेव ननु क्वाप्यागमे भद्रपदसु पञ्चमीए पञ्जोसविज्जइति पाठवत् अभिवर्द्धितव्यवरिसे आखण शुद्धपञ्चमीए पञ्जोसविज्जइति पाठ उपलभ्यते) इन वाक्योंको तीनों महाशयोंने लिखके इसका मतलब ऐसे लाये है कि श्रीपर्युषणा कल्प चूर्णिमें तथा श्रीनिशीथचूर्णिमें भाद्रपदमें पर्युषणा करनी कहीहै इसी प्रकारसे जिस किसी शास्त्रमें पर्युषणाकी ठयाख्या है तहां भाद्रपदके नामसे है परन्तु कोई भी शास्त्रमें भाद्रपदशुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करनी ऐसा पाठकी तरह सासवृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित सम्बत्सरमें आखण शुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करनी ऐसा पाठ नहीं दिखता है, इस तरहके तीनों महाशयों के लेख पर मेरा खतनाही कहना है कि इन तीनों महाशयोंने (अभिवर्द्धित सम्बत्सरमें आखणशुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करनेका कोई भी शास्त्रोंमें पाठ नहीं दिखता है) इस मतलबकी लिखा है सो सर्वथा मिथ्या है क्योंकि जिन जिन शास्त्रोंमें चन्द्र-संवत्सरमें पचास दिने, ज्ञात, याने-गृहस्थी लीगोंकी जानी हुई पर्युषणा करनेका नियम दिखाया है उसी शास्त्रोंमें अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीस दिने ज्ञात पर्युषणा करनेका नियम दिखाया है सो यह बात अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक प्रगटपने लिखी है तथापि इन तीनों महाशयोंने भोले जीवोंको मिथ्या भ्रममें घेरनेके लिये अभिवर्द्धित संवत्सरमें आखण शुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करनेका कोई भी शास्त्रमें पाठ नहीं दिखाता है ऐसा लिख दिया है तो अब ऐसे मिथ्या भ्रमको दूर करनेके लिये इस जगह शास्त्रोंके प्रमाण

(१०८)

भी दिखाते हैं कि-श्रीनिशीथसूत्रके लघुभाष्यमें १ तथा बृहद्भाष्यमें ३, और चूर्णिमें ३, श्रीदशाश्रुतस्कन्ध चूर्णिमें ४, और वृत्तिमें ५, श्रीबृहत्कल्पसूत्रके लघुभाष्यमें ६, बृहद्भाष्यमें ७, तथा चूर्णिमें ८, और वृत्तिमें ९, श्रीस्थानाङ्गभी सूत्रकी वृत्तिमें १०, श्रीकल्पसूत्रकी निर्युक्तिमें ११ तथा निर्युक्तिकी वृत्तिमें १२ और श्रीकल्पसूत्रकी चार वृत्तिओंमें १६, श्रीगच्छाचारपयत्नकी वृत्तिमें १७, श्रीविधिप्रपासमाचारीमें १८, श्रीसमाचारीशतकमें १९, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक लिखा है कि-अभिवर्द्धित संवत्सरमें भाषाढ़ बीमासीसे लेकरके २७ दिने, याने-आवण सुदी पञ्चमीको पर्युषण करनेमें आती थी । सो इसीही विषय सम्बन्धी इसी ग्रन्थकी आदिमेंही श्रीकल्पसूत्रकी व्याख्याओंके पाठ भाषार्थ सहित तथा श्रीबृहत्कल्पवृत्तिका पाठ पृष्ठ २३, २४ में, श्रीपर्युषणाकल्पचूर्णिका पाठ पृष्ठ ९२ में तथा श्रीनिशीथचूर्णिका पाठ पृष्ठ ९५, ९६ में छप गया है और आगे भी कितनेही शास्त्रोंके पाठ छपने जिनकी और अब इसीही बातका विशेष खुलासा करता हूँ जिसको विवेक बुद्धिसे पल्लवात रहित होकर पढ़ाने तो प्रत्यक्ष निगण्य हो जावेगा कि अभिवर्द्धितमें बीसदिने पर्युषणा होती थी इसके विषयमें उपरोक्त अनेक शास्त्रोंके पाठोंके साथ श्रीतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्तिसूत्रिणी कृत श्रीबृहत्कल्पवृत्तिका पाठ भी पृष्ठ २३ तथा २४ में विस्तार पूर्वक छप गया है तथापि इस जगह थोड़ासा फिर भी लिख दिखाता हूँ तथाच तत्पाठ यथा—

इत्थमनभिगृहीतं कियन्तं कालं वक्तव्यं, उच्यते । यद्यभि
वर्द्धितो सौ संवत्सरस्ततो विंशतिरात्रिदिवानि अथ चंद्रोसौ
ततः सविंशतिरात्रं मासं यावद्मभिगृहीतं कर्तव्यं । तेणन्ति

[१०९]

विभक्तिव्यत्यया ततःपरं विंशतिरात्रमासा चोर्द्धमनभिर्गृहीतं निश्चितं कर्त्तव्यं गृहीज्ञातंच गृहिस्थानां पृच्छतां ज्ञापना कर्त्तव्या यथा वयमत्र वर्षाकालस्थिताः एतच्च गृहिज्ञातं कार्तिकमासं यावत् कर्त्तव्यं इत्यादि—

इसका भावार्थः ऐसा है कि—वर्षाकालमें साधु एक स्थानमें ठहरने रूप निवासकी पर्युषणा करे सो प्रथम गृहस्थो लोगोंके न जानी हुई अनिश्चय पर्युषणा होती है और दूसरी जानी हुई निश्चय पर्युषणा होती है इस प्रकारकी न जानी हुई पर्युषणा कितने काल तक और जानी हुई पर्युषणा कितने काल तक होती है सो कहते हैं कि—एक युगमें पाँच संवत्सर होते हैं जिसमें दो अभिवर्द्धित और तीन चन्द्रसंवत्सर होते हैं जब अभिवर्द्धित संवत्सर होता है तब आषाढचौमासी प्रतिक्रमण किये बाद वीश अहोरात्रि अर्थात् श्रावण शुक्लपञ्चमी तक और चन्द्र संवत्सर होता है तब पचास अहोरात्रि अर्थात् भाद्रपद शुक्लपञ्चमी तक गृहस्थी लोगोंके न जानी हुई अनिश्चय पर्युषणा होती है परन्तु पीछे जानी हुई निश्चय पर्युषणा होती है और कोई गृहस्थो लोग साधुजीको आषाढ चौमासी बाद पूछे कि आप यहाँ वर्षाकालमें ठहरे अथवा नहीं तब उसीको साधुजी अभिवर्द्धितमें वीशदिन और चंद्रमें पचास दिनतक, हम यहाँ ठहरे हैं ऐसा अधिकरण दोषोंकी उत्पत्तिके कारणसे न कहे और पीछे जाने अभिवर्द्धितमें वीशदिने श्रावण शुक्लपञ्चमी के बाद और चंद्रमें पचास दिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीके बाद गृहस्थी लोगोंको कह दें कि—हम यहाँ वर्षाकालमें ठहरे हैं ऐसा कहनेसे गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई पर्युषणा कही

[११०]

जाती हैं ऐसी गृहस्थी लोगोंके जानी हुई पर्युषणा यावत् कार्तिक पूर्णिमा तक याने जो अभिवर्द्धितमें वीशदिने श्रावण शुक्लपञ्चमीको जानी हुई पर्युषणा करे सो कार्तिक पूर्णिमा तक १०० दिन उसी क्षेत्रमें ठहरे और चन्द्रमें पचास दिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीको जानी हुई पर्युषणा करे सो कार्तिक पूर्णिमा तक ७० दिन उसी क्षेत्रमें ठहरे ।

उपरोक्त श्रोतपगच्छके श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी कृत पाठके भावार्थः मुजवही अनेक जैन शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक व्याख्या हैं सो उपरमें श्रीनिशीथचूर्णि श्रीदशाश्रुतस्कन्धचूर्णि श्रीकल्पसूत्रकी व्याख्याों वगैरहके पाठ भी छपगये हैं और कितनेही शास्त्रोंके पाठ इस ग्रन्थमें विस्तारके भयसे नहीं छपाये हैं सो अबी मेरे पास मौजूद है जिसमें भी उपर मुजवही चतुर्मासीमें पर्युषणा संबन्धी अज्ञात और ज्ञातकी खुलासा पूर्वक व्याख्या हैं ।

उपरके पाठमें श्रावण तथा भाद्रपद मासका नाम नहीं हैं परन्तु वीश तथा पचास दिनका नाम लिखा है जिससे वीश दिनकी गिनती आषाढ़पूर्णिमासे श्रावण शुक्लपञ्चमीको और पचास दिनकी गिनती भाद्रपद शुक्लपञ्चमीको पूरी होती हैं इस लिये भावार्थमें श्रावण तथा भाद्रपदका नाम तिथि सहित लिखा जाता है—

उपरोक्त पाठमें आषाढ़ चौमासीसे कार्तिक चौमासी तककी व्याख्या दिनोंकी गिनती सहित खुलासा पूर्वक पर्युषणा सम्बन्धी करी है परन्तु आषाढ़ चौमासीसे इतने दिन गये बाद पर्युषणामें वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रति-क्रमणादि अमुक दिने करे ऐसा नहीं लिखा हैं परन्तु

[१११]

आषाढ़ चौमासीसे अभिवर्द्धितमें वीशदिन तथा चंद्रमें पचास दिन तक गृहस्थी लोगोंके न जानी हुई अनिश्चय और बीश तथा पचासके उपर जानी हुई निश्चय यावत् कार्तिक तकका लिखा है और श्रीकल्पसूत्रकी अनेक टीकाओंमें पाँच पाँच दिनकी वृद्धिसे पचासदिन तक न जानी हुई पर्युषणा परन्तु पचाश दिने वार्षिक कृत्यों करके प्रसिद्ध जानी हुई पर्युषणा चंद्र संवत्सरमें खुलासा लिखी है तैसेही अभिवर्द्धितमें वीशदिने पर्युषणा जानी हुई लिखी है इस लिये अभिवर्द्धितमें वीशदिने श्रावण शुक्लपञ्चमीको वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करने से गृहस्थी लोगों को पर्युषणाकी मालुम होती थी और चंद्रमें पचासदिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीको वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करनेसे गृहस्थी लोगोंको पर्युषणाकी मालुम होती थी क्योंकि जैसे न जानी हुई पर्युषणा बीश तथा पचास दिन तक शास्त्रकारोंने खुलासा कही है तैसेही जानी हुई पर्युषणा अभिवर्द्धितमें १०० दिन और चंद्रमें ५० दिन तक ऐसा खुलासा पूर्वक लिखा हैं सो पाठ भी सब उपरमें छप गया है ।

और पर्युषणा अज्ञात तथा ज्ञात दो प्रकारकी कही है परन्तु अमुकदिने ज्ञात पर्युषणा करे तथा अमुक दिने वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करे ऐसा कोई भी प्राचीन शास्त्रोंमें नहीं दिखता है इसलिये ज्ञात पर्युषणा होवे उसी दिन वार्षिककृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमण केशलुंच नादि समझने क्योंकि सबी शास्त्रकारोंने गृहस्थी लोगोंको ज्ञात पर्युषणा यावत् कार्तिकमास तक खुलासा लिख

[११२]

दिया है जिससे ज्ञात पर्युषणा आषाढ़ चौमासीसे वीशे तथा पचाशे करे और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि अन्य अमुकदिने करे ऐसा कदापि नहीं बनता है किन्तु जहाँ ज्ञात पर्युषणा वहाँ ही वार्षिक कृत्य बनते हैं इसलिये अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ़ चौमासीसे लेकर वीशदिने श्रावण शुक्ल-पञ्चमीको और चंद्र संवत्सरमें पचासदिने भाद्रपद शुक्ल-पञ्चमीको सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि वार्षिक कृत्य अवश्यमेव निश्चय करनेमें आते थे यह निःसन्देहकी बात है तथा और भी जो पहिले तीनो महाशयोंने लिखा है (अभिवर्द्धिते वर्षे चतुर्मासिकदिनादारभ्यः विंशत्यादिनैः वयमत्र स्थिताः स्म इति पृच्छतां गृहस्थानां पुरो वदन्ति) और इसका मतलब ऐसे लाये है कि—अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ़चतुर्मासीसे लेकर वीशदिने याने श्रावण शुक्लपञ्चमी सेही कोई गृहस्थी लोग पूछे तो कह देवे कि वर्षाकालमें हम यहाँ ठहरे हैं ॥ वर्षाकालमें एक स्थानमें सर्वथा निवास करना सो पर्युषणा हैं इस मतलबसे भी आषाढ़ चौमासीसे वीशदिने गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई पर्युषणा करे सो यावत् १०० दिन कार्तिक पूर्णिमा तक उसी क्षेत्रमें ठहरे ॥

उपरोक्त तीनो महाशयोंके लिखे वाक्यार्थको भी विवेकी बुद्धिजन पुरुष निष्पक्षपातसे विचारेंगे तो प्रत्यक्ष मालूम हो जावेगा कि प्राचीन कालमें अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीश दिने श्रावण शुक्लपञ्चमीसे गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई पर्युषणा करनेमें आती थी क्योंकि जिस जिस शास्त्रानुसार चंद्र संवत्सरमें पचासदिने जो जो कार्य करनेमें आते हैं

[११३]

सोही कार्य्य प्राचीन कालमें अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीश दिने करनेमें आतेथे यह बात उपरोक्त अनेक शास्त्रोंके न्यायानुसार सिद्ध होगई तथा और आगे भी लिखनेमें आवेगा इसलिये इन तीनों महाशयोंका (अभिवर्द्धित संवत्सरमें श्रावण शुक्लपञ्चमीका पर्युषणा करनेका कोई भी शास्त्रमें नहीं दिखता है) ऐसा लिखना सर्वथा अप्रमाण हो गया सो आत्मार्थी निष्पक्षपाती पाठकवर्ग विचार लेना—

और अभिवर्द्धित संवत्सरमें आषाढ़ चौमासीसे वीश दिने निश्चय पर्युषणा वार्षिक कृत्योंसे भी करनेमें आती थी तथापि इन तीनों महाशयोंने पक्षपातके जोरसे उसको निषेध करनेके लिये गृहस्थी लोगोंके जानी हुई पर्युषणा दो प्रकारकी ठहराकर अभिवर्द्धितमें वीशदिनकी पर्युषणाको केवल गृहस्थी लोगोंके जानी हुई कहने मात्रही ठहराते है सो भी मिथ्या है क्योंकि अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने गृहस्थी लोगोंको कह देवे कि हम यहाँ वर्षाकालमें ठहरे हैं ऐसा कहकर फिर एक मासके बाद भाद्रपदमें वार्षिक कृत्य करे इस तरहका कोई भी शास्त्रमें नहीं लिखा है इसलिये इन तीनों महाशयोंका कहना शास्त्रोंके प्रमाण बिनाका होनेसे प्रत्यक्ष उत्सृजभाषणरूप है और आषाढ़पूर्णिमासे योग्यक्षेत्राभावादि कारणे पाँच पाँच दिनकी वृद्धि करते दशवे पंचकमें याने पचासदिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीको पर्युषणा करे इस वाक्यको देखके— जो तीनों महाशय अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिनकी पर्युषणाको गृहस्थी लोगोंके जानी हुई सिर्फ कहने

[११४]

मात्रही ठहरा कर फिर वार्षिक कृत्य अभिवर्द्धित संवत्सरमें भी दशपञ्चके पचासदिने ठहराते होवेंगे तो भी तीनों महाशयोंको जैन शास्त्रोंका अति गम्भिरार्थका तात्पर्य समझमें नहीं आया मालुम होता है क्योंकि जिस जिस शास्त्रमें दशपञ्चके पचासदिने अवश्य पर्युषणा करनी कही है सो निकेवल चंद्रसंवत्सरमें ही करनी कही है नतु अभिवर्द्धित संवत्सरमें क्योंकि दशपञ्चक तकका विहार चंद्रसंवत्सरमेंही होता है और अभिवर्द्धित संवत्सरमें तो निकेवल चारपञ्चकमें वीशदिने निश्चय प्रसिद्ध पर्युषणा कियी जाती थी सो उपरमें भी विस्तार पूर्वक लिख आया हु—जिससे चारपञ्चकके उपर सर्वथा प्रकारसे विहार करनाही नहीं कल्पे तथापि अभिवर्द्धितमें वीश-दिनके उपरान्त विहार करे तो ऋकायके जीवोंको विराधना करने वाला और आत्मघाति आशा विराधक कहा जाता है सो ग्रीस्थानाङ्गजी सूत्रकी वृत्ति बगैरह शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है इसलिये अभिवर्द्धित संवत्सरमें दशपञ्चक कदापि नहीं बनते हैं जहाँ जहाँ दशपञ्चके पचासदिने पर्युषणा करनेकी व्याख्या लिखी है सो सब चंद्रसंवत्सरमें करनेकी समझनी—

और अभिवर्द्धित संवत्सरमें वीशदिने गृहस्थी लोगोंको साधु कह दें कि हम यहां वर्षाकालमें ठहरे हैं इस वाक्यको देखके तीनों महाशय वीशदिनकी पर्युषणाको कहने मात्रही ठहराते होवेंगे तब तो इन तीनों महाशयोंकी गुह्यगम रहित तथा विवेक बिनाकी अपूर्व विद्वत्ताको देखकर मेरे को बड़ा आश्चर्य आता है क्योंकि जैसे अभिवर्द्धित संवत्सर में वीश दिने गृहस्थी लोगोंको साधु कह दें कि हम यहाँ

[११५]

वर्षाकालमें ठहरे हैं तैतेही चंद्रसंवत्सरमें भी पचासदिने कह देवें कि हम वर्षाकालमें यहाँ ठहरे हैं ऐसे असर खुलासा पूर्वक चन्द्रके तथा अभिवर्द्धितके लिये अनेक शास्त्रकारोंने लिखे हैं सो इन शास्त्रकारोंके लिखे वाक्यपरसे तो इन तीनों विद्वान् महाशयोंकी विद्वत्ताके अनुसार चन्द्रसंवत्सरमें पचास दिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीकी पर्युषणा भी गृहस्थी लोगोंके कहने मात्रही ठहर जावेंगे और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि वार्षिक कृत्य करनाही नहीं बनेगा क्योंकि ज्ञात पर्युषणा चन्द्रमें पचासदिने तथा अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीसदिने करे सो यावत् कार्तिकपूर्णिमा तक खुलासा पूर्वक शास्त्रकारोंने लिख दिया है और अमुक दिने ज्ञात पर्युषणा करे और अमुक दिने वार्षिक कृत्य करे ऐसा कोई भी जगह नहीं लिखा है इसलिये तीनों महाशय जो ज्ञात पर्युषणा के दिन वार्षिक कृत्य मानेंगे तब तो अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीसदिने वार्षिक कृत्य भी मानने पड़ेंगे और बीस दिनकी पर्युषणा कहने मात्रही है ऐसा लिखना भी मिथ्या होनेमें कुछ बाकी नहीं रहा और चन्द्रसंवत्सरमें पचासदिने ज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्य मानोगे और अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीसदिने ज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्य नहीं मानोगे ऐसा मन कल्पनाका अन्याय तीनों महाशयोंका आत्मार्थी बुद्धिजन पुरुष कदापि नहीं मान सकते हैं किन्तु बीस तथा पचास ज्ञात पर्युषणा वहाँ ही वार्षिक कृत्य यह न्यायशास्त्रानुसार होनेसे सर्व आत्मार्थियोंको अवश्यही प्रमाण करने योग्य है इसलिये अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीस दिने श्रावण शुक्लपञ्चमीकी ज्ञात पर्युषणा वार्षिक कृत्यों

[११६]

सहित होती थी सो निश्चय निःसन्देहकी बात है और पर्युषणा अज्ञात तथा ज्ञात दो प्रकारकी सबी शास्त्रकारोंने कही है इसलिये इन तीनों महाशयोंने ज्ञात पर्युषणाका भी दो भेद लिखके बीशदिनकी कहने मात्र ठहराई तथा पचासदिनकी वार्षिक कृत्योंसे ठहराई सो सर्वथा शास्त्र विरुद्ध हैं क्योंकि जैसी ज्ञात पर्युषणा चंद्रसंवत्सरमें पचास दिने होती थी तैसीही अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीशदिने होती थी सो ज्ञात पर्युषणाका एकही भेद सर्व शास्त्रकारोंने लिखा है परन्तु ज्ञात पर्युषणाका दो भेद कोई भी प्राचीन शास्त्रोंमें नहीं है इसलिये तीनों महाशयोंका ज्ञात पर्युषणा दो प्रकारकी लिखना प्रत्यक्ष शास्त्र विरुद्ध हैं—

और आषाढ़पूर्णिमाको योग्यक्षेत्राभावादि कारणे ब्राह्मण कृष्णपञ्चमी, दशमी धनैरह पाँच पाँचदिने जो पर्युषणा कही है सो गृहस्थी लोगोंकी न जानी हुई और अनिश्चय होती हैं इसलिये अज्ञात और अनिश्चय पर्युषणामें वार्षिक कृत्य नहीं बनते हैं किन्तु बीशे तथा पचासे ज्ञात और निश्चय पर्युषणामें वार्षिक कृत्य बनते हैं ।

और श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रके अष्टमाध्ययन (पर्युषणाकल्प) की चूर्णिका और श्रीनिशीथसूत्रके दशवें उद्देशकी चूर्णिका पाठमें श्रीकालकाचार्यजीने कारणयोगे चतुर्थीकी पर्युषणा किबी है सो भी चंद्रसंवत्सरमें किबी थी नतु अभिवर्द्धितमें क्योंकि खास चूर्णिकार महाराजने अभिवर्द्धितमें बीशे तथा चंद्रमें पचासे ज्ञात निश्चय पर्युषणा करनी कही है जिसका सब पाठ उपरोक्त छपगया है इसलिये मासवृद्धि होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापते हैं सो मिथ्यावादी है क्योंकि

[११७]

प्राचीनकालमें जैन ज्योतिषके पञ्चाङ्गकी रीतिसे चंद्रमें पचासदिने भाद्रपद शुक्लपञ्चमीकी और अभिवर्द्धितमें वीशदिने आषाढशुक्लपञ्चमीकी प्रसिद्ध निश्चय पर्युषणा वार्षिक कृत्योंसे करनेमें आती थी जब जैन पञ्चाङ्गमें सिर्फ पौष तथा आषाढ़ मासकी वृद्धि होती थी और मासोंकी वृद्धिका अभाव था जिससे वर्षाकालके चारमासमें आषाढादि कोई भी मासकी वृद्धि नहीं होती थी परन्तु अब वर्तमानकाल में जैनज्योतिषके पञ्चाङ्गका अभाव होनेसे लौकिक पञ्चाङ्गमें हरेक मासोंकी वृद्धि होती है जिससे वर्षाकालमें आषाढ भाद्रपदादि मास भी बढ़ने लगे [और अभिवर्द्धित संवत्सरमें योग्यक्षेत्राभावादिकारण पाँच पाँच दिनकी वृद्धि करते यावत् चारपञ्चके वीशदिने पर्युषणा करनेका तथा चंद्र-संवत्सरमें भी योग्यक्षेत्राभावादि कारण पाँच पाँच दिनकी वृद्धि करते यावत् दशपञ्चके पर्युषणा करनेका कल्प कालानुसार श्रीसङ्गकी आज्ञासे त्रिच्छेद हुआ है इसका विशेष विस्तार आगे करनेमें आवेगा]

इसलिये वर्तमानकालमें मासवृद्धि होवे तो भी आषाढ़ चैमासीसे पचास दिनकी गिनतीसे पर्युषणा करनेकी श्रीखर तरगच्छके तथा श्रीतपगच्छादिके पूर्वज पूर्वाचार्योंकी आज्ञा है जिससे दो आषाढ हो तो दूजा आषाढमें तथा दो भाद्रपद हो तो प्रथम भाद्रपदमें प्रसिद्ध पर्युषणा श्रीजिनेश्वर भगवान्की तथा श्रीपूर्वाचार्योंकी आज्ञाके आराधन करनेवाले भोक्षार्थी प्राणी अवश्य करते हैं इसलिये दो आषाढ तथा दो भाद्रपद अथवा दो आश्विनमास होनेसे पाँचमासके १५० दिनका अभिवर्द्धित चैमासा होता है जिसमें पचासदिने

[११८]

पर्युषणा करनेसे कार्तिक चैमासी तक पीछाड़ीके १०० दिन रहते हैं तो भी कोई दूषण नहीं कहा है परन्तु मासवृद्धि की गिनती निषेध करनेसे श्रीअनन्ततीर्थङ्करगणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उल्लङ्घनरूप महान् मिथ्यात्वके दूषणकी अवश्यही प्राप्ति होती है तथापि इन तीनों महाशयोंने उपरके दूषणका जरा भी विचार न किया और श्रीगणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वानिजी कृत श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठका उत्पादनका भी बिलकुल विचार न करते सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें पाठ लिखके भोले जीवोंकी सत्य बात परसे श्रद्धा उतारके जिनाज्ञा विरुद्ध मिथ्यात्वरूप भगड़ेकी डोर हाथमें देकर कदाग्रहमें गेरदिये हैं और अधिकमासको गिनतीमें लेने वालेको उलटा मिथ्या दूषण दिखाते हैं और अधिक मासकी गिनती नहीं करते भी आप निर्दूषण बनके श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठसे सत्यवादी तथा आज्ञा के आराधक बनते हैं जिसका पाठ इसी पुस्तकमें पृष्ठ ६९ । ७० में और भावार्थः पृष्ठ ७२ । ७३ में छपगया है इसलिये इस जगह पुनः पाठ न लिखते थोड़ासा मतलब लिखके पीछे उसमें जो जो शास्त्रविरुद्ध है सो दिखावेंगे—तीनों महाशयोंका खास अभिप्रायः यह है कि अधिक मासको गिनती में करनेवालोंको दो आश्विन मास होनेसे दूजा आश्विनमें चैमासी कृत्य करना पड़ेगा और दूजा आश्विनमें चैमासी कृत्य न करते कार्तिकमें करेंगे तो पर्युषणाके पीछाड़ी १०० दिन हो जावेगे तो श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके वचनकी बाधा आवेगा क्योंकि—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ-राइ मासे विइकंते सत्तरिण्हिराइदिण्हिं इत्यादि श्रीसम-

[११९]

वायाङ्गजीमें पीछाड़ीके १० दिन रखना कहा है ऐसा लिखके तीनों महाशयोंने पर्युषणाके पीछे अवश्यही १० दिन रखनेका दिखाकर अधिक मासकी गिनती करके पर्युषणा करनेवालों को कार्तिक तक १०० दिन होनेसे श्रीसम-वायाङ्गजी सूत्रका पाठके बाधक ठहराये [इस न्यायानुसार तो तीनों महाशय तथा तीनों महाशयोंके पक्षवाले सभी महाशय भी श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके बाधक ठहर जाते हैं क्योंकि दो आश्विन होनेसे भी चौमासी कृत्य कार्तिक मासमें करनेसे पर्युषणाके पीछाड़ी १०० दिन होते हैं तथापि अब आप निर्दूषण बननेके लिये फिर लिखते हैं कि कार्तिक चौमासी कार्तिक शुदीमें करना चाहिये जिसमें दो आश्विनमास होवे तो भी १०० दिन हुआ ऐसा नहीं समझना किन्तु अधिकमासको गिनतीमें नहीं लेनेसे १० दिनही हुआ समझना और दो श्रावण होवे तो भी भाद्र पदमें पर्युषणा करनेसे ८० दिन हुआ ऐसा नहीं समझना किन्तु अधिकमासको गिनतीमें नहीं लेनेसे ५० दिनही हुआ समझना, दो श्रावण हो तथा दो आश्विन हो तो भी गिनतीमें नहीं लेनेसे श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके वचनको बाधा भी नहीं आवेगी और शास्त्रोंके कहे पर्युषणाके पहिले ५० दिन तथा पीछाड़ी १० दिन यह दोनों बात रह जाती है] इस तरहका तीनों महाशयोंका मुख्य अभिप्राय है ॥—

इस पर मेरेको बड़ा खेद उत्पन्न होता है कि तीनों महाशयोंने कदाग्रहके जोरसे अपनी हठधृति की मिथ्या बातको स्थापनेके लिये सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें

[१२०]

उत्सूत्र भाषणरूप वृथा वषों परिश्रम करके भोले जीवोंकी श्रमजालमें गेरते संसारवृद्धिका भय कुछ भी नहीं रक्खा है इसलिये अब लाचार होकर भव्यजीवोंकी शुद्धश्रद्धा होनेके कारणरूप उपकारके लिये और तीनों महाशयोंका सूत्र-कारके विरुद्ध उत्सूत्रभाषणके कदाग्रहको दूर करनेके वास्ते सूत्रकार और वृत्तिकार महाराजके अभिप्राय को ईस जगह लिख दिखता हूँ—

श्रीसुधर्मस्वामिजी कृत श्रीसमवायाङ्गजीमूलसूत्र तथा श्रीखरतरगच्छनायक श्रीअभयदेवसूरिजी कृत वृत्ति और गुजराती भाषासहित रूपके प्रसिद्ध हुआ है जिसके पृष्ठ १२७ में तथाच तत्पाठः—

समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसङ्गराह मासे वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासंपज्जोसवेइ ॥

अथ सप्ततिस्थानके किमपि लिख्यते समणेत्यादि—
वर्षाणां चातुर्मासप्रमाणस्य वर्षाकालस्य सविंशतिदिवाधिके मासे व्यतिक्रान्ते पञ्चाशतिदिनेष्वतीतेष्वित्यर्थः सप्तत्याञ्च रात्रिदिनेषु शेषेषु भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामित्यर्थः, वर्षास्वावासो वर्षावासः वर्षावस्थानं पज्जोसवेइति परिवसति सर्वथा करोति पञ्चाशतिप्राक्तनेषु दिवसेषु तथाविध वसत्यभावादिकारणे स्थानान्तरमप्याश्रयति अतिभाद्रपद शुक्लपञ्चम्यां तु वृक्षमूला-द्वयपि निवसतीति हृदयमिति ॥

भावार्थः—श्रमण भगवन् श्रीमहावीरस्वामिजीने वर्षा-काल के चारमास कहे है जिसके १२० दिन होते हैं जिसमें एकमास अधिक बीसदिन याने ५० दिन जानेसे और ७० दिन पीछाड़ी बाकी रहनेसे भाद्रपद शुक्लपञ्चमीके

[१२१]

दिन वर्षाकालमें रहनेका सर्वथा प्रकारसे अवश्यही निश्चय करना सो 'पञ्जोसवणा' अर्थात् पर्युषणा है जिसमें भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीके पहिले ५० दिनके अन्दरमें योग्य क्षेत्राभावादि कारणे दूसरे स्थानमें भी विहार करके जाना बन सकता है परन्तु पचासमें दिन योग्य क्षेत्रके अभावसे जङ्गलमें वृक्ष भीचे भी अवश्यही पर्युषणा करे यह मुख्य तात्पर्य है ।

और चन्द्र संवत्सरमें पचास दिने पर्युषणा करनेसे पीछाही ७० दिन रहते हैं तैसे ही मास वृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीस दिने पर्युषणा करनेसे पीछाही १०० दिन रहते हैं सो उपरमें अनेक जगह खुलासा पूर्वक रूप गया है तैसेही इन्हीं वृत्तिकार महाराजने श्रीस्थानांगजी सूत्रकी वृत्तिमें कहा है जिसका यहाँ पाठ दिखाता हूं । छपी हुई श्रीस्थानांगजी सूत्र वृत्तिके पृष्ठ ३६५ का तथाच तत्पाठः—

पठमपाठसंसिति ॥ इहाषाढ आषणी प्रावृट् आषाढस्तु प्रथम प्रावृट् ऋतुनां वा प्रथम इति प्रथमप्रावृट् अथवा ऋतुमासप्रमाणो वर्षाकालः प्रावृट्तिविशतिस्तत्र सप्ततिदिनप्रमाणे प्रावृषे द्वितीये भागे तावन्नकल्पत एव गन्तुमप्रथम भागेऽपि पञ्चाशद्दिनप्रमाणे विंशति दिनप्रमाणे वा न कल्पते जीवव्याकुलभूतत्वा दुर्लभ एतद्य अणभिगगहियं, बीसहराईसवीसईमासं ॥ तेनपरमभिगगहियं, गिहिनायंकत्तियंजावत्ति ॥ १ ॥ अनभिगहीत, मनिश्चित मशिवादिभि निर्गमभावात् आइच असिवादिकारणेहिं, अहवावासंमसुठु-आरहु ॥ अभिवद्धियंनिषीसा, इहरेसु सवीसईमासो ॥ १ ॥ यत्र संवत्सरेऽधिकमासको भवति तत्राषाढ्याः विंशतिदिनानि याव दनभिग्रहिक आवासो अन्यत्र

[१२२]

सविंशतिरात्रं मासं पञ्चाशतं दिनानीति अत्र चैते दोषाः
 रुक्मायविराहणया, आवृणं विशमखाणुकंटेसु ॥ युज्जणअभि-
 हणरुक्खो, ज्ञसावणतेण उववरए ॥ १ ॥ अवखुत्तेसु पहेसु,
 पुढवी उदगं व्होइदुविहंतु ॥ उल्लपयावणअगणि, इहरापण
 ओहरियकुंथुत्ति ॥ २ ॥ तत स्तत्र प्रावृषि किमत आह
 एकस्माद् ग्रामा दवधिभूता दुत्तरग्रामाणा मनतिक्रमो ग्रा-
 मानुग्रामं तेन ग्रामपरस्परयेत्यर्थः अथवा एक ग्रामाल्लवु-
 पश्चाद्ग्रामाभ्यां ग्रामोऽनुग्रामो गामोय अणुगामोय गामा-
 णुगामं तत्र दूदजिअत्त एत्ति द्रोतुं विहत्तुमित्युत्सर्गो
 पवादमाह पंचेत्यादि तथैव नवर मिह प्रत्यथेत ग्रामा-
 ञ्चालये निष्काशयेत् कश्चित् उदकौघेवा आगच्छति ततो
 नश्येदिति उक्तं च आवाहे दुभिमुखे, भएदओघंसिधामहं-
 तंसि ॥ परिभवणं तालणवा, जया परोवाकरेज्जासित्ति ॥१॥
 तथा वर्षांशु वर्षाकाले वर्षावृष्टिः वर्षावर्षावर्षासु वा आवा-
 सोऽवस्थानं वर्षावास स्तं स च जघन्यत आकार्त्तिक्या दिन
 सप्ततिप्रमाणो मध्यमवृत्त्या च चतुर्मासप्रमाण उत्कृष्टतः षडमास-
 मान स्तदुक्तं इयसत्तरीजहस्सा, असिईनउईविसुत्तरसयं च ॥
 जइवासेमगसिर, दसरायातिनिउक्कोसा ॥१॥ [मासमित्यर्थः]
 काज्जणमासकप्प, तथेवठियाणतीत मगसिरे ॥ सालं वणाण-
 छम्मा, सिओउ जिठ्ठोगहोहोइत्ति ॥ २ ॥ पज्जोसवियाणति
 परीति सामस्त्येनो वितानां पर्युषणाकल्पेन नियमवद्वस्तु
 सारब्धानामित्यर्थः पर्युषणा कल्पश्च न्यूनोदरताकरणं विकृति-
 नवकपरित्यागः पीठफलकादि संस्तारकादान मुञ्जारादि
 मात्रकसंग्रहणं लोचकरणं शैक्षाप्रव्राजनं प्राग्गृहीतानां भस्म-
 षण्डकादीना परित्यजन मितरेनां ग्रहणं द्विगुणवर्षावग्रहो-

[१२३]

पकरणधरणीं मभिनवोपकरणग्रहणं स क्रोशयोजनात्परतो
गमनवर्जन मित्यादि ।

देखिये उपरोक्त पाठमें श्रीवृत्तिकार महाराजने चार मासके वर्षाकालमें अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीस दिन और चन्द्र संवत्सरमें पचास दिन के उपरान्त विहार करने वालोंको छ कायके जीवोंकी विराधना करने वाला कहा अर्थात् बीस और पचास अवश्यही पर्युषणा करनी कही हो यावत् कार्तिक तक याने अभिवर्द्धितमें बीस दिने पर्युषणा करनेसे पीछाही १०० दिन और चन्द्रमें पचास दिने पर्युषणा करनेसे पीछाही ७० दिन उसी क्षेत्रमें ठहरे ॥ इत्यादि ॥

अब श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाके आराधन करने वाले मोक्षाभिलाषि निर्पक्षपाती सज्जन पुरुषों को इस जगह विचार करना चाहिये कि श्रीगणधर महाराजने श्रीसमवायांगजी मूलसूत्रमें और श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने वृत्तिमें मास वृद्धिके अभावसे चन्द्रसंवत्सरमें जैन ज्योतिषके पंचाङ्गकी रीतिमुजब वर्तने के अभिप्रायसे चार मासके वर्षाकालमें प्रथम पचास दिन जानेसे और पीछाही ७० दिन रहने से पर्युषणा करनी कही है तथा विशेष खुलासा करते वृत्तिकार महाराजने योग्यसूत्रके अभावसे वृक्ष नीचे भी पचास दिने अवश्यही पर्युषणा करनी कही और अभिवर्द्धित संवत्सरमें वृत्तिकार महाराजने और पूर्वधरादि महाराजोंने बीस दिने अवश्यही पर्युषणा करनी कही है जिससे पीछाही एकसौ दिन रहते हैं;—तथापि ये तीनों महाशय अपनी कल्पमासे वृत्तिकार और पूर्वधरादि महाराजों का (अभिवर्द्धितमें बीस दिने पर्युषणा करनेसे पीछाही एकसौ

[१२४]

दिन रहते हैं) इस अभिप्राय के व्यवहारकी जड़मूलसे ही उड़ा करके अभिवर्द्धितमें भी पचास दिने पर्युषणा और पीछाड़ी १० दिन रखनेका शास्त्रकारों के विरुद्धार्थमें दृढ़ा आग्रहसे इठ करते हैं क्योंकि श्रीगणधर महाराजने श्रीसमवायांगजी मूलसूत्रमें और श्रीअभयदेवसूरिजीने वृत्तिमें प्रथम पचास दिन जानेसे और पीछाड़ी १० दिन रहनेसे जो पर्युषणा करनी कही है सो चन्द्रसंवत्सरमें नतु अभिवर्द्धितमें तथापि तीनों महाशय श्रीसमवायांगजीका पाठको अभिवर्द्धितमें स्थापन करते हैं सो निःकेवल श्रीगणधर महाराजके और वृत्तिकार महाराजके अभिप्रायके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषण करते हैं इसलिये मास वृद्धि होते भी पीछाड़ी १० दिन रखनेका पाठको दिखाकर संशय रूप भ्रमजालमें भोले जीवोंको गेरना सर्वथा शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें है इसलिये मास वृद्धि होते भी बीस दिने पर्युषणा करनेसे पर्युषणा के पीछाड़ी एकसौ दिन प्राचीन कालमें भी रहते थे उसमें कोई दूषण नहीं—और अब जैन पंचाङ्गके अभावसे वर्तमानिक लौकिक पंचाङ्गमें श्रावणादि हरेक मासोंकी वृद्धि होनेसे शास्त्रानुसार तथा पूर्वाचार्योंकी आज्ञा मुजब पचास दिने दूना श्रावण शुदीमें पर्युषणा श्रीखरतरगच्छादि वालोंके करनेमें आती है जिन्होंको पर्युषणाके पीछाड़ी कार्तिक तक एकसौ दिन स्वाभावसेही रहते हैं सो शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक हैं क्योंकि दो श्रावणादि होनेसे पाँच मासके १५० दिनका अभिवर्द्धित बीमासा होता है जिसमें पचास दिने पर्युषणा होवे तब पीछाड़ीके एकसौ दिन नियमित रीतिसे रहते हैं यह बात जगत्प्रसिद्ध है इसमें कोई भी दूषण नहीं है इसलिये

[१२५]

अधिक मासकी गिनती करने वाले श्रीखरतरगच्छादि वालोंको पर्युषणाके पीछाही एकसो दिन होते हैं परन्तु कोई शास्त्रके वचनको बाधाका कारण नहीं है और श्रीसमवायांगजीमें पीछाही ७० दिन रहने का कहा है सो मास वृद्धिके अभावसे है इसका खुलासा उपरोक्त देखो इसलिये मास वृद्धि होनेसे १०० दिन होवे तो भी श्रीसमवायांगजी सूत्रके वचनको कोई भी बाधाका कारण नहीं है । तथापि तीनों महाशय श्रीसमवायांगजी सूत्रके नामसे पीछाहीके ७० दिन रखनेका इठ करते हैं । और श्रीखरतरगच्छादि वालोंके उपर आक्षेपरूप पर्युषणाके पीछाही ७० दिन रखने के लिये दो आश्विनमास होनेसे दूजा आश्विनमें चौमासी कृत्य करनेका दिखाते हैं । और कार्तिक में करनेसे १०० दिन होते हैं जिससे श्रीसमवायांगजी सूत्रका पाठके बाधक ठहराते हैं सो मिथ्या हैं क्योंकि श्रीखरतरगच्छवाले श्रीसमवायांगजी सूत्रका पाठके बाधक कदापि नहीं ठहरते हैं किन्तु तीनों महाशय और तीनों महाशयोंके पक्षधारी सब ही श्रीसमवायांगजी सूत्रके पाठके उत्पापक बनते हैं सो ही दिखाताहूँ । तीनों महाशय (समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसह राइमासे वीइकुंते इत्यादि) पाठको तो खास करके मंजूर करते हैं । इस पाठमें पचास दिन कहे हैं, वर्तमानिक कालानुसार पचास दिने पर्युषणा इस पाठसे करनी मानों तो आश्विनमासकी वृद्धि होते दूजा आश्विन शुदीमें पचासदिने पर्युषणा तीनों महाशयोंको और इन्हीं के पक्षधारियोंको मंजूर करनी चाहिये । सो नहीं करते हैं और दो आश्विन होते भी ८० दिने पर्युषणा करते

[१२६]

हैं इसलिये श्रीसमवायांगजी सूत्रका इसी ही पाठकी न माननेवाले तथा उत्थापक तीनों महाशय और इन्होंके पक्षधारी प्रत्यक्ष बनते हैं । तथापि निर्दूषण बनने के लिये अधिक मासकी गिनती निषेध करके, ८० दिनके बदले ५० दिन मानकर निर्दूषण बनते हैं । और पर्युषणाके पीछाड़ी दो आश्विनमास होनेसे कार्तिक तक १०० दिन होते हैं । तथापि इसको निषेध करने के लिये अधिकमासकी गिनती निषेध करके १०० दिनके बदले ७० दिन मानकर अपनी मनो-कल्पनासे निर्दूषण बनते हैं और श्रीसमवायांगजी सूत्रका पाठके आराधक बनते हैं । परन्तु शास्त्रार्थको आत्मार्थी पुरुष निर्पक्षपातसे देखके विचार करते हैं तबतो दोनों अधिक मासका गिनतीमें निषेध करनेका तीनों महाशयोंका और इन्होंके पक्षधारियोंका महान् अनर्थ देखके वड़े आश्चर्य सहित खेदको प्राप्त होते हैं क्योंकि तीनों महाशय और इन्होंके पक्षधारी अधिकमासकी गिनती निषेध करके श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठके आराधक बनते हैं परन्तु खास इसी ही श्रीसमवायांगजी मूलसूत्रमें अनेक जगह खुलसा पूर्वक अधिकमासको प्रमाणकिया है जिसमें का ६१ और ६२ वा श्रीसमवायांगका पाठ भी वृत्ति भाषा सहित इसी ही पुस्तकमें ३८ । ४० । ४१ पृष्ठ में छप गया है जिसमें पांच संवत्सरोंका एक युगमें दोनुं अधिकमास की दिनोंमें पक्षोंमें मासोंमें वर्षोंमें खुलसा पूर्वक गिनके प्रमाण दिखाया है इस लिये अधिकमासकी गिनतीका निषेध कदापि नहीं हो सकता है तथापि अधिकमासकी गिनती निषेध करके जो श्रीसमवायांगजी सूत्रका पाठके आराधक बनते हैं सो आराधकके बदले

[१२१]

उलटे विराधक बनते हैं और मासवृद्धि दो आवणादि होते भी भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करणी और वर्तमानिक पाँचमास के १५० दिनका अभिवर्द्धित त्रैमासा होते भी पर्युषणाके पीछाड़ी ७० दिन रखनेका आग्रहसे हठकरना, और पर्युषणाके पीछाड़ी मास वृद्धि होनेसे १०० दिन मानने वालोंको दूषित ठहराना। और अधिक मासकी गिनती निषेध करके भी आप निर्दूषण बनना। ऐसा जो जो महाशय वर्तमानकालमें मानते हैं अट्टारखते हैं तथा पक्षपते भी हैं—सो निःकेवल अनेक शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें सस्मृत भाषण करते दृष्टिरागी भोलेजीवों को जिनाह्वा विरुद्ध कदाग्रहकी भ्रमजालमें गेरके अपनी आत्माको संसारगामी करते हैं इसलिये अधिकमासके निषेध करने वाले कदापि निर्दूषण नहीं बनशक्ते हैं,—और अधिक-मासका निषेध करनेकी ऐसी बाललीला मिथ्यास्वरूप मन कल्पना की गयील खीचड़ी, क्या, अमन्तगुणी अविशंकादी सर्वज्ञ महाराज अतिउत्तमोत्तम श्रीतीर्थङ्कर केवलज्ञानी भगवान् उपदेशित शास्त्रोंमें कदापि चल शक्ती है अपितु सर्वथा प्रकारसें नहीं, नहीं, नहीं, क्योंकि अधिकमास को श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराज खुलासा पूर्वक गिनती में प्रमाण करते हैं। इसलिये तीनों महाशय तथा इन्होंके पक्षधारी वर्तमानिक महाशयोंकी अधिक मासके निषेध करनेकी सर्व कल्पना संसार वृद्धि कारक मिथ्यास्वकी हेतु हैं इसलिये वर्तमानिक श्रीतपगच्छादि वाले आत्मार्थी मोक्षाभिलाषि निर्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंसे मेरा यही कहना है कि—हे धर्म बन्धुओं तुमको संसार वृद्धिका

[१२८]

भय होवे और श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाके आराधन करने की इच्छा होवे तो अधिक मासकी गिनतीकी प्रमाण करो और दो आवण हो तो दूजा आवणमें तथा दो भाद्र पद हो तो प्रथम भाद्रपदमें पचास दिने पर्युषणा करनी मंजूर करो करावो अद्वो परूपो और मास वृद्धि होनेसे पर्युषणाके पीछाड़ी १०० दिन स्वभाविक होते है जिसकी मान्य करो इस तरहका जब प्रमाण करोगे तब ही जिनाज्ञाके आराधक निर्दूषण बनोगे। नहीं तो कदापि नहीं, आगे, इच्छा तुम्हारी—इतने परभी श्रीसमवायांगजी सूत्रका पर्युषणा के पहिले ५० और पीछाड़ी ३० दिनका पाठको दिखाकर मास वृद्धि होते भी दोनुं बात रखने के लिये जितनी जितनी कल्पना जोजो महाशय करते रहेंगे सोसो सूत्रकारके विरुद्धार्थमें वृथा परिश्रम करके उत्सूत्र भाषक बनेंगे—क्योंकि ५० और ३० दिन चारमासके १२० दिनका वर्षाकाल संबंधी पाठ है इसलिये दो आवणादि होनेसे पाँचमासके १५० दिनका वर्षाकालमें श्रीसमवायांगजीका पाठको लिखना सो प्रत्यक्ष सूत्रकारके वृत्तिकार के और न्याय युक्तिसे भी सर्वथा विरुद्धार्थमें हैं इसका विशेष खुलसा उपरोक्त देखो।

और एक युगके पांच संवत्सरोमें दोनुं अधिकमासकों खास श्रीसमवायाङ्गजी मूलसूत्रमें तथा वृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक प्रमाण किये है जिसके विषयमें २२ शास्त्रोंके प्रमाण तो इसी ही पुस्तक के पृष्ठ २३ तथा २८ और २९ में छपगये है और भी सूत्र, वृत्ति, प्रकरण, वगैरह अनेक शास्त्रोंके प्रमाण अधिक मासको गिनतीमें करने के लिये हमको मिले है सो आगे लिखने में आवेंगे, अधिक

[१२९]

मासको दिनोमें यावत् सुहूर्तोंमें भी खुलासासे प्रमाण किया है इसलिये अधिकमासकी गिनती निषेध करने वाले तीनों महाशय और इन्हींके पक्षधारी वर्तमानिक महाशय भी श्रीअनन्ततीर्थद्वार, गणधर, पूर्वधर पूर्वोचार्योंके और अपने ही पूर्वजों के वचनों का खण्डन करते, सूत्र, वृत्ति, भाष्य, चूर्णि, निर्धुक्ति, और प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंके पाठोंके न मानने वाले तथा सत्यापक प्रत्यक्ष बनते हैं और भोले जीवोंको भी उसी रस्ते पहुँचाते मिथ्यात्वकी वृद्धिकारक संसार बढ़ाते हैं। इस लिये गच्छके पक्षपातका कदाग्रहको छोड़के शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक अधिक मासको प्रमाण करनेकी सत्यवातको ग्रहण करना और सख जनसमाजको ग्रहण कराना यही सम्यक्त्व धारीसज्जन पुरुषों का काम है;—

और भी तीनों महाशय चौमासी कृत्य आषाढ़ादि-मास प्रतिवद्धा की तरह मास वृद्धि होने से पर्युषणा भी भाद्रपदमास प्रतिवद्धा ठहराते हैं सो भी शास्त्रों के विरुद्ध है क्योंकि प्राचीन काल में भी मास वृद्धि होनेसे श्रावणमास प्रतिवद्धा पर्युषणाभी और वर्तमान कालमें भी दो श्रावण होनेसे कालानुसार दूजा श्रावण में पर्युषणा करने की शास्त्रकारों की आज्ञा है सोही श्रीखरतरगच्छादिमें करने में आती है इसलिये मास वृद्धि होते भी प्राचीन कालमें भाद्र-पद प्रतिवद्धा और वर्तमानमें दो श्रावण होते भी भाद्रपद-प्रतिवद्धा पर्युषणा ठहराना शास्त्रोंके विरुद्ध है इस बातका उपरमें विशेष खुलासा देखके सत्याप्रत्ययका निर्णय पाठकवर्ग स्वयं कर सकते हैं। और जैसे चौमासी कृत्यमें अधिक मासको गिना जाता है तैसे ही पर्युषणा में भी अधिक मास को

[१३०]

अवश्यही गिना जाता हैं इस लिये धर्मकायोंमें और गिनती का प्रमाणमें अधिक मासका शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक प्रमाण करना ही उचित होनेसे आत्मार्थियों को अवश्य ही प्रमाण करना चाहिये। अधिक मास को प्रमाण करना इसमें कोई भी तरहका हठवाद नहीं हैं किन्तु अधिक मास की गिनती निषेध करना जो निःकेवल शास्त्रकारों के विरुद्धार्थमें हैं,—तथापि इन तीनों महाशयोंने बड़े जोरसे अधिक मासकी गिनती निषेध किवी तब उपरोक्त समीक्षा मुझेभी अधिक मासकी गिनती करने के सम्बन्ध की करनी पड़ी और आगे फिर भी इन तीनों महाशयोंने अपनी चातुराई अधिक मास को निषेध करने के लिये प्रगट किवी है जिसमें के एक तीसरे महाशय श्री विनयविजयजी कृत श्रीसुखबोधिका वृत्तिका पाठ इसही पुस्तक के पृष्ठ ६९।७०।७१ मे द्रपा था जिसमेका पीछाड़ीकाशेष पाठ रहा था जिसको यहाँ लिखके पीछे इसीकी समीक्षा भी करके दिखाता हुँ श्रीसुखबोधिकावृत्ति के पृष्ठ १४७ की दूसरी पुटी की आदि से पृष्ठ १४८ के प्रथम पुटी की मध्य तक का पाठ नीचे सुजब जानो यथा:—

किं काकेन भक्षितः किं वा तस्मिन्मासे पापं न लगति
उत बुभुक्षा न लगति इत्याद्युपहसन्मास्वकीयं ग्रहिलत्वं
प्रकटयत स्त्वमपि अधिकमासे सति त्रयोदशषु मासेषु जाते-
ष्वपि सास्त्रवैरिणः क्षामणे, बारहणहं मासाणमित्यादिकं
वदन् अधिकमाससंगीकरोषि एवं चतुर्मास क्षामणे अधिक-
मास सद्भावेपि, चउणहंमासाणमित्यादि पक्षिक क्षामणे-
अधिक तिथि संग्रहेपि, पन्नरसणहं दिवसाणमिति च ब्रूये—

[१३१]

तथा नवकल्पविहारोहि लोकोत्तरकार्येषु, आसाढेमासे दुष्पया, इत्यादि सूर्यचारे, लोकेपि दीपालिका अक्षय तृतीयादि पर्वसु धन कलत्रादिषु च अधिकमासे न गण्यते तदपि त्वं जानासि अन्यच्च सर्वाणि शुभकार्याणि अभिवर्द्धिते मासे नपुंसक इति कृत्वा ज्योतिः शास्त्रे निषिद्धानि अतएव आस्ता मन्थोऽभिवर्द्धितो भाद्रपदवृद्धौ प्रथमो भाद्रप-
दोपि अप्रमाणमेव यथा चतुर्दशी वृद्धौ प्रथमां चतुर्दशी-
सवगण्य द्वितीयायां चतुर्दश्यां पाक्षिक कृत्यं क्रियते—
तथात्रापि एवं तर्हि अप्रमाणे मासे देवपूजा मुनि
दानाऽवश्यकदादि कार्यमपि न कार्यमित्यपि वक्तुमाधरौष्टं
अपलभ्य यतो यानि हि दिनप्रतिबद्धानि देवपूजा मुनि
दानादि कृत्यादि तानि तु प्रतिदिनं कर्त्तव्यान्त्येवं यानि च
सन्ध्यादि समय प्रतिबद्धानि आवश्यकादीनि तान्यपि य
कञ्चन सन्ध्यादि समयं प्राप्य कर्त्तव्यान्त्येव यानि तु भाद्र-
पदादि साम प्रतिबद्धानि तानि तु तद्द्वयसम्भवे कस्मिन् क्रियते
इति विचारे प्रथम सवगण्य द्वितीये क्रियते इति सम्यग्
विचारय तथाच पश्य अचेतना वनस्पतयोपि अधिकमास
नांगी कुर्वन्ते येनाधिकमासे प्रथमं परितज्य द्वितीय एव
मासे पुच्छति—यदुक्तम् आवश्यकनिर्युक्तौ, ज्वरुल्लाकस्मि
आरुहा, चूअग अहिमासयंमिपुट्ठंमि ॥ तुहनसमं फुल्लेउं,
जइपच्छंताकरिंति हमराहं ॥ १ ॥ तथा च कश्चित् ॥
अभिवर्द्धियंमिषीसा, इयरेसु सवीसइ मासो, । इति
वचन बलेन मासाभिवृद्धौ विशत्यादि तैरेव लोचादि कृत्य
विशिष्टां पर्युषणां करोति तदप्ययुक्तं, येन अभिवर्द्धियं-
मिषीसा इति वचनं गृहिज्ञातमात्रापेक्षया अन्यथा भावाद्-

[१३२]

पुष्पिमाए पञ्जोसर्वेति एसउस्सग्गो सैसकाल पञ्जी-
सवित्ताणं अववाउत्ति, श्रीनिशीथचूर्णिदशभोद्देशक वच्चना-
दापाठ पुष्पिमायामेव लोचादि कृत्यविशिष्टा पर्युषणा
कर्त्तव्या स्यात् इत्यलं प्रसंगेन—

उपरोक्तपाठ जैसा मैंने देखा वैसा ही यहाँ उपा दिया है और जैसे श्रीविजयविजयजीने उपरोक्त पाठ लिखा हैं वैसा ही अभिप्रायः का श्रीधर्मदागरजीने श्रीकल्पकिरणावली वृत्तिमें और श्रीजयविजयजीने श्रीकल्पदीपिका वृत्ति में अपनी अपनी विद्वत्ताकी चातुराई से अनेक तरहके उदपटांग, पूर्वापर विरोधी विहंवादी और उत्सूत्र भाषण रूप शास्त्र कारोंके विरुद्धार्थ में अपनी मनकल्पना से लिखके गच्छकदाग्रही दृष्टि रागी श्रावकोंके दिलमें जिनाज्ञा विरुद्ध निध्यात्वका भ्रनगेरा हैं । जिसका सबपाठ यहाँ लिखने से ग्रन्थ बढ़जावे, और वाक्कवर्गकी विस्तारके कारणसे विशेष वक्षालने इन्हें नहीं लिखा और तीनों महाशयोंका अभिप्राय उपरके पाठ मुजब ही खास एक समान है, इसलिये तीनों महाशयोंके पाठकी न लिखते एकही श्रीसुखबोधिका वृत्तिका पाठ उपरमें लिखा है उसीकी समीक्षा करता हुं सो तीनों महाशयोंके अभिप्रायका लेखकी समझ लेना—अब समीक्षा-सुनो तीनों महाशय अधिकमासकी गिनती निषेध करके फिर उसीकी ही पुष्टी करने के लिये प्रश्नोत्तर रूपमें लिखते है कि—अधिकमासकी गिनती में नहीं करते होते (किं काकेनः भक्षितः—इत्यादि) क्या अधिकमासकी काफने भक्षण करलिपा किं वा तिस अधिक मासमें पाप नहीं लगता हैं और उस अधिकमासमें क्षुधा भी नहीं लगती है

[१३३]

सो अधिकमासको गिनतीमें नहीं लेते हो अर्थात् जो अधिक मास में पाप लगता होवे और सुधा भी लगती होवे तो अधिकमासको गिनतीमें भी प्रमाण करके मंजूर करना चाहिये—इत्यादि मतलबसे उपहास करता प्रश्नकार वादीको ठहराकर फिर श्रीविनयविजयजी अपनी विद्वत्ता के जोरसे प्रतिवादी बनके उपरके प्रश्नका उत्तर देने में लिखते हैं कि—मास्वकीयं ग्रहिलत्वं प्रगटयत स्वप्नपि अधिक मासै सति त्रयोदशषु मासेषु जातेष्वपि—इत्यादि अर्थात् अधिकमासको क्या काकने भक्षण करलिया तथा क्या तिस अधिकमासमें पाप नहीं लगता है और सुधा भी नहीं लगती है सो गिनतीमें नहीं लेते हो इत्यादि उपहास करता हुवा तेरा पागलपना प्रगट मत कर क्योंकि—त्वमपि अर्थात् हमारी तरह जिस संवत्सरमें अधिकमास होता है उसी संवत्सरमें तेरहमास होते भी सामान्यत्सरिक क्षामणे ‘चारसहमासाणं’ इत्यादि बोलके अधिकमासको गिनती में अङ्गीकार तुंभी नहीं करता है और तैसेही चौमासी क्षामणेमें भी अधिकमास होनेसे पांच मासका सद्भाव होते भी ‘चउहमासाणं’ इत्यादि बोलके अधिकमासकी गिनती नहीं करता हैं ;—

अब हम उपरके मतलब की समीक्षा करते हैं कि हे पाठकवर्ग ! भव्यजीवों तुम इन तीनों विद्वान् महाशयों की विद्वत्ताका नमुना तो देखो—प्रथम किस रीतसे प्रश्न उठाते हैं और फिर उसीका उत्तरमें क्या लिखते हैं प्रश्नके समाधानका गन्ध भी उत्तरमें नहीं लाते और और आते लिख दिखाते हैं क्योंकि उपरोक्त प्रश्नमें अधिक मासको गिनतीमें नहीं लेते हो तो क्या काकने

[१३४]

भक्षण करलिया इत्यादि प्रश्न उठाकर इसका संबंध छोड़के—तुंभी साम्बत्सरिक क्षामणामें तेरहमास होते भी बारहमासके क्षामणे करता है इत्यादि लिख कर क्षामणाका संबंध लिख दिखाया और प्रश्न कारके उपर ही गेरके अपनी विद्वत्ता दिखाई परन्तु सम्पूर्ण प्रश्नके संबंधका समाधान उत्तरमें शास्त्रोंके प्रमाणसे तो दूर रहा परन्तु युक्ति पूर्वक भी कुछ नहीं कर शके क्या अलौकिक अपूर्व विद्वत्ता प्रश्नके उत्तर देनेमें तीनों विद्वानोंने खर्च कीयी हैं सो पाठक वर्ग बुद्धि जन पुरुष स्वयं विचार लेना, और तुंभी अधिकमास होनेसे तेरह मासके क्षामणा न करते बारह मासका करके अधिक मासको अङ्गीकार नहीं करता हैं इत्यादि तीनों महाशयोंने लिखा हैं सो मिथ्या हैं क्योंकि अधिक मासकी गिनती करने वाले मुख्य श्रीखरतर गच्छवाले जब अधिक-मास होता है तब अभिवर्द्धित संवत्सराश्रय सांवत्सरिक क्षामणे में तेरह मास तथा छवीश पक्षादि और अभिवर्द्धित चौमासेमें भी पांचमास तथा दशपक्षादि खुलासा कहकर सांवत्सरिक और चौमासी क्षामणेमें अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करते हैं इसलिये अधिक मासको क्षामणामें अङ्गीकार नहीं करता हैं ऐसा तीनों महाशयों का लिखना प्रत्यक्ष मिथ्या हो गया और इस जगह किसीको यह संशय उत्पन्न होगा कि तेरह मास छवीश पक्षादि किस शास्त्रमें लिखे है तो इस बातका सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजी के नामसे पर्युषणा विवार नामकी छोटीसी पुस्तक की आगे में समीक्षा करुंगा वहाँ विशेष खुलासा शास्त्रोंके प्रमाणसे लिखा जायगा सो पढ़नेसे सर्व निर्णय हो जावेगा ।

[१३५]

और पाठकवर्ग तथा विशेष करके श्रीतपगच्छके मुनि महाशय और श्रावकादि महाशयों को मेरा इस जगह इतना ही कहना है कि आप लोग निष्पक्षपातसे विवेकबुद्धि हृदय में लाकर तीनों महाशयोंके लेखको टुक मज़रसे थोड़ासा भी तो विचार करके देखो इस जगह क्षामणा के सम्बन्धमें दूसरों को कहनेके लिये तीनों महाशयोंने 'अधिकमाससति त्रयोदशषु मासेषु जातेष्वपि, इत्यादि । तथा 'एवं चतुर्मासक-क्षामणेऽधिकमाससद्भावेऽपि,—यह वाक्य लिखके अधिकमास को गिनतीमें लेकर तेरह मास अभिवर्द्धित सम्बत्सरमें और चौमासामें भी अधिक मासका सद्भाव मान्यकर अभिवर्द्धित चौमासा पाँचमास का दिखाया । इस जगह उपरोक्त इस वाक्यसे अधिकमासको तीनों महाशयोंने प्रमाण करके मंजूर कर-लिया और पहिले पण्डितोंके सम्बन्धमें अधिक श्रावणकी और अधिक आश्विनकी गिनती निषेध कर दी, जब क्षामणा के सम्बन्धमें अधिक मासको गिनतीमें खुलासा मंजूर करलिया तो फिर विसम्वादी वाक्यरूप संसार वृद्धिकारक अधिक मासकी गिनतीका निषेध कृपा क्यों किया इसका विशेष विचार पाठकवर्ग स्वयं करलेना, और अब श्रीतपगच्छके वर्तमानिक महाशयोंको मेरा इतनाही कहना है कि आप-लोग तीनों महाशयोंके वचनोंको प्रमाण करते हो तो इन्हींके लिखे शब्दानुसार अधिक मासकी गिनती मंजूर करोगे किम्वा विसंवादी पूर्वापर विरोधी वाक्यरूप निषेधको मंजूर करोगे जो गिनती मंजूरकरोगे तबतो वर्तमानिक लौकिक पञ्चागमें दो श्रावण वा दो भाद्रपद अथवा दो आश्विनादि मासोंकी वृद्धि होनेसे अधिक मासका गिनतीमें

[१३६]

निषेध करनाही नहीं बनेगा, और जो निषेध की मंजूर करोगे सब तो अनेक सूत्र, वृत्ति भाष्य, चूर्णि, निर्युक्ति, प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंके न माननेवाले उत्थापक बनोंगे इसलिये जैसा तुम्हारी आत्माको हितकारी होवे वैसा पक्षपात छोड़कर ग्रहण करना सोही सम्यक्त्वधारी सज्जन पुरुषोंको उचित है मेरा तो धर्मबन्धुओंकी प्रीति से हितशिक्षारूप लिखना उचित था सो लिख दिखाया मान्य करना किंवा न करना सो तो आप लोगों की खुसी की बात है ;—

और आगे भी सुनो, तीनों महाशयोंने पाक्षिक क्षामणे अधिक तिथि होते भी “यन्त्रसरहंदिवसाणं”, ऐसा कहके अधिक तिथि को नहीं गिनता है यह वाक्य लिखा है इससे मालूम होता है कि तिथियोंकी हाणी वृद्धि की और पाक्षिक क्षामणा संबंधी जैन शास्त्रकारोंका रहस्यके सात्पर्यको तीनों महाशयोंके समजमें नहीं आया दिखता है नहीं तो यह वाक्य कदापि नहीं लिखते इसका विशेष खुलासा श्रीधर्मविजयजीके नामसे पर्युषणा विहार नामकी छोटीसी पुस्तक की में समीक्षा आगे करूंगा वहाँ अच्छी तरह से तिथियों की हाणी वृद्धि संबंधी और पाक्षिक क्षामणा सम्बन्धी निर्णय लिखनेमें आवेगा—और नवकल्प विहारका लिखा सो मासवृद्धिके अभावसे नतु पौषादिमास वृद्धि होते भी क्योंकि मासवृद्धि पौष तथा आषाढ़की प्राचीन कालमें होती थी जब और वर्तमानमें भी वर्षाऋतुके सिवाय मास वृद्धिमें अधिक मासकी गिनती करके अवश्यही दशकल्प विहार होता है यह बात शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक है इस का भी विशेष निर्णय वहाँ ही करने में आवेगा—और

[१३७]

(आसाढ़े मासे दुप्पया इत्यादि सूर्यचारे) इस वाक्यको लिखके तीनों महाशय अधिक मासमें सूर्यचार नहीं होता है ऐसा ठहराते हैं सो भी मिथ्या हैं क्योंकि अधिक मासमें अवश्यही निश्चय करके सूर्यचार आनादिकाल से होता आया है और आगे भी होता रहेगा तथा वर्तमान कालमें भी होता है सो देखिये शास्त्रोंके प्रमाण श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्रमें १ तथा वृत्तिमें २ श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति सूत्रमें ३ तथा वृत्ति में ४ श्री-बृहत्कल्प वृत्तिमें ५ श्रीभगवतीजी मूलसूत्रके पञ्चम शतकके प्रथम उद्देशमें ६ तत्त्वृत्तिमें ७ श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्रमें ८ तथा इन्हीं सूत्रकी पांच वृत्तियों में १३ श्रीज्योतिष-करंडपयस्त्रीकी वृत्ति में १४ श्रीव्यवहारसूत्र वृत्ति में १५ और लघु तथा बृहत्संज्ञानुसंगहणीसूत्र में १७ तथा तिस की चार वृत्तियों में २१ और क्षेत्रसमास के तीन मूल ग्रन्थों में २४ तथा तीन क्षेत्रसमासों की सात वृत्तिओं में ३१ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें अधिक मासमें सूर्यचार होनेका कहा है अर्थात् सूर्यचारके १८४ मांडलेके १८३ अन्तरे खुलासा पूर्वक कहे हैं जिसमें दिन प्रते सूर्य अपनी मर्यादा पूर्वक हमेसां गतिकरके १८३ दिने दक्षिणायनसे उत्तरायण और फिर १८३ दिने उत्तरायणसे दक्षिणायन इसीही तरहसे एक युगके पांच सूर्य संवत्सरोके १८३० दिनोंमें सूर्यचारके १० आयन होते हैं जिसमें चन्द्रमासकी अपेक्षासे दो मासकी वृद्धि होने से ६२ चन्द्रमासके १८३० दिन होते हैं इसलिये अधिक मासके दिनोंकी गनती करनेसेही सूर्यचारके गतिका प्रमाण मिल सकेगा, अन्यथा नहीं ?

और लौकिक पञ्चांगमें भी अधिक मासके दिनोंकी गिनती सहित सूर्यचार होता है सोही वर्तमानिक संवत्सर

[१३८]

को दिखाता हूँ,—सम्बत् १९६६ का जोधपुरी चंडु पञ्चांगमें आषाढ़ शुक्ल ५ के दिन सूर्य उत्तरायनसे दक्षिणायन में हुवा था जिसमें मास वृद्धिसे दो आषाढ मास हुवे तब अधिक मासके दिनोंकी गिनती सहित चन्द्रमासकी अपेक्षासे तिथियोंकी हाणी वृद्धि हो करके भी १८३ वें दिन मार्ग-शीर्ष शुक्ल ९ के दिन फिर भी सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायन में हुवा है सो पाठकवर्गके सामनेकी ही बात हैं, इसी तरहसे लौकिक पञ्चांग में हरेक अधिक मासोंकी गिनतीसे सूर्यचारकी गिनती समझ लेना और सम्बत् १९६९में खास दो आषाढ़ मास होवेंगे तबभी सूर्यचारकी गतिको देखके पाठकवर्ग प्रत्यक्ष निर्णय करलेना—और मेरेपास विक्रम सम्बत् १९७१ से लेकर सम्बत् १९९९वें तकके अधिक मासोंका प्रमाण मौजूद है परन्तु ग्रन्थगौरवके कारणसे नहीं लिखता हूँ, इसलिये तीनों महाशय अधिक मास में सूर्यचार नहीं होता है ऐसा ठहराते हैं सो जैनशास्त्रानुसार तथा युक्ति-पूर्वक और लौकिक पञ्चाङ्गकी रीतिसे भी प्रत्यक्ष सिध्दा हैं तथापि तीनों महाशयोंने भोले जीवोंको अपने पक्ष में लानेके लिये (आसाढ़ेमासे दुप्पया) इस वाक्यको लिखके सूत्रकार गणधर महाराजका अभिप्रायके विरुद्ध हो करके औरफिरभी अधूरालिख दिया क्योंकि गणधर महाराज श्रीसु-धर्मस्वामिजीने श्रीउत्तरायनयनजी सूत्रके छवीश (२६) वें अध्ययन में साधुसमाचारी सम्बन्धी पौरस्याधिकारे—असाढ़े मासे दुप्पया, पोसेमासे चउप्पया ॥ चित्तासोएसु मासेसु, तिप्पया हवइपोरसी ११ इत्यादि १२।१३।१४।१५।१६ गाथाओं से खुलासा पूर्वक व्याख्या मास वृद्धिके अभावसे स्वभाविक

[१३९]

रीतिसें किसी थी और इन्हीं गाथाओंकी अनेक पूर्वाचार्योंने विस्तार करके अच्छी तरहसे टीका बनाई हैं उन सब व्याख्याओंको और सूत्रकारके सम्बन्धकी सब गाथाओंको छोड़करके सिर्फ एक पद लिखा सोभी मास वृद्धि के अभावका था जिसको भी मास वृद्धि होते भी लिखके दिखाना सो आत्मार्थी भवभीरु पुरुषोंका काम नहीं हैं और मैं इस जगह श्रीउत्तराध्ययनजीसूत्र के २६ वा अध्ययनकी गाथा ११ वीं, से १६ वी तक तथा व्याख्याओंके भावार्थ सहित विस्तार के कारणसे नहीं लिख सका हुं परन्तु जिसके देखनेकी इच्छा होवे सो रायबहादुर धनपतसिंहजी की तरफसे जैनागम संग्रहका ४१ वा भागमें श्रीउत्तराध्ययनजी मूलसूत्र तथा श्रीलक्ष्मीवल्लभगणिजी कृत वृत्ति और गुजराती भाषा सहित छपके प्रसिद्ध हुवा हैं जिसके २६ वा अध्ययन में साधुसमाचारी सम्बन्धी पौरणीका अधिकार पृष्ठ ७६६ से ७६९ तक गाथा ११ वी से १६ वी तथा वृत्ति और भाषा देखके निर्णय करलेना और जिसके पास हस्तलिखित पुस्तक मूल की तथा वृत्तिकी होवे सोभी उपरोक्त अध्ययनकी गाथा और वृत्ति देखलेना और श्रीउत्तराध्ययनजी सूत्रकार श्रीगणधर महाराज अधिक मासको अच्छी तरहसे सुलासा पूर्वक यावत् मुहूर्तोंमें भी गिनती करके मान्य करने वाले थे तथा अधिक मासके भी दिनोंकी गिनती सहित सूर्यचार की मान्यने वाले थे इसलिये सूत्रकार गणधर महाराजके अभिप्रायः के सम्बन्धका सब पाठको छोड़के एकपद लिखनेसे अधिक मासमें सूर्यचार नहीं होता है ऐसा तीनों महाशयोंका लिखना कदापि सत्य नहीं होशक्ता हैं अर्थात् सर्वथा मिथ्या हैं ।

[१४०]

और भी तीनों महाशय दो भाद्रपद होनेसे प्रथम भाद्रपदको अप्रमाण ठहरा कर छोड़ देना और दूसरे भाद्रपद में पर्युषणा करना कहते हैं इसपर मेरेको वड़ाही आश्चर्य सहित खेद उत्पन्न होता है क्योंकि जैसे अन्य मतवाले जिस देवकी अनेक तरहसे अज्ञान दशाके कारणसे विटंबना बहोतसी करते हैं फिर उन्हीं देवको अपने परमेश्वर मानकर पूजते भी हैं तैसेही इन तीनों महाशयोने भी अज्ञानी मिथ्यात्वियोंका अनुकरण किया अर्थात् जिस अधिक मास को कालचूला मान्यकरके गिनतीमें नहीं लेना ऐसा सिद्ध-करके फिर अनेक तरहके विकल्पोंसे अधिक मासको दूषण लगाके निंदते हुवे निषेध करते हैं फिर उन्हीं अधिक मासमें धर्मकार्य पर्युषणापर्व करना मंजूर कर लिया, क्योंकि तीनों महाशय अधिक मासको कालचूला कहनेसे गिनतीमें नहीं आता है ऐसा तो पर्युषणाके सम्बन्धमें प्रथम लिखते हैं इसपर पाठकवर्ग बुद्धिजनपुरुष निःपक्षपातसे विचार करो कि, कालचूला उसको कहते हैं जो एक वर्षका कालके उपरमे बड़े एक वर्षके बारह मास स्वाभाविक होतेही हैं परन्तु जब तेरहवा मास बड़ेगा तब उसीको कालचूलाकी ओपमा होगा नतु बारहवा मासको जब तेरहवा मास को कालचूलाकी ओपमा हुई उसीको गिनतीमें निषेधभी करदेना, और प्रमाणभी करलेना यह कैसी विद्वत्ताका न्याय हुवा जो कालचूलाको निषेध करेंगे तब तो दूसरा भाद्रपदको कालचूलाकी ओपमा होती है उसीमें पर्युषणापर्व स्थापना नहीं बनेगा, और जो दूसरे भाद्रपदमें कालचूला जानके भी पर्युषणा स्थापेंगे तबतो दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणको

[१४१]

निषेध करना नहीं खनेगा, और अधिक मासको निषेध करनेके लिये जो जो कल्पना उपरके पाठमें लिखी है सो सबही बूथा होजावेगी सो पाठकवर्ग स्वयं विचार लेना;—

और जैसे श्रीजिनेश्वर भगवान्की प्रतिमाजीके निंदक जैमाभासद्वंद्विये और तेरहापन्थी हठग्राही कदाग्रहीलोग अपने पक्षकी भ्रमजालमें भोले जीवोंको फसानेके लिये जिस सूत्रका पाठ लोगोंको दिखाते हैं उन्हीं सूत्रके पाठको जड़ मूलसेही उत्पादन करते हैं तैसेही इन तीनों महाशयोंने भी किया अर्थात् श्रीदशाश्रुतस्कंधसूत्रके अष्टमाध्ययनरूप पर्युषणा कल्पचूर्णिका और श्रीनिशीथसूत्रकी चूर्णिके दशवें उद्देशेका पाठ लिखके भोले जीवोंको दिखाया था उन्हीं चूर्णिके पाठको जड़मूलसे उत्पादन भी कर दिया, क्योंकि प्रथम पर्युषणा भाद्रपदमें ठहरानेके लिये दोनुं चूर्णिके पाठ लिखे थे जिसमें स्वभाविकरीतिसे आषाढ़ चौमासीसे पचास दिनके अन्तरमें कारण योगसे श्रीकालकाचार्यजीने पर्युषणा किधी थी सोभी प्राचीनकालाश्रय गुनपचास (४९) वें दिन मास वृद्धिके अभावसे परन्तु शास्त्रोंके प्रमाण उपरान्त एकाग्रन दिने पर्युषणा नहीं किधी थी, तथापि इस जगह उन्हीं पाठको तीनों महाशयोंने जड़मूलसेही उत्पादन करके स्वभाविक रीतिसे प्रथम भाद्रपद था उसीको छोड़कर दूसरे भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करनी लिख दिया, फिर निर्दूषण बनने के लिये उन्हीं दोनुं चूर्णिमें अधिक मासको प्रमाण किया था उन्हीं चूर्णिके पाठको उत्पादनरूप अधिक मासको निषेध भी कर दिया, हा. आफसोस ;—

अब सज्जन पुरुषोंसे मेरा इतनाही कहना है कि दो

[१४२]

भाद्रपद होनेसे प्रथम भाद्रपदमें ही पर्युषणा करनी जिनाज्ञामुजब शास्त्रानुसार है नतु दूसरेमें, इतनेपर भी हठवादीजन शास्त्रोंके विरुद्ध होकरके भी दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणा करेंगे तो उन्हींके इच्छाकी बात ही न्यारी है;—

और तीनों महाशय दो चतुर्दशी होनेसे प्रथम चतुर्दशी को छोड़कर दूसरी चतुर्दशीमें पाक्षिक कृत्य करनेका कहते हैं सोभी शास्त्रविरुद्ध है इसका विशेष खुलासा तिथिनिर्णयका अधिकारमें आये विस्तार पूर्वक शास्त्रोंके प्रमाण सहित करनेमें आवेगा,—

और अधिक मासमें देवपूजा, मुनिदान, पापकृत्योंकी आलोचनारूप प्रतिक्रमणादि कार्य दिन दिन प्रति करनेका कहकर अधिक मासके तीस ३० दिनोंमें धर्मकर्मके कार्य करनेका तीनों महाशय कहते हैं परन्तु अधिक मासको गिनती में लेनेका निषेध करते हैं, इसपर मेरेको तो क्या परन्तु हरेक बुद्धिजन पुरुषोंको तीनों महाशयोंकी अपूर्व बालबुद्धिकी चातुराईको देखकर बड़ाही आश्चर्यको उत्पन्न हुये बिना नहीं रहेगा क्योंकि जैसे कोई पुरुष एक रुपैये की अप्रमाण मानता है परन्तु १६ आने, तथा ३२ आधाने और ६४ पाव आने, आदिको मान्य करता है और एक रुपैये की मानने वालोंका निषेध करता है, तैसेही इन तीनों महाशयोंका लेखभी हुआ अर्थात् अधिक मासके ३० दिनोंमें धर्मकर्म तो मान्य किये, परन्तु अधिक मासको मान्य नहीं किया और मान्य करनेवालोंका निषेध किया सो क्या अपूर्व विद्वत्ता प्रगट तीनों महाशयोंने किवी है, जैसे उस पुरुषने जब १६ आने तथा ३२ आध आने चौसठ पाव आने को

[१४३]

मान्य करलिये तब एक रुपैया तो स्वयं मान्य होगया, तथापि निषेध करना, सो बे समझ पुरुषका काम है तैसेही तीनों महाशयोंनें भी जब देवपूजा, मुनिदानावश्यक (प्रतिक्रमण) वगैरह धर्मकर्म ३० दिनोंमें मान्य लिये तब तो ३० दिनका एक अधिक मास तो स्वयं मान्य होगया, तथापि फिर अधिक मासको गिनती करनेमें निषेध करना सो हठ-वादसे निःकेवल हास्यका हेतु लज्जाका घर और तीनों महाशयोंकी विद्वत्ताकी लघुताका कारण है,—

तथा और भी सुनिये जब इस जगह तीनों महाशय ३० दिनोंमें धर्मकर्म मान्य करते है जिससे अधिक मास भी गिनती में सिद्ध होता हैं फिर पर्युषणाके संबंधमें दो श्रावण के कारणसे भाद्रपद तक प्रत्यक्ष ८० दिन होते है जिसको निषेध करके ८० दिनके ५० दिन बनाते है और अधिक मासको निषेध करते है सो कैसे बनेगा अपितु कदापि नहीं, इस लिये जो ८० दिनके ५० दिन मान्य करेंगे तब तो अधिक मासके ३० दिनोंमें देवपूजा मुनिदानावश्यादि कुछ भी धर्मकर्म करनाही नहीं बनेगा और अधिक मासके ३० दिनोंमें धर्मकर्म करना तीनों महाशय संजूर करेंगे तो अधिक मासके ३० दिनका धर्मकर्म गिनतीमें आजावेगा तब तो दो श्रावण होनेसे भाद्रपद तक ८० दिन होते है जिसका निषेध करनाही नहीं बनेगा और ८० दिने पर्युषणा करनी सो भी शास्त्रोंके प्रमाण बिना होनेसे जिनाप्ता विरुद्ध तीनों महाशयोंके वचनसे भी सिद्ध होगई—इस बातको पाठक-वर्ग बुद्धिजन पुरुष विशेष स्वयं विचार लेना,—

और आगे फिरभी तीनों महाशयोंनें अभिवर्द्धित

[१४४]

संवत्सरमें बीस दिने पर्युषणा होतीथी उसीकी गृहस्थी लोगोंके करने मात्रही ठहरानेके लिये श्रीनिशीथ चूर्णिका दशवा उद्देशके पर्युषणा विषयका आगे पीछेका संबंधको छोड़कर चूर्णिकार महाराजके विरुद्धार्थ में सिर्फ दो पद, लिखके कृथा परिश्रम करके बड़ी भूल किबी हैं क्योंकि जो आषाढपूर्णिमाको पर्युषणा कही हैं सो गृहस्थी लोगके न जानी हुई, अप्रसिद्ध तथा अनिश्चयसे होती हैं उसमें लोचादिकृत्य करनेका कोई नियम नहीं हैं परन्तु बीशे, और पचासे, गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई प्रसिद्ध निश्चय पर्युषणा होती है उसीमें लोचादिकृत्योंका नियम है इस लिये बीश दिनकी भी पर्युषणा वार्षिक कृत्योंसे होती थी इसका विशेष विस्तार उपरमें पहिले अनेक जगह छपगया है और श्रीनिशीथचूर्णिके १० वे उद्देशके पर्युषणा संबंधी संपूर्ण पाठ भी उपरमें पृष्ठ ९५ से ९९ तक और भावार्थ १०० से १०४ तक छपगया है और आगे पृष्ठ १०६ से यावत् १११ तक उसी बातके लिये अनेक शास्त्रोंके प्रमाणसे और युक्तिपूर्वक विस्तारसे छपगया है सो पढ़नेसे सर्व निर्णय होजावेगा और आगे लौकिकमें दीवाली, अक्षय-तृतीयादि पर्व वगैरह तथा अन्यभी सर्व शुभकार्य अधिक सासको मपुंशक कहके ज्योतिषशास्त्रमें वर्जन किये हैं और अधिक सास में वनस्पति प्रफुल्लित नहीं होती हैं, इत्यादि बातें जो जो तीनों महाशयोंने लिखी हैं सो निःकेवल शास्त्रकारोंके अभिप्रायःकों जाने बिना विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप भोले जीवोंको अपने फन्दमें फसानेके लिये लिखके मिथ्यात्वके कारखमें कृथा परिश्रम

[१४५]

करके समय खोया है और आपका तथा आपके लेखको सत्य माननेवालोंका संसार वृद्धिका कारखाना खुब किया है सो इन सब बातोंका जवाब शास्त्रोंके प्रमाणसे शास्त्रकार महाराज के अभिप्रायः समेत तथा न्यायपूर्वक युक्ति सहित अच्छी तरहसे खुलासाके साथ आगे चौथे महाशय श्रीन्यायां-भोनि, श्री और सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नाम से लिखनेमें आवेगा,—

परन्तु इस जगह निष्पक्षपाती सत्यग्राही श्रीजिनेश्वर भगवन्की आज्ञाके आराधक सज्जन पुरुषोंसे थोड़ीसी वार्ता दिखाकर पीछे तीनों महाशयोंकी समीक्षाको पूर्ण करूंगा सो वार्ता अब सुनो ;—

तीनों महाशयोंने श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठकी [अंतरा वियमे कप्यइ नोसे कप्यइ तं रयणि उवायणा वित्तएति] इस पदकी व्याख्या [अर्वांगपि कल्पे परं न कल्पेतां रात्रिं (रजनीं) भाद्रपदशुक्लपञ्चमी उवायणा वित्तएति अतिक्रमीतु इत्यादि] व्याख्या खुलासा पूर्वक किवी हैं जिसमें । प्रथम । आषाढ़-चौमासीसे यवाश दिनके अंदरमें कारणयोगे पर्युषणा करना कल्पे परन्तु पचासवें दिनकी भाद्रपदशुक्लपञ्चमीकी रात्रिको उल्लङ्घन करना नहीं कल्पे । तथा दूसरी । पाँच पाँच दिनकी वृद्धि करते दशवें पञ्चकमें पचास दिने पर्युषणा जैन पञ्चाङ्गानुसार मासवृद्धिके अभावसे लिखी । और तीसरी । जैन पञ्चाङ्गानुसार एक युगमें चौष और आषाढ़ दो मासकी वृद्धि होनेसे बीसदिने पर्युषणा लिखी । और चौथी । अबी वर्तमानकालमें जैन पञ्चाङ्गके अभावसे लौकिक-पञ्चाङ्गमें हरेक मासोंकी वृद्धि होती है इसलिये आषाढ़

[१४६]

चौमासीसें पचास दिने पर्युषणा करनेकी पूर्वाचार्योंकी आज्ञा है। इस तरहसें तीनों सहाश्रयोंनें चार प्रकारसें खुलासा लिखा है इस पर बुद्धिजन पुरुष तत्त्वग्राही होके विचार करे कि प्राचीनकालमें पाँच पाँच दिनकी वृद्धि करते दशवे पञ्चकमें पचास दिने मासवृद्धिके अभावसें जैन पञ्चाङ्गानुसार भाद्रपदशुक्लपञ्चमी परन्तु श्रीकालकाचार्यजीसें चतुर्थीको पर्युषणा होती है परन्तु अब लौकिकपञ्चाङ्गमें हरेक मासकी वृद्धि होनेसें श्रावणभाद्रपदादि मास भी बढ़ने लगे इसलिये मासवृद्धि हो अथवा न हो तो भी पचास दिने पर्युषणा करनेकी पूर्वाचार्योंकी आज्ञा हुई तब मासवृद्धि होते भी भाद्रपदमेंही पर्युषणा करनेका निश्चय नहीं रहा किन्तु दो श्रावण होनेसें दूजा श्रावणमें और दो भाद्रपद होनेसें प्रथम भाद्रपदमें पचास दिने पर्युषणा करनेका नियम इस वर्त्तमानिक कालमें रहा जिससें दो श्रावण तथा दो भाद्रपद और दो आश्विन मास होनेसें पर्युषणाके पीछाड़ी ७० दिनका भी नियम नहीं रहा अर्थात् मासवृद्धि होनेसें पर्युषणाके पीछाड़ी १०० दिन श्रौतपगच्छकेही पूर्वजोंकी आज्ञानुसार रहते हैं यह तात्पर्य तीनों सहाश्रयोंके लिखे वाक्य परसें सूर्यकी तरह प्रकाश कारक निकलता हैं सो न्यायकीही बात है इस बातकी अपने पूर्वजोंकी आशातनासें हरनेवाला कोई भी प्राणी निषेध नहीं कर सकता है तथापि इन तीनों सहाश्रयोंने अपनी विद्वत्ताकी बात जमानेके लिये स्वयं अपनेही पूर्वजोंका उपरोक्त वाक्यको जड़ मूलसेही उठाकर अपने पूर्वजोंकी आज्ञा लोपते हुवे दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका और मासवृद्धि

[१४७]

होते भी पर्युषणाके पीछाड़ी ७० दिन रखनेका भगड़ा उठाया—

और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि पूर्वधर पूर्वाचार्य और प्राचीन सब गच्छोंके पूर्वाचार्य जिसमें श्रीतपगच्छकेही पूर्वज पूर्वोत्तार्यादि महाराजोंने अधिक मासको प्रमाण किया था सो इन तीनों महाशयोंने उपरोक्त महाराजोंकी आशातनाका भय न रखते हुए अधिकमासको निषेध कर दिया और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने जैसे सुमेरु पर्वतके उपर चालीशयोजनके शिखरको तथा अन्य भी हरेक पर्वतोंके शिखरोंको और देव मन्दिरादिकके शिखरोंको क्षेत्र बूलाकी उत्तम ओपमा कही है तेरेही चंद्रसंवत्सरके बारह मासोंके उपर शिखररूप तेरह वा अधिकमासको भी कालबूलाकी उत्तम ओपमा देकर गिनतीमें लिया था जिसको इन तीनों महाशयोंने धर्मकार्योंकी गिनतीमें निषेध करने के लिये अधिकमास को नपुंशकादि हलकी ओपमा देकर श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी विशेष बड़ी भारी आशातना किवी हैं और अपनी बात जमाने के लिये श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्र की चूर्णि तथा श्रीनिशीथचूर्णि और श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठ लिखके दृष्टि रागियोंको दिखाये थे सोभी शास्त्रकार महाराज के विरुद्धार्थ में तथा उन्ही तीनों शास्त्रोंमें अधिकमास को अच्छी तरहसे प्रमाण कियाथा तथापि इन तीनों महाशयोंने उन्ही तीनों शास्त्रोंके पाठोंको जड़ मूलसे ही उत्थापन करके अधिकमासको निषेध कर दिया और मासवृद्धिके अभावमें पचास दिने भाद्रपदमें पर्युषणा कही थी तब पर्युषणाके पीछाड़ी ७०

[१४८]

दिन भी स्वभाविक रहते थे तथापि इन तीनों महाशयोंने उत्सूत्र भाषणरूप सासवृद्धि होनेसें वर्तमानिक दो आश्रण होते भी भाद्रपद में पर्युषणा और पीछाड़ी के १० दिन शास्त्रोंके प्रमाण विरुद्ध हो करके स्थापन किये और तीनों महाशय खास आप भी स्वयं एक जगह अधिकमास को कालचूला की उत्तम ओपमासें लिखते हैं दूसरी जगह नपुं-शककी तुच्छ ओपमासें लिखते हैं आगे और भी एक जगह अधिकमासके ३० दिनोंका धर्मकर्मको गिनती में लेते हैं दूसरी जगह ३० दिनोंको ही सर्वथा निषेध करते है इसी तरहसें कितनी ही जगहपूर्वापरविरोधी (विस्मयादी) उटपटांगरूप वाक्य लिखके गच्छपक्षी जनोंको शास्त्रानुसार की सत्य बात परसें श्रद्धा छोड़ा कर शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें भिष्यात्वरूप कदाग्रहमें गेर दिये तथा आगे अनेक जीवोंको गेरनेका कार्य कर गये हैं इसलिये खास तीनों महाशयोंकी और इन्हींके शास्त्र विरुद्ध लेखको सत्य मान्यकर उसी तरह सें अधिक सासकी निषेधरूप भिष्यात्वके पीष्ट पेक्षको पीसते रहेंगे जिससें भोले जीव भी उसीमें फसते रहेंगे उन्हींकी आत्माका कैसे सुधारा होगा सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने तथा और भी थोड़ासा सुन लिजिये श्रीभगवतीजी सूत्रमें १ और तत् वृत्तिमें २ श्रीउत्तराध्ययनजी सूत्रमें ३ और तीनकी छ व्याख्याओंमें ९ श्रीदशवैकालिक सूत्रमें १० और तीनकी चार व्याख्याओंमें १४ श्रीधर्मरत्न-प्रकरणवृत्तिमें १५ श्रीसङ्ख्यपट्टक बृहत् वृत्तिमें १६ श्रीश्राद्ध-विधिवृत्तिमें १९ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें उत्सूत्रभाषक श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वाचार्यादि परम गुरुजन महा-

[१४९]

राजोंकी आशातना करने वाला और उन्हीं महाराजोंका वाक्यको न मानता हुवा उत्थापन करने वाला प्राणीको यावत् दुर्लभबोधि मिथ्यात्वी अनन्त संसारी कहा है तैसे ही न्यायाभोनिधिजी श्रीआत्मारामजीने भी अज्ञान तिमिरभास्कर ग्रन्थके पृष्ठ ३२०में लिखा है—छठ दशम द्वादसे हिं, मासदुमासखमणे हिं । अकरन्तो गुरुवयणं, अनन्त संसारिओ भणिओ ॥ १ ॥ तथा और भी पृष्ठ २९५ का लेख इसी ही पुस्तकके पृष्ठ ७९ और ८०, में छपगया है इससे भी पाठकवर्ग विचार करो कि श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्व-धरादि पूर्वाचार्योंकी और अपने ही गच्छके पूर्वाचार्योंकी इन तीनों महाशयोंने अधिकमासको निषेध करने के लिये कितनी बड़ी आशातना करके कितने शास्त्रोंके पाठोंको उत्थापन किये है तो फिर इन तीनों महाशयोंमें अनन्त संसारका हेतु रूप मिथ्यात्वके सिवाय सम्यक्त्वका लेश मात्र भी कैसे सम्भव होगा क्योंकि श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्व-धरादि पूर्वाचार्योंकी आशातना करने वाला तथा आज्ञा न मानने वाला और उलटा उन्ही महात्माओंके वचनोंका उत्थापन करने वालाको जैन शास्त्रोंके जानकार बुद्धिजन पुरुष सम्यक्त्वी नहीं समझ सकते हैं इसलिये अब पाठक वर्ग पक्षपातका दृष्टिरागको छोड़कर और श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञानुसार सत्य बातके ग्रहण करनेकी इच्छा रखकर उपरकी वार्ताको अच्छी तरहसे पढ़के सत्यासत्यका निर्णय करके असत्यको छोड़ो और सत्यको ग्रहण करो यही मोक्षाभिलाषि भवभिरु पुरुषोंसे मेरा कहना है—

और प्रथम श्रीधर्मद्वयजीने श्रीकल्पकिरणावलीवृत्तिमें

[१५०]

तथा दूसरे श्रीजयविजयजीने श्रीकल्पदीपिका वृत्तिमें और तीसरे श्रीयिनयविजयजीने श्रीसुखबोधिकावृत्ति में इन तीनों महाशयोंने श्रीकल्पसूत्रका मूलपाठके विद्वद्धार्यमें उत्सूत्रभाषणरूप अपने हठवाङ्के कदाग्रहको जमानेके लिये जो जो बातें लिखी है उन बातोंको श्रीतपगच्छके वर्त्तमानिक मुनिजनादि गांस गांसमें हर वर्ष पर्युषणामें भोले जीवोंको सुनाते हैं जिससे आत्मसाधनका धर्मके बदले जिनाज्ञा विरुद्ध मिथ्यात्वकी श्रद्धामें गिरके श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उल्लङ्घन करके वड़ी आशातना करते हुए दुर्ज्ञात बोधिका साधन करनेके कारणमें पड़ते हैं इस विषयके सम्बन्धी प्रथम श्रीधर्मशास्त्रजीने वड़ी धूर्तार्ह करके श्रीतपगच्छमें पर्युषणा संबन्धी अधिकमासको निषेध करनेके लिये श्रीकल्पकिरणवली वृत्तिमें प्रथमही मिथ्यात्वकी निवृत्ति लगाई है इस बातका खुलासा [आठो ही महाशयोंके उत्सूत्र भाषणके लेखोंकी समीक्षा हुवे बाद] अन्तमें विस्तारपूर्वक लिखुंगा और इन तीनों महाशयोंने इस तरहसे मायावृत्तिका लेख लिखा है कि जिसमें भोले जीव तो फसे उसमें कोई आश्चर्य नहीं है परन्तु न्यायान्मोनिधिजी श्रीआत्मारामजी जैसे प्रसिद्ध विद्वान् होते भी फस गये और उन्हींकी तरह श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातनाका कारणरूप और पूर्वापर विरोधि अधिक मासका निषेध आपभी आगेवान होकर कराया है इसलिये अब उन्हींके लेखकी भी समीक्षा आगे करता हुं—

॥ वृत्ति तीनों महाशयों के नामकी संक्षिप्त समीक्षा ॥

[१५१]

अब आगे चौथे महाशय न्यायांभोनिधिजी श्रीआत्म-
रामजीनें, जैनसिद्धांतसमाचारी, नामा पुस्तक में पर्युषणा सम्बन्धी लेख लिखाया है जिसकी समीक्षा करके दिखाता हूं ;—
जिसमें प्रथम श्रीखरतरगच्छके आवक रायबहादुर मायसिंहजी मेघराजजी कोठारी श्रीमुर्शिदाबाद अज्झीमगञ्ज निवासीकी तरफसे, शुद्धसमाचारी, नामा पुस्तक उपके प्रसिद्ध हुई थी, जिसमें श्रीतीर्थंकर गणधर, चौदहपूर्वधरादि पूर्वार्चार्थोंके अनेक शास्त्रोंके पाठों करके सहित और युक्तिपूर्वक देश कालानुसार श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञा मुजबब अनेक सत्य बातों की प्रगट किंवी थी, जिसकी पढ़ने से श्रीन्यायांभोनिधिजी तथा उन्हींके सम्प्रदायवाले मुनिजन और उन्हींके दृष्टिरागी आवकजन समुदाय सत्यवातको ग्रहण तो न कर सके परन्तु अंतर मिथ्यात्व और द्वेषबुद्धिके कारणसे उसका खण्डन करनेके लिये अनेक शास्त्रोंके आगे पीछे के पाठोंकी छोड़कर शास्त्रकार महाराजके वितृद्धान्ते में उलटा संबंध लाकर अधूरे अधूरे पाठ लिखके शुद्धसमाचारी कारकी सत्य बातोंका खण्डन किया और अपनी मिथ्या बातोंको उत्तम रूप भाषणरूप स्थापन किंवी जिसके सब बातोंकी समालोचनारूप समीक्षा करके उसमें शास्त्रोंके सम्पूर्ण सम्बन्धके सब पाठ तथा शास्त्रकार महाराजके अभिप्रायः सहित और युक्तिपूर्वक भव्य जीवोंके उपगारके लिये इस जगह लिखके न्यायांभोनिधिजीके न्यायान्यायका विचारको प्रगट करना चाहुं तो जरूर करके अनुमान ६०० अथवा ७०० पृष्ठका बड़ा भारी-एक ग्रन्थ बन जाये परन्तु इस जगह विस्तारके कारणसे और हमारे विहारका समय नजिक आनेके सख्तसे सब न

[१५२]

लिखते थोड़ासा नमूनारूप पर्युषणाके सम्बन्धी लेखकी समीक्षा करके लिख दिखाता हूं—जिसमें यहिले जो कि—शुद्ध समाचारी पुस्तकके बनानेवालेने पर्युषणा सम्बन्धी लेख लिखा है उसीको इस जगह लिखके फिर उसीका खण्डन जैनसिद्धान्तसमाचारी में न्यायाभोनिधिजीने कराया है उसीको लिख दिखाकर उसपर मेरी समीक्षा को लिखुङ्गा सो आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंको दृष्टिरागका पक्षको न रखते न्याय दृष्टिसे पढ़कर सत्य बातको ग्रहण करना सोही उचित हैं ;—अब शुद्धसमाचारी कारके पर्युषणा सम्बन्धी लेखका पृष्ठ १५४ पंक्ति १३ वी से पृष्ठ १६० की पंक्ति ७ वी तकका (भाषाका सुधारा सहित) उतारा नीचे मुजब जानो ;—

शिष्य प्रश्नः करता है कि अपने गच्छमें जो श्रावणमास बड़े तो दूसरे श्रावण शुदीमें और भाद्रपद बड़े तो प्रथम भाद्रव शुदीमें, आषाढ़ चौमासीसे, ५० में दिनही पर्युषणा करना, परन्तु ८० अशीमें दिन नहीं करना ऐसा कोई सिद्धान्तोंमें प्रमाण हैं ।

उत्तर—श्रीजिनपतिसूरिजी महाराजने अपनी ११ वी समाचारीके विषे कहा है (तथाहि) सावणे भद्रवए वा, अहिग मासे चाउम्मासीओ ॥ पखासइमेदिणे, पज्जोसवणा कायव्वा न असीमे इति ॥ भावार्थः श्रावण और भाद्रपद मास, अधिक हो तो आषाढ़ चौमासीकी चतुर्दशीसे पचाश दिने पर्युषणा करना परन्तु अशीमें दिन न करना ।

प्रश्नः—जो अधिकमास होनेसे अशीमें दिन पर्युषणा सांवत्सरिक पर्व करते हैं तिसका पक्षको किसीने कोई ग्रन्थमें दूषित भी किया है वा नहीं ।

[१५३]

उत्तर—श्रीजिनवस्त्रभसूरिजी कृत संधपट्टेकी श्रीजिन-
पतिसूरीजी कृत बृहद्दृष्टिमें ८० दिने पर्युषणा करने वालोंके
पक्षको जिन वचन बाधाकारी कहा है सोई काव्य लिखते हैं
यथा—वृद्धौ लोक दिशा नभस्य नभसोः, सत्यां श्रुतोक्तं दिनं॥
पञ्चासं परिहृय ही शुचिभयात्, पश्चाच्चतुर्मासकात् ॥ तत्रा-
शीतितमे कथं विदधते, मूढामहं वार्षिकं ॥ कुग्रहाधिगणय्य
जैन वचनो, वार्धा मुनि व्यसकाः ॥ १ ॥

भावार्थः—लौकिक रीतिसें श्रावण और भाद्रपद मास
अधिक होता है जब शास्त्रोंमें आषाढ़ चतुर्मासीसें पचास
दिने पर्युषणापर्व करनेका कहा है जिसको छोड़कर मूढ़
लोग अपना कदाग्रहसें ८० दिने क्यों करते हैं क्योंकि ८०
दिने पर्युषणा करनेसें जिन वचनको बाधा आती है याने
शास्त्र विद्वद् होता है जिसको नहीं गिनते हैं इस लिये
८० दिने पर्युषणा करनेवाले लिङ्गधारी चैतपवासी हठग्राही
मुनिजन मध्ये ठग धूतारे हैं ।

प्रश्नः—कैसे तिसका पक्ष जिन वचन बाधाकारी है ।

उत्तर—श्रावण करो, प्रथम तो श्रावण और भाद्रप
मासकी जैन सिद्धान्तकी अपेक्षायें वृद्धि ही अभाव है
केवल पौष और आषाढ़की वृद्धि होती थी और इस
समयमें लौकिक टिप्पणाके अनुसार हरेक मास वृद्धि होनेसें
श्रावण और भाद्रपद मासकी भी वृद्धि होती है तब उनोकी
वृद्धि होनेसें भी दशपञ्चके अर्थात् आषाढ़ चौमासीसें
पचास दिने ही पर्युषणा करना सिद्ध होता है । सोई
श्रीमान् चौदह पूर्वधारी श्रीभद्रबाहुस्वामीजी श्रीकल्पसूत्रके
विषे कहते हैं । यथा—तेणं कालेणं तेणं समणं समणे भगवं

[१५४]

महावीरे वासाणं सवीसइ राइमासे वहकन्ते वासावासं पज्जोसवेइ ।

भावार्थः—आषाढ चौमासीसें वीश दिन अधिक, एक मास अर्थात् ५० दिन जानेसें, श्रीमहावीर स्वामी पर्युषणा करे । इसी तरहसें बृहत् कल्पचूर्णिके विषे, दशपञ्चके पर्युषणा करना कहा है । यथा—आषाढ चउमासे पडिक्कन्ते, पंचेहिं पंचेहिं दिवसेहिं गएहिं, जत्थ २ वासजोगं खेत्तं पडिपुत्तं । तत्थ २ पज्जोसवेपत्तं । जाव सवीसइ राइमासो इत्यादि ।

भावार्थः—आषाढ चौमासी प्रतिक्रमण किये बाद पांच पांच दिन व्यतीत करते जहां जहां वर्षावास योग्य स्थान प्राप्त होय । वहां वहां पर्युषणा करें, यावत् दशपञ्चक एक मास और वीश दिन तक पर्युषणा करें । और दशमा पंचकमें अर्थात् पचासमें दिन तो योग्यक्षेत्र नहीं मिले तो वृक्षके नीचे भी रहकर पर्युषणा करें, इसी तरह श्रीसमवायाङ्गजी सूत्र तथा धृत्तिके विषे १०वे समवायाङ्गमें कहा है । तथाहि । समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राइमासे वहकन्ते सत्तरिएहिं राइदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ ।

भावार्थः—श्रमण भगवन् श्रीमहावीर स्वामीजी वर्षा-कालके एकमास और वीश दिन गए बाद पर्युषणा करें । इसलिये पचास दिने करके ही पर्युषणा करना अवश्य है और पीछाडी १० दिन कहे सो मास वृद्धिके अभावसें न कि मासवृद्धि होते भी । और ऐसा भी न कहना कि मासवृद्धि होनेसें अधिक मास गिनतीमें न आता है क्योंकि बृहत् कल्पभाष्य तथा चूर्णिके विषे, अधिक

[१५५]

मासकी गिनती प्रमाण किसी है। और ऐसा भी न कहना कि ज्योतिषादिक ग्रन्थोंमें प्रतिष्ठादिक शुभकार्य निषेध किया है तो पर्युषणा पर्व कैसें हूवें सो तो नारचन्द्रादिक ज्योतिष ग्रन्थोंमें, लग्न, दीक्षा, स्थापना, प्रतिष्ठादिकार्य कितनेही कारणोंसें निषेध किये हैं नारचन्द्र द्वितीय प्रकरणे यथा ॥ रविक्षेत्र गतेजीवे, जीवक्षेत्र गते रवौ। दिक्षां स्थापनांचापि, प्रतिष्ठां च न कारयेत् ॥१॥ इसवास्ते अधिक मासमें पर्युषणा करनेका निषेध किसी जगह भी देखनेमें नहीं आता है। इसी कारण से पूर्वोक्त प्रमाणोंसें श्रावण मासकी वृद्धि होनेसें दूसरे श्रावण शुदी ४ कीं और भाद्रव मासकी वृद्धि होनेसें पहिले भाद्रव शुदी ४ चौथकीं पर्युषणापर्व ५० पचास दिने करना सिद्ध होता है परन्तु अशीमें दिने नहीं। एस्पल अति गम्भीरार्थका है मैंने तो पूर्वगीतार्थ प्रतिपादित सिद्धान्ताक्षरों करके और युक्ति करके लिखा है इस उपरान्त विशेष तत्त्व केवली महाराज जानें, जो ज्ञानी भाव देखा है, सो सच्चा है और सर्व असत्य है। मेरे इसमें कोई तरहका हठवाद नहीं, इति श्रावण और भाद्रपद बढ़ते पचास दिने पर्युषणा करणाधिकारः ॥—

अब पाठकवर्ग उपरका लेख शुद्धसमाचारी प्रकाशनामा ग्रन्थका पढ़के विचार करोकीलेखकपुरुषनें कैसी सरलरीतिसें लिखा है और अन्तमें किसी गच्छवालेकीं दूषित न ठहराते, (विशेष तत्त्व केवली महाराज जानें जो ज्ञानी भाव देखा है सो सच्चा है और सर्व असत्य है मेरे इसमें कोई तरहका हठवाद नहीं है) ऐसा लिखनेसें लेखक पुरुष पं० प्र० यतिजी

[१५६]

श्रीरायचन्द्रजी न्याययुक्त निष्पक्षपाती भवन्निरूपे सो तो पाठकवर्ग भी विशेष विचार सकते हैं और उपरके लेखमें श्रीसङ्क्षपट्टक वृहत् वृत्तिका ओ श्लोक लिखा हैं सो श्रीतपगच्छवालोंके लिये वृत्तिकार महाराजनें नहीं लिखा था, तथापि श्रीतपगच्छवालोंके लिये उपरोक्त श्लोक समझते हैं उन्हींके समझ में फेर है क्योंकि श्रीसङ्क्षपट्टक की वृहद्वृत्ति सम्वत् १२५० के लगभग खनी थी उसी वरुत तपगच्छही नहीं हुवा था क्योंकि श्रीचैत्रवालगच्छके श्रीजगन्मन्दसूरिजी महाराजसें सम्वत् १२८५ वर्षे तपगच्छ हुवा है और श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्य जितने हुवे है सो सबीही अधिक मासको गिनतीमें सान्य करनेवाले तथा ५० दिने पर्युषणा करनेवाले थे इसलिये उपरका श्लोक श्रीतपगच्छवालोंके लिये नहीं हैं किन्तु उस समयमें कदाग्रहीशिथिलाचारी उत्सूत्रभाषक चैत्यवाशी बहुत थे वे लोग शास्त्रोंके प्रमाण बिनाभी ८० दिने पर्युषणा करते थे और भी श्रीचन्द्रपन्नति श्रीमूर्यपन्नति श्रीजम्बूद्वीपपन्नति श्रीसमवायतुणी वगैरह अनेक सूत्रवृत्ति चूण्योदि शास्त्रानुसार और अन्यमतके भी ज्योतिष मुजब वे चैत्यवाशीजन प्रायःकरके ज्योतिषशास्त्रोंके विशेष जान कार थे, इसलिये अधिक मासकी उत्पत्तिका कारण कार्यादिकको जानते हुये अधिक मासको अङ्गीकार करनेवाले थे तथापि मिथ्यात्वरूप अज्ञानदशाके हठवादमें लौकिकपञ्चाङ्ग में दो आवण होतेभी भाद्रपदमें पर्युषणा चैत्यवाशी लोग करते थे जिसमें ८० दिन होते थे उन्हींके लिये उपरका श्लोक लिखा गया है नतु कि श्रीतपगच्छवालोंके लिये ।

अब उपरोक्त शुद्ध समाचारीप्रकाशका लेखपर जो न्यायां-

[१५७]

भोनिधिजीने' जैनसिद्धान्त समाचारीमें उसीका खण्डन कराया है उसीको लिखके दिखाकर उसीके साथसाथमें मेंभी समीक्षा न्यायांभोनिधिजीके नामसे' करता हुं जिसका कारण पृष्ठ ६६।६७।६८ में इसी ही पुस्तक में छपा है इसलिये न्यायांभोनिधिजीके नामसे' ही समीक्षा करना मूजे उचित है सो करता हुं—जैनसिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ८७ की पंक्ति २२ वीसें पृष्ठ ८८ की पंक्ति १० वी तक का लेख नीचे मुजब जानो—शुद्धसमाचारीके पृष्ठ १५४ पंक्ति १४ में लिखा है कि [आवण मास बढ़े तो दूसरे आवणशुदी में और भाद्रव मास बढ़े तो प्रथम भाद्रव शुदीमें अषाढ चौमासी से' ५० में दिन ही पर्युषणा करनी परन्तु ८० अशीमें दिन नहीं करनी, ऐसा लिखके पृष्ठ १५५में अपनेही गच्छके श्रीजिनपति मूरजी की रचित समाचारीका प्रमाण दिया है आगे इसी पृष्ठके पंक्ति ११ में लिखा है कि तिसका पक्षको कोई ने कोई ग्रन्थमें दूषित भी किया है वा नहीं, इसके उत्तरमें श्रीजिनवल्लभ सूरजीके सङ्ग्रहकी खड़ी टीकाकी शाक्षी दिवी हैं—(इस तरहका लेख शुद्ध समाचारी प्रकाशकी पुस्तक सम्बन्धी लिखके न्यायाम्भोनिधिजी अब उपरके लेखका लिखते हैं) उत्तर—हे मित्र ! इस लेखसे' आपकी सिद्धि कभी न होगी क्योंकि तुमने अपने गच्छका मनन दिखाके अपनेही गच्छका प्रमाण पाठ दिखाया है यह तो ऐसा हुवा कि किसी लड़ केने कहा कि मेरी माता सति है शाक्षी कौन कि मेरा भाई इस वास्ते यह आपका लेख प्रमाणिक नहीं हो सकता है ।]

अब हम उपरके लेखकी समीक्षा करते हैं कि हे सज्जन पुरुषों जैसे शुद्ध समाचारी कारने अपना कार्यसिद्ध करनेके

[१५८]

लिये अपने ही गच्छके पूर्वाचार्यजी श्रीजिनपति सूरिजी कृत ग्रन्थका पाठ दिखाया है उसको श्रीन्यायाम्भोनिधिजी अप्रमाण ठहराते हैं इस न्यायानुसार तो श्रीन्यायाम्भो निधिजीने अपना कार्यसिद्ध करनेके लिये अपनेही गच्छके पूर्वाचार्योंके पाठ दिये हैं वह सर्व पाठ अप्रमाण ठहरनेमें श्रीन्यायाम्भोनिधिजीको अपने पूर्वाचार्योंका पाठ लिख दिखाना भी सर्व श्रुता होगया तो फिर जैनसिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ३१ वा में श्रीधर्मघोष सूरिजी कृत श्रीसङ्घाचार भाष्यवृत्तिका पाठ, पृष्ठ ३३ में श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत श्रीधर्मरत्नप्रकरण वृत्तिका पाठ, पृष्ठ ३३। ४६। ५२। ५९। ६३, में श्रीरत्नशेखरसूरिजीकृत श्रीश्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र वृत्तिका पाठ, पृष्ठ ३५ में श्रीजयचन्द्रसूरिजी कृत श्रीप्रतिक्रमण-गर्भहेतु नामा ग्रन्थका पाठ, पृष्ठ ४१ में श्रीविजयसेन सूरिजीका प्रश्नोत्तर ग्रन्थका पाठ, और पृष्ठ ५१। ६१ में श्री कुलमण्डन सूरिजी कृत विचारामृतसंग्रहका पाठ, इत्यादि अनेक जगह ठाम ठाम अपनेही गच्छके पूर्वाचार्योंका प्रमाण श्रीन्यायाम्भोनिधिजीने लिखके श्रुता क्यों अन्याय किया होगा सो पाठकवर्ग भी विचार लेना ॥

अब दूसरा सुनो—श्रीन्यायाम्भोनिधिजी जैनसिद्धान्त समा-चारीकी पुस्तकके पृष्ठ १२ में श्रीखरतरगच्छके श्रीउपाध्यायजी श्रीक्षमाकल्याणजी गण्णिजी कृत श्रीगणधरसार्द्धशतक प्रश्नोत्तर ग्रन्थका पाठ, पृष्ठ ३५। ३६ में श्रीखरतरगच्छके श्रीअभयदेव सूरिजीकृत श्रीभगवतीजी वृत्तिका और समाचारी ग्रन्थका पाठ, पृष्ठ ७२। ८१में श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनदत्त सूरिजीका पाठ, पृष्ठ ७२ में श्रीखास श्रीजिनपति सूरिजीके शिष्य श्री

[१५९]

सुमतिगणिजीका पाठ, पृष्ठ ८१ में श्रीउपाध्यायजी श्रीजप सागरजीका पाठ, पृष्ठ ८२। ८६। ८९में श्रीजिनप्रभ सूरिजीका पाठ, और पृष्ठ ८४ में श्रीजिनवल्लभ सूरिजीका पाठ इसी तरहसें शुद्ध समाचारी कारके पूर्वाचार्य श्रीखरतरगच्छ के प्रभाविक पुरुषोंका पाठ श्रीन्यायाम्भोनिधिजी अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये तो खास मान्य करके दिखाते हैं और शुद्ध समाचारी कारनें अपना कार्यसिद्ध करनेके लिये अपनेही पूर्वजोंका (शास्त्रानुसार युक्ति सहित न्यायपूर्वक सत्य) पाठ लिख दिखाये उसीको श्रीन्यायाम्भोनिधिजी अप्रमाणिक ठहराते हैं यह तो प्रत्यक्ष बड़े अन्यायका रस्ता श्रीन्यायाम्भोनिधिजीनें ग्रहण किया है सो विशेष पाठकवर्ग स्वयं विचार लेना ।

अब तीसरा और भी सुनो श्रीआत्मारामजीनें खास (चतुर्थ स्तुतिनिर्णयः) नामा ग्रन्थ तीन स्तुति वालोंका खण्डन करनेके लिये बनाया है सो उपा हुवा प्रसिद्ध है उसीके पृष्ठ ८३।८४।८५ में श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत श्रीविधिप्रपाग्रन्थका पाठ और उसीकी भाषा पृष्ठ ८५।८६ ८७।८८ के आदि तक लिखके पुनः पृष्ठ ८८ के मध्यमें लिखते हैं कि—(इस विधिमें पडिक्कमणेकी आदिमें चारयुइसें चैत्यवन्दना करनी कही है और श्रुत देवता अरु क्षेत्र देवता का कायोत्सर्ग अरु इन दोनोकी धुइकरनी कही है—इस लेखको सम्यक्त्वधारी मानते हैं और मानतेथे फेर मानेंगे भी परन्तु मिथ्या दृष्टि तो कभी नही मानेगा इस वास्ते सम्यक् दृष्टि जीवको तीन युइका कदाग्रह अवश्य छोड़ देना योग्य है) इस तरहसें श्रीआत्मारामजी श्रीखरतरगच्छके

[१६०]

श्रीजिनप्रभ सूरिजीके लेखको न मानने वालोंको मिथ्या दृष्टि ठहराते हैं तो इस जगह पाठकवर्ग विचार करो कि श्रीजिनप्रभसूरिजीके ही खास परमपूज्य और पूर्वाचार्य श्रीजिनपति सूरिजीके सत्य लेखको न मानने वाले तो स्वयं मिथ्या दृष्टि सिद्ध होगये फिर श्रीआत्मारामजी न्यायांभी-निधिजी न्यायके समुद्र हो काके अपने स्वहस्ते जिन्हींके सन्तानिये श्रीजिनप्रभसूरिजीके लेखको न मानने वालोंको मिथ्या दृष्टि लिखते हैं और श्रीजिनप्रभसूरिजीके ही पूर्वाचार्यजी श्रीजिनपति सूरिजीके सत्य लेखको अप्रमाण मान्यके खास आपही मिथ्या दृष्टि बनते हैं । हा अतिखेद ! इस बातको पाठकवर्ग निष्पक्षपातसे सत्य बातके ग्राही होकर अच्छी तरहसे विचार लेना ;—

अब चौथा और भी सुनो श्रीआत्मारामजी इन्ही चतुर्थस्तुतिनिर्णयः पुस्तकके पृष्ठ १०१ । १०२ । १०३ में श्री बृहत्खरतरगच्छके श्रीजिनपतिसूरिजी कृत समाचारीका पाठ लिखके उसीको श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत पाठकी तरह प्रमाणिक मानते हैं और श्रीजिनपतिसूरिजी कृत पाठकी श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत पाठके साथ भलामण देते हैं जिसमें श्रीजिनपतिसूरिजीका पाठको भी न मानने वालोंको मिथ्या दृष्टि सिद्ध करते हैं । और फिर आपही श्रीजिनपतिसूरिजीकृत सत्य पाठको जैनसिद्धान्त समाचारीमें अप्रमाण ठहराकर नहीं मानते हैं जिससे (उपरोक्त न्यायानुसार काके) मिथ्या दृष्टि बननेका कुछ भी भय न करते कितने अन्यायके रस्ते चलते हैं सो भी आत्मारथी सज्जन पुरुष विचार लेना ;—

[१६१]

अब पांचमा और भी सुन लिजिये श्रीआत्मारामजीने तत्त्वनिर्णय प्रामादिक ब्रह्म ब्रह्म है सो उपा हुवा प्रसिद्ध हैं जिसके पृष्ठ १५९ लिखा है कि—

[अब पक्षपात न होनेमें हेतु कहते हैं—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।

युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥ ३८ ॥

व्याख्या—मेरा कुछ श्रीमहावीरजीके विषे पक्षपात नहीं है कि जो कुछ महावीरजीने कहा है सोइ मैंने मानना है अन्यका कहा नहीं ; और कपिलादि मताधिपोंसे द्वेष नहीं है कि कपिलादिकोंका नहीं मानना किन्तु जिसका वचन शास्त्र युक्तिमत् अर्थात् युक्तिसँ विरुद्ध नहीं है तिसका वचन ग्रहण करनेका मेरा निश्चय है ॥ ३८ ॥]

और इन्ही तत्त्वनिर्णय प्रामादिकी उपोद्घात श्रीवल्लभ विजयजीने बनाई है जिसके पृष्ठ ३९ वे में लिखा है कि (पक्षपात करना यह बुद्धिका फल नहीं है परन्तु तत्त्वका विचार करना यह बुद्धिका फल है “बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणं चेति वचनात्” और तत्त्वविचार करके भी पक्षपातको छोड़ कर जो यथार्थ तत्त्वका भान होवे उसको अङ्गीकार करना चाहिये किन्तु पक्षपात करके अतत्त्वकाही आग्रह नहीं करना चाहिये यतः—आगमेन च युक्त्या च, योऽर्थः समनिगम्यते । परित्यज्य हेमवद्ग्राह्यः, पक्षपाताग्रहेण किम्—

भावार्थः आगम (शास्त्र) और युक्तिके द्वारा जो अर्थ प्राप्त होवे उसको सोनेके समान परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये पक्षपातके आग्रह (हठ)से क्या है)—

अब पाठकवर्ग श्रीआत्मारामजीके और श्रीवल्लभ-

[१६२]

विजयजीके उपरोक्त लेखमें पक्षपात रहित विचारों कि-
जिस पुरुषका वचन शास्त्र और युक्ति सहित होवे उसको
सोनेके समान जानके सज्जन पुरुषोंको ग्रहण करना ही उचित
है, और शास्त्र तथा युक्ति रहित वचनको हठवादसे ग्रहण
करना सो निर्वुद्धि पुरुषोंका लक्षण है ऐसा दोनोंका कहना है
तो इस पर मेरेको वड़ेही खेदके साथ लिखना पड़ता है
कि श्रीआत्मारामजी न्यायाभोनिधि नाम धारण करते
न्याय और बुद्धिके समुद्र होते भी श्रीजिनेश्वर भगवान्
की आज्ञामुजब शास्त्रानुसार युक्ति करके सहित और
सत्यवचन शुद्ध समाचारी कारने श्रीजिनपतिसूरिजी महा-
राजका लिखा था सो ग्रहण करने योग्य था तथापि उनकी
गल्तीके पक्षपातसे वृथा क्यों निषेध किया होगा क्योंकि
श्रीजिनपतिसूरिजीका (श्रावण और भाद्रव मास अधिक होवे
तो भी पचासदिने पर्युषणा करना परन्तु ८० में दिन नहीं
करना इतने पर भी ८० दिने पर्युषणा करते हैं सो शास्त्र-
विरुद्ध है) यह वाक्य श्रीशुद्धसमाचारी ग्रन्थका और श्रीसंघ-
पट्टक बृहद्वृत्तिका लिखा है सो शास्त्रानुसार सत्य है इसी
ही बातका खुलासा इन्ही पुस्तकमें अनेक जगह ठामठाम
शास्त्रोंके प्रमाण सहित युक्तिपूर्वक विस्तारसे छप गया है
इसलिये उपरकी बातका निषेध करनाही नहीं बनता है शुद्ध
समाचारीकारने श्रीजिनपतिसूरिजी महाराज कृत ग्रन्थानु-
सार ५० दिने पर्युषणा ठहराई और ८० दिन करने वालोंको
जिनाज्ञाके बाधक कहे हैं इसको श्रीआत्मारामजीने अप्रमाण
ठहराया तब इसका तात्पर्य यह निकला कि ५० दिने पर्यु-
षणा करनेवालोंको दूषित ठहराये और ८० दिने पर्युषणा

[१६३]

करनेवालोंको निर्दूषण ठहराये (हा अति खेदः) इसमें विशेष अन्याय दूसरा श्रीन्यायाम्भोनिधिजीका कौनसा होगा, कि-सूत्र, वृत्ति, भाष्य, चूर्णि, निर्युक्ति, प्रकरणादि अनेक शास्त्रों में श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य और श्रीखर-तरगच्छके तथा श्रीतपगच्छकेही पूर्वाचार्य सभी उत्तम पुरुष ठामठाम कहते हैं कि पर्युषणा पचास दिने करना कल्पे परन्तु पचासमें दिनकी रात्रिको भी उल्लङ्घन करके एकावनमें दिनकी करना न कल्पे इसलिये योग्यक्षेत्र न मिले तो जङ्गलमें वृक्षनीचे भी पर्युषणा करलेना इतने पर भी कोई पचास दिनकी रात्रिको उल्लङ्घन करके एकावनमें दिन पर्युषणा करे तो श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाका लोपी होवे यह बात तो प्रायः जैनमें प्रसिद्ध भी है सो भी मासवृद्धि के अभावकी जैनपञ्चाङ्ग की रीतिसें वर्तनेकी थी परन्तु अब लौकिक पञ्चाङ्ग मुजब मासवृद्धि हो अथवा न हो तो भी पचास दिने पर्युषणा करनी सोभी जिनाज्ञा मुजब है इसीही कारणसें श्रीजिन-पतिसूरिजीनें मासवृद्धि हो तोभी पचास दिने पर्युषणा कर लेनेका लिखा है सो सत्य है। और एकावन दिने भी पर्युषणा करने वाला जिनाज्ञाका लोपी होता है तो फिर ८० दिने पर्युषणा करने वाले क्या जिनाज्ञाके आराधक बन सकते हैं सो तो कदापि नहीं अर्थात् ८० दिने पर्युषणा करने वाले सर्वथा निश्चय करके श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजों की आज्ञाके लोपी है इसलिये ८०दिने पर्युषणा करने वालों को श्रीजिनपतिसूरिजीनें जिनाज्ञाके विराधक ठहराए सो भी सत्य है इसलिये श्रीजिनपतिसूरिजी महाराजका दोनुं वाक्य निषेध नहीं हो सकते हैं इतने परभी

[१६४]

श्रीन्यायांभोनिधिजी निषेध करते हैं सो निःकेवल शास्त्र विरुद्ध उत्सूत्र भाषण करके भोले जीवोंको कदाग्रहकारस्ता दिखाया हैं।

आगे छठा और भी सुनिये शुद्धसमाचारी कारके सत्य वाक्यको निषेध करनेके लिये अपना पक्षपातके जोरसे श्रीआत्मारामजीनें (तुमने अपने गच्छका मनन दिखाके अपनेही गच्छका प्रमाण पाठ दिखाया है यह तो ऐसा हुवा कि किसी लड़केनें कहा कि मेरी माता सती है साक्षी कौन कि मेरा भाई इसवास्ते यह आपका लेख प्रमाणिक नहीं हो सकता है) यह वाक्य लिखे हैं इसकी पांच तरहसे तो समीक्षा उपरमें होगई है और भी छठी तरहसे अब सुनाता हूं, कि-उपरोक्त लेखमें श्रीआत्मारामजीनें शुद्ध समाचारी-कारका उपहास करनेके लिये विद्वत्ताके अभिमानसे एक लड़केका दृष्टान्त दिखाया है परन्तु शुद्ध समाचारी कारके पूर्वाचार्य श्रीजिनपतिमूरिजीनें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार शास्त्रोंकी मध्यादा पूर्वक सत्य वाक्य लिखा हैं इसलिये लड़केका दृष्टान्त शुद्ध समाचारी कारके उपर किञ्चिन्मात्र भी नहीं घट सकता है तथापि श्रीआत्मारामजीनें लिखा है सो निःकेवल वर्तमानिक गच्छके पक्षपातसे श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी अवज्ञा कारक है, और जैसे ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नका समयके सूर्यको किसीने पत्थर फेंका तो भी सूर्य पर न गिरते पीछा लोट कर फेंकने वालेके शिर परही पत्थर के गिर सकता है तैसेही श्रीआत्मारामजीका न्याय हुवा अर्थात् श्रीआत्मारामजीनें लड़केका दृष्टान्त शुद्ध समाचारीकार पर दिया था परन्तु

[१६५]

शुद्धसमाचारी कारके वचन जिनाज्ञा मुजब सत्य होनेसे न गिर सका परन्तु वह लड़केका दृष्टान्त पीछाही फिरके श्री आत्मारामजी तथा उन्होंके परिवार वालोंके उपरही आकर गिरता है क्योंकि खास श्रीआत्मारामजीनेही जैन सिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकमें अपनाही कार्यसिद्ध करनेके लिये अपनाही मनन दिखाकर और अपनेही गच्छके अर्वाचीन (थोड़े कालके) पाठ दिखाये हैं सो भी श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाके विरुद्ध उत्सूत्र भाषण रूप हैं और खास श्री-तपगच्छकेही पूर्वोचार्थ्योंके विरुद्धार्थमें ग्रन्थकार सहाराजका अभिप्रायके विरुद्ध होकरके आगे पीछेका सम्बन्धको छोड़ कर अधूरे अधूरे पाठ लिखके फिर अर्थ भी उलटे उलटे किये हैं (इसका नमुना मात्र खुलासा संक्षिप्तसे आगे करनेमें आवेगा) इसलिये उपरोक्त लड़केका दृष्टान्त श्री आत्मारामजी तथा उन्होंके परिवार वालोंके उपर अवश्य ही दरोबर घटता है इसवास्ते श्रीआत्मारामजीने शास्त्र-कारोंके विरुद्धार्थमें जो जो बातें लिखी है सो तो सर्वही आत्मार्थियोंको त्यागने योग्य होनेसे प्रमाणिक नहीं हो सकती है ;—और सातमी तरहसे आगे (श्रीवल्लभविजय जीके नामसे समीक्षा होगा उसमें विस्तारसे लिखनेमें आवेगा) वहांसे समझ लेना ;—अब आगेकी भी समीक्षा करते हैं जैन सिद्धान्त समाचारीके पृष्ठ ८८ पंक्ति ११ वी से पृष्ठ ८९ की पंक्ति १९ वी तकका लेख नीचे मुजब जानो—

[और पृष्ठ १५६-१५७ में लिखा है, कि—“आवण और भाद्रव मासकी जैन सिद्धान्तकी अपेक्षार्थे वृद्धिकाही अभाव है। केवल पौष आषाढ़की वृद्धि होती थी, और इस समय

[१६६]

में लौकिक टिप्पणाके अनुसार हरेक मासोंकी वृद्धि होनेसे श्रावण और भाद्रवकी भी वृद्धि होती है ॥ तिसमें उनकी वृद्धि होनेसे भी दशपञ्चक व्यवस्थाके विषे, आषाढ़ चौमासी से पचाश दिनेही पर्युषणा करना सिद्ध होता है” ॥ आगे इसीकी सिद्धिके वास्ते कल्प सूत्रका ओर विशेष कल्प भाष्य चूर्णिका पाठ दिखाया है, कि—“जाव सवीसइ राइमासो” इत्यादि (इतना लेख शुद्धसमाचारी प्रकाशकी पुस्तक सम्बन्धी अधूरा लिखके इसका न्यायाम्भोनिधिजी लिखते हैं उत्तर)

हे मित्र ! मासवृद्धिका जो जैन टिप्पणादिकका विशेष दिखाया है, यह तो अज्ञानोंको केवल भरमानेके वास्ते है क्योंकि यद्यपि जैन टिप्पणाके अनुसार श्रावण और भाद्रव मासकी वृद्धिका अभाव है तो भी पौष और आषाढ़मास की तो वृद्धि होती थी, अब हम आपको पूछते है कि—जैन टिप्पणाके अनुसार जब पौष अथवा आषाढ़मासकी वृद्धि हुई तब संवत्सरीकी अभिवृद्धिओ सूत्रके पाठमें क्या ‘तेराणं मासाणं छवीसपखाणं’ वैसा पाठ कहोगे ? क्योंकि तिस वर्षमें तेरह मासतो अवश्य होजायगे । और जैनसिद्धान्तों में तो किसी भी स्थानमें वैसा नहीं लिखा है कि अधिक मास होवे तब तेरहमास और छवीस पख संवत्सरीकों कहना । तो अब आपका प्रयास क्या काम आया परन्तु यह तो निःशङ्कित मालुम होता है कि—जैनटिप्पणाके अनुसारसे भी अधिक मासकों कालचूलामें ही गिनना पड़ेगा । पूर्वपक्ष—कालचूला क्या होती है ? उत्तर हे परीक्षक ! आगे दिखावेंगे और दशपञ्चक व्यवस्था लिखते हो । सो तो कल्पव्यवच्छेद हुआ है, यह सर्वजन प्रसिद्ध है । और लौकिक टिप्पणाके

[१६७]

अनुसारसें हरेक वर्षमें आषाढ़ शुदि चतुर्दशीसें लेके भाद्रव शुदि ४ और तुमारे कहनेसें दूसरे श्रावण शुदि ४ तक ५० दिन पूर्ण करने चाहोगें तो भी नहीं हो सकेंगे। क्योंकि तिथियां वध घट होती है तो किसी वर्षमें ४९ दिन आजायगे और किसी वर्षमें ४८ दिन भी आजायगे तब क्या आपको जिन आक्षा भङ्गका दूषण नहीं होगा ?]

अब उपरके न्यायाभोनिधिजीके लेखकी समीक्षा करके आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंसें दिखता हूं, कि—हे भव्यजीवों न्यायाभोनिधिजीके उपरका लेखकोमें देखता हूं तो मेरेको बड़ाही खेदके साथ बहुत आश्चर्य उत्पन्न होता है क्योंकि श्रीन्यायाम्भोनिधिजीने तो शुद्धसमाचारी कारके वचनको खण्डन करना विचारके उपरका लेख लिखा था परन्तु शुद्ध समाचारी कारके सत्यवचन होनेसें खण्डन न हो सके, परन्तु न्यायाम्भोनिधिजी के लिखे वाक्यसें अवश्यही श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी और अपने ही गच्छके पूर्वाचार्योंकी अवज्ञा (आशातना) का कारण होनेसें न्यायाम्भोनिधिजी को लिखना सर्वथा उचित नहीं था क्योंकि देखो शुद्धसमाचारी की पुस्तक के पृष्ठ १५६ के अन्तमें और पृष्ठ १५७ के आदिमें ऐसा लिखा था कि (श्रावण और भाद्रपदमास की जैन सिद्धान्त की अपेक्षाये वृद्धिका ही अभाव है केवल पौष और आषाढ़मासकी ही वृद्धि होती थी और इस समयमें तो लौकिक टीप्पणाके अनुसार हरेक मासोंकी वृद्धि होनेसें श्रावण और भाद्रपद की वृद्धि होती है) इस शुद्ध समाचारी का लेखको खण्डन करने के लिये न्यायाम्भोनिधिजी लिखते हैं कि—(हे मित्र मासवृद्धिका

[१६८]

जो जैन टिप्पणादिकका विशेष दिखाया है यह तो अज्ञानकों केवल भ्रमाने के वास्ते है) अब हे पाठकवर्ग सज्जन पुरुषों उपरके न्यायाम्भोनिधिजी के वाक्यको पढ़के अच्छी तरहसे विचार करो कि श्रीतीर्थङ्कर गणधर केवली भगवान् और पूर्वधरादि महान् धुरन्धर प्रभाविक पूर्वाचार्य तथा खास न्यायाम्भोनिधिजीके ही पूज्य पूर्वाचार्य सखी महाराज जैनसिद्धान्त (शास्त्रों) की अपेक्षाये जैनपञ्चाङ्गमें युगके मध्यमें पौष और अन्तमें आषाढ़ मासकी मर्यादा पूर्व वृद्धि होती है ऐसा कहते हैं सो अनेक शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है जिसमें अनुमान पचाश शास्त्रोंके पाठों की तो सुफे भी मालुम है कि जैन शास्त्रोंमें पौष और आषाढ़ की वृद्धि श्रीतीर्थङ्करादिकोंने कही है इसी ही अनुसार शुद्धसमाचारी कारनें भी पौष और आषाढ़ की जैन सिद्धान्तों की अपेक्षाये वृद्धि लिखी हैं जिसको न्यायाम्भोनिधिजी अज्ञानकोंको भ्रमानेका ठहराते है सो यह तो ऐसा न्याय हुवा कि—

जैसे श्रीअनन्ततीर्थङ्करादि महाराज अनादिकाल हुवा उपदेश करते आये है कि । हे भव्यजीवों तुम्हारी आत्माको सुख चाहे तो द्रव्य भावसें जीवदया पालो इस वाक्यानुसार वर्त्तमानमें भी उपगारी पुरुषउपदेश करते है जिस उपदेशके कोई भी जेनाभास द्वेषबुद्धिवाला अज्ञानोंको केवल भ्रमानेका ठहरावे तो उस पुरुषनें श्रीअनन्त तीर्थङ्करादि महाराजोंकी आशातना करके अनन्त संसार वृद्धिका कारण किया यह बात सर्वसज्जन पुरुष जैनशास्त्रोंके ज्ञानकार मंजूर करते है तैसे ही श्रीअनन्त तीर्थङ्करादि महाराज अनादि काल हुवा जैन सिद्धान्तोंकी अपेक्षाये पौष

[१६९]

और आषाढ़ की वृद्धि कहते हैं सोही बात शुद्धसमाचारी कारनें भी जैन सिद्धान्तोंकी अपेक्षायें लिखी है सो सत्य है इसलिये निषेध नहीं हो सकती है । तथापि न्यायाम्भो-निधिजी उपरकी सत्य बातकों अज्ञ जनोंको केवल भ्रमानेका ठहराते हैं हा ! हा ! अतिव खेदः । उपरोक्त न्यायानुसार न्यायाम्भोनिधिजीनें श्रीअनन्त तीर्थङ्करादि-महाराजोंकी और अपने ही पूर्वजोंकी आशातना कारक अनन्त संसार वृद्धिका कारणरूप वृथा क्योंकिया होगा इसको विशेष पाठकवर्ग स्वयं विचार लेना ;—

तथा थोड़ासा और भी सुन लीजिये—शुद्ध समाचारी कारनें जैन सिद्धान्तों की अपेक्षायें पौष और आषाढ़ मास की वृद्धि दिखाई और लौकिक टिप्पणा की अपेक्षायें हरेक मासोंकी वृद्धि दिखाई सो सत्य है तथापि न्यायाम्भो-निधिजी (अज्ञजनोंको केवल भ्रमानेका) ठहराते हैं तो इस लेखसें तो न्यायाम्भोनिधिजीनें खास अपने ही पूज्य गुरुजन पूर्वाचार्योंको भी अज्ञजनोंको भ्रमाने वाले ठहरा दिये क्योंकि जैसे उपरोक्त शुद्ध समाचारी कारनें अधिक जास सम्बन्धी लिखा है तैसे ही श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्योंने भी लिखा है । जब शुद्ध समाचारी कारके लेखको न्यायाम्भो-निधिजी अज्ञजनोंको भ्रमानेका ठहराते हैं तब तो न्याया-म्भोनिधिजीके पूर्वाचार्योंका लेख भी अज्ञजनोंको भ्रमाने-वाला ठहर गया जब न्यायाम्भोनिधिजीने अपने पूर्वाचा-र्योंकी आशातनाका कुछ भी भय न रहखा तो फिर न्यायाम्भोनिधिजीको न्याययुक्त आत्मार्थी कैसे मान सकते हैं अपितु नहीं इस बातको भी पाठकवर्ग विचार लो,—

[१७०]

और आगे लिखा है कि (यद्यपि जैन टिप्पणाके अनुसार आषण और भाद्र मासकी वृद्धि अभाव है तो भी पौष और आषाढ़मास की तो वृद्धि होती थी अब हम आपको पूछते हैं कि जैन टिप्पणाके अनुसार जब पौष अथवा आषाढ़मासकी वृद्धि हुई तब संवच्छरीको अभ्यु-
 ठिओ सूत्रके पाठमें तेराणं मासाणं छवीसं पखाणं वैसा पाठ कहोगें क्योंकि तिस वर्षमें तेरह मास तो अवश्य हो जायगें और जैन सिद्धान्तोंमें तो किसी भी स्थानमें वैसा नहीं लिखा है कि अधिक मास होवे तब तेरह मास और छवीश पक्ष संवच्छरीको कहना तो अब आपका प्रयास क्या काम आया) इस लेखको देखता हुं तो न्यायाम्भो-
 निधिजीके बुद्धिकी चातुराईका वर्णन में नहीं कर सकता हुं क्योंकि जब शुद्ध समाचारी कारनें जैन सिद्धान्तोंकी अपेक्षायें पौष और आषाढ़मासकी वृद्धि लिखी जिसको तो न्यायांभो-
 निधिजी (अज्ञ जनोंको केवल भ्रमानेका) ठहराते हैं और फिर आप भी शुद्ध समाचारीके मुजब उसी तरहसे पौष और आषाढ़मासकी वृद्धि इस जगह मंजूर करते हैं यह न्यायांभोनिधिजीके अपूर्व विद्वत्ताका नमुना है क्योंकि दूसरेकी बातका खण्डन करना और उसी बातको आप मंजूर भी करलेना ऐसा अन्याय करना आत्मार्थियोंको उचित नहीं हैं और क्षामणाके सम्बन्धमें लिखा है सो भी जैन-
 शास्त्रोंके तात्पर्यको समझे बिना प्रत्यक्ष मिथ्या लिखके भोले जीवोंको संशयमें गेरे हैं क्योंकि अब जिस संवत्सर में अवश्य करके तेरह मास और छवीश पक्ष होगये तथा धर्मकर्म और संसारिक सावद्य कार्य तेरह मासके

[१७१]

किये जाते हैं जिससे पुण्य और पाप तेरह मासके लगते हैं तो फिर बारह मासकी आलोचना करके एक मासके पुण्यकार्योंकी अनुमोदना और पापकार्योंकी आलोचना नहीं करना यह तो प्रत्यक्ष अन्याय अल्पबुद्धिवाला भी कोई मंजूर नहीं कर सकता है और जिन्होंने ज्ञानमें एक समय मात्र भी धर्म अथवा कर्म बंधके सिवाय वृथा नहीं जाता है ऐसे श्रीसर्वज्ञ भगवान्‌के शास्त्रोंमें एक मासके धर्म और कर्मका न गिनना यह तो कभी नहीं हो सकता है इस लिये अधिक मास होनेसे अवश्य करके तेरह मास और छवीश पक्षादिकी आलोचना साम्बत्सरिकमें करनी जैन शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक है इसका विशेष विस्तार सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी आगे समीक्षा होगा उसमें शास्त्रोंके प्रमाण सहित अच्छीतरहसे करनेमें आवेगा सो पढ़के विशेष निर्णय कर लेना और आगे लिखा है कि—अधिकमास होनेसे तेरह मास छवीश पक्षके क्षमणे किसी भी स्थानमें नहीं लिखा है यह वाक्य भी सिध्दा है क्योंकि अनेक जगह अधिकमास होनेसे तेरह मास छवीश पक्षके क्षमणे लिखे हैं जिसका भी वहांही आगे निर्णय होगा ॥—

और (आपका प्रयास क्या काम आया) इस लेखपर तो मेरेकी इतना ही कहना उचित है कि शुद्धसमाचारी कारने तो सिर्फ अधिकमासकी गिनतीमें सिद्ध करके पचास दिने पर्युषणा दिखानेका प्रयास किया था सो शास्त्रानुसार न्याययुक्ति सहित होनेसे उन्हका प्रयास सफल है परन्तु न्यायान्भोजिधिजी हो करके अन्यायसे और शास्त्रोंके

[१७२]

विरुद्ध हो करके अधिकमासकी गिनती निषेध करनेका प्रयास करते हैं सो वही ही शर्मकी बात है और काल-चूलासम्बन्धी न्यायाभोनिधिजीनें आगे लिखा हैं उसकी समीक्षा में भी आगे करूंगा—

और (दशपञ्चक व्यवस्था लिखते हो सो तो कल्पविच्छेद हुआ है यह सर्वजन प्रसिद्ध है) इन अक्षरों कोभी में देखता हूं तो न्यायाभोनिधिजीका अन्याय देखकर मूझे बड़ाही आफसोस आता है क्योंकि शुद्ध समाचारी कारनें जिस अभिप्रायसे लिखा था उसीको समझे बिना अन्याय मार्गसे खण्डन करना न्यायाभोनिधिजीको उचित नहीं हैं क्योंकि शुद्धसमाचारी कारनें तो इस कालमें पचास दिनेही पर्युषणा करनी चाहिये इस बातकी पुष्टिके लिये शुद्ध समाचारीके पृष्ठ १५७ । १५८ में श्रीकल्पसूत्रजीका मूलपाठ, श्रीवृ-हत्कल्पवृर्णिका पाठ, और श्रीसप्तवायाङ्गजीका पाठ, लिखके पचास दिनेही पर्युषणा दिखाई थी परन्तु दशपञ्चक लिखके कुछ पाँच पाँच दिने प्राचीन कालकी रीतिसे पर्युषणा नहीं लिखी थी तथापि न्यायाभोनिधिजी शुद्धसमाचारी कारके अभिप्रायके विरुद्धार्थमें दशपञ्चकका कल्पविच्छेदकी बात लिखके पचास दिनकी पर्युषणाको निषेध करना चाहते हैं सो कदापि नहीं हो सकेगा और आगे फिर भी लिखा है कि—(लौकिक टिप्पणाके अनुसारसें हरेक वर्षमें आषाढ़ शुदी चतुर्दशीसें लेके भाद्रवा शुदी ४ और तुम्हारे कहने सें दूसरे श्रावण शुदी ४ तक ५० दिन पूर्ण करने चाहोगे तो भी नहीं हो सकेगे क्योंकि तिथियां वध घट होती है तो किसी वर्षमें ४९ दिन आजायगे और किसी वर्षमें

[१९३]

४८ दिन भी आजायगे तब क्या आपको जिनाज्ञा भङ्गका दूषण नहीं होगा) इस उपरके लेखसें तो न्यायांभो निधिजीनें श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी और अपनेही गच्छके पूर्वाचार्योंकी आशातना करके और सबी उत्तम पुरुषोंको दूषित ठहरानेका कार्य्य करके नय गर्भित व्यवहारको और श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठको उत्पादन करके बड़ाही अनर्थ कर दिया है क्योंकि जैसे सूत्र, चूर्णि, भाष्य, वृत्ति, प्रकरण, चरित्रादि अनेक शास्त्रोंमें एक नहीं किन्तु सैकड़ों बातें व्यवहार नयकी अपेक्षासें श्रीतीर्थङ्करादि महाराज कहते हैं तैसेही शुद्ध समाचारी कारने भी व्यवहार नयसें पचास दिने पर्युषणा कही है और श्रीकल्प सूत्रजीके मूल पाठका (अन्तरा वियसे कप्पई) इस वाक्यसें पचास दिनके अन्दरमें पर्युषणा होवे तो कोई दूषण भी नहीं कहा है तथापि न्यायांभोनिधिजी न्यायके समुद्र होते भी व्यवहार नयगर्भित श्रीजिनेश्वर भगवान्की व्याख्याका और श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठका उत्पादनके भयका जरा भी विचार न करते विद्वत्ताके अभिमानसें और पक्षपातके जोर से ४८।४९ दिन होनेका दिखाकर मिथ्या दूषण लगाते हैं सो कदापि नहीं बनता है,—याने सर्वथा उत्सूत्र भाषणरूप है

और भी दूसरा सुनिये—जो तिथियोंके हानी वृद्धिकी गिनतीसें कोई वर्षमें भाद्रपद शुक्ल चौथ तक ४८ दिन होनेका लिखकर न्यायाम्भोनिधिजी शुद्धसमाचारी कारको दूषित ठहराते हैं इससें मालुम होता है कि तिथियोंके हानी वृद्धिकी गिनतीसें भाद्रपद शुक्ल उठ (६) के दिन पूरे पचास दिन मान्य करके न्यायाम्भोनिधिजी पर्युषणा करते होवेंगे

[१७४]

तब तो अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध है और आप चौथकाही पर्युषणा करते होवेंगे तब तो शुद्धसमाचारी कारको दूषण लगाना वृथा है इसको भी पाठकवर्ग विचार लो ;—

और पर्युषणाके पीछाड़ी जो ७० दिन न्यायाम्भोनिधि जी ररखना कहते हैं सो किस हिसाबसें गिनती करके ररखते हैं इसका विवेक बुद्धिसें हृदयमें विचार किया होता तो शुद्ध समाचारी कारको दूषण लगानेका लिखनाही भूल जाते क्योंकि तिथियोंकी हानि बुद्धिसें किसी वर्षमें ६९ और किसी वर्षमें ६८ दिन भी होजाते हैं सो पाठकवर्ग बुद्धिजन पुरुष न्याय दृष्टिसें विचार कर लेना ;—

और भी आगे जैन सिद्धान्तसमाचारी पुस्तकके पृष्ठ ८९ की पंक्ति २० वीं से पृष्ठ ९० की पंक्ति १७ वीं तक ऐसे लिखा है कि [पूर्वपक्ष, आप तो सुखसेंही खाता बनाई जाते हो परन्तु कोई सिद्धान्तके पाठसें भी उत्तर है वा नहीं—उत्तर—हे समीक्षक दृढ़तर उत्तर देते हैं देखो कि श्रावणमास बढ़ने से दूसरे श्रावणमें और भाद्रव बढ़नेसे प्रथम भाद्रव मासमें पर्युषणा करना यह तुमने ८० (अशी) दिनकी प्राप्तिके भयसें अङ्गीकार किया परन्तु श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें ऐसा पाठ है, यथा—सवीसह राइमासे बहक्कंते सत्तरिराइदिएहिं सेसेहिं वासावासं पञ्जोसवेइत्ति, भावार्थः—जैसे आषाढ़ चौमासेके प्रतिक्रमण किये बाद एकमास और बीस दिनमें पर्युषणा करें तैसे पर्युषणाके बाद ७० सत्तर दिन क्षेत्रमें ठहरे—हे परीक्षक—अब इस पाठके विचारणेसें तुमकी मास की वृद्धि हुये कार्तिक सम्बन्धी कृत्य आश्विनमासमें करना पड़ेगा और कार्तिक मासमें करोगे तो १०० रात दिनकी

[१७५]

प्राप्ति होनेसे सिद्धान्त विरुद्ध होगा, फिर तो ऐसा हुवा कि एक अङ्गको आच्छादन किया और दूसरा अङ्ग सुझा होगया तात्पर्य कि तुमने आज्ञाभङ्ग न हुवे इस वास्ते यह पक्ष अङ्गीकार किया तोभी आज्ञाभङ्गरूप दूषण तो आपके शिर परही रहा—पूर्वपक्ष—इस दूषणरूप यन्त्रमें तो आपको भी यग्नित होना पड़ेगा—उत्तर—हे समीक्षक यह आज्ञाभङ्गरूप दूषणका लेश भी हमको न समझना क्योंकि हम अधिक मासको कालचूला मानते हैं—]

अब उपरके लेखकी समीक्षा करते हैं कि हे सत्ययाही सज्जन पुरुषों उपरके लेखमें न्यायाम्भोनिधिजीने अपनी चतुसई प्रगट कारक और प्रत्यक्षउत्सूत्र भाषणरूप भोले जीवोंको श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध रस्ता दिखानेके लिये अनुचित क्यों लिखा है क्योंकि प्रथमतो पूर्वपक्षमें ही [आप तो मुखसे ही बता बनाइ जाते हो] यह अक्षर लिखे है इससे मालुम होता है कि पहिले जो जो लेख न्यायांभोनिधिजीने लिखा है सो सो शास्त्रोंके प्रमाण बिना अपनी कल्पनासे लिखा है इसलिये न्यायांभोनिधिजीके जैसी दिलमें थी वैसीही पूर्वपक्षके अक्षरोंमें लिख दिखाई है सो, हास्पके हेतुरूप है सो तो बुद्धिजन विद्वान् पुरुष समझ सके हैं और इसके उत्तरका लेखमें भी सूत्रकार महाराजके अभिप्राय को जानेबिना उलटा विरुद्धार्थमें तीनों महाशयोंकी तरह चौथे न्यायाम्भोनिधिजीने भी कर दिया क्योंकि श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ मासवृद्धिके अभावका है । और पर्युषणा के पीछाड़ी १०० दिन होनेसे कोई भी दूषण नहीं है याने मास वृद्धि होनेसे पर्युषणाके

[१७६]

पीछाड़ी १०० दिन शास्त्रानुसार रहते हैं इसलिये मासवृद्धि होते भी पर्युषणाके पीछाड़ी ७० दिन रहने का और १०० होनेसे दूषण लगाने का न्यायाम्भोनिधिजीका लिखना सर्वथा वृथा है इसका विशेष निर्णय तीनों महाशयोंकी समीक्षामें सूत्रकार वृत्तिकार महाराजके अभिप्रायसहित संपूर्ण पाठसमेत युक्तिपूर्वक विस्तारसे पृष्ठ ११८से पृष्ठ १२९ तक छपगया है और आगे भी कितनीही जगह छप चुका है सो पढ़नेसे अच्छी तरहसे निर्णय होजावेगा तथापि उपरोक्त लेखमें न्यायाम्भोनिधिजीनें उटपटाङ्ग लिखा है जिसकी समीक्षा करके दिखाता हूं—[श्रावणमास बढ़ने से दूसरे श्रावणमें और भाद्रव बढ़नेसे प्रथम भाद्रव मासमें पर्युषणा करना यह तुमने अशीदिनका प्राप्तिके भयसे अङ्गीकार किया] इस लेखकी लिखके आगे श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका (सवीसइ राइमासे वइकुन्ते) इस पाठसे पचासदिने पर्युषणा दिखाई ॥ इन अक्षरोंसे तो जैसे शुद्ध समाचारी कारनें ५० दिने पर्युषणा ठहराई थी तैसेही न्यायाम्भोनिधिजीनें भी ठहराई इसमें तो शुद्ध समाचारी कारका लेखकी विशेष पुष्टिमिली और न्यायाम्भोनिधिजीकी अपना स्वयं लेख भी बाधक होगया तो फिर दो श्रावण होनेसे भी भाद्रपदमें और दो भाद्रपद होनेसे दूसरे भाद्रपदमें न्यायाम्भोनिधिजी पर्युषणा करते हैं तब तो प्रत्यक्ष ८० दिन होते हैं और श्रीसमवायाङ्गजी आदि अनेक शास्त्रोंमें ५० दिने पर्युषणा करनी कही है और अधिकमास भी अनेक शास्त्रोंमें प्रमाण किया है तैसे ही खास न्यायाम्भोनिधिजी भी क्षामणा के सम्बन्धमें अधिकमास होनेसे [तिसवर्षमें तेरांमास तो

[१७७]

अवश्य होजायें] यह अक्षर पृष्ठ ८९ की पंक्ति ३।४ में लिखे हैं अब पाठकवर्ग विचार करो कि अधिकमास होनेसें तेरह मास अवश्य करके न्यायांभोनिधिजीनें मान्य करलिये जब अधिकमास गिनतीमें संजूर हो चुका तब दो श्रावण होनेसें भाद्रपद तक ८० दिन न्यायांभोनिधिजीके धाक्यसें भी सिद्ध होगये तो फिर पचास दिने पर्युषणा करनेका पाठ दिखानी और ८० दिने अपनी कल्पनासें पर्युषणा करना यह कोई बुद्धिवाले विवेकी श्रीजिनाज्ञाके आराधक पुरुष का काम नहीं है सो पाठकवर्ग भी विचार लेना ;—

और भी दूसरा सुनो (श्रावणमास बढ़नेसें दूसरे श्रावण में और भाद्रपद बढ़नेसें प्रथम भाद्रपद मासमें पर्युषणा करना यह तुमने ८० (अशी) दिनकी प्राप्तिके भयसें अङ्गीकार किया) इन अक्षरोंका तात्पर्य ऐसे निकलता है कि शुद्ध समाचारीकारकों तो ८० दिने पर्युषणा करनेसें शास्त्रविरुद्धका भय लगा तब पचास दिने पर्युषणा करनेका अङ्गीकार किया परन्तु न्यायांभोनिधिजीको ८० दिने पर्युषणा करनेसें शास्त्र विरुद्धका भय नहीं लगता है इस लिये दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें और दो भाद्रपद होनेसें दूसरे भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा शास्त्रविरुद्धताको न गिनके करते हैं यह बात सिद्ध होगइ इस बातको पाठकवर्ग भी विशेष करके विचार लो ;—

और श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठको दिखाकर दो श्रावणादि होते भी ७० दिन पर्युषणाके पिछाड़ी रखने का जो न्यायांभोनिधिजी कहते हैं सो भी सूत्रकार तथा वृत्तिकार महाराजके और युक्ति के भी विरुद्ध है क्योंकि

[१७८]

आषाढ़ चौमासीसें प्रथम पचासदिन जानेसें और पिछाड़ी १० दिन रहनेसें एवं चार मासके १२० दिनका वर्षाकाल सम्बन्धी श्रीसमवायाङ्गजी का पाठ है तो अल्पबुद्धि-वाला भी समझ सकता है तो फिर न्यायाभोनिधिजी न्यायके और बुद्धिके समुद्र इतने विद्वान् होते भी दो श्रावणादि होनेसें पांचमास के १५० दिन का वर्षाकाल में पर्युषणाके पिछाड़ी १० दिन रखनेका आग्रह करते कुछ भी विचार नहीं किया बड़ीही शरमकी बात है और दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें ८० दिने पर्युषणा करके पिछाड़ी के १० दिन रखनेका न्यायाभोनिधिजी चाहते होवे तो भी अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध है क्योंकि व्यवहारिक गिनतीसें पचास दिने अवश्य ही निश्चय करके पर्युषणा करनी कही है, और दिनोंकी गिनती में अधिकमास छुट नहीं सकता है इस लिये ८० दिने पर्युषणा करके पिछाड़ी १० दिन रखेंगे तो भी शास्त्रविरुद्ध है और अधिक मासको गिनती में छोड़ कर पर्युषणा के पिछाड़ी १० दिन रखेंगे तो भी अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध है क्योंकि अधिक मासको अनेक शास्त्रोंमें और खास श्रीसमवायाङ्गजी सूत्र में प्रमाण किया है इस लिये अधिकमास को गिनतीमें निषेध करना भी न्यायाभोनिधिजीका नहीं बन सकता है और चारमासके सम्बन्धी पाठको पांचमासके सम्बन्धमें न्यायाभोनिधिजी को सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें लिखना भी उचित नहीं है इस लिये श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ पर अपनी कल्पनासें न्यायाभोनिधिजी अथवा उन्हींके परिवारवाले और उन्हींके पक्षधारी वर्त्तमानिक श्रीतपगच्छके महाशय

[१७९]

जो जो कल्पना मासवृद्धि होते भी पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रखनेके लिये करेंगे सो सो सबीही उत्सूत्र भाषण रूप भोले जीवोंको निष्प्रायत्वमें गेरने वाले होवेंगे इसलिये श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक सत्यग्राही सर्व-सज्जन पुरुषोंसे मेरा यही कहना है कि श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें मासवृद्धिके अभावसे ७० दिनके अक्षर देखके मास वृद्धि होते भी आग्रह मत करो और मासवृद्धिको संजूर करके दूजा आचरणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें पचासदिने पर्युषणा करके पिछाड़ी १०० दिन मान्यकरो जिससे उत्सूत्र भाषक न बनके श्रीजिनाज्ञाके आराधक बनेंगे मेरा तो येही कहना है । मान्य करेंगे जिन्होंकी आत्माका सुधारा है इतने पर भी जो हठग्राही नहीं मानेंगे जिन्होंकी सम्यक्त्व रत्न बिना आत्माका सुधारा कैसे होगा सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने ;—

और श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठपर न्यायाभोनिधि जीनें अथनी चातुराई प्रगट किवी है कि—(हे परीक्षक अब इस पाठके विचारणसे तुमको मास वृद्धि हुये कार्तिक सम्बन्धी कृत्य आश्विन मासमें करना पड़ेगा और कार्तिक मासमें करोगे तो १०० रात दिनकी प्राप्ति होनेसे सिद्धान्तसे विरुद्ध होगा फिर तो ऐसा हुवा कि एक अङ्गको आच्छादन किया और दूसरा अङ्ग खुल्ला होगया तात्पर्य कि—तुमने आज्ञाभङ्ग न हुवे इस वास्ते यह पक्ष अङ्गीकार किया तो भी आज्ञा भङ्गरूप दूषण तो आपके शिरपर ही रहा) इस लेखकी समीक्षा अब सुन लीजिये—हे पाठकवर्ग देखो न्यायाभोनिधिजीनें तो शुद्धसमाचारी कारको दूषित ठह-

[१८०]

राने के लिये उपरका लेख लिखाथा परन्तु खास शुद्धसमा-
चारीकारने ही श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका इस ही पाठकी
अपनी शुद्धसमाचारीकी पुस्तकमें लिखा है। और इन्ही
श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रकी वृत्तिकारक (शुद्धसमाचारी कारके
परमपूज्य श्रीखरधरगच्छ नायक) श्रीनवांगी वृत्तिकार
श्रीअभयदेव सूरीजी प्रसिद्ध है जिन्होंने इन्ही पाठकी वृत्ति
में चारमासके एकसौ बीस (१२०) दिनका वर्षाकाल
सम्बन्धी अच्छी तरहका खुलासाके साथ व्याख्या किबी है।
सो प्रसिद्ध है और मैंने भी मूलपाठ तथा वृत्ति और भावार्थ
सहित इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १२० । १२१ में छपा दिया है इस
लिये चारमास सम्बन्धी पाठको पांच मासके अधिकारमें
लिखना भी न्यायाम्भोनिधिजी को अन्याय कारक है और
दो श्रावण होनेसे पांचमासके वर्षाकालके १५० दिन होते
हैं यह तो जगत प्रसिद्ध है जिसको अल्पबुद्धि वाले भी
समझ सकते हैं जिसमें जैन शास्त्रोंकी आज्ञानुसार वर्तमान
काले पचास दिने पर्युषणा करनेसे पर्युषणाके पिछाड़ी १००
दिन तो स्वाभाविक रहते ही हैं यह बात भी शास्त्रानुसार
तथा प्रसिद्ध है तथापि न्यायाम्भोनिधिजी होकरके अन्याय
के रस्तेमें धर्मके पांचमासके वर्षाकालमें पर्युषणाके पिछाड़ी
१०० दिन स्वभाविक रहते हैं जिसको शास्त्र विरुद्ध कहकर
चारमास सम्बन्धी पाठ लिखके दूषित ठहराते हैं। यह तो
प्रत्यक्ष उत्सूत्र भाषणरूप वृथा है और वर्तमानमें दो श्राव-
णादि होनेसे पचास दिने पर्युषणा और पर्युषणाके पिछाड़ी
१०० दिन रहनेका श्रौतपगच्छके ही- पूर्वचार्योंने कहा है
जिसका खुलासा इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १४६ में छप गया है

[१८१]

जिसको भी शास्त्र विरुद्ध ठहराकर न्यायाम्भोनिधिजी अपने ही पूर्वाचार्योंकी आशातनाके फलविपाकका भय नहीं करते हैं सो बड़ीही अफसोसकी बात है और मासवृद्धि होनेसे कार्तिक सम्बन्धीकृत्य आश्विनमासमें करने का न्यायाम्भोनिधिजी लिखते हैं सो भी उन्होंकी समझमें फेर है क्योंकि शुद्धसमाचारीकार तथा श्रीखरतरगच्छ वाले मासवृद्धि होनेसे शास्त्रानुसार पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन मान्य करते हैं इस लिये उन्होंकी तो कार्तिक सम्बन्धीकृत्य आश्विन मासमें करने की कोई जरूरत नहीं है, और आगे (एक अङ्गका आच्छादन किया और दूसरा अङ्ग खुला होगया) इन अक्षरोंको लिखके न्यायाम्भोनिधिजीने अङ्ग याने शरीरका दृष्टान्त दिखाया परन्तु यह दृष्टान्त शुद्धसमाचारीकार तथा श्रीखरतरगच्छवालोंके उपर किञ्चित् भी सही घट सकता है क्योंकि मासवृद्धिके अभावसे श्रीसमवायाङ्गजीमें कहे हुये पर्युषणाके पिछाड़ीका ७० दिन मान्य करके उसी मुजब वर्तते हैं और मासवृद्धि दो ब्रावणादि होनेसे अनेक शास्त्रोंके प्रमाणसे पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिनको भी मान्य करके उसी मुजब वर्तते हैं इसलिये उन्होंका तो शास्त्रानुसार वर्तनेका होनेसे श्रीजिनाङ्गरूपी वस्त्रों करके सर्व अङ्ग परिपूर्णतासे (आच्छादन) याने ढका हुआ है इसलिये एक अङ्ग खुला रहनेका दूषण लगाना न्यायाम्भोनिधिजीका प्रत्यक्ष मिथ्या है परन्तु इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १६४ और १६५ में जो न्याय उपा है इसी न्यायानुसार उपरीक्त खुला अङ्गका दृष्टान्त खास करके दोनों तरहसे न्यायाम्भोनिधिजीके

[१८२]

तथा उन्हींके परिवारवालोंके उपर बरोबर न्याय युक्त अच्छी तरहसे घटता है सोही दिखाता हुं कि—देखो न्यायांभोनिधिजी तथा इन्हींके परिवारवाले और उन्हींके पक्षधारी वर्त्तमानिक श्रीतपगच्छके सभी महाशय—विशेष करके श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठको पर्युषणा सम्बन्धी सब कोई लिखते हैं मुखसे कहते हैं और उन्ही पर पूर्ण श्रद्धा रखके बड़ाही आग्रह करते हैं उस पाठमें वर्षाकालके पचास दिन जानेसे और पिछाड़ी ७० दिन रहनेसे पर्युषणा करणा कहा है यह पाठ भावार्थः सहित आगे बहुत जगह छप गया हैं इस पर बुद्धिजन सज्जन पुरुष विचार करों कि—वर्त्तमानमें दो श्रावण होनेसे भाद्रपदमें पर्युषणा करने वालोंकी ८० दिन होते हैं जिससे पूर्वभागका एक अङ्ग सर्वथा खुला हो जाता है और दो आश्विन मास होनेसे कार्तिक तक १०० दिन होते हैं जिससे उत्तर भागका एक अङ्ग भी सर्वथा खुला हो जाता है इस तरहसे न्यायांभो निधिजी आदि जो श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठसे दो श्रावण होते भी भाद्रपद तक ५० दिने पर्युषणा और दो आश्विन होते भी कार्तिक तक पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रखना चाहनेवाले महाशयोंकी श्रावण और आश्विन मास बढ़नेसे दोनों अङ्ग श्रीजिनाशारूपी बखर करके रहित प्रत्यक्ष बनते हैं यह तो ऐसा हुवा कि—दोनों खोईरे जोंगटा मुद्रा और आदेश—किं वा—कोई एक संसारिक गृहस्थाश्रम छोड़के साधु हुवा परन्तु साधुकी क्रिया न करसका और पीछा गृहस्थ भी न हो सका उसीको उभय भ्रष्ट याने न साधु और न गृहस्थ ऐसे को 'यतो

[१८३]

भ्रष्टा ततो भ्रष्टा' कहनेमें आता है। अथवा। कोई एकस्त्री थी जिसने डाहीने हाथमें विधवाका चिह्न लम्बी काँचली और वाम हाथमें सधवाका चिह्न चुड़ा धारण किया था उसीनेही थोड़ी देर बाद फिर उससे विपरीत, याने, वाम हाथमें विधवाका चिह्न लम्बी काँचली और डाहीने हाथमें सधवाका चिह्न चुड़ा धारण फिर लिया ऐसी पागल स्त्री न तो विधवाकी और न सधवाकी गिनतीमें आसकती है तैसही दो आवण होते भी भाद्रपद तक पंचास दिनका और दो आश्विन होते भी कार्तिक तक १० दिन का आग्रह करने वालोंको आवण और आश्विन बढ़नेसे एक तरफ भी श्रीजिनाज्ञाके आराधक नहीं हो सकते हैं क्योंकि दोनों अङ्ग खुले रहते हैं इसलिये उपरोक्त दृष्टान्तका न्याय उपरके महाशयोंको खरोबर घटता है इसलिये अब उपरकी बातको न्यायाभोनिधिजीके परिवारवालोंको और उन्हींके पक्षधारियोंको अवश्य करके विचारनी चाहिये और पक्षपातको छोड़के सत्य बातको ग्रहण करना सोझी उचित है।

और शुद्धसमाचारीकार दो आवणादि होनेसे ५० दिने पर्युषण करके पर्युषणके पिलाड़ी १०० दिन अनेक शास्त्रानुसार न्याययुक्ति सहित मान्य करता है इस लिये एक अंग खुलेका दृष्टान्त न्यायाभोनिधिजी को लिखके आज्ञाभङ्ग रूप दूषण शुद्धसमाचारीकार को दिखाना सर्वथा करके उत्सूत्र भाषणरूप दूषण है।

और आगे लिखा है कि—(पूर्वपक्ष इस दूषणरूप यन्त्र में तो आपको भी यन्त्रित होना पड़ेगा उत्तर—हे समीक्षक ? यह आज्ञाभङ्गरूप दूषणका लेशभी हमको न

[१८४]

समझना क्योंकि हम अधिक मासकी कालचूला मानते हैं) इन अक्षरोंको लिखके न्यायाम्भोनिधिजी दो आवण होनेसें भाद्रपद तक ८० दिन होते हैं जिसमें अधिक मासकी गिनती में छोड़कर ८० दिनके ५० दिन और दो आश्विन मास होनेसें पर्युषणाके पिछाड़ी कार्तिक तक १०० दिन होते हैं जिसको भी ७० दिन अपनी कल्पनासें मान्य करके निर्दूषण बनना चाहते हैं सो कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि अधिक मासकी कालचूला की उत्तम ओपमा गिनती करने योग्य शास्त्रकारोंने दिखी है जिसका विशेष निर्णय तीनों महाशयोंके नामकी समीक्षामें अच्छी तरहसें उपगया है और आगे फिर भी कालचूला सम्बन्धी श्रीनिशीथ चूर्णिकां अधूरा पाठ और श्रीदशवैकालिक सूत्रके प्रथम चूलिकाकी वृहद्वृत्तिका अधूरा पाठ लिखके भावार्थ लिखे बाद फिर भी अपनी कल्पनासें पूर्वपक्ष उठा कर उसीका उत्तरमें भी पृष्ठ ८१ की पंक्ति १३ तक उत्सूत्र भाषणरूप लिखा है जिसका उतारा इन्हीं पुस्तकके पृष्ठ ५८ और ६० की आदि तक उपाके उसीकी समीक्षा पृष्ठ ६० से ६५ तक इन्हीं पुस्तकमें अच्छी तरहसें खुलासा पूर्वक उपगई है और श्रीनिशीथचूर्णिके प्रथमोद्देशेका कालचूलासम्बन्धी सम्पूर्ण पाठ और श्रीदशवैकालिककी प्रथम चूलिकाके वृहद्वृत्तिका सम्पूर्ण पाठ भावार्थके साथ खुलासा पूर्वक इन्हीं पुस्तकके पृष्ठ ४८ से पृष्ठ ५८ तक विस्तारसें उपगया है और तीनों महाशयोंके नामकी समीक्षा में भी इन्हीं पुस्तकके पृष्ठ ७५ से ७८ तक और आगे भी कितनी ही जगह उप गया है उसीकी पड़नेसें पाठक

[१८५]

वर्गकों अवश्यही निर्णय हो जावेगा कि अधिक मासको कालचूला की उत्तम ओपमा अवश्य ही गिनती करने योग्य शास्त्रकारोंने दिखी है इस लिये अधिकमासकी निश्चय करके गिनती करना ही सम्यक्त्वधारियोंको उचित है तथापि न्यायाम्भोनिधिजी अधिक मासकी गिनती निषेध करते हैं सो कदापि नहीं हो सकती है इतने पर भी आगे फिर भी पृष्ठ ९१ के पंक्ति १४ वीं से पंक्ति १८ वीं तक लिखते हैं कि (इस अधिकमासकों कालचूला में तुमको भी अवश्य ही मानना पड़ेगा और नहीं मानोगे तो किसी तरहसे भी आज्ञा भङ्ग रूप दूषणकी गठड़ीका भार दूर नहीं होगा क्योंकि पर्युषणाके बाद ७० (सत्तर) दिन रहने का कहा है कालचूला न मानोगे तो १०० दिन हो जायगें) इन अक्षरोंको लिखके शुद्धसमाचारी कारको पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन होनेसे दूषण लगाते हैं सो न्यायाम्भोनिधिजीका सर्वथा मिथ्या है क्योंकि मासवृद्धि होते पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन होनेमें कोई दूषण नहीं है इसका विस्तार उपरमें तथा तीनों महाग्रयों के नामकी समीक्षामें और भी कितनी ही जगह छप गया है उसीकों पढ़के पाठकवर्ग सत्यासत्यका निर्णय कर लेना ;—

और शुद्धसमाचारीकार तथा श्रीखरतरगच्छवाले अधिक मासको कालचूलाकी उत्तम ओपमा जानके विशेष करके गिनतीमें बरोबर लेते हैं और न्यायाम्भोनिधिजी अधिक मासको कालचूला कह करके भी शास्त्रकारोंका तात्पर्य समझे बिना श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके तथा श्री-निशोद्यचूर्णिकार और श्रीदशवैकालिकके चूलिकाकी वृद्ध-

[१८६]

वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें अधिकमासकी गिनती निषेध करते पर भवका भय कुछ भी नहीं किया यह बड़ाही अफसोस है ।

और आगे जैन सिद्धान्त समाचारी की पुस्तकके पृष्ठ ९१ की पंक्ति १९ वीं से पृष्ठ ९२ वीं की प्रथम पंक्ति तक ऐसे लिखा है कि (पर्युषणा पर्व केवल भाद्रव मासके साथ प्रतिबन्धवाला है क्योंकि जिस किसी शास्त्रमें पर्युषणापर्व का निरूपण किया है तिसमें भाद्रवमासका विशेषणके साथ ही कथन किया है परन्तु अधिक मास होवे तो श्रावण मासमें पर्युषणा करना ऐसा तो तुमारे गच्छवाले भी नहीं कह गये है देखो, रुन्देहविषौपथी ग्रन्थमें भी भाद्रव मास ही के विशेषण करके कहा है परन्तु ऐसा नहीं कहा कि अधिक मास होवे तो श्रावणमासमें करना ऐसा पर्युषणा पर्वके साथ विशेषण नहीं दिया है) उपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गकों दिखाता हूं कि हे सज्जन पुरुषो न्याया-भोनिधिजीके उपर का लेखको में, देखता हूं तो मेरेकों न्यायाभोनिधिजी में मिथ्या भाषणका त्यागरूप दूजा महाव्रतही नहीं दिखता है क्योंकि उपरके लेखमें तीन जगह प्रत्यक्ष मिथ्या भोले जीवोंको श्रमाने के लिये उत्सूत्र भाषणरूप लिखा है सोही दिखाता हूं कि प्रथमतो (पर्युषणापर्व केवल भाद्रव मासके साथ प्रतिबन्धवाला है क्योंकि जिस किसी शास्त्रमें पर्युषणा पर्वका निरूपण किया है तिसमें भाद्रवमासका विशेषणके साथही कथन किया है) यह अक्षर लिखके मासवृद्धि होते भी भाद्रपद मासप्रतिबन्ध पर्युषणा न्यायाभोनिधिजी ठहराते हैं सो मिथ्या है क्योंकि

[१८७]

भाष्य, धूर्णि, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें मासवृद्धि होनेसें
 श्रावणमासमें पर्युषणा करना लिखा है इसका विशेष
 निर्णय तीनों महाशयोंकी समीक्षामें शास्त्रोंके प्रमाण
 सहित न्याययुक्तिके साथ अच्छी तरहसें इन्हीं पुस्तकके
 पृष्ठ १०७ से पृष्ठ ११७ तक उपगया है उसीकों पढ़नेसें सर्व
 निर्णय हो जावेगा और दूसरा (अधिक मास होवे तो
 श्रावण मासमें पर्युषणा करना ऐसा तो तुमारे गच्छवाले
 भी नहीं कहगये है) यह लिखा है सोभी प्रत्यक्ष सिध्या है
 क्योंकि श्रीखरतरगच्छके अनेक पूर्वाचार्योंने अनेक ग्रन्थोंमें दो
 श्रावण होनेसें दूसरा श्रावणमें पर्युषणा करनी कही है
 सोही देखो श्रीजिनपतिसूरिजी कृत श्रीसङ्ख्यपट्टक बृहद्वृत्तिमें
 १। तथा श्रीसमाचारी ग्रन्थमें । २। श्रीजिनप्रभ सूरिजी कृत
 श्रीसन्देहविधौषधी वृत्तिमें । ३। तथा श्रीविधिप्रया ग्रन्थमें ।
 ४। श्रीउपाध्यायजी श्रीसमयसुन्दरजीकृत श्रीकल्पकल्पलता
 वृत्तिमें । ५। तथा श्रीसमाचारी शतकमें । ६। और श्रीलक्ष्मी-
 बल्लभगणिजी कृत श्रीकल्पद्रुमकलिका वृत्तिमें । ७। और श्रीतप
 गच्छ तथा श्रीखरतरगच्छसम्बन्धी (तथा खरतरप्रश्नोत्तर)नाम
 ग्रन्थ है उसीमें । ८। और श्रीपर्युषणा सम्बन्धी चर्चापत्रमें ।
 ९। इत्यादि अनेक जगह सुलासापूर्वक दूसरे श्रावणमें पर्यु-
 षणा करनेका श्रीखरतरगच्छके पूर्वाचार्योंने कहा है तैसैं ही
 श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्योंने भी अनेक ग्रन्थोंमें दूसरे
 श्रावणमें ही पर्युषणा करना कहा है और खास न्याया-
 भोनिधिजी भी शुद्धसमाचारी पुस्तक सम्बन्धी अपनी
 जैन सिद्धान्त समाचारी की पुस्तकके पृष्ठ ८७ की पांक्त २२ वी
 से पृष्ठ ८८ प्रथम पंक्ति तक लिखते हैं कि (श्रावण मास बढ़े

[१८८]

तो दूसरे श्रावण शुदीमें और भाद्रव खड़े तो प्रथम भाद्रव शुदीमें आषाढ़ चौमासेसे ५० में दिनही पर्युषणा करना परन्तु ८० अशीमें दिन नहीं करना ऐसा लिखके पृष्ठ १५५ में अपनेही गच्छके श्रीजिनपति सूरिजी रचित समाचारीका प्रमाण दिया है) इन अक्षरोंको न्यायाम्मोनिधिजी लिखते हैं और उपरोक्त श्रीखरतरगच्छके पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंका दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने सम्बन्धी पाठोंको भी जानते हैं तथापि (अधिक मास होवे तो श्रावण मासमें पर्युषणा करना ऐसा तो तुमारे गच्छवाले भी नहीं कह गये हैं) इतना प्रत्यक्ष मिथ्या लिखके अपना महाव्रत भङ्गके सिवाय और क्या लाभ उठाया होगा सो पाठकवर्ग विचार लेना—

और तीसरा (देखो सन्देहविषीषधी ग्रन्थमें भी भाद्रव मासहीके विशेषण करके कहा है परन्तु ऐसा नहीं कहा है कि अधिक मास होवे तो श्रावण मासमें पर्युषणा करना ऐसा पर्युषणायर्वके साथ विशेषण नहीं दिया है) यह लिखा है तो भी मायावृत्तिसे प्रत्यक्ष मिथ्या लिखा है क्योंकि श्री जिनप्रभसूरिजीने श्रीसन्देहविषीषधी वृत्तिमें सुलासा पूर्वक दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनी कही है जिसका पाठ भव्यजीवोंको निःसन्देह होनेके लिये इस जनह लिख दिखाता हूं श्रीसन्देहविषीषधी वृत्तिके पृष्ठ ३० और ३१ का तथाच तत्पाठः—

साम्प्रतं पर्युषणा समाचारी विष्वक्षुरादौ पर्युषणा कदा विधेयेति श्रीमहावीरस्तद्वर्णधरशिष्यादीन् दृष्टान्तेनाह तेण कालेणमित्यादि । वासाणंति । आषाढचतुर्मासकदिनादारभ्य सविंशतिरात्रेमासे व्यतिक्रान्ते भगवान् पञ्चोसवे

[१८८]

इति । पर्युषणामकार्षीत् सेकेण्ड्रेणमित्यादि । प्रश्नवाक्यं
 जडणं इत्यादि । निर्वचनवाक्यं । प्रायेणागारिणां । गृह-
 स्थानामागाराणि गृहाणि । कडियाइं कटयुक्तानि उक्लं-
 पिषाइं धवलितानि । कृन्नाइं वृणादिभिः लिप्ताइं ङगणा-
 दिभिः क्वचित् गुत्ताइंति पाठस्तत्र गुप्तानि वृत्तिकरद्वारपिधा-
 नादिभिः घट्टाइं विषमभूमिभञ्जनात् । मट्टाइं स्रक्षणीकृतानि
 क्वचित् संमट्टाइन्ति पाठस्तत्र समंतात् सृष्टानि मसृणीकृतानि
 संपधूमियाइं सौगन्ध्यापादनार्थं धूपनैर्वासितानि । खातोद-
 गाइं कृतप्रणालीरूपजलमार्गाणि खायनिदुमणाइं निर्दुमणं
 खालं गृहात् सलिलं येन निर्गच्छति अप्यणो अट्टाए आ-
 त्मार्थं स्वार्थं गृहस्थैः कृतानि परिकर्म्मितानि करोति कारणं
 करोतीत्यादाविव परिकर्म्मार्थत्वात् परिभुक्तानि तैः स्वयं
 परिभुज्यमानत्वात् अतएव परिणामितानि भवन्ति । ततः
 सविंशतिरात्रे मासे गते अमी अधिकरणदोषा न भवन्ति ।
 यदि पुनः प्रथममेव माथवः स्थिता स्म । इति द्रव्युः तदा
 ते गृहस्था मुनीनां स्थित्या सुभिक्षं संभाव्य तप्तायोगोल-
 कल्पाः दन्तालक्षेत्रकं कुरुः तथा चाधिकरणदोषाः अतस्तत्प-
 रिहाराय पञ्चशतादिनैः स्थिता स्म इति वाच्यं चूर्णिकारस्तु
 कडियाइं पासेहिंती कंवियाणि उवरिं इत्याह । स्थविरा
 स्थविरकल्पिकाः अद्यत्ताएन्ति अद्यकालीनाः आत्प्यंतया व्रत
 स्थविरत्वेन इत्येके अंतरावियसे इत्यादि अंतरापि च अर्वा-
 गपि कल्पते, पर्युषितुं न कल्पते तां रजनीं भाद्रपदशुक्ल-
 पञ्चमीं उवायणावित्तएन्ति अतिक्रमितुं । उसनिवासै इत्या-
 गमिको धातु । इह हि पर्युषणाद्विधा गृहिज्ञाताऽज्ञात-
 भेदात् । तत्र गृहिणामज्ञाता यस्यां वर्षायोग्यपीठफलकादौ

[१९०]

यन्त्रेण कल्पोक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, स्थापना क्रियते । साषाढपौर्णमास्यां पञ्चपञ्चदिनवृद्ध्या यावद्भाद्रपदशितपञ्चम्यां साचैकादशसु पर्वतिथिषु क्रियते । गृहिज्ञाता तु यस्यां साम्ब-
त्सरिकातिचारालोचनं लुप्तं पर्युषणाकल्पमूत्रकर्षणं चैत्य
परिपाटी अष्टमं साम्बत्सरिकप्रतिक्रमणं च क्रियते यथाच
व्रतपर्याय वर्षाणि गणयन्ते सा नभस्य शुक्रपञ्चम्यां कालिक-
सूर्यादेशाच्चतुर्थ्यामपि जनप्रकटं कार्या । यत्पुनरभिवर्द्धित-
वर्षे दिनविंशत्या पर्युषितव्यमित्युच्यते । तत्सिद्धान्तटिप्प-
णानामनुसारेण तत्र हि युगमध्ये पौषो युगान्ते चाषाढ एव
वर्द्धन्ते नान्येमासा स्तानि चाधुना सम्यक् न ज्ञायन्ते ततो
दिनपञ्चाशतैव पर्युषणासङ्गतेति वृद्धाः ततश्च कालावग्रहश्चात्र
जघन्यतो नभस्य शितपञ्चम्या आरभ्य कार्तिकचतुर्मासांतः
सप्ततिदिनमानः उत्कर्षतो वर्षायोग्य क्षेत्रान्तराभावादाषाढ-
मासकल्पेन सह वृष्टिसद्भावात् मार्गशीर्षेणापि सह परमासा
इति ।

देखिये उपरके पाठमें एकमास और बीस दिने पर्यु-
षणा श्रीतीर्थेङ्कर गणधर स्थविराचार्यादि करते थे तैसेही
वर्त्तमानमें भी एकमास बीस दिने याने पचास दिने पर्यु-
षणा करनेमें आती है और मासवृद्धि होनेसें बीस दिने
पर्युषणा जैन टिप्पणानुसार दिखाई और वर्त्तमानमें जैन
टिप्पणाके अभावसें पचास दिनेही पर्युषणा करनी कही
इससें दो श्रावण हो तो दूसरे श्रावणमें अथवा दो भाद्रपद
हो तो प्रथम भाद्रपदमें पचास दिनेही पर्युषणा सम्यक्त्व-
धारियोंको करनी योग्य है, तैसेही श्रीखरतरगच्छवाले करते
हैं परन्तु हठवादियोंकी बातही जूदी है—

[१९१]

और इन्ही महाराज श्रीजिनप्रभसूरिजीनें श्रीसन्देश-विशेषधी दृष्टिमें श्रीकल्पसूत्रजीके मूलपाठकी व्याख्या किये बाद इन्ही श्रीकल्पसूत्रकी निर्युक्ति जो कि सुप्रसिद्ध श्रीभद्र-बाहु स्वामीजी कृत हैं उसकी व्याख्या किवी है उसीमें काल ठवणाधिकारे समयादि कालसें आवलिका, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सम्बत्सर, युगादिकी व्याख्या करके आगे अधिक मासको अच्छी तरहसें प्रमाण किया है और प्राचीनकालाश्रय जैसे चन्द्रसंवत्सरमें पचास दिने पर्युषणा तैसेही अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीस दिने पर्युषणा सुलासा पूर्वक कही है और श्रीनिशीथचूर्णिके दशवे उद्देशेमें जैसे पर्युषणा सम्बन्धी व्याख्या है तैसेही उन्ही महाराजनें भी प्रायः उसीके सदृश अच्छी तरहसें व्याख्या किवी हैं

और इन्ही महाराज श्रीजिनप्रभ सूरिजीनें श्रीविधि-प्रया नाम ग्रन्थ बनाया है उसीके पृष्ठ ५३ में जैसा पाठ है वैसेही नीचे मुजब जानो ;—

आसाढ चउम्मासियाओ नियमा पसासइमे दिणे पज्जी सवणा कायव्वं न इक्कपंचासइमे जयावि लोइय टिप्पणया-णुसारेण दो सावणा दो भट्ठया वा भवन्ति तयावि पसा सइमे दिणे नउण कालचूलाविस्काए असीइमे सवीसइ राइमासे वइक्कते पज्जीसवणंतित्ति वयणाउं जंच अभि-वट्ठिपंमि वीसत्तुवुत्तं तं जुगमज्जे दो पोसा जुगअंते दोवी आसाढत्ति सिद्धंतटिप्पणयाणुरोहेणं चेव चइइ ते संपयं नवट्ठं तित्ति जहुत्तमेव पज्जीसवणादिणत्ति ॥

अब सत्यप्राप्ती सज्जनपुरुषोंसें मेरा इतनाही कहना है कि उपरमें श्रीखरतरगच्छके श्रीजिनप्रभसूरिजीनें श्रीसन्देश-

[१९२]

विषौषधी वृत्तिमें और श्रीविधिप्रपामें खुलासाके साथ मासवृद्धिकी गिनतीसें वर्तमानमें पचास दिने पर्युषणा कही है सो दूसरे श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करनी यह प्रसिद्ध बात है और न्यायाम्भोनिधिजी खास करके श्रीसन्देहविषौषधी वृत्तिका और श्रीविधिप्रपा ग्रन्थका उपरोक्त पर्युषणा सम्बन्धी पाठको अच्छी तरहसें जानते थे क्योंकि श्रीविधिप्रपा ग्रन्थका पाठ खास आपने चतुर्थे स्तुति निर्णयः पुस्तकके पृष्ठ ८३। ८४। ८५ में लिखा है।

और मैंने जो उपरमें श्रीविधिप्रपा ग्रन्थका पाठ पर्युषणा सम्बन्धी लिखा है उसी पाठके पहली पंक्तिका पाठ दोनुं जगहसें काटकरके अधूरा ग्रन्थकार महाराजके विरुद्धार्थमें उत्तमूत्र भाषणरूप और श्रीखरतरगच्छके तथा दूसरे भोले श्रावकोंको भ्रममें डेरनेके लिये न्यायाम्भोनिधिजीनें दैव लिङ्गान्त समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ८२ के अन्तमें लिखा है (जिसका खुलासा आगे करनेमें आवेगा) इससें पर्युषणा सम्बन्धी उपरका पाठ न्यायाम्भोनिधिजी जानते थे तथापि अपनी मिथ्या बात रखनेके लिये (अधिकमास होवे तो श्रावण मासमें पर्युषणा करना ऐसा तो तुमारे गच्छवाले भी नहीं कह गये हैं) यह वाक्य और सन्देहविषौषधी ग्रन्थमें भी (ऐसा नहीं कहा कि अधिक मास होवे तो श्रावणमासमें पर्युषणा करना) यह वाक्य न्यायाम्भोनिधिजी भाया वृत्तिसें प्रत्यक्ष मिथ्या कैसे लिख गये होंगे सो मेरेकों बड़ाही अफसोस है ;—इस लिये मेरेकों इस जगह लिखना पड़ता है कि श्रीजिनप्रभ सूरिजीनें श्रीसन्देह विषौषधी वृत्तिमें तो कदाग्रही और सन्देहकारी

[१९३]

पुरुषोंका अच्छी तरहसे सन्देहका (पर्युषणा सम्बन्धी और कल्याणक सम्बन्धी भी) निवारण किया है जो स्थिरचित्तसे वाँचके सत्यग्राही होगा उसीका तो अवश्य करके मिथ्यात्व रूप सन्देह निकलके सम्यक्त्वरूप सत्यवातकी प्राप्ति हो जावेगा इसमें कोई शक नहीं—

और श्रीखरतरगच्छके तो क्या परन्तु श्रीतपगच्छके ही पूर्वाचार्योंने मासवृद्धिके अभावसे भाद्रपदमें पर्युषणा करनी कही है और दो आषण होनेसे पचासदिने दूजा आषणमें भी पर्युषणा करनी कही है इसका विस्तार उपरमें अनेक जगह छपगया है। इसलिये श्रीखरतरगच्छके पूर्वाचार्यजी कृत ग्रन्थका मासवृद्धि सम्बन्धी पाठको छुपाकर मासवृद्धिके अभावका पाठ मासवृद्धि होते भी भोले जीवोंको दिखा कर सत्य बात परसे श्रद्धाभङ्ग करके अपनी कल्पित बातमें गेरनेका कार्य करना न्यायांभोनिधिजीकों उचित नहीं था;—

और आगे फिर भी न्यायाम्भोनिधिजीने अपनी जैन सिद्धान्त सभाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ९२ की दूसरी पंक्ति से सोलवी पंक्ति तक जो लिखा है सो नीचे मुजब जानो,—

[पृष्ठ १५९ पंक्ति ६ में नारचंद्र ज्योतिष ग्रन्थका प्रमाण दिया है सो तो हीरीके स्थानमें वीरीका विवाह कर दिया है। क्योंकि इसी द्वितीय प्रकरणमें ऐसा श्लोक है। यथा—हरिशयनेऽधिकमासे, गुरुशुक्रास्तेनलग्नमन्वेष्ट्य ॥ लग्नेशांशाधिपयो, नीचास्तगमे च न शुभं स्यात् ॥ १ ॥

भावार्थः अधिक मासादिक जितने स्थान बताये उसमें शुभ कार्य नहीं होते हैं। तो अब बारामासिक पर्युषणा-

[१९४]

पर्व कैसे करनेकी सङ्गति होगी ? और रविकोषाख्य ज्योतिःशास्त्रविषे भी ऐसा कहा है । यथा—‘यात्राविवाह-मण्डन, मन्यान्यपि शोभनानि कर्माणि ॥ परिहर्तव्यानि बुधैः, सर्वाणि नपुंसके मासि ॥ १ ॥

भावार्थः यात्रामण्डन, विवाहमण्डन, और भी शुभ-कार्य है सो भी पण्डित पुरुषोंनें सर्व नपुंसके मासि कहनेसें अधिक मासमें त्यागने चाहिये । अब देखीये ! इस लेखसें भी अधिक मासमें अति उत्तम पर्युषणापर्व करनेकी सङ्गति नहीं होसकती है ।]

ऊपरके न्यायाम्भोनिधिजीका लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गकों दिखता हूं कि (पृष्ठ १५९ में नारचन्द्र ज्योतिष ग्रन्थका प्रमाण दिया है सो तो हीरीके स्थानमें बीरीका विवाह कर दिया है) इन अक्षरोंको लिखके जो शुद्धसमाचारीके पृष्ठ १५९ में नारचन्द्र ज्योतिषका श्लोक है उसी को न्यायांभोनिधिजी निवेद्य करना चाहते हैं सो कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि उसी श्लोकका मतलब सत्य है देखो शुद्धसमाचारीके पृष्ठ १५९ में नारचन्द्रके दूसरे प्रकरणका ऐसा श्लोक है यथा—रविक्षेत्रगते जीवे, जीव क्षेत्रगते रवौ । दीक्षां स्थापनां चापि, प्रतिष्ठा च न कारयेत् ॥ १ ॥ इस श्लोक लिखनेका तात्पर्य्य ऐसा है कि वादी शङ्का करता है कि अधिकमासमें शुभकार्य्य नहीं होते हैं तो फिर पर्युषणापर्व भी शुभकार्य्य अधिकमासमें कैसे होवे इस शङ्काका समाधान शुद्धसमाचारीकार पं० प्र० घतिजी श्री-रायचन्द्रजी ऐसे करते हैं कि अधिक मासके सिवाय भी ‘रविक्षेत्रगते जीवे, याने सूर्य्यका क्षेत्रमें गुरुका जाना होवे’

[१९५]

अर्थात् सिंहराशि पर गुरुका आना होवे तब सिंहे गुरु सिंहस्य तेरह मास तक कहा जाता है उसीमें और 'जीवक्षेत्र गते रवौ, याने गुरुका क्षेत्रमें सूर्यका जाना होवे अर्थात् गुरुका क्षेत्रमें सूर्य धन और मीन राशिपर पौष और चैत्र मासमें आता है तब उसीको मलमास कहे जाते हैं उसीमें अर्थात् सिंहस्य का और मलमासका ऐसा योग बने तब गृहस्यको दीक्षा देना तथा साधुको सूरि वगैरह पदमें स्थापन करना और प्रतिष्ठा करनी ऐसे कार्य नही करना चाहिये क्योंकि ऐसे योगमें दीक्षादि कार्य करनेसे इच्छित फल-प्राप्त नही हो सकता है इसलिये उपरोक्तादि अनेक कारण-योगे मुहूर्तके निमित्त कारणसे जो जो कार्य करनेमें आते हैं सो निषेध किये हैं परन्तु आत्मसाधनका धर्मरूपी महान् कार्य तो बिना मुहूर्तका होनेसे किसी जगह कोई भी कारणयोगे निषेध करनेमें नही आया है और अधिक मासमें धर्मकार्य पर्युषणादि करनेका कोई शास्त्रमें निषेध भी नही किया है इसलिये अधिक मासादिमें धर्मकार्य अवश्यही करना चाहिये यह तात्पर्य शुद्धसमाचारी कारका जैनशास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक न्यायसम्मत होनेसे मान्य करने योग्य सत्य है इसलिये निषेध नही हो सकता है तथापि न्यायांभोनिधिजी अपनी कल्पित बातको स्थापनेके लिये शुद्धसमाचारीकारकी सत्य बातका निषेध करते हैं सोभी इस पंथमें कालके न्यायके समुद्रका नमुना है और शुद्धसमाचारीकार पं० प्र० यतिजी श्रीराय-चन्द्रजी थे, इसलिये (हीरीके स्थानमें वीरीका विवाह कर दिया है) यह अक्षर न्यायांभोनिधिजीको बिना विचार

[१९६]

किये ऐसे मिथ्या लिखना उचित नहीं था, इसका विशेष विचार पाठकवर्ग अपनी बुद्धिसें स्वयं कर लेना ;—

और (इसी द्वितीय प्रकरणमें ऐसा श्लोक है यथा—
हरिशयनेऽधिकमासे, गुरुशुक्रास्ते न लग्नमन्वेष्ट्यं ॥ लग्नेशां-
शाधिपयो, नीचास्तगमे च न शुभं स्यात् ॥१॥ भावार्थः अधिक
मासादिक जितने स्थान बतायें उसमें शुभकार्य नहीं होते
हैं तो अब द्वारा मासिक पर्युषणापर्व कैसे करनेकी सङ्गति
होगी) इस उपरके लेखसें न्यायाम्भोनिधिजीनें अधिक
मासमें पर्युषणा करनेका निषेध किया इस पर मेरेको
प्रथमतो इतनाही लिखना पड़ता है कि उपरके श्लोकका
अधूरा भावार्थ लिखके न्यायाम्भोनिधिजीनें भोले जीवोंको
भ्रममें गेरे हैं इसलिये इस जगह उपरके श्लोकका पूरा
भावार्थ लिखनेकी जरूरत हुई सो लिखके दिखाता हूँ—
हरिशयने, याने, जो श्रीकृष्णजीका शयन (सोना) लौकिक
में आषाढ़शुक्र एकादशी (११) के दिनसें कार्तिकशुक्र एका-
दशीके दिन तक चार मासका (परन्तु मासवृद्धि दो आष-
णादि होनेसें पांच मासका) कहा जाता हैं उसीमें १, और
वैशाखादि अधिक मासमें २, गुरुका अस्तमें ३, शुक्रका
अस्तमें ४, और ज्योतिष शास्त्र मुजब लग्नके नवांशांका
अधिपति नीचा हो ५, अथवा अस्त हो ६, इतने योगोंमें
परिहत पुरुषकी लग्न नहीं देखना चाहिये क्योंकि उपरके
योगोंमें लग्न देखे तो शुभ फल नहीं हो सकता है इसलिये
ज्योतिषशास्त्रोंमें उपरके योगोंमें लग्न देखनेकी मनाई कियी
है इस तरहसें उपरोक्त श्लोकका भावार्थ होता है ॥ १ ॥

अब न्यायाम्भोनिधिजीनें नारचन्द्रके दूसरे प्रकरणका

[१९७]

जो ऊपरमें श्लोक लिखके पर्युषणा पर्वका निषेध किया है उस सम्बन्धी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं जिसमें प्रथमतो शुद्ध समाचारी कारका इत्सीही नारचन्द्रके दूसरे प्रकरणका जो श्लोक लिखाथा उसीको भावार्थ सहित में ऊपरमें लिख आया हूं—जिसमें खुलासे लिखा है कि तेरहमास तक सिंहस्थमें और पौष तथा चैत्र ऐसे मलमासमें मुहूर्तके निमित्तिक शुभकार्य नहीं होते हैं परन्तु बिना मुहूर्त का धर्म कार्य करनेमें हरजा नहीं क्योंकि तेरहमासका सिंहस्थमें पर्युषणादि धर्मकार्य तो अवश्य ही करने में आते है और पौषमासमें श्रीपार्श्वनाथस्वामिजीका जन्म और दीक्षा कल्याणकके धर्मकार्य और चैत्रमासमें श्रीआदिजिनेश्वर भगवान्का जन्म और दीक्षा कल्याणकके धर्मकार्य करनेमें आते हैं और चैत्रमासमें ओलियांकी भी तपश्चर्या बगैरह करनेमें आती है और खास अधिकमासमें भी पाक्षिकादि धर्मकार्य करनेमें आता है इस लिये मुहूर्तके निमित्तिक कार्य अधिकमासमें नहीं हो सकते है परन्तु धर्मकार्य तो बिना मुहूर्तका होनेसे अवश्यही करनेमें आता है यह तात्पर्य शुद्ध समाचारी कारका सत्यथा तथापि न्यायान्मोनिधिजीने (पृष्ठ १५९ पंक्ति ६ में नारचन्द्र ज्योतिषग्रन्थका प्रमाण दिया है सो तो हीरीके स्थानमें वीरीका विवाह कर दिया है) ऐसा उपहासका वाक्य लिखके उपरोक्त सत्यबातका निषेध करदिया और फिर उसी स्थानका 'हरिशयने, इत्यादि श्लोक लिखके हरिशयने श्रीकृष्णजीका शयन (सोना) जो चौमासमें और अधिक मासमें शुभकार्य का न होना दिखाकर पर्यु-

[१९८]

षष्ठा पर्वका भी नहीं होनेका उत्सृज भाषणरूप दिखाते कुछ भी विचार न किया क्योंकि चौमासेमें मुहूर्त निमित्तिक शुभकार्य्य नहीं होते है परन्तु बिना मुहूर्तका श्रीपर्युषणा पर्वतो खासकरके श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने वर्षा ऋतुमें करनेका कहा है जिसका किञ्चिन्मात्र भी न्यायाम्भोनिधिजी विचार न करते श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्धार्थमें और विद्वान् पुरुषोंके आगे अपने नामकी हासी करानेका कारणरूप हरिशयन का चौमासमें और अधिक मासमें शुभकार्य्यका न होनेका दिखाकर पर्युषणापर्व न होनेका भोले जीवोंको दिखाया । हा अतीव खेदः इस उपरकी बातको पाठकवर्गको तथा न्यायाम्भोनिधिजीके परिवारवालोंको और उन्हींके पक्षधारियोंको (सत्यग्राही हो कर) दीर्घदृष्टिमें विचारनी चाहिये;—

दूसरा औरभी सुनो—जो न्यायांभोनिधिजीके तथा उन्हींके परिवारवालोंके दिलमें ऐसाही होगा कि मुहूर्तके निमित्तका शुभकार्य्य न होवे वहां बिना मुहूर्तका धर्मकार्य्य भी नहीं होना चाहिये तब तो उन्हींके आत्माका सुधारा धर्मकार्य्योंके बिना होनाही मुशकिल होगा क्योंकि ज्योतिषशास्त्रोंके आरम्भसिद्धिग्रन्थमें १, तथा लघुवृत्तिमें २, और बृहद्वृत्तिमें ३, जन्मपत्री पद्धतिमें ४, नारचन्द्रप्रकरणमें ५, तथा तद्विषयमें ६, लग्नशुद्धिग्रन्थमें ७, तत् वृत्तिमें ८, मुहूर्तचिन्तामणिमें ९, बृहत् मुहूर्तसिन्धुमें १० दूसरी मुहूर्तचिन्तामणिमें ११, तथा पीयूषधारा वृत्तिमें १२, मुहूर्तमार्तण्डमें १३, विवाह वृन्दावनमें १४, प्रथम और दूसरा विवाहपटल ग्रन्थमें १५-१६, चार प्रकरणका नारचन्द्र

[१९९]

में १७, रत्नकोषमें १८, लग्नचन्द्रिकामें १९, ज्योतिषसारमें २०, और ज्योतिर्विदाभरण वृत्तिमें २१, इत्यादि अनेक ज्योतिष शास्त्रोंमें कितनेही मास १, कितनीही संक्रान्ति २, कितनेही वार ३, कितनीही तिथियां ४, कितनेही योग ५, कितनेही नक्षत्र ६, और जन्मका नक्षत्र ७, जन्मका मास ८, अधिक मास ९, क्षयमास १०, अधिक तिथि ११ क्षय तिथि १२, व्यतीपात १३, और कृष्णपक्षकी तेरस चौदश अमावस्या इन सीण तिथियोंमें १४, पापग्रहयुक्त चन्द्रमें १५, पापग्रह युक्त लग्नमें १६, गुरुका अस्तमें १७, शुक्रका अस्तमें १८, गुरु शुक्रकी बाल और वृद्धावस्थामें १९, ग्रहणके सात दिनोंमें २०, लग्नका स्वामी नीचामें २१, और अस्तमें २२, सन्मुख योगिनीमें २३, चन्द्रदग्ध तिथिमें २४, सन्मुख राहुमें २५, सिंहस्थ में २६, मलमासमें २७, हरिशयनका चौमासामें २८, भद्रामें २९, और तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न, दिशा वगैरह आपसमें अशुभ योगोंमें ३०, इत्यादि अनेक निमित्त कारणोंमें सुहृत्त निमित्तिक शुभकार्य वञ्जन किये हैं इस लिये न्यायां भोनिधिजी तथा उन्हींके परिवारवाले जो ज्योतिषशास्त्रोंके अशुभ योगोंमें शुभकार्योंका वञ्जन देखके धर्मकार्योंका भी वञ्जन करेंगे तब तो उन्हींको धर्मकार्य कब करनेका वस्तु मिलेगा अथवा शुभयोग बिना धर्मकार्य न करते किसीका आयुष्यपूर्ण हो जावे तो उन्हींकी आत्माका सुधारा कब होगा सो पाठकवर्ग बुद्धिजन पुरुष विचार लेना—और मेरा इसपर आत्मार्षी सज्जन पुरुषोंको इतनाही कहना है कि न्यायांभोनिधिजी उपरोक्त ज्योतिष शास्त्रोंके शुभाशुभयोगोंको न देखते सिंहस्थमें तथा हरिशयनका

[२००]

चौमासामें और अधिक मासादिमें धर्मकार्य करते होवेंगे तब तो 'हरिशयनेऽधिके मासे इत्यादि' उपरका श्लोक नारचन्द्रके दूसरे प्रकरणका लिखके अधिक मासादि जितने स्थान बताये उसमें शुभकार्य नहीं होता है, ऐसे अक्षर लिखके पर्युषणा पर्व करनेका निषेध भोले जीवोंको वृथा क्यों उत्सूत्र भाषणरूप दिखाया और उत्सूत्र भाषणका भय होता तो उपरकी मिथ्या बातों लिखी जिसका मिथ्या दुष्कृत्य देकरके अपनी आत्माकी शुद्धि करनी उचित थी और न्यायांभोनिधिजीके परिवारवालोंको ऐसा उत्सूत्र भाषणरूप मिथ्या बातोंका अब हट भी करना उचित नहीं है— इसलिये श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंसे मेरा यही कहना है कि ज्योतिषके शुभाशुभ योगोंका और सिंहस्थका, चौमासाका, अधिक मासादिक का विचार न करते, निःशङ्कित होकर श्रीजिनोक्त मुजब धर्मकार्योंमें उत्द्यम करके अपनी आत्माका कल्याण करो आगे इच्छा तुम्हारी ;—

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीने लिखा है कि [रत्नकोषाख्य ज्योतिःशास्त्र विषे भी ऐसा कहा है यथा यात्रा विवाहमण्डन, मन्यान्यपि शोभनानि कर्माणि, परिहर्तव्यानि बुद्धैः, सर्वाणि नपुंसके मासि ॥ १ ॥

भावार्थः—यात्रामण्डन, विवाहमण्डन और भी शुभ कार्य है सो भी पण्डित पुरुषोंने सर्व नपुंसके मासि कहने से अधिक मासमें त्यागने चाहिये अब देखिये इस लेखसे भी अधिक मासमें अत्युत्तम पर्युषणापर्व करनेकी संगति नहीं हो सकती है]

[२०१]

इस लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्ग को दिखाता हूँ— जिसमें प्रथमतो न्यायाभोनिधिजीकों ज्योतिषग्रन्थका विवाहादि कार्य्योंका दृष्टान्त दिखा करके पर्युषणा पर्वका निषेध करनाही उचित नहीं है इसका उपरमें अच्छी तरहसे सुलासा हो गया है और दूसरा यह है कि श्री तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने मासवृद्धिको काल-चूलाकी उत्तम ओपमा दिवी है तथापि न्यायाभोनिधिजीनें तीनों महाशयोंका अनुकरण करके श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्धार्थमें तथा इन महाराजोंकी आशातना का भय न करते मासवृद्धिको नपुंसककी तुल्य ओपमा लिख करके भोले जीवोंको अपने फन्दमें फसाये हैं सो बड़ाही अफसोस है और तीसरा यह है कि रत्नकोषाख्य (रत्नकोष) ज्योतिष शास्त्रमें तो मुहूर्तके निमित्तसे जो जो कार्य्य होते हैं उसीमें अनेक कारण योग वर्जन किये हैं उसीको सब को छोड़करके सिर्फ एक अधिक मास सम्बन्धी लिखते हैं सो भी न्यायाभोनिधिजीको अन्याय कारक है इसलिये मुहूर्त के कार्य्योंको दिखाकर बिना मुहूर्तका पर्युषणापर्व करनेका निषेध करना योग्य नहीं है ।

और भी चौथा सुनो—(यात्रामण्डन, विवाहमण्डन और भी शुभकार्य्य है सोभी पण्डित पुरुषोंनें सर्व नपुंसके साक्षि कहनेसे अधिक मासमें त्यागने चाहिये) इसपर मेरा इतना ही कहना है कि पूर्वोक्ततीनों महाशय और चौथे न्यायाभोनिधिजी यह चारों महाशय अधिकमासको नपुंसक कहके जो सर्व शुभकार्य्य त्यागने का ठहराते हैं । इससे तो यह सिद्ध होता है कि पौषध, प्रतिक्रमण, ब्रह्मचर्य्य,

[२०२]

दान, पुण्य, परोपकार, सात क्षेत्रमें द्रव्यखर्चना, जीव दया, देवपूजा, गुरुवन्दनादि देवगुरुभक्ति, साधर्मिक-वात्सल्य, विनय, वैयावच्च, आत्मसाधनरूप स्वाध्याय, ध्यानादि, श्रावकके और धर्मीप्रदेशका व्याख्यानादि साधुके उचित जो जो शुभकार्य है उन्ही शुभकार्योंको अधिक मासको नपुंसक कहके त्याग देनेका चारों महाशयोंने उपदेश किया होगा। भक्तजनोंको त्यागनेका नियम भी दिलाया होगा, आपने भी त्यागने होवेंगे और अधिक मासको नपुंसक कहके शुभकार्य चारों महाशय त्यागनेका ठहराते हैं इससे अशुभ कार्योंका ग्रहण होता है इसलिये उपरोक्त कार्योंसे विरुद्ध याने अधिक मासको नपुंसक जानके सर्व शुभकार्य त्यागते हुए—निन्दा, ईर्ष्या, भगड़ादि अशुभकार्य करनेका चारों महाशयोंने उपदेश किया होगा। दृष्टि रागियोंसे करानेका नियम भी दिलाया होगा और अपने भी ऐसे ही किया होगा। तब तो (अधिक मासमें सर्वशुभकार्य त्यागनेका) ज्योतिष-शास्त्रका नामसे चारों महाशयोंका लिखके ठहराना उचित ठीक होसके परन्तु जो अधिक मासमें निन्दा ईर्ष्यादि अशुभकार्य त्यागके देवगुरुभक्ति वगैरह शुभकार्य चारों महाशयोंने करनेका उपदेश दिया होगा भक्तजनोंसे करानेका नियम भी दिलाया होगा और अपने भी उपरके अशुभ कार्योंका त्यागकरके शुभकार्योंको किये होवेंगे तबतो अधिक मासमें ज्योतिष शास्त्रका नाम लेकरके सर्व शुभकार्य त्यागनेका ठहराना चारों महाशयोंका भोले जीवोंको भ्रममें गेरके मिथ्यात्व बढ़ानेके सिवाय

[२०३]

और क्या होगा सो बुद्धिजन सज्जनपुरुष स्वयं विचार लेना ।

अब पांचना और भी सुनो कि जो न्यायाम्भोनिधिजी अधिक मासको नपुंसक कहके यात्रा मण्डनका शुभकार्य त्यागनेका ठहराते हैं परन्तु जैनके और वैष्णवके अनेक तीर्थ स्थान हैं उसीमें अमुक अधिकमासमें अमुक तीर्थयात्रा बन्ध हुई कोई देशी परदेशी यात्री यात्रा करने को न आया ऐसा देखनेमें तो दूर रहा किन्तु पाठकवर्गके सुननेमें भी नहीं आया होगा तो फिर न्यायाम्भोनिधिजीने कैसे लिखा होगा सो पाठक वर्ग विचार लेना ।

और उठा यह है कि न्यायाम्भोनिधिजी किसी भी अधिक मासमें कोई भी श्रीशत्रुजय वगैरह तीर्थस्थानमें ठहरे होवे उस अधिक मासमें तीर्थयात्रा खास आपने किवी होगी तो फिर अधिक मासमें यात्राका निषेध भोले जीवोंको कृपा क्यों दिखाया होगा सो निष्पक्षपाती सज्जन पुरुष स्वयं विचार लो ;—

और सातमी बारकी समीक्षामें कदायहियोंका मिथ्यात्व रूप भ्रमको दूर करनेके लिये मेरेको लिखना पड़ता है कि न्यायाम्भोनिधिजी इतने विद्वान् न्यायके समुद्र होते भी गच्छका मिथ्या हठवादसे संसार व्यवहारमें विवाहादि वड़े ही आरम्भके कराने वाले और अधो-गतिका रस्तरूप लौकिक कार्य न होनेका दृष्टान्त दिखाकर महान् उत्तमोत्तम निरारम्भी ऊर्ध्वगतिका रस्तरूप लोकोत्तर कार्यका निषेध करती वरुन न्यायाम्भोनिधिजीके विद्वत्ताकी चातुराई किस जगह चली गईयी सो प्रत्यक्ष असङ्गत और उत्सृज भाषणरूप लिखते

[२०४]

जरा भी विचार न आया क्योंकि विवाहादि कार्य तो चैमासामें और रिक्तातिथिमें तथा कृष्णवतुर्दशी अमावस्यादि तिथि वगैरह कु वार कु नक्षत्र कु योगादि अनेक कारण योगोंमें निषेध किये हैं और श्रीपर्युषणादि धर्मकार्य तो विशेष करके चैमासामें रिक्तातिथिमें तथा कृष्ण चतुर्दशी अमावस्यादि तिथियोंमें कु वार कु नक्षत्र कु योगादि होते भी तिथि नियत पर्व करनेमें आते हैं इस बातका विवेक बुद्धिसें हृदयमें विचार किया होता तो विवाहादि कार्योका दृष्टान्तसें महान् उत्तम पर्युषणा पर्व करनेका निषेध के लिये कदापि लेखनी नहीं चलाते यह बातपाठकवर्गको अच्छी तरहसें विचारनी चाहिये ;—

और भी आठमी तरहसें सुन लीजिये—कि पूर्वोक्त तीनों महाशयोंने और चौथे न्यायांभोनिधिजीनें भोले जीवों के आत्मसाधनका धर्मकार्योंमें विप्रकारक, अधिक मासको तुच्छ नपुंसकादिसें लिखा है सो निःकेवल श्रीतीर्थ-ङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्ध उत्सूत्र भाषणरूप प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि धर्मकार्योंमें अधिक मास उत्तम श्रेष्ठ महान् पुरुषरूप है (इसलिये अधिक मासमें धर्मकार्योंका निषेध नहीं हो सकता है) इस बातका विशेष विस्तार दृष्टान्त सहित युक्तिके साथ अच्छी तरहसें सातमें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षामें करनेमें आवेगा सो पढ़नेसें सर्व निःसन्देह हो जावेगा ;—

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीनें अधिक मास को निषेध करनेके लिये जैन सिद्धान्तसमाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ ९२ की पंक्ति १७ से पृष्ठ ९३ की आदिमें अर्द्ध पंक्ति तक

[२०५]

लेख लिखके अपनी चातुराई प्रगट किंवी हैं उसीका चतारा नीचे मुजब जानो—

[अधिक मासकी अचेतन रूप वनस्पति भी नहीं अङ्गीकार करती है तो औरोको अङ्गीकार न करना इसमें तो क्याही कहना देखो आवश्यक निर्युक्ति विषे कहा है यथा—
जइ फुल्ला कणिआरडा, नूअग अहिमासयंनिघुठंनि ।
तुहनखमं फुल्लेउ, जइ पक्वता करिति इमराई ॥ १ ॥ भावार्थः
हे अंश अधिक मासमें कणियरकी प्रफुल्लित देखके तेरेको फुलना उचित नहीं है क्योंकि यह जाति बिनाके आड़म्बर दिखाते हैं अब देखिये हे मित्र यह अच्छी जातिकी वनस्पति भी अधिक मासको तुच्छही जानके प्रफुल्लित नहीं होती है]

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गकों दिखाता हूं—कि हे सज्जन पुरुषों न्यायाम्भोनिधिजीनें प्रथमतो (अधिकमासकी अचेतनरूप वनस्पति भी नहीं अङ्गीकार करती है) यह अक्षर लिखे है सो प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि दशलक्ष प्रत्येक वनस्पति तथा चौदह लक्ष साधारण वनस्पति यह चौबीस लक्ष योनीकी सब वनस्पति अवश्यमेव अधिक मासमें हवा पाणीके संयोगसें यथोचित नवीन पैदाश होती है औरवृद्धि यामती है प्रफुल्लित होती है और निमित्त कारणसें नष्ट भी होजाती है जैसे बारह मासोंमें हानी वृद्ध्यादि वनस्पतिका स्वभाव है तैसे ही अधिक मास होनेसें तेरह मासोंमें भी बरोबर है यह बात अनादि कालसें चली आती है और प्रत्यक्ष भी दिखती है क्योंकि इस संवत् १९६६ का लौकिक पञ्चाङ्गमें दो

[२०६]

श्रावण मास हुवे है तब भी दोनुं श्रावण मासमें वर्षा भी खूब (गहरी) हुई है तथा वनस्पति को भी नवीन पैदा होते वृद्धि होते और हानी होते पाठकवर्गने भी प्रत्यक्ष देखा है और देश परदेशके सब वगीचोंमें भी दोनुं मासोंमें फलों करके तथा फूलों करके वृक्ष प्रफुल्लित पाठकवर्गके देखनेमें आये होंगें और हरेक शहरोंमें वनमालि लोग अधिक मासमें शाक, भाजी, फल, फूल, बेचते हुवे सब पाठकवर्गके देखनेमें आते हैं यह बात तो हरेक अधिक मासमें प्रत्यक्ष देखनेमें आती है परन्तु कोई भी अधिक मासमें कोई भी देशमें कोई भी शहरमें शाक, भाजी, फल, फूलादि नवीन पैदा नहीं होते हैं तथा शहरमें भी वनमालि लोग बेचनेको नहीं आये हैं वैसा तो कोई भी पाठकवर्गके सुननेमें भी कभी नहीं आया होगा । यह दुनिया भरकी जगत् प्रसिद्ध बात है इस लिये अधिक मासको वनस्पति अवश्य ही अङ्गीकार करती है तथापि न्यायाम्भोनिधिजीनें (अधिकमासको अचेतनरूप वनस्पति भी - नहीं अङ्गीकार करती है) यह प्रत्यक्ष निष्ठा भोले जीवोंको अपना पक्षमें लानेके लिये लिख दिया—यह बड़ा ही अफसोस है ।

और फिर भी न्यायाम्भोनिधिजी (अधिक मासको अचेतनरूप वनस्पति भी नहीं अङ्गीकार करती है तो औरोंको अङ्गीकार न करना इसमें तो क्याही कहना) इस लेखको लिखके मनुष्यादिकोंको अधिक मास अङ्गीकार नहीं करनेका ठहराते हैं इस पर तो मेरेको इतनाही कहना है कि न्यायाम्भोनिधिजीके कहनेसें तो सब दुनियाके सब लोगोंको अधिक मासमें खाना, पीना, सोना, बैठना,

[२०९]

लेना, देना, स्त्रियोंकों गर्भका होना और वृद्धि पामना, जन्मना, मरणा, और संसारिक व्यवहारमें व्यापारादि कृत्य करना, दुनियामें रोगी, तथा निरोगी होना, और दान पुण्यादि भी करना, इत्यादि पाप और पुण्यके कार्य्य करना ही नहीं होता होगा तब तो मनुष्यादिकोंकों अधिक मास अङ्गीकार नहीं करनेका ठहराना न्यायाम्भोनिधिजीका बन सके परन्तु जो ऊपरके कहे, पाप, पुण्यके, कार्य्य दुनियाके लोग अधिक मासमें करते हैं इस लिये न्यायाम्भोनिधिजी का उपरका लिखना प्रत्यक्ष मिथ्या होनेसे पक्षपाती हठ-ग्राहीके सिवाय आत्मार्थी बुद्धिजन कोई भी पुरुष मान्य नहीं कर सकते हैं इसको विशेष पाठकवर्ग विचारलेना ;—

और आगे फिर भी न्यायाम्भोनिधिजीनें श्रीआवश्यक निर्युक्तिकी गाथा लिखी है सो भी निर्युक्तिकार श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामिजीके विरुद्धार्थमें उत्सृजभाषणरूप और इस गाथाका सम्बन्ध तथा तात्पर्य्य समझे बिना भोले जीवोंकों संशयमें गेरे हैं इसका विशेष विस्तार सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नाम की समीक्षामें अच्छी तरहसे किया जावेगा सो पढ़के सर्वनिर्णय करलेना—और फिर भी न्यायाम्भोनिधिजीनें श्रीआवश्यक निर्युक्तिकी गाथाका भावार्थ लिखा है कि (हे अंब अधिक मासमें कणियरको प्रफुल्लित देखके तेरेको फूलना उचित नहीं है क्योंकि यह जाति बिनाके आड़म्बर दिखाते हैं) इस लेखसे अधिक मासमें कणियरको फूलना ठहराते अंबको नहीं फूलना ठहराकर कणियरको तुच्छ जातिकी और अंबको उत्तम जातिका ठहराते हैं सोभी इन्हींकी समझमें फेर है क्योंकि

[२७८]

कणियर तो सबीही मासोंमें फूलती है और आंबे भी सबीही मासोंमें फूलके फलते हैं सो कलकता, मुंबई वगैरह शहरोंके अनेक पुरुष जानते हैं । और कणियर तो उत्तम जातिकी और अंब तुच्छ जातिका कारण अपेक्षासे ठहरंता है इसका विशेष खुलासा सातवे महाशयकी समीक्षामें करने में आवेंगा और आगे फिर भी श्रीआवश्यक निर्युक्ति की गाथा पर न्यायाभोनिधिजीनें अपनी चातुराई को प्रगट किवीहै कि (अब देखीये हे मित्र यह अच्छी जातिकी वनस्पति भी अधिक मासको तुच्छही जानके प्रफुल्लित नहीं होती है)

इस उपरके लेखकी समीक्षा पाठकवर्गकों सुनाता हूं कि न्यायाभोनिधिजी अच्छी जातिकी वनस्पतिकी अधिक मासको तुच्छही जानके प्रफुल्लित नहीं होनेका ठहराते हैं इस न्यायानुसार तो न्यायाभोनिधिजी तथा इन्होंके परिवारवाले भी जो अच्छी जातिकी वनस्पतिका अनुकरण करते होवेंगे तब तो अधिक मासको तुच्छही जानके खाना, पीना, देव दर्शन, गुरु वन्दन, विनय, भक्ति, वृद्धादिककी वैयावच्च, धर्मोपदेशका व्याख्यान, व्रत, प्रत्याख्यान, देवसी, राई, पाक्षिक प्रतिक्रमणादि कार्य्य करके अपनी आत्माकों पापकृत्योंसे आलोचित देखकरके हर्षसे प्रफुल्लित चित्तवाले नहीं होते होवेंगे तब तो उपरका लेख वनस्पति सम्बन्धीका लिखना ठीक हैं और उपर कहे सो कृत्योंसे आय हर्षित होते होवेंगे तब तो वनस्पतिकी बातको लिखके मोले जीवोंको श्रीजिनाशारूपी रत्नसें गेरनेका कार्य्य करना सो प्रत्यक्ष मिथ्यात्वका कारण है, और विद्वान् पुरुषोंके आगे हास्यका हेतु है सो बुद्धिजन पुरुष विचार लेना ;—

[१०८]

और भी दूसरा जुनो अचेतनरूप वनस्पतिको यह अ. एक मास उत्तम है किया तुच्छ है इस रीतिका कोई भी प्रकारका ज्ञान नहीं है इसलिये (अच्छी जातिकी वनस्पति भी अधिक मासको तुच्छही ज्ञानके प्रफुल्लित नहीं होती है) यह अक्षर न्यायाभोनिधिजीके प्रत्यक्ष निष्पत्ती है ।

और भी मेरेकों वड़े ही अफसोसके साथ लिखमा पड़ता है कि न्यायाभोनिधिजीनें उपरमें वनस्पति सम्बन्धी उटपटाङ्ग लेख लिखते कुछ भी पूर्वापरका विचार विवेक बुद्धिसें नहीं किया मालुम होता है क्योंकि—प्रथम । (अधिकमास को अचेतनरूप वनस्पति भी नहीं अङ्गीकार करती है) यह अक्षर लिखे फिर आगे श्रीआवश्यकनिर्युक्ति की गाथा (शास्त्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें) लिखके भी भावार्थमें—दूसरा । (हे अम्ब अधिक मासमें कणियरकी प्रफुल्लित देखके तेरेको फूलना उचित नहीं है) यह लिख दिया है इससें सिद्ध हुआ कि अधिकमासको वनस्पति जो कणियरकी जाति उसीनें अङ्गीकार किया और प्रफुल्लित हुई और वनस्पतिकी जाति अंबा भी अधिक मासको अङ्गीकार करके प्रफुल्लित होताथा तब उसकों कहा कि तेरेकों फूलना उचित नहीं है ।

अब पाठकवर्ग विचार करो कि प्रथमका लेखमें अधिक मासको वनस्पति अङ्गीकार नहीं करनेका लिखा और दूसरे लेखमें अधिक मासमें वनस्पतिकों फूलना अङ्गीकार करनेका लिखदिया इसलिये जो न्यायाभोनिधिजी प्रथम का अपना लेख सत्य ठहरावेंगे तो दूसरा लेख निष्पत्ती ही जावेगा और दूसरा लेखको सत्य ठहरावेंगे तो प्रथमका लेख

[२१०]

लिख्या हो जावेगा इसलिये पूर्वापर विरोधी (विसम्वादी) वाक्य लिखनेका जो विपाक श्रीधर्मरत्नप्रकरणकी वृत्तिमें कहा है (सो पाठ इसी ही पुस्तकके पृष्ठ ८६ । ८७ । ८८ में छप गया है) उसीके अधिकारी न्यायाम्भोनिधिजी ठहर गये सो पाठकवर्ग विचार लेना ;—

और अधिकमासकों तुच्छ न्यायाम्भोनिधिजी ठहराते हैं सो तो निःकेवल श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातनाका कारण करते हैं क्योंकि श्रीतीर्थङ्करादि महाराजोंने अधिकमासको उत्तम माना है (इसका अधिकार इसी ही पुस्तकमें अनेक जगह बारम्बार छप गया है और आगे भी छपेगा) इस लिये अधिकमासकों तुच्छ न्यायाम्भोनिधिजी को लिखना उचित नहीं था सो भी पाठकवर्ग विचार लो ;—

और आगे फिर भी जैन सिद्धान्त समावारीकी पुस्तकके पृष्ठ ९३ की प्रथम पंक्तिसें १२ वी पंक्ति तक ऐसे लिखा है कि (हे परीक्षक और भी युक्तियां आपको दिखाते हैं कि यह जगत्के लोक भी बारामासमें जिस जिस मासके साथ प्रतिबहुकार्य्य होते हैं सो तिस तिस मासमें अधिक मासकी छोड़के अवश्य ही करते हैं जैसे कि आसोज मास प्रतिबहु दीवालीपर्व अधिक मासकी छोड़के आसोज मासमें ही करते हैं और आम्बलकी ओली छ मासके अन्तरमें करनेकी भी अधिक मासकी छोड़के आसोज मासमें और चैत्रमासमें करते हैं ऐसे अनेक लौकिक कार्य्य भी अपने माने मासमें ही करते हैं परन्तु आगे पीछे कोई भी नहीं करते हैं सो हे मित्र भ्रातृवन्मास प्रतिबहु ऐसा परम पर्युषणा

[९११]

पर्व और मासमें करना यह सिद्धान्तसें भी और लौकिक रीतितेमें भी विरुद्ध है) यह न्यायाम्भोनिधिजी का उपरोक्त अपनी पुस्तकके पृष्ठ ८३ की पंक्ति १२ वी तकका लेख है ;—

इस उपरके लेखकी विशेष समीक्षा खुलासाके साथ लौकिक और लोकोत्तर दृष्टान्त सहित युक्ति पूर्वक पांचवें महाशय न्यायरत्नजी श्रीशान्तिविजयजीके नामसें और सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामसें करनेमें आवेगा तथापि संक्षिप्तसें इस जगह भी करके दिखाता हूं जिसमें प्रथमतो अधिक मासको निषेध करने के लिये न्यायाम्भो-निधिजी तथा इन्होंके परिवारवाले और इन्होंके पक्षधारी एक दो छोड़के हजारों कुयुक्तियां करके बालवृष्टि रागियों को दिखाकर अपने दिलमें खुसी माने परन्तु जैन शास्त्रोंकी स्याद्वादशैलीके जानकार आत्मार्थी विद्वान् पुरुषोंके आगे एक भी कुयुक्ति नहीं चल सकती है किन्तु कुयुक्तियोंके करने वाले उत्सूत्र भाषणका दूषणके अधिकारी तो अवश्यही होते हैं इस लिये उपरके लेखमें न्यायाम्भोनिधिजीनें युक्तियों के नामसें वास्तविकमें कुयुक्तियां दिखा करके अधिक मासको गिनतीमें निषेध करना चाहा सो कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि दीवाली (दीपोत्सव) और ओलियां यह दोनुं कार्प्य जैन शास्त्रोंमें लोकोत्तरपर्वमें माने हैं सो प्रसिद्ध है तथापि न्यायाम्भोनिधिजी ओलियांको लौकिक पर्व लिखते कुछ भी निध्या भाषणका भय न किया मालुम होता है, और दीवाली शास्त्रकारोंने कार्तिक मास प्रतिबद्ध कही है सो जगत् प्रसिद्ध है और मारवाड़ पूर्व पञ्जाबादि देशोंके जैनी अच्छी तरहसें जानते हैं और खास न्यायाम्भोनिधिजी

[२१२]

पञ्चाश देशके होते भी और अनेक शास्त्रोंमें कार्तिकमासका सुलासासें लिखा होते भी भोले जीवोंके आगे अपनी बात जानानेके लिये अपने देशकी और शास्त्रकी बातको छोड़कर अनेक शास्त्रोंका पाठ भी छोड़ते हुए, गुजराती भाषाका प्रमाण लेकरके आसोज मास प्रतिबद्धा दीवाली लिखते हैं सो भी विचारने योग्य बात है और अधिक मास होनेसें अवश्य करके सातमें मासे ओलियां करनेमें आती हैं तथापि न्यायांभोनिधिजीनें अधिक मास होते भी छ मासके अन्तर में लिखा हैं सो मिथ्या है और जैन शास्त्रोंमें तथा लौकिक में जो जो मास तिथि नियत पर्व है सो अधिक मास होने से प्रथम मासका प्रथम पक्षमें और दूसरे मासका दूसरा पक्षमें करनेमें आते हैं इस बातका विशेष निर्णय शङ्का समाधान सहित उपरोक्त पांचमें और सातमें महाशयके नामकी समीक्षामें आगे देखके सत्यासत्यका पाठक वर्ग स्वयं विचार करलेना ;—

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीनें लिखा है कि (हे मित्र भाद्रव मास प्रतिबद्ध ऐसा परम पर्युषणापर्व और मासमें करना यह सिद्धान्तसें भी और लौकिक रीतिसें भी विरुद्ध है) इस लेखसें न्यायांभोनिधिजी दो ब्रावण होते भी भाद्रव मास प्रतिबद्ध पर्युषणा ठहरा करके दो ब्रावण होनेसें दूसरे ब्रावणमें पर्युषणा करने वालोंको सिद्धान्तसें और लौकिक रीतिसें भी विरुद्ध ठहराते हैं सो निःकेवल आपही उत्सूत्र भाषण करते हैं क्योंकि दो ब्रावण होनेसे श्रीसरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छादिके अनेक पूर्वाचार्योंने दूसरे ब्रावणमें पर्युषणापर्व करनेका अनेक

[२१३]

शास्त्रोंमें कहा है और प्राचीन कालमें भी मासवृद्धि होने से आषण मास प्रतिबहु पर्युषणा भी इसलिये मासवृद्धि दो आषण होते भी भाद्रप मास प्रतिबहु पर्युषणा ठहराना शास्त्रविरुद्ध है और दूसरे आषणमें पर्युषणा करने वालोंको सिद्धान्तसे और लौकिक रीतिसे विरुद्ध ठहराना सो भी प्रत्यक्ष मिथ्या भाषण कारक हैं इसका उपरमें अनेक जगह विस्तारसे दूषण है और आगे विशेष विस्तार सातमें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षामें करनेमें आवेगा ;—

और आगे फिर भी न्यायांभोनिधिजीने पर्युषणा सम्बन्धी अपना लेख पूर्ण करते अन्तमें पृष्ठ ९३ पंक्ति १३ से पंक्ति १९ तक ऐसे लिखा है कि [पूर्वपक्ष पृष्ठ १५७ में लिखे हुए पाठका कुछ भी समाधान न किया—

उत्तर—हे परीक्षक अधिक मासको जब कालचूला मान लिया तो शास्त्रके लिखे हुए ५० दिन भी सिद्ध होगये और ७० दिन भी सिद्ध होगये तो फिर काहेको अपने अपने मासमें नियत धर्मकार्य छोड़के और और कल्पना करके आग्रह करना चाहिये] यह उपरका लेख न्यायांभोनिधि जीका शास्त्रोंके विरुद्ध और मायावृत्तिका भोले जीवोंके भ्रमानेके वास्ते है क्योंकि प्रथम तो शुद्धसमाचारीके पृष्ठ १५७ में श्रीकल्पसूत्रका मूल (सवीसइ राइमासे इत्यादि) पाठ लिखा है और दूसरा श्रीवृहत्कल्पवूर्णिका पाठसे प्राचीन-कालकी अपेक्षायें पांच पांच दिनकी वृद्धि करते दशवें पञ्चक में पचास दिने पर्युषणा दिखाई है और उसी श्रीवृहत्कल्पकी वूर्णिमें अधिक मासको मिश्रयके साथ अवश्य गिनतीमें लेना कहा है जिसका पाठ आगे छठे महाशय

[२१४]

श्रीवज्रविजयजीके नामकी समीक्षामें लिखनेमें आवेगा, इसलिये शुद्ध समाचारीकी पुस्तकके पृष्ठ १५७ का पाठ सम्बन्धी पूर्वपक्ष उठाकर उसीका उत्तरमें अधिक मासकी गिनती निषेध करना सो तो प्रत्यक्ष न्यायाम्भोनिधिजीका शास्त्र विरुद्ध उत्सूत्र भाषण रूप है ;—

और दूसरा यह भी सुन लीजिये कि—श्रीनिशीथ चूर्णि कार श्रीजिनदास महत्तराचार्यजी पूर्वधर महाराजनें और श्रीदशवैकालिक सूत्रके प्रथम चूलिकाकी बृहद्वृत्तिकार सुप्रसिद्ध श्रीमान् हरिभद्र सूरिजी महाराजनें अधिकमासको कालचूलाकी उत्तम औपमा गिनती करने योग्य लिखी है तथापि इन महाराजके विरुद्धार्थमें न्यायाम्भोनिधिजी इतने विद्वान् होते भी अधिक मासको कालचूला मानते भी निषेध करते हैं सो बड़ी ही विचारने योग्य आश्चर्य की बात है ;—

और दो श्रावण होनेसें भाद्रपदतक ८० दिन होते हैं तथा दो आश्विन होनेसें कार्तिक तक १०० दिन होते हैं तथापि ८० दिनके ५० दिन और १०० दिनके ७० दिन न्यायाम्भोनिधिजीनें अपनी कल्पनासें कालचूलाके बहाने बनाये सो कदापि नहीं बन सकते हैं इसका विस्तार तीनों महाशयों की और खास न्यायाम्भोनिधिजीकी भी समीक्षा में अच्छी तरहसें उपरमें छप गया है सो पढ़के सर्वनिर्णय कर लेना:—और दो श्रावण मास होनेसें दूसरे श्रावण मास प्रतिबद्ध पर्युषणा पर्व है इसलिये दो श्रावण होते भी भाद्रप मासकी भ्रान्ति करना शास्त्र विरुद्ध है और अब न्यायाम्भोनिधिजीके मासकी पर्युषणा सम्बन्धी समीक्षाके अन्तमें

[२१५]

श्रीजिनाङ्गाके आराधक सत्यग्राही सज्जन पुरुषोंसे मेरा यही कहना है कि जैसे पूर्वोक्त तीनों महाशयोंने अपने विद्वत्ताकी कल्पित बात जमानेके लिये पूर्वापर विरोधी तथा उटपटाङ्ग और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्ध और अनेक शास्त्रोंके पाठोंको उत्पादन करके अपना अनन्त संसार वृद्धिका भय नहीं किया तैसे ही चौथे महाशय न्यायाम्भोनिधिजीने भी तीनों महाशयोंका अनुकरण करके पूर्वापर विरोधी तथा उटपटाङ्ग और श्रीतीर्थङ्कर-गणधरादि महाराजोंके विरुद्ध उत्सूत्र भाषण करनेमें कुछ भी भय नहीं किया परन्तु मैंने भी भव्यजीवोंके शुद्ध श्रद्धा होनेके उपगारकी बुद्धिसे शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक सत्य बातोंका देखावट करके कल्पित बातोंकी समीक्षाकर दिखावट है उसीको पढ़के सत्य बातका ग्रहण और असत्य बातका त्याग करके अपनी आत्माका कल्याण करने में उद्यम करें और दृष्टिरागका पक्षपातकों न रखेंगे यही मेरा पाठक वर्गको कहना है ;—

और न्यायाम्भोनिधिजीके लेख पर अनेक पुरुष संपूर्ण रीतिते पूरा भरोसा रखतेथे कि न्यायाम्भोनिधिजी जो लिखेंगे सो शास्त्रानुसार सत्यही लिखेंगे ऐसा मान्यकरके उन्होंने पूज्यभाव बहोत पुरुषोंका है। और मेरा भी था परन्तु शास्त्रोंका तात्पर्य देखनेसे जो जो न्यायाम्भोनिधि जीने महान् उत्सूत्र भाषणरूप अनर्थ किया सो सो सब प्रगट होगया जिसका नमुनारूप पर्युषणा सम्बन्धी न्यायाम्भोनिधिजीने कितनी जगह प्रत्यक्ष मिथ्या और उत्सूत्र भाषण किया है सो सो उपरकी मेरी लिखी हुई समीक्षा पढ़नेसे

[११६]

पाठकवर्गकों प्रत्यक्ष दिख जावेगा तथा और भी न्यायाम्भोनिधिजीनें जैनसिद्धान्तसमाचारी नामकी पुस्तकमें अनुमान १५० अथवा १६० शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें अनेक जगह प्रत्यक्ष मिथ्या तथा अनेक जगह मायावृत्तिरूप और अनेक जगह शास्त्रोंके आगे पीछेके पाठ छोड़के अधूरे अधूरे तथा शास्त्रकारके अभिप्रायके विरुद्ध अनेक जगह अन्याय कारक और अनेक सत्यबातोंका निषेध करके अपनी कल्पित बातोंका उत्सूत्र भाषणरूप स्थापन इत्यादि महान् अनर्थ करके भोले दृष्टिरागी गच्छ कदाग्रही बालजीवोंकों श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाका मोक्षरूपी रस्तापरसे नेरके संसाररूपी मिथ्यात्व का रस्तामें फसानेके लिये जैन सिद्धान्त समाचारी, पुस्तक का नाम रखके वास्तविकमें अनन्त संसारकी वृद्धिकारक मिथ्यास्वरूप याखण्डकी समाचारी न्यायाम्भोनिधिजीनें प्रगट करके अपनी आत्माकों इस संसाररूपी समुद्रमें क्या क्या इनामके योग्य ठहराई होगी तथा अब इन्हींके परिवार वाले और इन्हींके पक्षधारी भी उसी मुजब बर्तते हैं जिन्हींकों इस संसारमें क्या इनाम प्राप्त होगा सो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने ;—इस लिये श्रीसङ्घों और न्यायाम्भोनिधि जीके पक्षधारी तथा इन्हींके परिवार वालोंको उपर की पुस्तक सम्बन्धी बातोंके लिये मेरा अभिप्राय इस पुस्तकके अन्तमें विनती पूर्वक जाहिर करनेमें आवेगा और पांचवें महाशय न्यायरवजी श्रीशान्तिविजयजी तथा छठे महाशय श्रीवल्लभविजयजी और सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षा में प्रसङ्गोपात् थोड़ी थोड़ी बातोंका उपर की पुस्तक सम्बन्धी दर्शाव भी करनेमें आवेगा ;—

इति चार्थे महाशय न्यायाम्भोनिधिजी श्रीआत्मारामजीके नामकी पर्युषणा सम्बन्धी संक्षिप्त समीक्षा समाप्तः ॥

[२१७]

अब आगे पांचवें महाशय न्यायरत्नजी श्रीशान्ति-विजयजीनें मानवधर्मसंहिता नामा पुस्तकमें जो पर्युषणा सम्बन्धी लेख अधिक मासको निषेध करनेके लिये लिखा है उसकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं जिसमें प्रथमतो मानवधर्मसंहिता पुस्तकके पृष्ठ ८०० की पंक्ति १७ वीं से पृष्ठ ८०१ की पंक्ति २१॥ तक जैसा न्यायरत्नजीका लेख है वैसाही नीचे मुजब जानो ;—

[दो ब्रावण होतो भी भादवेमें ही पर्युषणापर्व करना चाहिये, अगर कहा जाय कि—आषाढ़सुदी १४ चतुर्दशीसे ५० रौज लेना कहा यह कैसे सबुत रहेगा ? जबाब—कल्प-सूत्रकी टीकामें पाठ है कि—अधिकमास कालपुरुषकी चूलिका यानी चोटी है, जैसे किमी पुरुषका शरीर उचाईमें नापा जाय तो चोटीकी लंबाई नापी नहीं जाती, इसी तरह कालपुरुषकी चोटी जो अधिकमास कहा सो गिनतीमें नहीं लिया जाता, कल्पसूत्रकी टीकाका पाठ कालचूलेत्यविव-क्षणाद्दिनानां पञ्चाशदेव,—अगर लिया जाता हो तो पर्युषणा पर्व—दूसरे वर्ष ब्रावणमें और इस तरह अधिक महिनोंके हिसाबसे हमेशां उक्त पर्व फिरते हुवे चले जायंगे, जैसे मुसल्मानोंके ताजिये—हर अधिक मासमें बदलते रहते हैं, दूसरा यह भी दूषण आयगा कि—वर्षभरमें जो तीन चातु-र्मासिक प्रतिक्रमण किये जाते हैं उनमें पञ्चमासिक प्रति-क्रमणपाठ बोलना पड़ेगा, शीतकालमें और उष्णकालमें तो अधिक महिना गिनतीमें नहीं लाना और शीमासेमें गिनतीमें लाकर ब्रावणमें पर्युषणा करना किस न्यायकी बात हुई ? अगर कहा जाय कि—पचास दिनकी गिनती

[३१८]

लिङ्ग आती है तो पिछले ५० दिनकी जगह १०० दिन हो जायगें, उधर दोष आयगा, संवत्सरीके पीछे ५० दिन शेष रखना—यह बात समवायाङ्गसूत्रमें लिखी है—उसका पाठ—वासाणं सखीश्वराए मासे वडक्कंते सत्तरिराइंदिएहिं सेसेहिं, इसलिये वही प्रमाण वाक्य रहेगा कि—अधिकमास कालपुरुषकी चोटी होनेसे गिनतीमें नहीं लेना, अधिक महिनेके गिनतीमें लेनेसे तीसरा यह भी दोष आयगा कि चौईस तीर्थङ्करोंके कल्याणिक जो जिस जिस महिनेकी तिथिमें आते हैं गिनतीमें वे भी बढ़ जायगें, फिर क्या। तीर्थङ्करोंके कल्याणिक १२० से भी ज्यादा गिनना होगा? कभी नहीं, इस हेतुसे भी अधिकमास नहीं गिना जाता अधिक महिनेके कारणसे कभी दो भाद्वे हो तो दूसरे भाद्वेमें पर्युषणा करना चाहिये जैसे दो आषाढमहिने होते हैं तब भी दूसरे आषाढमें चातुर्मासिककृत्य किये जाते हैं वैसे पर्युषणा भी दूसरे भाद्वेमें करना न्याययुक्त है।]

अब न्यायरत्नजीके उपरका लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं जिसमें प्रथमतो (दो श्रावण हो तो भी भाद्वेमेंही पर्युषणापर्व करना चाहिये) यह लिखना न्यायरत्नजीका शास्त्रोंमें विरुद्ध है क्योंकि खास न्यायरत्नजी-केही परमपूज्य श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्योंने दो श्रावण होने से दूसरे श्रावणमें पर्युषणापर्व करनेका कहा है जिसका अधिकार उपरमें अनेक जगह और खास करके चारों महाशयोंके नामकी समीक्षामें अच्छी तरहसे छपगया है इसलिये दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें अपने पूर्वजोंके विरुद्धार्थमें पर्युषणापर्व स्थापन करना न्यायरत्नजीको उचित नहीं है।

[२१९]

और दूसरा यह है कि श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महान् उत्तम पुरुषोंनें सूत्र, चूर्णि, भाष्य, वृत्ति, निर्युक्ति प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें मासवृद्धि के अभावसे भाद्रपदमें पचास दिने पर्युषणा करनी कही है परन्तु एकावन ५१ में दिने श्रीजिनाज्ञाके आराधक पुरुषोंको पर्युषणा करना नहीं कल्पे और एकावन दिने पर्युषणा करने वालोंको श्री जिनाज्ञाके लोपी कहे है सो प्रसिद्ध है तथापि न्यायरत्नजी इतने विद्वान् हो करके भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके वचनको प्रमाण न करते हुए अनेक सूत्र, चूर्णोंदि शास्त्रोंके पाठोंको उत्थापते हुए मासवृद्धि दो आवन होते भी ८० दिने भाद्रपदमें पर्युषणापर्व करनेका लिखते कुछ भी उत्सूत्र भाषणका भय नहीं करते हैं यह बड़ाही अफसोस है;—

और दो आवन होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेसे प्रत्यक्ष ८० दिन होते हैं तथा अधिकमास भी शास्त्रानुसार और न्याययुक्ति सहित अवश्य निश्चय करके गिनतीमें सर्वथा सिद्ध है सो उपरमें अनेक जगह छपगया है इसलिये अधिक मासकी गिनती निषेध करना भी उत्सूत्र भाषणरूप अन्याय कारक है तथापि न्यायरत्नजीनें उत्सूत्र भाषणका विचार न करते अधिक मासको गिनतीमें निषेध करनेके लिये जो जो विकल्प करके शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें भोले जीवोंकी श्रद्धाभङ्ग होनेके लिये लिखा है उसीकी समीक्षा करता हुं—जिसमें प्रथमतो दो आवन होनेसे भाद्रपद तक ८० दिन होते हैं जिसका अपनी कल्पमासें ५० दिन बनानेके लिये न्यायरत्नजी लिखते हैं कि— [कल्पसूत्रकी टीकामें पाठ है कि अधिकमास काल-

[२२०]

पुरुषकी चूलिका यानी चोटी है जैसे किसी पुरुषका शरीर उचाईमें नापा जाय तो चोटीकी लंबाई नापी नहीं जाती है इसी तरह कालपुरुषकी चोटी जो अधिकमास कहा सो गिनतीमें नहीं लिया जाता उत्सूत्रकी टीकाका पाठ—
कालचूलेत्यविषक्षणादिनानां पञ्चाशदेव]

इस उपरके लेखमें न्यायरत्नजीनें अधिकमासको काल-पुरुषकी चोटी लिखकर गिनतीमें नहीं लेनेका ठहराया है सो निःकेवल श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप है क्योंकि श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने अधिक मासको दिनोंमें पक्षोंमें मासोंमें वर्षोंमें अनादिकाल हुवा निश्चय करके गिनतीमें लिया है आगे लेवेंगे और वर्तमान कालमें भी श्रीसीमंथर स्वामीजी आदि तीर्थङ्कर गणधरादि महाराज महाविदेह क्षेत्रमें अधिक मासको गिनतीमें लेते हैं तैसेही इस पञ्चमें कालमें भरत क्षेत्रमें भी अनेक आत्मार्थी पुरुष अनेक शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक देशकालानुसार अधिक मासको अवश्यही गिनतीमें लेते हैं इस बातका अनेक जगह उपरमें अधिकार उपगया है और आगे भी छपेगा इसलिये अधिकमासको गिनतीमें नहीं लेनेका ठहराना न्यायरत्नजीका उत्सूत्र भाषणरूप होनेसे प्रमाणिक नहीं हो सकता है।

और न्यायरत्नजी अधिक मासको कालपुरुषकी चूलिका कहकर चोटी अर्थात् घासकी तरह केशोंकी चोटीवत् लिखते हैं सो भी शास्त्रोंके विरुद्ध है क्योंकि श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने चूलिका याने शिखरकी ओपना गिनती करने योग्य दिवी है। जैसे। लक्ष योजनका सुमेरु

[२२१]

पर्वतके चालीश योजनका शिखरकी तथा अन्य भी हरेक पर्वतोंके शिखरों की और देव मन्दिरोंके शिखरोंकी शास्त्रकारोंने क्षेत्रचूलाकी ओपमा दी है नतु केशांकी चोटीवत् घामकी, और आपञ्चपरमेष्ठि मन्त्रके शिखररूप चार पदोंकी तथा श्रीआचार्यजीके सूत्रके शिखररूप दो अध्ययनकी और श्रीदशवैकालिकजी सूत्रके शिखर-रूप दो अध्ययनकी शास्त्रकारोंने भावचूलाकी ओपमा दी है जिसकी अवश्यही गिनती करनेमें आती हैं। तैसेही। चन्द्रसंवत्सररूप कालपुरुषके शिखररूप अधिक मासकी कालचूलाकी उत्तम ओपमा गिनती करने योग शास्त्रकारोंने दी है और अधिक मास होनेसें तेरह मासोंका अभिवर्द्धितसंवत्सर श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने कहा है नो अनेक शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है और खास करके अधिक मासको कालचूलाकी उत्तम ओपमा लिखने वाले श्रीजिनदास महत्तराचार्यजी पूर्वधर महाराज भी निश्चय करके गिनतीमें लेनेका लिखते हैं, और भी दूसरा सुनो कि—जैसे। श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके निज निज अंगुलियोंके प्रमाणसें मस्तक तक शरीरकी लंबाई १०८ अंगुलीकी होती है और मस्तक पर बारह अंगुलीकी उष्णिका (शिखा) की शिखररूप चूलाकी ओपमा है जिसकी सामिल लेकर १२० अंगुलीका श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके शरीरके गिनतीका प्रमाण सभी शास्त्रकारोंने कहा है। तैसेही। संवत्सररूप कालपुरुष का निज स्वभाविक प्रमाण ३५४ दिन, ११ घटीका और ३६ पलका है तथा संवत्सररूप कालपुरुषका शिखररूप अधिक मासको कालचूलाकी ओपमा है जिसका प्रमाण २८ दिन

[२२२]

३० घटीका और ५८ पलका है जिसको सामिल लेकर ३८३ दिन ४२ घटीका और ३४ पल प्रमाणे तेरह भासोंकी गिनती का हिसाबसें अभिवर्द्धित संवत्सर सभी शास्त्रकारोंने और खास श्रीतपगच्छके पूर्वाचार्योंने भी कहा है । और अधिक मासको कालचूला कहनेसें भी गिनतीमें अवश्यही लेना शास्त्रकारोंने कहा है उस सम्बन्धी इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ४८ से ६५ तक तथा और भी अनेक जगह छपगया है सो पढ़नेसें सर्व निःसन्देह हो जावेगा इसलिये न्यायरत्नजी अधिक मासको कालपुरुषकी छोटी लिखकरके गिनतीमें नहीं लेनेका ठहराते हैं सो श्रुता अपनी कल्पनासें भोले जीवोंकी शास्त्रानुसार सत्य बात परसें श्रद्धाभङ्ग कारक उत्सूत्र भाषण करते हैं सो उपरके लेखसें पाठकवर्ग विशेष अपनी बुद्धिसें भी विचार सकते हैं ;—

और श्रीकल्पसूत्रकी टीकाका प्रमाण न्यायरत्नजीनें दिखाया सो तो (अंधेबुधे थोथेधाम, जैसेगुरु तैसेयजमान) की तरह करके अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध उत्सूत्र भाषणरूप अन्ध परम्पराका मिथ्यात्वको पुष्ट किया है क्योंकि प्रथम श्रीधर्मसागरजीनें श्रीकल्पकिरणावलीमें श्रीअमन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्धार्थमें अपनी कल्पनासें जैन शास्त्रोंके अतीव गम्भीरार्थके तात्पर्योंको समझे बिना उत्सूत्र भाषणरूप जैसे तैसे लिखा है उसीकोदेखके दूसरे श्रीजय-विजयजीनें श्रीकल्पदीपिकामें तथा तीसरे श्रीविजयविजयजीनें श्रीसुखबोधिकामें भी उसी तरहके उत्सूत्र भाषणके गप्पोंको लिखे हैं और उसीका शरणा लेकरके चौथे न्यायांशो निधिजीनें भी जैन सिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकमें अपनी

[२२३]

चातुराईके साथ उत्सूत्र भाषणकी बाते प्रगट किधी है और ऐसेही गाइरीया प्रवाहवत् उसी बातोंको वर्त्तमानमें न्यायरत्नजी जैसे भी लिखते हैं परन्तु तत्त्वार्थको जरा भी नहीं विचारते हैं क्योंकि श्रीविनयविजयजी वगैरह चारो महाशयोंने कालचूलाके नामसे अधिक मासकों गिनतीमें नहीं लेनेका शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें ठहराया है जिसकी समीक्षा अच्छी तरहसे इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ५८से यावत् पृष्ठ २१६ तक उपरमें छप चुकी है सो पढ़नेसे सर्व निर्णय हो जावेगा तथापि श्रीविनयविजयजी कृत श्रीसुख-बोधिकाके अनुसार अपनी अपनी चातुराईसे विशेष कुयुक्तियोंके विकल्प उठा करके भोले जीवोंको भ्रममें गेरनेके लिये न्यायरत्नजी वगैरहनें कृथा परिश्रम किया है उन कुयुक्तियोंका समाधान युक्तिपूर्वक लिखना यहां सक्त है जिसमें न्यायरत्नजीने श्रीकल्पसूत्रकी टीकाका पाठ श्री-विनयविजयजी कृत दिखाया सो उत्सूत्र भाषणरूप होनेसे मैंने उसीकी समीक्षा तो पहिलेही कर दिखाई है इसलिये श्रीविनयविजयजीकृत उत्सूत्र भाषण रूप उपरके पाठको न्यायरत्नजीको लिखना भी उचित नहीं है और पक्ष-प्राप्तियोंके सिवाय आत्मार्थी पुरुषोंको मान्य करना भी उचित नहीं है याने सर्वथा त्यागने योग्य है सो उपरके लेखसे पाठकअर्थ भी अच्छी तरहसे विचार लेना ;—

और आगे फिर भी अधिक मासको गिनतीमें नहीं लेनेके लिये न्यायरत्नजीने अपनी चातुराईको प्रगट करके लिख दिखाई है कि (अगर लिया जाता हो तो पर्युषणा पर्व दूसरे वर्ष श्रावणमें और इस तरह अधिक महिनोंके

[२२४]

हिसाबसें हमेशां उक्त पर्व किरते हुवे चले जायगे जैसे मुस-
ल्मानोंके ताजिये हर अधिकमासमें बदलते रहते हैं)
न्यायरत्नजीका इस लेखपर मेरेको बड़ाही आश्चर्य सहित
खेद उत्पन्न होता है और न्यायरत्नजीकी बड़ीही अज्ञता
प्रगट दिखता है सोहा दिखाना हुं—जिसमें प्रथम तो
आश्चर्य उत्पन्न होनेका तो यह कारण है कि स्याद्वाद,
अनेकात, अविमवादी, अनन्तगुणी, परमोत्तम ऐसे श्रीसर्वज्ञ
भगवान् श्रीजिनेन्द्र महाराजोंके कथन करे हुवे अत्युत्तम
अहिंसा धर्मके वृद्धिकारक ऊर्ध्वगतिका रस्तेरूप धर्मे-
ध्यान, दानपुण्य परोपकारादि उत्तमोत्तम शुभकार्योंका
निधि शान्त चित्तको करने वाले और पापपङ्क (कर्मरूप
मेल) को नष्टकरने वाले श्रीपर्युषणा पर्वके साथ उपरोक्त
गुणोंसे प्रतिकूल मिथ्यात्वों और वितवितंबक पाखंडरूप
अधर्मकी वृद्धिकारक तथा ७ (६) कायके जीवोंका विनाश
कारक नरकादि अधोग्तिका रस्तेरूप आर्त्तौद्रादि युक्त
ताजियांका दृष्टान्त न्यायरत्नजीने दिखाया इसलिये मेरेको
आश्चर्य उत्पन्न हुवा कि जो न्यायरत्नजीके अन्तःकरणमें
सम्यक्त्व होता तो चिन्तामणिरत्नरूप श्रीपर्युषणापर्वके
साथ काचका टुकड़ारूप ताजियांका दृष्टान्त लिखके अपनी
कल्पित बातकी जमानेके लिये अधिक मासका निषेध
कदापि नहीं दिखाते इस बातको पाठकवर्ग भी विचार
लेना ;—

• और बड़ा खेद उत्पन्न होनेका तो कारण यह है कि
श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने और
खास न्यायरत्नजीके पूज्य अपने श्रीतपगच्छके ही पूर्वा-

[२२५]

चार्योंने अनेक शास्त्रोंमें अधिकमासको सर्वथा करके परि-
पूर्ण रीतिसें विस्तारपूर्वक सुलासाके साथ निश्चय करके
अवश्यही गिनतीमें लिया है जिसमें श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति १ तथा
वृत्ति २ श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति ३ तथा वृत्ति ४ श्रीज्योतिषकरण्ड
पयन्ना ५ तथा वृत्ति ६ श्रीप्रवचनसारोद्धार ७ तथा वृत्ति ८
श्रीसप्तवायाङ्गजीमूत्र ९ तथा वृत्ति १० श्रीजम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति ११
तथा तीनकी दो (२) वृत्ति १३ इत्यादि अनेक शास्त्रोंके
पाठ न्यायरत्नजीनें देखे हैं जिसमें अधिक मासको गिनतीमें
लिया है जिसमें भी श्रीज्योतिषकरण्डपयन्नाकी वृत्ति तो
न्यायरत्नजीनें एकवार नहीं किन्तु अनेकवार देखी है उसी
में तो विशेष करके समयादि कालकी व्याख्या कियी है कि
असंख्याता समय जानेसें एक आवलिका, १, ६७, ७७, २१६,
आवलिका जानेसें एकमुहूर्त्त होता है त्रीश मुहूर्त्तसें एक
अहोरात्रि रूप दिवस होता है ऐसे पन्दरह दिवस जानेसें
एकपक्ष होता है दो पक्षसें एकमास होता है दो माससें
एक ऋतु होता है छ ऋतुओंसें एक सम्बत्सर होता है इसी
ही तरहसें नक्षत्र सम्बत्सरके, चन्द्रसम्बत्सरके, ऋतु सम्बत्सर
के, सूर्यसम्बत्सरके, और अभिवर्द्धितसम्बत्सरके, मुहूर्त्तोंका
जुदा जुदा हिसाब विस्तारपूर्वक दिखाकर पांच सम्बत्सरोंका
एक युगके ५४९०० मुहूर्त्त दिखाये हैं जिसमें एक युगके पांच
सम्बत्सरोंमें दो अधिक मासके भी मुहूर्त्तोंकी गिनती साथमें
लेनेसेंही ५४९०० मुहूर्त्तका हिसाब मिलता है अन्यथा नहीं
इस तरहसें कालकी व्याख्या समय, आवलिका, मुहूर्त्त,
दिन, पक्ष, मास, वर्ष, युग, पूर्वाङ्ग, पूर्व, पत्योपम, सागरो-
पम और उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी कालसें अनन्तकालकी

[२२६]

ध्याख्याकी गिनतीमें अधिक मासको प्रमाण किया है और अधिक मासकी उत्पत्तिका कारण कार्योदि गिणित पूर्वक श्रीमलयगिरिजी महाराजने श्रीज्योतिषकरण्डपयन्त्राकी वृत्तिमें विस्तार किया है इस ग्रन्थको न्यायरत्नजीने अनेक बार देखा है और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि सर्वज्ञ महाराजोंने अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण किया है सो अनेक शास्त्रोंके पाठ प्रसिद्ध है और खास न्यायरत्नजीने मानवधर्मसंहिता पुस्तकके पृष्ठ २४ की पंक्ति २० वी से २२॥ पंक्ति तक ऐसे लिखा है कि (उत्सूत्र भाषण समान कोई बड़ा पाप नहीं सब क्रियाधरी रहेगी उक्त पाप दुर्गतिको ले जायगा जमालिजीने गौतमगणधर जैसी क्रिया किष्ट लेकिन देख लो किस गतिको जाना पड़ा) और पृष्ठ ५८ की पंक्ति १४-१५ में फिर भी लिखते हैं कि (सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्रके पाठको उत्पापन करेगा उसका निर्वाण होना मुश्किल है) इस लेखपरसे सज्जन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि—श्रीअनन्ततीर्थङ्कर गणधरादि सर्वज्ञ महाराजोंने अधिकमास को गिनतीमें प्रमाण किया हुआ है सो अनेक शास्त्रोंके पाठ प्रसिद्ध है तथापि पक्षपातके जोरसे न्यायरत्नजीने अनन्ततीर्थङ्कर गणधरादि सर्वज्ञ भगवानोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषण करनेके लिये सर्वज्ञ प्रणीत अनेक शास्त्रोंके पाठोंको उत्पापन करके उत्सूत्र भाषणका बड़ा भारी पाप दुर्गतिको देनेवाला तथा संसारमें हलानेवाला अपना लिखा हुआ उपरका लेखको श्री सर्वथा भूल गये इसलिये मेरेको बड़ा खेद उत्पन्न हुआ कि न्यायरत्नजी जानते हुए भी उत्सूत्र भाषणरूप

[२२७]

संसारकी खाड़में गिरे और अपनी आत्माका बचाव तैयार करना दूर रहा परन्तु भोले जीवोंकी भी उसी रस्ते पहुँचाये सो उपरके लेखसे पाठकवर्ग विशेष विचार लेना ;—

और अधिक मासको गिनतीमें निषेध करनेके लिये न्यायरत्नजीनें सुसत्त्वानोंके साजिये हरेक अधिक मासके हिसाबसे फिरनेका दृष्टान्त दिखाके सर्वज्ञकथित पर्युषणा पर्व भी अधिक मासके हिसाबसे फिरते रहनेका न्यायरत्न जीनें लिखा सो बड़ी अज्ञता प्रगट किबी है जिसका कारण यह है कि श्रीसर्वज्ञ भगवानोंनें मासवृद्धि हो अथवा न हो तो भी खास करके विशेष जीवदयादिककेही कारणे वर्षा ऋतुमें आषाढ़ बीमासीसें उपरके लिखे दिनोंके गिनतीकी मर्यादा [प्रमाण] से निश्चय करके प्रावण अथवा भाद्रपद मेंही—कारण, कार्य, ऋतु, मास, तिथिका नियमसेंही श्रीपर्युषणापर्वका आराधन करना कहा है तथापि न्यायरत्नजी अधिक मासके हिसाबसें पर्युषणापर्व फिरते हुए चले जानेका लिखकर जैन शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें आषाढ़, ज्यैष्ठ, वैशाखादिमें पर्युषणा होनेका दिखाते हैं इसलिये न्यायरत्नजीकी अज्ञतामें कुछ कम हो तो पाठकवर्ग तत्त्वार्थकी बुद्धिसें स्वयं विचार लेना ;—

तथा और भी न्यायरत्नजीके विद्वत्ताकी चार्तुराईका नमुना सुनिये—कि श्रीजैन शास्त्रोंमें पांच प्रकारके संवत्सरों से एक युगका प्रमाण कहा है जिसमें सूर्यकी गतिका हिसाबसें सूर्यसंवत्सरकी अपेक्षासें जैनमें मासवृद्धिका अभाव है परन्तु चन्द्रकी गतिका हिसाबसें चन्द्रसंवत्सरकी अपेक्षासें एक युगकी पूरतीकेही लिये खास दो अधिकमास

[२२८]

होते हैं जब अधिकमास जिस संवत्सरमें होता है तब उस संवत्सरमें तेरह मास होनेसें संवत्सरका नाम भी अति-वर्द्धित कहा जाता है—अधिक मासको गिनतीमें लिया जिससे संवत्सरका भी प्रमाण बढ़ गया और युगकी पूरतीका भी बरोबर हिसाब मिल गया—अधिक मास अनादिकाल हुए होता रहता है तथा मासवृद्धि हो अथवा न हो तो भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने श्रीपर्युषणापर्वका आराधन वर्षा ऋतुमेंही करना कहा है यह बात आत्मार्थी विवेकी विद्वानोंसें छुपी हुई नहीं है याने प्रसिद्ध है इसलिये श्रीपर्युषणापर्व अधिक मास हो तो भी वर्षा ऋतुके सिवाय और ऋतुओंमें कदापि नहीं हो सकते हैं और मुसलमान लोग तो सिर्फ एक चन्द्र दर्शनकी अपेक्षासें २९।३० दिनका महिना मान्यकरके बारह महिनोके ३५४ दिनका एक वर्ष मानते हैं और अधिक मासका भिन्न व्यवहारको नहीं मानते हैं याने चन्द्रके हिसाबसें बारह बारह महिनोका एक एक वर्ष मानते चले जाते हैं परन्तु अपने माने मास तारीख नियत ताजियें भी करते रहते हैं और जैन तथा दूसरे हिन्दू अधिक मासको मान्य करके तेरह मासोंका वर्ष मानते हैं तथा अपने माने मास, तिथि नियत पर्व भी करते हैं इसलिये जैन तथा दूसरे हिन्दूयांके तो ऋतु, मास, तिथि नियत पर्व अधिक मास होती भी फिरते हुए नहीं चले जाते हैं परन्तु मुसलमान लोग अधिक मासको नहीं मानते हुए अनुक्रमे सीधा हिसाबसें ही वर्तते हैं इसलिये लौकिकमें अधिक मास होनेसें मुसलमानोंके ताजिये अमुक ऋतुमें तथा अमुक लौकिक मासमें होते हैं यह

[२२९]

नियम नहीं रहता है याने हर अधिक मासके हिसाबसे पञ्चादानुपूर्वसे अर्थात् आषाढ़, ज्यैष्ठ, वैशाख, चैत्र, फाल्गुन, माघ, पौषादि हरेक मासोंमें होते हैं इसलिये मुसल्मानोंके ताजिये फिरनेका दृष्टान्त लिखके श्रीपर्युषणापर्व फिरनेका दिखाना सो पूरी अज्ञताका कारण है—इसलिये श्रीसर्वत्र कथित श्रीपर्युषणापर्व फिरनेका और अधिक मासको गिनतीमें निषेध करनेके संधन्धी मुसल्मानोंके ताजियांका दृष्टान्त उत्सूत्र भाषणरूप होनेसे न्यायरत्नजीको लिखना उचित नहीं है इस बातको सज्जन पुरुष उपरके लेखसे स्वयं विचार सकते हैं ;—

और आगे फिर भी न्यायरत्नजीने अपनी कल्पनासे लिखा है कि (दूसरा यह भी दूषण अयगा कि वर्षभरमें जो तीन चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किये जाते हैं उसमें पञ्चमासिक प्रतिक्रमणका पाठ खोलना पड़ेगा शीतकालमें और उष्णकालमें तो अधिक महिना गिनतीमें नहीं लाना और चैमासेमें गिनतीमें लाकर श्रावणमें पर्युषणा करना किस न्याय की बात हुई) इस लेखसे न्यायरत्नजीने जैनशास्त्रों का तथा अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करने वालोंका तात्पर्यको समझे बिना दूसरा दूषण लगाया सो मिथ्या-भाषण करके बड़ी भूल करी है क्योंकि जिस चैमासेमें अधिक मास होता है उसीको अभिवर्द्धित चैमासा कहा जाता है संवत्सरवत् अर्थात् जिस संवत्सरमें अधिक मास होता है उसीको अभिवर्द्धित संवत्सर कहते हैं इसी ही न्यायानुसार अधिक मास होवे तब उस चैमासेमें पञ्चमास तथा संवत्सरमें तेरह मासका पाठ सर्वत्र प्रतिक्रमणमें अवश्य

[२३०]

ही बोला जाता है इसका विशेष निर्णय सातमें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षामें करनेमें आवेगा ;—

और शीतकाल हो तथा उष्णकाल ही अथवा वर्षा-काल हो परन्तु लौकिक पञ्चाङ्गमें जो अधिकमास होगा उसी कालमें अवश्य ही गिनतीमें करके प्रमाण करना यह तो स्वयं सिद्ध न्याययुक्ति की बात है जैसे वर्षाकालमें श्रावण भाद्रपदादि मास बढ़नेसे गिनतीमें लिये जाते हैं तैसे ही शीतकालमें तथा उष्णकालमें भी जो मास बढ़े सो ही गिना जाता है इस लिये न्यायरत्नजीनें उपरका लेखमें शीत-कालमें और उष्णकालमें अधिक मासको गिनतीमें नहीं लानेका लिखती बहुत विवेक बुद्धिसे विचार किया होता तो मिथ्या भाषणका दूषण नहीं लगता सो पाठकवर्ग विचार लेना,—

और इसके अगाड़ी फिर भी न्यायरत्नजीनें अपनी विद्वत्ताकी चातुराई को प्रगट करनेके लिये लिखा है कि [अगर कहा जाय कि पचाशदिनकी गिनती लिङ्गजाती है तो पिछले १० दिनकी जगह १०० दिन होजायेगे उधर दोष आयगा संवत्सरीके बाद १० दिन शेष रखना यह बात सम-वायाङ्ग सूत्रमें लिखी हैं उसका पाठ—वासाणं सवीसइराइ मासे वइक्कन्ते सत्तरिराइंदिण्हिं सेसेहिं,—इस लिये वही प्रमाणवाक्य रहेगा कि अधिक मास कालपुरुषकी चोटी होनेसे गिनतीमें नहीं लेना] इस लेखपर मेरेको बड़े अफ-सोसके साथ लिखना पड़ता है कि न्यायरत्नजीकों विद्वत्ताकी चातुराई किस जगहमें चली गई होगी सो अपने सामके विद्यासागरादि विशेषणकी अनुचितरूप कार्य्यकरके उपरके

[२३१]

लेखमें दो आषण होनेसे भाद्रपद तक ८० दिन होते हैं जिसके ५० दिन खनालिये और दो आश्विन होनेसे कार्तिक तक १०० दिन होते हैं जिसके ३० दिन अपनी कल्पमासे खना लिये परन्तु श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके कथित सूत्र सिद्धान्तोंके पाठोंका उत्थापनरूप सिध्दात्त्वका कुछ भी भय नहीं किया क्योंकि श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने अनेक सूत्र सिद्धान्तोंमें समयदि सूक्ष्मकालकी गिनतीसे एकयुगके दोनुं ही अधिक मासकी गिनतीमें लिये है इसका विस्तार उपरमें अनेक जगह छप गया है और षट्द्रव्यरूप वस्तुओंमें एककाल द्रव्यरूप वस्तु भी शाश्वती है जिसके अनन्ते कालवक्र व्यतीत होगय है और आगे भी अनन्ते कालवक्र व्यतीत होवेंगे जिसमें चन्द्र, सूर्यके, शाश्वते विमान होनेसे चन्द्रके गतिका हिसाबसे अनन्ते अधिक मास भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके सामने व्यतीत होगये और आगे भी होवेंगे इस लिये सम्यक्त्वधारी मोक्षान्ति-लाभी आत्मार्षी प्राणी होगा सो तो कालद्रव्यकी गिनतीके दो अधिक मास तो क्या परन्तु एक समय मात्र भी गिनती में कदापि निषेध नहीं कर सकता है तथापि म्यायरत्रजी जैनश्वेताम्बर धर्मापदेष्टा तथा विद्यासागरका विशेषण धारण करते भी श्रीसर्वज्ञ कथित सिद्धान्तोंमें कालद्रव्य रूप शाश्वती वस्तुका एक समयमात्र भी निषेध नहीं हो सके जिसके बदले एक दस दो मासकी गिनती निषेध करके श्रीजैनश्वेताम्बरमें उत्सूत्र भाषणरूप सिध्दात्त्वके उपदेष्टा होनेका कुछ भी भय नहीं करते है, हा अतीव खेदः,—इस लेखका तात्पर्य यह है कि जैन शास्त्रानुसार

[२३२]

एक समय मात्र भी जो काल व्यतीत हो जावे उसकी अवश्यही गिनती करनेमें आती है तो फिर दो अधिक मासकी गिनतीमें लेने इसमें तो क्याही कहना याने दो अधिक मासकी निश्चय करके अवश्यही गिनती करना सोही सम्यक्त्व धारियोंकों उचित है इसलिये दो अधिक मासकी गिनती निषेध करके ८० दिनके ५० दिन और १०० दिनके १० दिन न्यायरत्नजीनें उत्सूत्र भाषणरूप अपनी कल्पनासे बनाये सो कदापि नहीं बन सकते है इसलिये दो आवण होनेसे अनेक शास्त्रानुसार पचास दिने दूसरे आवणमें पर्युषणा करना और पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन भी अनेक शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक रहते है जिसकी मान्य करने में कोई दूषण नहीं हैं तथापि न्यायरत्नजीनें दूषण लगाया सो निष्पत्ति है इस उपरके लेखका विशेष विस्तार तीनों महाशयोंके नामकी समीक्षामें इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ११७ से पृष्ठ १२८ तक तथा चौथे महाशयके नामकी समीक्षामें भी पृष्ठ १७४ से पृष्ठ १८५ तक भी अच्छी तरहसे सूत्रकार श्री गणधर महाराजके तथा वृत्तिकार महाराजके अभिप्राय सहित युक्तिपूर्वक छप चुका है सो पढ़नेसे सर्व निर्णय हो जावेगा ;—

तथा थोड़ासा और भी सुन लीजिये कि, श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें श्रीगणधर महाराजनें तथा वृत्तिकार महाराजनें अनेक जगह खुलासापूर्वक अधिक मासकी गिनतीमें प्रमाण किया है तथापि न्यायरत्नजी हो करके सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें अधिक मासकी गिनती निषेध करके मूलसूत्रके पाठोंको तथा वृत्तिके पाठोंको

[२३३]

उत्पापन करते हैं और चार मासके १२० दिनका वर्षाकाल सम्बन्धी उपरका पाठ श्रीगणधर महाराजने कहा है तथापि इसका तात्पर्य समझे बिना दो श्रावण होनेसे पांच मासके १५० दिनका वर्षाकालमें उपरका पाठ सूत्रकार तथा वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें न्यायरत्नजी लिखते हैं इसलिये न्यायरत्नजीकी श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठोंका तात्पर्य समझमें नहीं आया मालुम होता है तो फिर न्यायरत्न का और विद्यासागरका जो विशेषण श्रीशान्तिविजयजी ने धारण किया है सो कैसे सार्थक हो सकेगा सो पाठक वर्ग सज्जन पुरुष अपनी बुद्धिसे स्वयं विचार लेना ;—

और न्यायरत्नजी कालपुरुषकी चोटीकी भ्रान्तिसे अधिक मासको गिनतीमें निषेध करते हैं सो भी जैन शास्त्रोंके तात्पर्यको समझे बिना उत्सूत्र भाषण करते हैं इसका निर्णय इन्हीं पुस्तकके पृष्ठ ४८ से ६५ तक तथा चारों महाशयोंके नामकी समीक्षामें और खास न्यायरत्नजीकेही नामकी समीक्षामें उपरमें पृष्ठ २२० । २२१ । २२२ तक अच्छी तरहसे खुलासाके साथ छप गया है सो पढ़नेसे सर्व निर्णय हो जावेगा कि शिखररूप चूलाकी उत्तम ओपमा गिनती करने योग्य दिनी है इसलिये चोटी कहके निषेध करनेवाले मिथ्यावादी हैं सो उपरोक्त लेख से पाठकवर्ग स्वयं विचार लेना ;—

और इसके अगाड़ी फिर भी न्यायरत्नजीने लिखा है कि (अधिक महिनेकी गिनतीमें लेनेसे तीसरा यह भी दोष आयगा कि चौदस तीर्थङ्करोंके कल्याणिक जो जिस जिस महिनेकी तिथिमें आते हैं गिनतीमें वे भी बढ़ आयंगे

[२३४]

फिर क्या तीर्थङ्करोंके कल्याणिक १२० से भी ज्यादा गिनना होगा कभी नहीं इस हेतुते भी अधिक मास नहीं गिना जाता) इस लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूँ जिसमें प्रथमतो उपरके लेखमें न्यायरत्नजीनें अधिकमासको गिनतीमें लेने वालोंको तीसरा दूषण लगाया इस पर तो मेरे को इतनाही कहना उचित है कि न्यायरत्नजीनें श्री अनन्ततीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातना करके खूब निष्पत्त्य बढ़ाया है क्योंकि श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराज अधिक मासको गिनतीमें मान्य करते हैं सो अनेक सिद्धान्तोंमें प्रसिद्ध है और न्यायरत्नजी अधिक मासको गिनतीमें मान्य करने वालोंको दूषण लगाते हैं जिन्हो श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी प्रत्यक्ष आशातना होती है इसलिये जो न्यायरत्नजीकी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातनासे अनन्त संसार वृद्धिका भय लगता हो तो अधिक मासको गिनतीमें लेने वालोंको दूषण लगाया जिसकी आलोचना लेकर अपनी आत्माको दुर्गतिसे बचाना चाहिये आगे न्यायरत्नजीकी जैसी इच्छा मेरा तो धर्मबन्धुकी प्रीतिसे लिखना उचित है सो लिख दिखाया है और अधिक मासको श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंनें गिनतीमें मान्य किया है उसीके अनुसार कालानुसार युक्तिपूर्वक वर्त्तमानमें भी अधिक मासको आत्मार्थी पुरुष मान्य करते हैं जिन्होंको एक भी दूषण नहीं लग सकता है परन्तु कल्पित दूषणोंको लगाने वालों को तो उत्तमत्र भाषणरूप अनेक दूषणोंके अधिकारी होना पड़ता है सो आत्मार्थी विवेकी सज्जन पुरुष इन्ही पुस्तकके पढ़नेसे स्वयं विचार सकते हैं।

[२३५]

और अनन्त काल तक हुए अधिक मास भी होता रहता है तैसेही अनन्त चौबीशी होगई जिसमें श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके कल्याणक भी होते रहते हैं परन्तु किसीने भी कल्याणक बढ़ जानेके भयसे अधिक मासकी गिनती निषेध नहीं करी है तथापि इस पञ्चमें कालके विद्यासागर न्याय-रत्नका विशेषण धरानेवाले श्रीशान्तिविजयजी इतने बड़े विद्वान् कहलाते भी जैन शास्त्रोंके गम्भीरार्थकी समझे बिना कल्याणक बढ़ जानेके भयसे अधिक मासकी गिनती निषेध करते हैं यह भी एक अलौकिक आश्चर्यकी बात है क्योंकि जैन उद्योतिषशास्त्रानुसार मासवृद्धिके कारणसे जब दो पीष अथवा दो आपाढ़ होते थे तब उस समय कोई भव्य जीवोंको श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके कल्याणककी तपश्चर्यादि करनेका इरादा होता था तब पहिले श्री-ज्ञानीजी महाराजकों पूछके पीछे करते थे जिसमें दो मासके कारणसे कोई भगवान्का प्रथम मासमें कल्याणक होया होवे उसी कल्याणकको प्रथम मासमें आराधन करते थे और कोई भगवान्का दूसरे मासमें कल्याणक होया होवे उसी कल्याणकको दूसरे मासमें आराधन करते थे जिससे जिन जिन भगवान् का जो जो कल्याणक मास वृद्धिके कारणसे प्रथम मासमें अथवा दूसरे मासमें होया होवे उसीको उसी मुख श्रीज्ञानीजी महाराजकी पूछके आराधन करते थे, पक्षवत्, अर्थात् अमुक भगवान् का अमुक कल्याणक अमुक मासके प्रथम पक्षमें होया होवे उसीको प्रथम पक्षमें आराधन करते थे और दूसरे पक्षमें होया होवे उसीको दूसरे पक्षमें आराधन करते थे उसी तरह

[२३६]

दो मासके कारणसें श्रीज्ञानीजी महाराजके कहने मुजब कल्याणक आराधन करनेमें आते थे और अधिक मासको गिनतीमें भी करनेमें आता था इसलिये अधिक मासकी गिनती करनेसें श्रीतीर्थङ्कर महाराजोंके कल्याणक गिनतीमें नही बढ़ सकते है और इस पञ्चमें कालमें भरत क्षेत्रमें श्रीज्ञानीजी महाराजका अभाव होनेसें और लौकिक पञ्चाङ्गमें हरेक मासोंकी वृद्धि होनेके कारणसें प्रथम मासका प्रथम कृष्णपक्ष और दूसरे मासका दूसरा शुक्लपक्षमें मास तिथि नियत कल्याणकादि धर्मकार्य तथा लौकिक और लोकोत्तर पर्व करनेमें आते है जिसका युक्तिपूर्वक दृष्टान्त सहित सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षामें लिखनेमें आवेगा सो पढ़नेसें विशेष निर्णय हो जावेगा इस लिये न्यायरत्नजी कल्याणक बढ़ जानेके भयसें अधिक मासकी गिनती निषेध करते है सो जैन शास्त्रोंके विरुद्ध उत्सूत्र-भाषण करते है सो उपरके लेखसें पाठकवर्ग भी विशेष विचार सकते है ।

और इसके अगाड़ी फिर भी न्यायरत्नजीनें लिखा है कि (अधिक महिनोके कारणसें कभी दो भाद्रवे हो तो दूसरे भाद्रवेमें पर्युषणा करना चाहिये जैसे दो आषाढ़ महिने होते है तब भी दूसरे आषाढ़में चातुर्मासिक कृत्य किये जाते है वैसे पर्युषणा भी दूसरे भाद्रवेमें करना न्याययुक्त है)

उपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हुं कि हे सज्जन पुरुषों उपरके लेखमें न्यायरत्नजीनें मासवृद्धि के कारणसें दो आषाढ़ और दो भाद्रपद लिखे जिससें अधिक मास गिनतीमें सिद्ध होगया फिर अधिक मासको

[२३७]

गिनतीमें लेनेवालोंको दूषण लगाना यह तो न्यायरत्नजीका हठवादसें प्रत्यक्ष अन्यायकारक है सो पाठकवर्ग भी विचार सकते हैं ।

और भी दूसरा सुनो—खास न्यायरत्नजीमें संवत् १८६६ की सालका बयान याने शुभाशुभका फल संक्षिप्तसें जैनपत्र के साथमें जूदा हेण्डबिलमें प्रसिद्ध किया है उसीमें [इस वर्षमें आवण महिमा दो है ऐसा लिखा है तथा अधिक मास के कारणसें दोनुंही आवणकी गिनती सहित तेरह मासों के प्रमाणसें तेरह अमावस्या और तेरह पूर्णिमाकी सध घड़ियोंकी गिनती दिखाइ है और प्रथम आवण वदी ११ तथा १२ के दिन और दूसरे आवण वदी १० के दिन अच्छा योग्य बताया है और प्रथम आवण शुदीमें सप्त नाड़ीचक्रमें सूर्य और गुरु जलनाड़ी पर आनेका लिखा है और प्रथम आवण शुदी पञ्चमीके दिन सिंह राशि पर शुक्र आनेका लिखा है फिर दूसरे आवण शुक्लपक्षमें बुधका उदय होगा वहां दुनियाके लोग सुखी रहनेका लिखा है फिर प्रथम आवण वदी ४ बुधवार तक दुर्नति नामा संवत्सर रहनेका लिखा है बाद याने प्रथम आवण वदी पञ्चमी गुरुवारका दुन्दुभि नामका संवत्सर लगनेका लिखा है फिर दूसरे आवणमें मीन राशि पर शनि और मङ्गल वक्र होनेका लिखा है] इस तरहसें खुलासाके साथ न्यायरत्नजी अपने स्वहस्ते दोनुं आवण महिनोंको बरोबर लिखते हैं गिनतीमें लेते हैं उपाके प्रसिद्ध करते हैं (और दोनुं आवणके कारणसें तेरह मासोंके ३८३ दिनका वर्ष दुनियामें प्रसिद्ध है) इस पर निरुपपत्ताती आत्मारथी सज़्जन पुरुषोंको न्याय दृष्टिसें

[२३८]

विचार करना चाहिये कि न्यायरत्नजी आप स्वयं दोनूँ आश्रय मासकी हकीकत जूरी जूरी लिखते हैं फिर गिनतीमें निषेध भी करते हैं यह तो ऐसे हुवा कि ममजननी वन्ध्या अथवा मम वदने जिह्वा नास्ति, इस तरहसे बाललीलावत् न्यायरत्नजी विद्याके सागर हो करके भी कर दिया हाय अफसोस,—

अब इस जगह मेरेको लाचार होकर लिखना पड़ता है कि न्यायरत्नजीकी विद्वत्ताकी चातुराई किस देशके कोणेमें चली गई होगी सो पूर्वापरका विचार विवेक खुद्विसे किये बिना श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करके तेरह मासोंका अभिवर्द्धित संवत्सर अनेक सिद्धान्तोंमें कहा है जिसके उत्पादनका भय न करते उलटा अधिक मासको गिनती करने वालोंको माया-वृत्तिसे मिथ्या दूषण लगादिये और फिर आपभी अधिक मासको प्रमाण करके लोगोमें उपोतिषशास्त्रके विद्वान् भी प्रसिद्ध होते हैं परन्तु अधिक मासको गिनतीमें करनेवालोंको मिथ्या दूषण लगानेका और पूर्वापर विरोधी विसंवादी रूप मिथ्या वाक्यके फल विपाकका जरा भी भय नहीं करते हैं इसलिये जैन शास्त्रानुसार तो दूसरोंको मिथ्या दूषण लगानेके और विसंवादी भाषणके कर्मबन्धकी आलोचनाके लिये बिना अथवा भाषान्तरमें भोगे बिना झूटना बहुत मुश्किल है सो जैन शास्त्रोंका तात्पर्यके जानकार विवेकी पुरुष स्वयं विचार सकते हैं और न्यायरत्नजीको भी उत्सूत्र भाषणका भय हो तो न्याय दृष्टिसे तत्त्वार्थको अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये ;—

[२३९]

तथा और भी न्यायरत्नजीको थोड़ासा मेरा यही कहना है कि अधिकमासको आप कालपुरुषकी चोटी जान कर गिनतीमें मही लेनेका ठहराते हो तब तो दो आषाढ़, दो आश्विन दो भादवेका लिखना आपका सृष्टा हो जावेगा और दो आषाढ़ादि मासोंको लिखते हो तथा उसी मुजब बतते हो तब तो कालपुरुषकी चोटी कहके अधिकमासको गिनतीमें निषेध करते हो सो आपका सृष्टा है और दो आषाढ़, दो आश्विन, दो भादवे लिखना सब धर्म और कर्मका व्यवहार भी दोनुं मासका करना फिर गिनतीमें नहीं लेना यह तो कभी नहीं हो सकता है इसलिये दोनुं मासका धर्म और कर्मका व्यवहारको मान्य करके दोनुं मासको गिनतीमें लेना सो ही न्यायपूर्वक युक्तिकी बात है तथापि निषेध करना धर्मशास्त्रोंके और दुनियाके व्यवहारसे भी विरुद्ध है इस लिये इसका निध्या दुष्कृत ही देना आपको उचित है नहीं तो पूर्वापर विरोधी विसंवादी वाक्यका जो विपाक श्रीधर्मरत्नप्रकरणकी सृष्टिमें कहा है सो पाठ इन्ही पुस्तकके पृष्ठ ८६ । ८७ । ८८ में छप गया है उसीके अधिकारी होना पड़ेगा सो आप विद्वान् ही तो विचार लेना ;—

और दो आषाढ़ होनेसे दूसरे आषाढ़में चौमासी कृत्य किये जाते है जिसका मतलब न्यायरत्नजीके समझमें नहीं आया है सो इसका निर्णय सातमें महाशय श्रीधर्मविजयजी के नामकी समीक्षामें करनेमें आवेगा और दो भादवें होनेसे दूसरे भादवेंमें पर्युषणापर्व करना न्याय युक्त न्यायरत्नजी ठहराते है परन्तु शास्त्रसम्मत न्याय युक्त नहीं है क्योंकि

[२४०]

शास्त्रोंमें आषाढ़ चौमासीसें ५० दिने अवश्यही पर्युषणा करना कहा है और दो भादवें होनेसें दूसरे भादवेमें पर्युषणा करनेसें ८० दिन होते हैं जिससें दूसरे भादवेमें ८० दिने पर्युषणा करना और ठहराना शास्त्रोंके और युक्तिके विरुद्ध है इसलिये प्रथम भादवेमें ही ५० दिने पर्युषणा करना शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक न्याय सम्मत है इसका विशेष निर्णय तीनों महाशयोंके नामकी समीक्षामें इन्हीं पुस्तकके पृष्ठ १४० । १४१ । १४२ की आदि तक अच्छी तरहसें छप गया है उसीकी पढ़नेसें सर्व निर्णय हो जावेगा ।

और फिर भी न्यायरत्नजीनें अपनी बनाई मानवधर्म संहिता पुस्तकके पृष्ठ ८०० की पंक्ति ४ से १० तक तिथियाँ की हानी तथा वृद्धिके सम्बन्धमें और पृष्ठ ८०१ की पंक्ति २२॥ से पृष्ठ ८०२ पंक्ति १० तक पर्युषणामें तिथियाँकी हानी तथा वृद्धिके सम्बन्धमें शास्त्रोंके प्रमाण बिना अपनी मति कल्पनासें उत्सूत्र भाषणरूप लिखा है जिसकी समीक्षा आगे तिथि निर्णयका अधिकार सातवें महाशय श्रीधर्मविजयजीके नामकी समीक्षामें करनेमें आवेगा वहां अच्छी तरहसें न्यायरत्नजीकी कल्पनाका (और न्यायाम्भोनिधिजीनें जैन सिद्धान्त समाचारीकी पुस्तकमें जो तिथियाँकी हानी तथा वृद्धि सम्बन्धी उत्सूत्र भाषण किया है उसीका भी) निर्णय साथ साथमेंही करनेमें आवेगा सो पढ़नेसें तिथियाँकी हानी तथा वृद्धि होनेसें धर्मकार्योंमें किसी रीतिसें वर्तना चाहिये जिसका अच्छी तरहसें निर्णय हो जावेगा ;—

इति पाँचवें महाशय न्यायरत्नजी श्रीशान्तिविजयजीके नामकी पर्युषणा सम्बन्धी संक्षिप्त समीक्षा समाप्ता ॥

[२४१]

और सप्टेम्बर मासकी २१ मी तारीख सन् १९०८ आश्विन शुक्ल २ वीर संवत् २४३५ के रविवारका मुम्बईमें प्रसिद्ध होनेवाला जैन पत्रके २४ वें अङ्कके पृष्ठ ४ में गत वर्षे न्यायरत्नजीकी तरफसें लेख प्रसिद्ध हुवा हैं जिसमें खास करके श्रीखरतरगच्छ वालोंकी श्रीमहावीर स्वामीजीके ६ कल्याणकके सम्बन्धमें पूछा हैं और आपने श्रीहरिभद्र सूरिजी महाराजके तथा श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके विरुद्धार्थमें श्रीपञ्चाशक मूलसूत्रका तथा तद्दृष्टिका अधूरा पाठ लिखके श्रीमहावीर स्वामीजीके पांच कल्याणक स्थापन करके ६ कल्याणकका निषेध किया है सो उत्सूत्र भाषण करके अनेक सूत्र, चूर्णि, दृष्टि, प्रकरणादि शास्त्रोंके पाठोंका उत्पापन करके श्रीगणधर महाराजके, श्रीश्रुत केवली महाराजके, पूर्वधर महाराजोंके और बुद्धिनिधान पूर्वाचार्योंके वचनका अनादर करते पञ्चमकालके अपने हठवादकी विद्वत्ता न्यायरत्नजीनें अनन्त संसारकी बढ़ाने वाली प्रसिद्धकरी हैं जिसकी समीक्षा और आगस्ट मासकी २८ वी तारीख सन् १९०९ दूसरे श्रावण सुदी १३ वीर संवत् २४३५ रविवारका जैन पत्रके २१ वें अङ्कके पृष्ठ १५ वा में जो न्यायरत्नजीकी तरफसें फिर भी लेख प्रसिद्ध हुवा हैं उसीमें 'खरतरगच्छ मीमांसा, नामकी किताब छपवा कर प्रसिद्ध करके [जैने न्यायाम्भोनिधिजीनें जैन सिद्धान्तसमाचारी, पुस्तकका नाम रखके वास्तविकमें उत्सूत्र भाषण का मिथ्यात्वरूप पदखण्डकी प्रगट किया हैं (जिसका किञ्चिन्मात्र इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १५१ और पृष्ठ २१५ । २१६ में दिखाया हैं, उसीका नमूनारूप पर्युपणा सम्बन्धी समीक्षा भी

[२४२]

इन्ही पुस्तकके पृष्ठ १५७ से २१४ तक उपरमें छप चुकी हैं) तैसेही न्यायरत्नजीने भी प्राय उन्ही बातोंको अपनी चातुराईसे' कुछ कुछ न्यूनाधिक करके] मिथ्यात्वका पीष्ट-पेवणरूप मालु अपनी और अपने गच्छवासी इठप्राही भक्तजनोंकी संसार वृद्धिका कारणरूप, शास्त्रानुसार सत्य बातोंका निषेध और शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें कल्पित बातोंका स्थापनकर पुस्तक प्रगटकरके अविश्ववादी अत्युत्तम जैनमें विसंवादरूप मिथ्यात्वका भगड़ा कैलामा न्यायरत्नजी चाहते हैं, जिसकी और गत वर्षके लेखकी समालोचनारूप समीक्षा इस जगह लिखके न्यायरत्नजीके उत्सूत्र भाषणकी तथा कुतर्कोंकी चातुराईका दर्शाव प्रगट करना चाहुं तो जरूर करके २५० अथवा ३०० पृष्ठका यहां विस्तार बढ़ जावें जिससे आठों महाशयोंके नामकी पर्युषणा सम्बन्धी अन्धी जो समीक्षा सरू हैं उसीमें अन्तर पड़ जावें और यह ग्रन्थ भी बहुत बड़ा हो जावें इसलिये अन्धी यहां न्यायरत्नजी सम्बन्धी विशेष न लिखते पर्युषणा सम्बन्धी विषय पूरा होये बाद अन्तमें थोड़ासा संक्षिप्तसे लिखनेमें आवेगा जिससे श्रीजिनाज्ञा इच्छक आत्मार्थी सज्जन पुरुषोंको सत्यासत्यका निर्णय स्वयं मालुम हो सकेगा ;—

और अब उठे महाशय श्रीवृद्धभविजयजीकी तरफसे पर्युषणा सम्बन्धी जो लेख जैन पत्रमें प्रगट हुवा है उसीकी समीक्षा करके पाठकवर्गकों दिखाता हुं—जिसमें प्रथमही आगष्ट मासकी ८ वी तारीख संवत् १९०९ गुजराती प्रथम श्रावण वदी ७ रविवारका मुम्बईसे' प्रतिद्व होने वाला जैनपत्रके १८ वें अङ्कके पृष्ठ १० विषे गुजराती भाषामें

[२४३]

प्रश्नोत्तर रूपे हैं जिसमें किसी मुम्बईवाले आधकने प्रश्न किया है कि (पर्युषणपर्व पेला आवणमां करिये तो दोष लागेके केन) इस प्रश्नका श्रीपालणपुरसे श्रीवल्लभ-विजयजीने यह जबाब दिया कि (पर्युषणपर्व पेला आवणमां नज थाय आज्ञाभङ्ग दोष लागे) इस लेखका मतलब ऐसे निकलता है कि गुजराती प्रथम आवण वदी हिन्दी दूसरे आवण वदीसे लेकर दूसरे आवण शुदीमें अर्थात् आपाढ़ चतुर्मासीसे पचात दिने पर्युषणा करने वालोंको जिमाज्ञा भङ्गके दूषित ठहराये तब श्रीलशकरसे श्रीबुद्धिसागरजीने श्रीपालणपुर श्रीवल्लभविजयजीको सुन्दर ओपमा सहित वन्दनापूर्वक विनय भक्तिसे एक पोष्टकार्ड लिख भेजा उसीमें लिखा था कि—आगष्ट मास की-८ वीं तारीखका जैन पत्रके १८ वें अङ्कमें (पर्युषणपर्व पेला आवणमां नजथाय आज्ञाभङ्ग दोष लागे) यह अक्षर जिस सूत्र अथवा वृत्तिके आधारसे आपने छपवाये होवें उसी सूत्र अथवा वृत्तिके पाठ लिखकर भेजनेकी कृपा करना आपको मध्यस्थ और विद्वान् सुनते हैं इस लिये आपने शास्त्रके प्रमाण बिना अपनी कल्पनासे झूठ नहीं छपवाया होगा तो जरूर शास्त्रपाठके अक्षर लिख कर भेजेंगे इत्यादि—इस तरहका पोष्टकार्डमें मतलब लिख कर खानगीमें भेजाथा सो कार्ड श्रीवल्लभविजयजीको श्रीपालणपुरमें खास हाथोहाथ पहुंच गया परन्तु श्रीवल्लभविजयजीने उस कार्डका कुछ भी पीछा जबाब लिखकर नहीं भेजा अब कितनेही दिन तक तो जबाब आनेकी राह देखी तथापि कुछ भी जबाब नहीं आया तब फिर भी

[२४४]

दूसरा पत्र श्रीवल्लभविजयजीको, उपर लिखे मतलबके लिये भेजनेमें आया तोभी श्रीवल्लभविजयजीनें कुछ भी जबाब नहीं दिया तब श्रीपालणपुरके प्रसिद्ध आदमी पीताम्बर भाई हाथी भाई महताके नामसे एक पत्र लिखा उसीमें भी विशेष समाचार पर्युषणा सम्बन्धी श्रीवल्लभविजयजीनें दूसरे श्रावणमें आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने पर्युषणा करने वालोंको आह्वाभङ्गका दूषण लगाया जिसका खुलासे उत्तर पूछाया या और उसी पत्रमें ५० दिने पर्युषणा शास्त्रकारोंने करनेका कहा हैं उसी सम्बन्धी पाठ भी लिख भेजे थे वह पत्र श्रीवल्लभविजयजीको पीताम्बर भाईनें पहुंचाया और जबाब भी पूछा इतने पर भी श्रीवल्लभविजयजीनें अपनी बातका जबाब नहीं दिया और शास्त्रोंके पाठोंको प्रमाण भी नहीं किये परन्तु स्वपक्षपातका परिष्ठताभिमानके जोरसे अन्याय कारक विशेष भगड़ा फैलानेका कारण करके साया छत्तिसे आप निदूषण बन कर श्रीबुद्धिसागरजीको दूषित ठहरानेके लिये अक्टूबर मासकी ३१ वी तारीख सन् १९०९ आसोज वदी ३ वीर संवत् २४३५ का अङ्क २९ वा के पृष्ठ ४-५ में अपनी चातुराईको प्रगट करी हैं जिसको इस जगह लिख दिखाता हुं ;—

[खबरदार ! होखो होशियार !! करो विचार ! निकालो सार !!! लेखक—मुनि—वल्लभविजय-पालणपुर, इसमें शक नहीं कि, अंग्रेज सरकारके राज्यमें, कला-कौशल्यकी अधिकता हो चुकी है, हो रही है और होती रहेगी ! परंतु गाम वसे वहां भङ्गी चमारादि अवश्य होते हैं ! तद्वत् अच्छी अच्छी बातोंकी होशियारीके साथमें घुरी

[२४५]

बुरी बातोंकी होशियारी भी आगे ही आगे बढ़ती हुई नजर आती है ! इस वास्ते खबरदार होकर होशियारीके साथ विचार कर सार निकालनेका ख्याल रखना योग्य है— ताकि पीछेसे पश्चात्ताप करनेकी जरूरत न रहे !

राज्य अंग्रेज सरकारका हैं कानून (कायदे) सबके लिये तैयार है ! चाहे अमीर हो, चाहे गरीबही ; चाहे राजा हो, चाहे रंक हो ! चाहे शहरी हो, चाहे गँवार हो ! जो एक कहेगा दो सुनेगा !

थोड़े समयकी बात है, लश्कर से बुद्धि सागर नामा खरतर गच्छीप मुनिके नामका पत्र हमारे पास आया, जिसमें पर्युषणाकी बाबत कुछ लिखा था, हमने मुनासिब नहीं समझा कि' वृथा समय खोकर परस्पर ईर्ष्याकी वृद्धि करनेवाला काम किया जावे ! कितनेही समयसे गच्छ संबंधी टंटा प्रायः दबा हुआ है, तपगच्छ खरतरगच्छ दोनों ही गच्छ प्रायः परस्पर संपसे मिले जुलेसे मालुम होते हैं' उनमें फरक पड़नेसे कुछ दबे हुए जैन शासनके खेरिओंका जोर हो जानेका सम्भव है । यह तो प्रसिद्धही है कि दोनोंकी लड़ाईमें तीसरेका काम हो जाता है । यद्यपि महात्मा मोहनलालजी महाराज खरतर गच्छके थे, तथापि तपगच्छ-वाले उनको अधिकसे अधिक मान देते थे ! यही गच्छ पक्षकी कुछक शांति लोकोंके देखनेमें आती थी । मरहूम महात्मा भी तपगच्छकी बाबत अपना जुदा ख्याल नहीं जाहिर करते थे ! बलकि खुद आप भी तपगच्छकी समा-धारी करते थे जो कि प्रायः प्रसिद्ध ही है परन्तु सूर्यनखा समान जीव उभय पक्षकों दुःखदायी होते हैं तद्वत् बुद्धिमागर

[२४६]

खरतर गच्छीय मुनि नाम धारकने भी अपनी मनःकामना पूर्ण न होनेसे, रावणके समान दुंदियांका सरणा लेकर युद्धारंभ करना चाहा है ।]

पाठकवर्गकों छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीके उपर का लेखकी समालोचनारूप समीक्षा करके दिखाता हूं जिसमें प्रथमतो मेरेकों इतना ही कहना उचित हैं कि छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजी साधु नाम धारक होकर खास आप भगड़ेका मूल खड़ा करके दूसरेको दूषित करना और अन्याय कारक माया वृत्तिका मिथ्या भाषणसे आप निर्दूषण बनना चाहते हैं सो सर्वथा अनुचित हैं क्योंकि प्रथम ही आपने (शास्त्रकारोंकी रीति मूजब श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार आपाढ़ चौमासीसे पचास दिने श्रावणवृद्धिके कारणसे दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेवालोंको) आज्ञाभङ्ग का दूषण लगा के जैन पत्रमें छपवा कर प्रगट कराया तब श्रीलशकरसे श्रीबुद्धिसागरजीने आपकों खानगीमें शास्त्रका प्रमाण पूछा था उन्हींको शास्त्रका प्रमाण आप खानगीमें पीछा नहीं लिख सके और अन्यायकी रीतिसे उलटा रस्ता पकड़के खानगीकी वात्ताको प्रसिद्धीमें लाकर कथा निष्प्रयोजनकी अन्यान्य बातोंको और भङ्गी चमार सूर्पनखा वगैरह अनुचित शब्दोंको लिखके विशेष भगड़ेका मूल खड़ा करके भी आप निर्दूषण बनकर अपने अन्यायको न देखते हुए और शास्त्रके पाठकी बात न्याय रीतिसे पूछने वाले को दूषित ठहराते हुए अपने योग्यता भाफक शब्द प्रगट किये जाने लौकिकमें कहते हैं कि—जैसी होवे कोठे, वैसी

[२४९]

निकले होते,—अर्थात् जिस आदमीके जैसी बात दिलमें होवे उस आदमीसे वैसेही अन्तरकी बातके सूचकरूप शब्द करके सहित भाषा निकलती है तैसेही छठे महाशयजीने भी मानुं अपनी आत्तामें रहनेवाले गुणोंके सूचक शब्द लिखके प्रसिद्ध किये हैं सो वह द्रव्य शब्दके भाव गुण छठे महाशयजी श्रीवक्त्रभविजयजीमें अवश्य ही दिखते हैं सोही पाठकवर्गके दिखाता हूं और साथ साथमें छठे महाशयजीकी अन्याय कारक अन्यान्य बातोंकी समीक्षा भी करता हूं ;—

छठे महाशयजीने (गाम वसे वहाँ भङ्गी चमारादि अन्वय होते हैं) यह अक्षर लिखे हैं इस पर मेरेको इतना ही कहना उचित है कि श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधन करनेवाले जो सज्जन है सोही मानों गाम वसता है वसी गामरूपी श्रीजिनशासनमें उत्सूत्र भाषक निन्दकादि भङ्गी चमारोंकी तरह उक्त महाशयजी आदि वसते हैं सो उस गामकी निन्दारूप मलिनताको उठाते हुए भी आप पवित्र बनना चाहते हैं सो कदापि नहीं बन सकते हैं और आगे फिर भी लिखा है कि (अच्छी अच्छी बातोंकी होशियारीके साथमें बुरी बुरी बातोंकी होशियारी भी आगे ही आगे बढ़ती हुई नजर आती है) छठे महाशयजीके इन अक्षरों पर मेरेको यही कहना पड़ता है कि इस अंग्रेजी राज्यमें कलाकौशल्यता और न्यायशीलताके कारणसे श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञारूपी अच्छी अच्छी होशियारीकी वृद्धिके साथ साथमें बुरी बुरी होशियारीकी तरह प्रथम कदमग्रहके बीज लगानेवाले

[२४८]

तथा अन्यथायमें चलनेवाले और दूसरोंकी मिथ्या दूषण लगानेवाले छठे महाशयजी वगैरह अनेक पक्षपाती पुरुष खुरी खुरी होशियारीकी खातेका सरणा लेते हैं सो यही ही अफसोसकी बात हैं ;—

और आगे फिर भी छठे महाशयजीने लिखा है कि (खबरदार होकर होशियारीके साथ विचारकर सार निका लनेका ख्याल रखना योग्य हैं ताकि, पीछेसे पश्चात्ताप करनेकी जरूर न रहें) इन असरोंको लिखके छठे महाशयजी दूसरोंको होशियार होनेका बताते हैं परन्तु अपनी आत्माकी तरफ कुछ भी होशियारी न दिखाते हुए बिन विचारा काम करके इन भव तथा पर भव और भवो भवमें पश्चात्ताप करनेका कुछ भी भय नहीं रखते हैं क्योंकि श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महान् उत्तम धुरन्धराचार्योंने और खास छठे महाशयजीके ही पूर्वज पूज्यपुरुषोंने अनेक सूत्र, वृत्ति, वृर्णि, प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें आषाढ़ चौमासीसे एक मास और बीस दिने याने पचास दिने श्रीपर्युषणापर्वका आराधन करना कहा है और इस वर्त्तमान कालमें लौकिक पञ्चाङ्गमें ब्रावणादि मासोंकी वृद्धि होनेके कारणसे आषाढ़ चौमासीसे पचास दिन दूसरे ब्रावणमें पूरे होते हैं तब शास्त्रानुसार पचास दिनकी गिनतीसे दूसरे ब्रावणमें पर्युषणा करनेवाले श्रीजिवेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक ठहरे और जैन शासनके प्रभावक तथा युगप्रधान और बुद्धिनिधान उत्तमाचार्योंकी श्रीजिनाज्ञा मुजब दूसरे ब्रावणमें पर्युषणा करनेकी अनुक्रमें अखण्डित सहस्र परम्परा (अनुमान १४०० वर्ष हुए जैनपञ्चाङ्गके अभाव

[२४९]

सें आत्मार्थी पुरुषोंकी) चली आती है उसी मुजब मोक्षाभि-
लाषी सज्जन वर्तते हैं जिन्होंको छठे महाराजजीनें अपनी
सुदृबुद्धिकी तुच्छ विद्वत्ताके अभिमानसें उत्सूत्र भाषणका
भय न करते एकदम आज्ञाभङ्गका दूषण लगाके छापामें
छपानेकी आज्ञा करी और शास्त्रानुसार चलने वालोंको
मिथ्या दूषण लगानेके कारणसें भगवा कैलानेके कारण
का जरा भी विचार नहीं किया और जब श्रीतीर्थङ्कर
गणधरादि महाराजोंनें पचास दिने पर्युषणा करनेका कहा
है उसीके अनुसार आत्मार्थी सज्जन पुरुष दूसरे प्रावणमें
पचास दिने पर्युषणा करते हैं जिन्होंको छठे महाराजजी
आज्ञाभङ्गका दूषण लगाते हैं जिससें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि
महाराजोंके वचनका अनादर होकर उन महाराजोंकी महान्
आशातना होती है तथा अनेक सूत्र, चूर्णि, वृत्ति, प्रकर-
णादि शास्त्रोंके पाठोंके मुजब नहीं वर्तनेसें उत्थापन होता
है और उन महाराजोंकी आशातना तथा अनेक शास्त्रोंके
पाठोंका उत्थापन और उन महाराजोंकी आज्ञानुसार
अनेक शास्त्रोंके प्रमाणयुक्त वर्तने वालोंको स्वपक्षपातके
पंडिताभिमानसें मिथ्या दूषण लगाना सो निःकेवल उत्सूत्र-
भाषणरूप है और उत्सूत्र भाषणके लिये ;—

श्रीभगवतीजी सूत्रमें १ तथा तद्दृष्टिमें २ श्रीउत्तरा-
ध्ययनजी सूत्रमें ३ तथा तीनकी छ (६) व्याख्यायेंमें ९
श्रीदशवैकालिक सूत्रमें १० तथा तीनकी चार व्याख्यायेंमें १४
श्रीसूयगङ्गाङ्गजी (सूत्रकृताङ्गजी) सूत्रकी नियुक्तिमें १५ तथा
तद्दृष्टिमें १६ श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें १७ तथा तद्दृष्टिमें १८
श्रीआवश्यकजी सूत्रकी चूर्णिमें १९ श्रीआवश्यकजी सूत्रकी

[२५०]

बृहद्बृत्तिमें २० तथा प्रथम लघु बृत्तिमें २१ और दूसरी लघु बृत्तिमें २२ श्रीविशेषावश्यकमें २३ तथा तद्बृत्तिमें २४ श्रीसाधुप्रतिक्रमणसूत्रकी बृत्तिमें २५ श्रीमूलशुद्धिप्रकरणमें २६ श्रीमहानिशीथ सूत्रमें २७ श्रीधर्मरत्नप्रकरणमें २८ तथा तद्बृत्तिमें २९ श्रीसङ्क्षपट्टक बृहद्बृत्तिमें ३० श्रीश्राद्धविधि बृत्तिमें ३१ श्रीआगम अष्टोत्तरीमें ३२ तथा तद्बृत्तिमें ३३ श्रीसन्देह-दोलावलीबृत्तिमें ३४ श्रीमन्बोधसत्तरीमें ३५ तथा तद्बृत्तिमें ३६ श्रीवैराग्यकल्पलतामें ३७ श्रीत्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्रमें ३८ और श्रीकल्पसूत्रकी सात व्याख्यायोंमें ४५ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें और भाषाके स्तवन, पद, ढाल वगैरहमें भी अनेक जगह लिखा है कि शास्त्रपाठ तथा एकाक्षरमात्रभी प्रमाण नहीं करनेवाला निन्हव सत्सूत्र भाषककों श्रीतीर्थ-ङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्य परम गुरुजन महाराजोंकी आशातना करने वाला और उन्हीं महाराजोंके वाक्योंको न मानता हुवा उत्थापन करने वाला बहुलकर्मी, माया सहित मिथ्या भाषण करने वाला, संयमसे भ्रष्ट, घोर नरक में गिरने वाला, चतुरगतिकूप संसारमें कटुक विपाक दारुण (भयङ्कर) फलको भोगने वाला, सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट, मिथ्यास्त्री, दुर्लभबोधि, अनन्त संसारी, मोहन्यादि आठ कर्मोंके चीकणे बन्धको बाँधने वाला, पापकारी इत्यादि अनेक विशेषण शास्त्रोंमें कहे हैं जिसके सब पाठ इस जगह लिखनेसे बहुत विस्तार हो जावे तथापि भठ्यजीवोंको निःसन्देह होनेके लिये योड़ेसे पाठ भी लिख दिखाता हुं ;

श्रीलक्ष्मीवल्लभगणिजी कृत श्रीउत्तराध्ययनवृत्ती अष्टा-दशाध्ययने-संयतराजर्षि क्षत्रियमुनिर्वदति हे महामुने

[२५१]

ये पापकारिणो नराः पापं असत् परूपणं कुर्वन्तीत्येवं
शीलाः पापकारिणो ये नराः भवन्ति ते नराः घोरे भीषणे
(भयङ्करे) नरके पतन्ति च पुनः धर्मं सत् परूपणरूपं
चरित्राराध्यदिठ्यं दिवः सम्बन्धीनीं उत्तमां गतिं गच्छन्ति
इत्यादि ॥ इस पाठमें उत्सूत्र परूपणा करने वालेकों भय-
ङ्कर नरक और सत्य परूपणा करने वालेकों देव लोगकी
गति कही हैं । और श्रीशान्तिसूरिजीकृत श्रीधर्मरत्नप्रकरण
मूल तथा तद्वृत्ति श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत भाषा सहित श्री
पालीताणासे श्रीजैमधर्म विद्याप्रसारकवर्गकी तरफसे
छपके प्रसिद्ध हुवा हैं जिसके तीसरे भागके पृष्ठ ८२ । ८३ ।
८४ का पाठ गुजराती भाषा सहित नीचे मुजब्र जानो ;—

यथा—अहं साहस मेयं जं, उस्सुत्त-परूपणा कटुविवागा ॥
जाणंतेहिवि दिज्जह, निट्ठे सो सुत्तवज्जफत्थे ॥१०१॥

मूलनो अर्थ—उत्सूत्रपरूपणा कडवां फल आपनारी छे
एवुं जाणतांछतां पण जेओ सूत्रवाच्य अर्थमां निश्चयआपी
देछे ते अति साहसछे ॥ १०१ ॥

टीका—ज्वलज्वालानल प्रवेशकारिनर साहसादप्यधि-
कमतिसाहसमेतद्वर्त्तते यदुत्सूत्रपरूपणा सूत्रभिरपेक्ष देशना
कटुविपाका दारुणफला जानानैरवबुध्यमानैरपि दीयते वि-
तीर्यते निर्देश्यो निश्चयः सूत्रवाच्यै जिनेन्द्रागमानुक्तैरर्थै वस्तु
विचारे किमुक्तं भवति—

दुःखासिएण हक्केण, मरीईदुक्खसागरं पत्तो ।

भमिओ कोडाकोहिं, सागरसिरिनामधिज्जाणं ॥१॥

उस्सुत्तमावरन्तो—बंधहकम्मं सुचिक्कणं जीवो । संसारञ्च पव-
व्हह, मायामोसं च कुव्वइय ॥ २ ॥ उन्मगदेवओमग—मास

[२५२]

ओ गूढहिययमाहस्रो । सदसीलोयससत्यो—तिरिथासं बंधए
 जीवो ॥३॥ उम्मगदेसणाए—चरणं नासन्ति जिणवरिंदाणं ।
 यावन्नदंसणा खलु—नहुलम्भातारिसादट्ठु ॥४॥ इत्याद्यागम
 वचनानि श्रुत्वापि स्वाग्रहप्रहयस्त चेतसो यदन्यथान्यथा
 व्याचक्षते विदधति च—तन्महासाहसमेवा नर्वाक्पारासार-
 मंसार पाताघारोदरविवरभावि भूरिदुःखभाराङ्गीकारादिति ।

टीकानो अर्थ—बलती आगमां पेसनारमाणसनासाहस-
 करतां पण अधिक आ अतिसाहसले के सूत्रनिरपेक्ष देशना
 कइवां एटले भयङ्कर फल आपनारीछे एम आणनारा होइने
 पण सूत्रबाध्य एटले जिनागममां नही कहेल अर्थमां ए० ३
 वस्तु विचारमां निर्देश एटले निश्चय आपीदेछे—एटले-
 शुंकरुं तेकहेछे—मरीचि एकदुर्भाषितथी दुःखनादरिथामां
 पड्डी क्रोडाक्रोडसागरोपम भम्यो । १ । उत्सूत्र आचरतां
 जीव चीकणा कर्म बांधेछे संसारवधारेछे अने मायामृषा करेछे
 । २ । उन्मार्गनी देशना करनार मार्गनी नाशकरनार गूढ-
 हृदयथी मायावी शठ अने सशल्य जीव तिर्यंचनी आयुष्य
 बांधेछे । ३ । जेओ उन्मार्गनी देशनाथी जिनेस्वरना चारित्रनी
 नाशकरेछे तेवा दर्शनभट्ट लोकीने जावा पणसारा नहीं । ४ ।
 आवगेरे आगमना वचनो सांभलीने पण पोताना आग्रहमां
 ग्रस्त बनी जे कांइ आहुं अवलुं बोलेछे तथा करेछे ते महा
 साहसजळे केमके एतो अपार अने असार संसाररूप दरि
 याना पेटमां एनार अनेक दुःखभार एकदम अङ्गीकार
 करवा तुल्य छे ।

और फिर भी तीसरा भागके पृष्ठ २४२ का पाठ भाषा
 सहित नीचे मुजब जानो यथा—

[२५३]

अयमत्राशयः—सम्यक्त्वं ज्ञानचरणयोः कारणं यतएवमागमः—

ता दंसस्तिस्त्वानां, नाणेण विणा णहुंति चरणगुणा ॥
अगुणस्स नत्थि मुक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं ॥१॥ इति
तच्च गुरुबहुमानिन एव भवत्यतो दुःकरकारकोऽपि तस्मि-
न्नवज्ञानविदध्यात् तदाज्ञाकारि च भूयाद्यत उक्तं—

उठ्ठम दसमदुवालसैहिं, मासदु मास खमणेहिं ॥

अकरंतो गुरुवयणं, अणंत संसारिओ भणिओ ॥१॥ इत्यादि

इहां आशय एहे के सम्यक्त्व ए ज्ञान अने चारित्रनुं
कारणले जे माटे आगमनां आरीते कहेलुंछे—सम्यक्त्व वंत-
नेज ज्ञान होयछे अने ज्ञान विना चारित्रना गुण होता
नथी अगुणीने मोक्ष नथी अने मोक्ष वगरनाने निर्वाण
नथी, हवे ते सम्यक्त्व तो गुरुनो बहुमान करनारनेज होयछे
एथी करीने दुःकरकारी यईने पण तेनी अवज्ञा नहीं कर-
तां तेना आज्ञाकारी थवुं जे माटे कहेलुंछे के उठ, अठम,
दशम, द्वादश तथा अर्द्धमासखमण अने मासखमण करतो
थको पण जो गुरुनो वचन नही माने तो अनंत संसारी
थायछे ।

और श्रीरत्नशेखरसूरिजी कृत श्रीआहुविधिवृत्तिका
गुजरातीभाषान्तर शाः—बीममलाल शांकलचंद मारफती-
याने श्रीमुंबईमें छपवा कर प्रसिद्ध किया है जिसके पृष्ठ
१८८ का लेख नीचे मुजब आनो ;—

आशातमाना विषयमां उत्सूत्र [सूत्रमां कहेला आ-
शयथी विरुद्ध] भाषणकरवाथी अरिहंतनी के गुरुनी अव
हेलना करवी ए मोटी आशातमाओ अनन्तसंसारनी हेतुछे
जेमके उत्सूत्र प्ररूपणाथी सावद्याचार्य, चरीबी, जमाली, कुल

[२५४]

बालुऔसाधु विगेरे घणाक जीवो अनन्त संसारी थायछे कस्युछे के—उत्सूतभासगाणं, बोहिनासो अणंतसंसारो । पाण ससु वि विरा उत्सुत्तं ता न भासंति ॥ १ ॥ तित्थयर पवयण सूअं, आयरिअं गणहरं सहट्ठीअं । आसायंतो बहुसो, अणंत संसारिओ होई ॥ २ ॥ उत्सूत्रना भाषकने बोधिबीजनो नाश थायछे अने अनन्त संसारनी वृद्धिथायछे माटे प्राणजतां पण धीरपुरुषो उत्सूत्र वचन बोलता नथी तीर्थङ्कर, प्रवचन [जैनशासन] ज्ञान, आचार्य्य, गणधर, उपाध्याय, ज्ञानादिकथी सहट्ठिकसाधु, साधु ए औनी आशातना करतां प्राणी घणुकरी अनन्त संसारी थायछे ।

और सुप्रसिद्ध युगप्रधान श्रीजिनभद्रगणि क्षमात्रमणजी महाराजने श्रीआवश्यकभाष्य [विशेषावश्यक] में कहा है यथा—जे जिनवयणु तित्थे, वयणं भासन्ति जे उ नक्कति । सम्मदिठोणं तं, दंसणपि संसार बुद्धि करंति ॥ १ ॥

भाषार्थः—जो प्राणी श्रीजिनेश्वर भगवान् का वचनके विरुद्धवचन [उत्सूत्र] भाषण करता होवे और उसीको जो मानता होवे उस प्राणीका मुख देखना भी सम्यक्त्वधारियोंको संसार वृद्धि करता है ॥ १ ॥

अब आत्मार्थी विवेकी सज्जन पुरुषोंको निष्पक्षपातकी दीर्घदृष्टिसँ विचार करना चाहिये कि उत्सूत्र भाषण करने वाला तो संसारमें रहले परन्तु उत्सूत्र भाषकका मुख देखने-वाले अर्थात् उस उत्सूत्र भाषक सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट, दुष्टाचारीको भ्रष्टापूर्वक वन्दनादि करने वालोंको भी संसार की वृद्धिका कारण होता है तो फिर इस वर्समान पञ्चम कालमें उत्सूत्र भाषकोंको परमपूज्यमानके उन्हींके कहने

[२५]

मुजब बर्तने वाले गच्छपक्षी दृष्टिरागी विचारे भोले जीवोंके कैसे कैसे हाल होवेंगे सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जानें—

उपरमें उत्सूत्र भाषक सम्बन्धी इतना लेख लिखनेका कारण यही है कि उत्सूत्रभाषक पुरुष श्रीतीर्थपती श्री तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी और अपने पूर्वजोंकी आशातना करने वाला और भोले जीवोंकी भी उसी रस्ते पहुंचानेके कारणसे संसारकी वृद्धि करता है जिससे उसीकों पर भवमें तथा भवो भवमें नरकादि अनेक विहम्बना भोगनी पड़ती है इसलिये महान् पद्मात्तापूका कारण बनता है और इस भवमें भी उत्सूत्र भाषककी अनेक उपद्रव भोगने पड़ते हैं, तैसे ही छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीने भी उत्सूत्र भाषण करके श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाके आराधक पुरुषोंको निध्या आज्ञा-भङ्गका दूषण लगाकर जैनपत्रमें प्रसिद्ध कराके भगड़ेका सूल खड़ा किया और बड़े जोरके साथ पुनः जैनपत्रमें फैलाया जिससे आत्मार्थी निष्पक्षपाती सज्जन-पुरुष तथा अपने [छठे महाशयजीके] पक्षधारी श्रीतप-गच्छके सज्जन पुरुष और खास छठे महाशयजीके मदहलीके याने श्रीन्यायाम्भोनिधिजीके परिवार वाले भी कितने ही पुरुष छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीपर पूरा अभाव करते हैं कि ना हक वृथा जो संपसे कार्य्य होतेथे जिसमें विग्रकारक भगड़ा खड़ा किया है इसलिये छठे महाशय-जीको इन भवमें भी पूरे पूरा पद्मात्ताप करनेका कारण होगया है तथा करते भी है ।

और उत्सूत्र भाषण करके दूसरोंको निध्या दूषण लगा-

[२५६]

मेरे कारणसें उपरोक्त शास्त्रोंके प्रमाणानुसार पर भवमें तथा भवोभवमें छठे महाशयजीको पूरे पूरा पश्चात्ताप करना पड़ेगा इस लिये प्रथमही पूर्वापरका विचार किये बिना पश्चात्ताप करनेका कार्य करना छठे महाशयजी को योग्य नहीं था तथापि किया तो अब मेरेकी धर्मबन्धु की प्रीतिसें छठे महाशयजीको यही कहना उचित है कि आपको उपरोक्त कार्योंसें संसार वृद्धिके कारणसें यावत् भवोभवमें पश्चात्ताप करनेका भय लगता होवे तो, बन्धका पक्षपात और पण्डिताभिमान को दूरकरके सरलतापूर्वक मन वचन कायासें श्रीचतुर्विध संप्रसन्नता पर कहे सो आपके कार्योंका मिथ्या दुष्कृत देकर तथा आलोचना लेकर और अपनी भूल पीछी ही जैनपत्र द्वारा प्रगट करके उपरोक्त उत्सृजभाषणके फल विपाकोंसें अपनी आत्माको बचा लेना चाहिये नहीं तो वही ही मुश्किलीके साथ उपर कहे सो विपाकोंको भवान्तरमें भोक्ते हुए जरूर ही पश्चात्ताप करनाही पड़ेगा वहां किसीका भी पक्षपात नहीं है इस लिये आप विवेक बुद्धिवाले विद्वान् हो तो हृदयमें विचार करके चेत जावो मैंने तो आपका हितके लिये इतना लिखा है सो मान्य करोने तो बहुत ही अच्छी बात है आगे इच्छा आपकी ;—

और आगे फिर भी छठे महाशयजी—अंग्रेज सरकारके कायदे कानून दिखाकर एक कहेगा दो सुनेगा—ऐसा लिखते हैं इस पर मेरेकी वड़ेही अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि छठे महाशयजी साधु हो करके भी इतना निष्प्रायकी दया क्यों फैलाते हैं क्योंकि सम्प्रत्यक्षधारी

[२५१]

आत्माधी सज्जन पुरुष होते हैं सो तो अपनी भूलको मंजूर कर दूसरेकी हितशिक्षारूप सत्य बातको प्रमाण करके उपकार मानते हुए सुख शान्तिसे संप करके धर्तसे हैं और मिथ्यात्वी होते हैं सो सत्य बातकी हितशिक्षाको कहनेवाले पर क्रोध-युक्त हो कर अपनी भूलको न देखते हुए अन्यायसे भगड़े का मूल खड़ा करनेके लिये (हितशिक्षाको ग्रहण नहीं करते हुए) एककी दो सुनाकर रागद्वेषसे विसंवाद करते हैं तैसेही ठठे महाशयजीने भी एककी दो सुनानेका दिखाया परन्तु शास्त्रार्थसे न्याय पूर्वक सत्य बातको ग्रहण करने की तो इच्छा भी न रखी, इस बातको दीर्घदृष्टिसे सज्जन पुरुष अच्छी तरहसे विशेष विचार सकते हैं,—

और सरकारी कानून कायदेका ठठे महाशयजीने लिखा है इस पर भी मेरेको यही कहना पड़ता है कि प्रथम भगड़ा खड़ा करनेवाले और दूसरोंको मिथ्या दूषण लगानेवाले तथा मायावृत्तिकी भ्रूसाचारीसे वक्रोक्तिकरके—परिहृताभिमानसे अमुचित शब्द लिखनेवाले और खानगी में न्याय रीतिसे पूछने वालेको प्रसिद्धीमें लाकर उसीकी अयोग्य ओपमा लगाके अवहेलना करने वाले आप जैसीकी हितशिक्षा देनेके लिये तो जरूर करके सरकारी कानून तैयार हैं परन्तु आप साधुपदके भेषधारी हो इसलिये सज्जन पुरुष ऐसा करना उचित नहीं समझते हैं तथापि आप तो उसीके योग्य हो—महाशयजी याद रखो—सरकारके विरुद्ध चलनेसे इसीही भवमें जलद्वि शिक्षा मिलती है तैसेही श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके विरुद्ध चलने वाले उत्सूत्र भाषककी भी इस भवमें लौकिकमें तिर-

[२५८]

स्कारादि तथा पर भवमें और भयो भवमें खूब गहरी वारं-वार मरकादिमें शिक्षा मिलती है इस बातका विचार सज्जन पुस्तक जब करते हैं तब तो आपके गुस्सन न्यायांभो-निधिजी वगैरहको और आपके गच्छवासी हठयाही जो जो पूर्व उत्सूत्र भाषण हुआ है तथा वर्तमानमें आप जैसे है और भी आगे होवेंगे उन्हींको क्या क्या शिक्षा मिलेगा सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने क्योंकि आप लोग उत्सूत्र भाषणकी अनेक बातें कर रहे ही जिसमेंसें थोड़ीसी बातें नमुना रूप इस जगह लिख दिखाता हूं ;—

१ प्रथम—अधिकमासको गिनतीमें निषेध करते हो सो उत्सूत्रभाषण है ।

२ दूसरा—अधिकमास होनेसें तेरह मासोंके पुण्यपापादि कार्य करके भी तेरह मासोंके पापकृत्योंकी आलोचना नहीं करते हो और दूसरे तेरह मासोंके पापकृत्योंकी आलोचना करते हैं जिन्हींको दूषण लगाके निषेध करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

३ तीसरा—श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करनेवालोंको मिथ्या दूषण लगाते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

४ चौथा—जैन ज्योतिषाधिकारे सर्वत्र शास्त्रोंमें अधिक मासको गिनतीमें अच्छी तरहसें खुलासेके साथ प्रमाण करा है तथापि आप लोग जैन शास्त्रोंमें अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण नहीं करा है ऐसा प्रत्यक्ष महा मिथ्या बोलते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

५ पांचवा—पर्युषणाधिकारे सर्वत्र जैन शास्त्रोंमें आषाढ़

[२५९]

बीमासीसें दिनोंकी गिनती करके पचास दिनेही निश्चय करके पर्युषणा करनेका कहा है तथापि आप लोग दो आषाढ अथवा दो भाद्रपद होनेसें ८० दिने पर्युषणाकरसे हो और ८० दिनके ५० दिन भोले जीवोंको दिखाते हो सो भी माया सहित उत्सूत्र भाषण हैं ।

६ छठा—मासवृद्धिके अभावसें भाद्रपदमें पर्युषणा करनी कही है तथापि आप लोग मासवृद्धि दो आषाढ होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा ठहराते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

७ सातमा—श्रीनिथीय भाष्यमें १ तथा चूर्णिमें २ श्रीवृहत्कल्पभाष्यमें ३ तथा चूर्णिमें ४ और वृत्तिमें ५ श्रीसमवायार्क जीमें ६ तथा तद्वृत्तिमें ७ इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें मासवृद्धिके अभावसें चार मासके १२० दिनका वर्षाकालमें पचासदिने पर्युषणा करनेसें पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन स्वभाविक रहते हैं जिसको भी आप लोग वर्त्तमानमें दो आषाढादि होनेसें पांच मासके १५० दिनका वर्षाकालमें भी पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रहनेका ठहराते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

८ आठमा—अधिक मास होनेसें प्राचीन कालमें भी पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन रहते थे तथा वर्त्तमानमें भी आषाढादि अधिक मास होनेसें पर्युषणाके पिछाड़ी १०० दिन शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक रहते हैं जिसको निषेध करते हो और १०० दिन मानने वालोंको दूषण लगाते हो सो भी उत्सूत्र भाषण हैं ।

९ नवमा—अधिक मासके ३० दिनोंका शुभाशुभकृत्य तथा धर्मकर्म और सर्व व्यवहारको गिनतीमें लेकर मान्य करते हो

[२६०]

कुछ न्यायानुसार दो आश्विनमास होनेसे पर्युषणाके पिछाड़ी कर्त्तिक तक १०० दिन होते हैं जिसके ७० दिन अपनी कल्पनासे कहते हो सो भी प्रत्यक्ष अभ्यायकारक उत्सूत्र भाषण है ।

१० दशमा—जैन शास्त्रोंमें मास वृद्धिको बारह मासोंके ऊपर शिखररूप अधिक मासको कहा है और लौकिकमें भी पुरुषोत्तम अधिक मास कहा हैं इसलिये धर्मव्यवहारमें अधिक मास बारह मासोंसे विशेष उत्तम महान् पुरुषरूप है जिसको भी आप लोग नपुंसक निःसत्त्व तुच्छादि कहके भोले जीवोंके धर्मकार्योंमें हानी पहुंचानेका कारण करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण हैं ।

११ इग्यारमा—अधिक मासको कालचूलाकी उत्तम ओपमा गिनती करनेयोग्य शास्त्रकारोंने दिनी हैं तथापि आप लोग कालचूला कहनेसे अधिक मास गिनतीमें नहीं आता है ऐसा कहते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

१२ बारहमा—अधिक मासमें प्रत्यक्ष वनस्पति फल-फूलादिसं प्रफुल्लित होती है तथापि आप लोग नहीं फूलनेका कहते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

१३ तेरहमा—अधिक मासके कारणसे श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने अभिवर्द्धितसंवत्सर तेरह मासोंका कहा है तथापि आप लोग अधिक मासको गिनतीमें निषेध करके श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंका कहा हुआ अभिवर्द्धित संवत्सरका प्रमाणको तथा अभिवर्द्धित संवत्सरकी संज्ञाको नष्ट कर देते हो इसलिये श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातना कारक

[२६५]

अमन्त संसारकी वृद्धिरूप यह भी महान् उत्सूत्र भाषण है ।

१४ चौदहमा-श्रीजैनशास्त्रोंमें षट्द्रव्यरूप शाश्वती वस्तुओंमेंसे कालद्रव्य रूपभी एक शाश्वती वस्तु है जिसका एक समयमात्र भी जो कालव्यतीत होजावे उसीका गिनती में कदापि निषेध नहीं हो सकता है यह अनादि स्वयं सिद्ध मर्यादा है तथापि आपलोग समय, आध्यात्मिका, मुहूर्त, दिन, पक्षसे, दो पक्षका जो एकमास बनता हैं उसी को गिनतीमें निषेध करके अनादि स्वयं सिद्ध मर्यादाको अपनी कल्पनासे तोड़मोड़करके ३० मासे-एकमासका गिनतीमें निषेध करनेके हिसाबसे, ३० वर्षे-एकवर्ष, ३०युगे-एकयुग, इसी तरहसे, ३० कोड़ा कोड़ी सागरोपमें-एक कोड़ाकोड़ी सागरोपनके कालकी-उड़ा कर गिनतीमें निषेध करनेका दुरा प्रयास करते हो सो भी यह महान् उत्सूत्र भाषण है ।

और १५ पंद्रहमा-जैनपञ्चाङ्ग का अभी वर्तमानकालमें विच्छेद है तथापि आपलोगोंकी तरफसे मिथ्यात्वकी वृद्धिकारक मनमानी अपनी कल्पनाका पञ्चाङ्गको जैन-पञ्चाङ्ग ठहराकर प्रसिद्ध करवाते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है

१६ सोलहमा-श्रीनिशीयसूत्रके भाष्यादि शास्त्रोंमें सूर्योदयकी पर्व तिथिकी न माननेवालेको मिथ्यात्वी कहा है और लौकिक पञ्चाङ्गमें दो चतुर्दशी वगैरह तिथियां होती हैं उसीमें पर्वरूप प्रथम चतुर्दशी सूर्योदयसे लेकर अहोरात्रि ६० चढ़ी बरक संपूर्ण चतुर्दशीका ही वर्ताव रहता है उसीमें अपर्व रूप त्रयोदशीके वर्तावका गम्ब भी नहीं है तथापि आप लोग अपने पक्षपातके जोरसे और पण्डिताभिमानका

[२६२]

फर्मदसें जबरदस्ति सूर्योदयकी पर्वरूप प्रथम चतुर्दशीकी पर्वरूप नहीं मानते हुए, अपर्वरूप त्रयोदशी बनाकरके संख्याते, असंख्याते, अनन्ते जीवोंकी हानी तथा अब्र-ह्मचर्यादि पञ्चाश्रव सेवनका और सब संसार व्यवहारके कार्योंसें आत्मन्नादि होनेका कारणमें अधोगतिके रस्ता की खर्चीरूप कार्योंमें आपलोग कटीबहु तैयार हो और अपने संयमरूप जीवितव्यके नष्ट होनेका और निध्यास्वी बननेका कुछ भी भय नहीं करतेहो इस लिये यह भी उत्सूत्र भाषण है ।

१७ सतरहना—भी इसीही तरहसें लौकिक पञ्चाङ्गमें दो दूज, दो पक्षमी, दो अष्टमी, दो एकादशी, खगैरह सूर्योदयकी पर्वतिथियां होती है जिसको बदल कर, अपर्वकी—दो एकन, दो चतुर्थी, दो सप्तमी, दो दशमी खगैरह करके मानते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

१८ अठारहना—भी इसीही तरहसे विशेष करके लौकिक पञ्चाङ्गमें संपूर्ण चतुर्दशी पर्वरूप तिथि होती है और दो पूर्णिमा तथा दो अनावस्या भी होती है जिसको तोड़मोड़ करके संपूर्ण चतुर्दशीकी, त्रयोदशी और दो पूर्णिमाकी तथा दो अनावस्याकी भी दो त्रयोदशी कोई भी जैन-शास्त्रोंके प्रमाण बिना अपनी कपोल कल्पनासें बना लेते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

१९ एगुनवीशना—लौकिक पञ्चाङ्गमें जब कोई कोई वस्तु दो पूर्णिमा अथवा दो अनावस्या होती है उसीमें चन्द्र अथवा सूर्यका ग्रहण प्रथम पूर्णिमाको अथवा प्रथम अनावस्याको होता है जिसको सब दुनिया मानती है और

[२६३]

शास्त्रोंमें भी पूर्णिमा अथवा अमावस्याके दिन ग्रहण होने का कहा है तथापि आप लोग सब दुनियाके तथा शास्त्रों के भी विरुद्ध होकरके प्रगट पने ग्रहणयुक्त पूर्णिमा अथवा अमावस्याको चतुर्दशी ठहराकर चतुर्दशीकाही ग्रहण मानते हो यह तो प्रत्यक्ष अन्वय कारक उत्सूत्र भाषण है ।

२० वीशमा—चतुर्दशी का क्षय होनेसे पाक्षिककृत्य पूर्णिमा अथवा अमावस्याको करनेका जैनशास्त्रोंमें कहा है तथापि आप लोग नहीं करते हो और दूसरे करने वालोंको दूषण लगाके निषेध करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

२१ एकवीशमा—आप लोग एकान्त आपइसें सूर्योदयके बिनाकी तिथिको पर्वतिथिमें नहीं मानना, ऐसा कहते हो परन्तु जब चतुर्दशीका क्षय होता है तब सूर्योदयकी त्रयोदशीको चतुर्दशी कहते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

२२ द्वावीशमा—श्रीजैनउयोतिषकी गिनती मुजब, चन्द्र के गतिकी अपेक्षासे श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति तथा श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति वृत्ति वगैरह अनेक जैनशास्त्रोंमें पर्वकी तिथियांके क्षय होनेका लिखा है और लौकिक पञ्चाङ्गमें भी कालानुसार पर्वकी तिथियांका क्षय होता है और जैन पञ्चाङ्गके अभावसे लौकिक पञ्चाङ्ग मुजब वर्त्तनेकी पूर्वाचार्योंकी खास आज्ञा है, तैसेही आप लोग—दीक्षा, प्रतिष्ठा वगैरह धर्म व्यवहारके कार्योंमें चढ़ी, पल, तिथि, वार, नक्षत्र, योग राशिचन्द्र, शुभाशुभ मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास वगैरह सब व्यवहार लौकिक पञ्चाङ्गानुसार करते हो तथापि आप लोग, लौकिक पञ्चाङ्गमें जो पर्वतिथियांका क्षय होता है उसीको नहीं मानते हो और माननेवालोंको दूषण लगाके निषेध करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

[२६४]

२३ तैवीशमा—लौकिक पञ्चाङ्गमें दो चतुर्दशी होती है उन्हीके मुजब आप लोगोंके पूर्वजोंने भी दो चतुर्दशी लिखी है जिसको आप लोग नहीं मानते हो और लौकिक पञ्चाङ्ग मुजब युक्तिपूर्वक कालानुसार और पूर्वाचार्योंकी परम्परासें दो चतुर्दशी वगैरह पर्व तिथियोंको माननेवालोंको दूषण लगाके निषेध करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

२४ चौवीशमा—आपके पूर्वज कृत ग्रन्थमें तिथिका शुद्धाशुद्ध सम्बन्धी जो प्रमाण बताया है उसी मुजब आप लोग नहीं मानते हो और स्वच्छन्दाचारीसें (अपनी मति की कल्पना करके) संपूर्ण प्रथम पर्वतिथिको अपर्व ठहरा करके दूसरी—दो अथवा तीन पल (एक मिनिट) मात्र की अल्पतर तिथिमें जाते हो और दूसरे—कालानुसार युक्ति पूर्वक तथा विशेष धर्मबुद्धिके लाभका कारण जानके प्रथम संपूर्ण ६० घड़ी की पर्वतिथिको मानते हैं तैसीही दूसरी पर्व-तिथिको भी यथायोग्य मानते हैं जिन्होको दूषण लगाके निषेध करते हो सो भी उत्सूत्र भाषण है ।

इस तरहकी अनेक बातें आपलोगोंमें उत्सूत्र भाषणकी हो रही है जिसका तथा आपके गुरुजी श्रीन्यायाम्भो निधिजीनें भी जैनसिद्धान्त समाचारी पुस्तकका नाम रखके अनुमान ५० जगह उत्सूत्र भाषण करा है जिसका भी नमूनारूप थोड़ीसी बातें आगे लिखनेमें आवेंगे और उपरकी सब बातोंका निर्णय शस्त्रोंके प्रमाणसें और युक्ति-पूर्वक मेरे लिखीत इन्ही ग्रन्थको आदिसें अन्त तक स्थिर-चित्तसें सत्यग्राही होकर निष्पक्षपातसें मध्यस्थ दृष्टि रखकर विशुद्धभावसें पढ़नेवाले आत्मारथी सज्जन पुरुषोंको अच्छी तरहसें मालूम हो सकेगा ;—

[२६५]

और उत्सूत्र भाषणके फलविपाक सम्बन्धी उपरमें ही पृष्ठ २४९ से २५६ तक लिखनेमें आया है उसीका भय लगता हो, तथा श्रीजिनेश्वर भगवान् के वचन पर आपलोगोंकी कुछ भी श्रद्धा हो, और अपनेही श्रीतपगच्छके नायक श्रीदेवेन्द्र सूरिजी तथा श्रीरत्नशेखर सूरिजीके उत्सूत्र भाषक सम्बन्धी उपरोक्त वाक्योंकी आपलोग सत्यमानतेहो, और श्रीदेवेन्द्र सूरिजी कृत श्रीधर्मरत्नप्रकरण वृत्ति आपलोगोंके समुदाय में विशेष करके व्याख्यानाधिकारे तथा पठन पाठनमें भी बारंबार आती है उन्हींके वाक्यार्थकी आपके हृदयमें धारणा हो, तो ऊपरका लेखको परमहितशिक्षारूप सभक्तके उत्सूत्र भाषण करते हो जिसकी छोड़ो, तथा उत्सूत्र भाषण करा होवे उसीका मिथ्या दुष्कृत देवो, और गच्छके पक्षपात को तथा पण्डिताभिमानको छोड़के श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञा मुजब शास्त्रोंके महत् प्रमाणानुसार आषाढ़ चौमासी से ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करनेका और अधिक भाषको गिनतीमें प्रमाणादि अनेक सत्य बातोंको ग्रहण करो, और भक्तजनोंको करावो जिससे आपकी और आपके भक्तजनोंकी आत्मसिद्धिका रस्तापावो—श्रीजिनाज्ञारूपी सत्यवृत्तरत्नके सिवाय मोक्ष साधनमें गच्छका पक्षपात तथा पण्डिताभिमान कुछ भी काम नहीं आता है इसलिये गच्छ पक्षको छोड़के श्रीजिनाज्ञा मुजब सत्यवातको ग्रहण करना सोही आत्मार्थी चिवेकी विद्वान् सज्जन पुरुषोंको परम उचित है ।

और आगे फिर भी उठे महाशयजीने लिखा है कि (थोड़े समयकी बात हैं) बुद्धिसागर नामा खरतरगच्छीय

[२६६]

भुनिके नामका पत्र हमारे पास आया जिसमें पर्युषणाकी वाक्यत कुछ लिखाया हमने मुनासिब नही समजा कि वृथा समय खोकर परस्पर ईर्ष्याकी वृद्धि करनेवाला काम किया जावे) इस लेखपर मेरेको बड़ाही आश्चर्य उत्पन्न होता है कि श्रीवल्लभविजयजीने अपनी नायावृत्तिकी चातुराईको खूब प्रगट करी है क्योंकि प्रथम आपनेही दूसरे आवरणमें पर्युषणा करने वालोंको अज्ञाभङ्गका दूषण लगाया था उसी सम्बन्धी आपको श्रीबुद्धिसागरजीमें शास्त्रका प्रमाण खानगीमें ही पत्र भेजके पूछा था जिसका जबाब पीछा खानगीमें ही लिख भेजनेमें तो कठे महाशयजी आपको बहुत समय वृथा खोनेका और परस्पर ईर्ष्याकी वृद्धि होनेका बड़ा ही भय लगा परन्तु लम्बा चौड़ा लेख जैनपत्रमें भङ्गी चमारादि शब्दोंसे तथा निष्प्रयोजनकी अन्यान्य बातोंको और श्रीबुद्धिसागरजीको सूर्य-महाकी वृथा अनुचित ओपमा लगाके उन्हकी खानगीकी पूछी हुई बातको (पीछा ही खानगीमें जबाब न देते हुए) प्रसिद्धमें लाकर अन्यायके रस्तेसे उन्हकी अवहेलना करनेमें और श्रीखरतरगच्छवालोंके परमपूज्य प्रभावका-चार्य्यजी श्रीजिनपतिसूरिजी महाराजका श्रीजिनाद्या मुजब अनेक शास्त्रोंके प्रमाणयुक्त सत्यवाक्यको पक्षपातके जोरसे अप्रमाण ठहर कर श्रीखरतरगच्छवालोंके दिलमें पूरे पूरा रंज उत्पन्न करके—और दूसरे गुजराती भाषाके लेखमें भी—सर्व संचको, कान्करन्सको, शेठियोंको, वकीलको, बेरिस्टरको, नाणाकोयली (रुपैयोंकी थेली) वगैरहको सावधान सावधान करके श्रीसंचके आग्रहमें और

[२६४]

कोर्ट कचेरीमें वड़ेही भारी भगड़ेके कारण करनेका लेख लिखनेमें तथा प्रसिद्ध करानेमें तो छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजी आपको खूब लम्बा चौड़ा समय भी मिल गया, और परस्पर आपसमें ईर्ष्याकी वृद्धि होनेका किञ्चित् भी भय न लगा परन्तु श्रीबुद्धिसागरजीके पत्रका जबाब खानगीमें लिखनेसें छठे महाशयजीको क्या समय खोनेका तथा परस्पर ईर्ष्याकी वृद्धि करनेवाला काम करने का भय लगा, यह कैसी अलौकिक विद्वत्ताकी चातुराई (सज्जन पुरुषोंकी आश्चर्य्य उत्पन्नकारक) छठे महाशयजी आपनें गच्छ पक्षी दृष्टिरागी बालजीवोंको दिखाकर अपनी बातको जमाई सो आत्मार्थी विवेकी विद्वान् पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे ।

और आगे फिर भी छठे महाशयजीनें लिखा है कि (कितनेही संपसें गच्छ सम्बन्धी टंटा प्राप्त दबा हुआ है तपगच्छ खरतरगच्छ दोनोंही पक्ष प्रायः परस्पर संपसें मिले जुलेसें मालूम होते हैं) इस लेख पर भी मेरेको यही कहना उचित है कि गच्छ सम्बन्धी टंटा दबाकरके शान्त करनेका और संपसें वसनेका श्रीखरतरगच्छवालोंकी महान् सरलताका कारण है क्योंकि श्रीतपगच्छके तो आप जैसे अनेक महाशय संपके मूलमें अग्नी लगाके श्री खरतरगच्छवालोंकी सत्य बातका निषेध करनेके लिये उत्सूत्र प्रायण करके अपनी मति कल्पनाकी मिथ्या बातका स्थापन करनेके लिये विशेष करके हर वर्षे गांस गांसमें पर्युषणाके व्याख्यानधिकारे श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञानुसार अनेक शास्त्रोंके महत् प्रमाण मुजब अधिक मासकी

[२६८]

गिनती अनादि स्वयं सिद्ध है जिसका खण्डन करके और श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महान् धुरन्धराचार्योंने और श्रीखरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छके भी पूर्वाचार्योंने श्रीवीर-प्रभुके, छ कल्याणक अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक कहे हैं तथापि आप लोग श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी और अपने पूर्वजोंकी आशातनाका भय न करते उन्ही महाराजोंके विरुद्ध हो करके, छ कल्याणकका निषेध करते हो और श्रीखरतरगच्छवालोंके ऊपर मिथ्या कटाक्ष करते हुए अनेक बातोंका टंटा खड़ा करनेका कारण करनेवाले आप जैसे अनेक कटीबद्ध तैयार हैं और अपने संसार वृद्धिका भय नहीं रखते हैं इस बातको इसीही ग्रन्थको संपूर्ण पढ़नेवाले विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेखेंगे और इसका विशेष विस्तार इसीही ग्रन्थके अन्तमें भी करनेमें आवेगा वहां श्रीखरतरगच्छवालोंकी कैसी सरलता है और श्रीतपगच्छवाले आप जैसीकी कैसी वक्रता है जिसका भी अच्छी तरहसे निर्णय हो जावेगा ।

और आगे फिरभी छठे महाशयजीने लिखा है कि (उनमें—अर्थात्, तपगच्छके खरतरगच्छके आपसमें—फरक पड़नेसे कुछक दबे हुए जैनशासनके वेरियोंका जोर हो जानेका सम्भव है) इस लेख पर भी मेरेको इतनाही कहना पड़ता है कि—छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजी आप श्रीखरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छके आपसमें विरोध बढ़ाकर संपको नष्ट करना नहीं चाहते हो और दोनों गच्छको संपसे मिले जुलेसे रहनेकी जो आप अन्तर भावसे इच्छा रखते हो तबतो श्रीजिनाज्ञा मुख्य अनेक महत् शास्त्रोंके प्रमाण

[२६९]

युक्त श्रीखरतरगच्छवालोंकी सत्य बातोंको प्रमाण करके अपनी कल्पित बातोंको छोड़ दो और श्रीखरतरगच्छवालों पर मिथ्या आक्षेप जो आपने उत्सूत्र भाषण करके करा है तथा श्रीबुद्धिसागरजी पर जो जो अन्यायसे अनुचित लेख लिखके जैनपत्रमें प्रसिद्ध कराया है जिसकी क्षमा मांगकर उत्सूत्र भाषणका मिथ्या दुष्कृत दो और अपनी भूलको पिछीही जैन पत्रमें प्रगट करके सुखशान्तिसे संप करके वस्तुतः दोनूँ गच्छके संप रखने सम्बन्धी आपका लिखना सत्य हो सकेगा परन्तु जब तक छठे महाशयजी आपके बिना विचारके करे हुए अनुचित कार्य्योंकी आप क्षमा नहीं मांगेंगे और सत्य बातोंका ग्रहण भी नहीं करते हुए अपनी कल्पित बातोंके स्थापन करनेके लिये जो वार्त्ताका प्रकरण चलता होवे उसीको छोड़के अन्यायके रस्तेसे अन्यान्य अनुचित बातोंको लिखके विशेष भगड़ा बढ़ाते रहेंगे तब तो दोनूँ गच्छके संप रखने सम्बन्धी आपका लिखना प्रत्यक्ष मायावृत्तिका मिथ्या है और भोले जीवोंको दिखाने मात्रही है अथवा लिखने मात्रही है सो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे और दोनूँ गच्छके आपसमें वादविवादके कारणसे दबे हुए जैनशासनके धेरियोंका जोरहोनेसे मिथ्यात्व बढ़नेका छठे महाशयजी जो आपको भय लगता होवे तो आपनेही प्रथम जैनपत्रमें शास्त्रानुसार चलनेवालोंकी मिथ्या दूषण लगाके उत्सूत्र भाषणसे भगड़ा खड़ा करा और पुनःपुनः (दीर्घकाल चलने रूप) जैन पत्रमें फैलाया है जिसकी पिछीही अपने हाथसे मिथ्या दुष्कृतसे क्षमाके साथ अपनी भूलकी जैन-

[२७०]

पत्रमेंही सुधार लो जिससे' दोनुं गच्छवालोंके आपसमें संप बना रहेगा और 'दोनुं' गच्छके आपसमें संपको नष्ट करनेवाले आप लोगोंकी तरफसे पर्युषणाके व्याख्यानमें तथा आपे द्वारा जो जो कार्य करनेमें आते हैं उसको भी बंध कर दीजिये जिससे' दोनुं गच्छवालोंके आपसमें जो संप है उसीसे' भी खूब गहरा विशेष संप हो जावेगा; तब जैन शासनके वेरियोंका कुछ भी जोर नहीं हो सकेगा, इतने पर भी आप जैसे शास्त्रानुसार तथा युक्तिपूर्वक सत्य बात को ग्रहण नहीं करते हुए, अन्यायसे' बाद विवाद करके भगड़ेको बढ़ाते रहोंगे जिस पर जो जो जैनशासनके निन्दक शत्रुओंका जोर बढ़नेका कारण होगा तो जिसके दोषाधिकारी खास आप लोगही होंगें सो विवेकबुद्धिसे' हृदयमें विचार लेना, और आगे श्रीमोहनलालजीके सम्बन्ध में लिखकर सपगच्छकी समाचारीके बाबत जो आपने लिखा है इसका जबाब—अभी नवमें महाशय श्रीमाणक-मुनिजी प्रगट हुवे हैं जिसने' अपनी अकलकान्मुना जैन पत्रमें प्रगट करा है उसीका जबाब आगे लिखनेमें आवेगा वहां श्रीमोहनलालजी सम्बन्धी भी लिखनेमें आवेगा ;—

और बड़े महाशयजीने' फिर भी अपनी विद्वत्ता की चातुराईका दर्शाव दिखाया है कि—(सूर्यनखा समान जीव उभय पक्षको दुःखदायी होते हैं तद्वत् बुद्धिसागर खरतरगच्छीय मुनि नाम धारकने भी अपनी मनःकामना पूर्ण न होनेसे' रावणके समान बूद्धियोंका सरणा लेकर युद्धारम्भ करना चाहा है) इस लेख पर मेरेको इनताही कहना है कि—जैसे किसी परिचितको किसी आदमीमें कोई

[२३९]

बातका खुलासा पूछा तब उस परिहृतकी उसी बातका
 खुलासा करनेकी बुद्धि नहीं होनेसे अपने विद्वत्ताकी इज्जत
 रखनेके लिये उस बातका सम्बन्धको छोड़के निष्प्रयोजन
 की वृथा अन्यान्य बातोंको लाकर अनुचित शब्दोंसे यावत्
 क्रोधका सरणा ले करके अपनी विद्वत्ताकी बातको जमाता
 है परन्तु विवेकी विद्वान् पुरुष उस परिहृतका मिथ्या
 परिहृताभिमानकी और अन्यायके पाखण्डको अच्छी तरह
 से समझ लेते हैं—तैसेही छठे महाशयजी आपने भी करा
 अर्थात् आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने दूसरे आवणमें पर्युषणा
 करनेवालोंकी आश्वाभङ्गका दूषण लगाने सम्बन्धी श्रीबुद्धि-
 सागरजीने आपको शास्त्रका प्रमाण पूछा उसीको शास्त्रका
 प्रमाण बतानेकी आपकी बुद्धि नहीं होनेसे और शास्त्रका
 प्रमाण भी आपको नहीं मिलनेसे ऊपर कहे सो नामधारी
 परिहृतवत् आपने भी अपनी विद्वत्ताकी इज्जत रखनेके लिये
 शास्त्रका प्रमाण बतानेके सम्बन्धको छोड़ करके निष्प्रयो-
 जनकी वृथा अन्यान्य बातोंको लिखकर अनुचित शब्दोंसे
 यावत् क्रोधका सरणा लेकर अपनी विद्वत्ताको जमाती
 चाहती परन्तु निष्पक्षपाती विद्वान् पुरुषोंके आगे आपका
 मिथ्या परिहृताभिमानका और अन्यायके पाखण्डका
 दर्शाव अच्छी तरहसे खुल गया है कि—छठे महाशयजीके
 पास शास्त्रका प्रमाण न होनेसे श्रीबुद्धिसागरजीको सूर्य-
 नखाकी ओपमा वगैरह प्रत्यक्ष मिथ्या वाक्य लिखके अपने
 नामकी इसी कराई है क्योंकि श्रीबुद्धिसागरजीने सूर्य-
 नखाकी तरह दोनुं पक्षको दुःखदाई होनेका कोई भी
 कार्य नहीं करा है तथा न दूँडियांका सरणा लिया है

[१७२]

और न युद्धारम्भ करना चाहता है—तथापि श्रीवल्लभ-विजयजीनें मिथ्या लिखा यह बड़ाही अफसोस है परन्तु 'सतीको' भी—वेश्या अपने जैसी समझती है तद्वत् तैसेही छठे महाशयजीनें भी निर्दोषी श्रीबुद्धिनागरजीको दोषित ठहरानेके लिये अपने कृत्य मुजब सूर्यनखाके समानका तथा ढूँढियांका सरणा लेनेका और युद्धारम्भ करनेका मिथ्या आक्षेप करा सालूम होता है क्योंकि उपरके कृत्य छठे महाशयजीमेंही प्रत्यक्ष है सोही दिखाता हूँ ;—

जैसे—सूर्यनखा दोनूं पक्षवालोंको दुःखदाई हुई तैसेही छठे महाशयजी (श्रीवल्लभविजयजी) भी दोनूं गच्छवालोंके आपसका संपर्क नष्ट करनेके लिये याद विवादसें झगड़ेका मूल लगाके दोनूं गच्छवालोंको तथा अपने गुरुजनोंके नामको और अपने सम्प्रदायवालोंको भी दुःखदाई हुवे है इस लिये मेरेको भी इस ग्रन्थकी रचना करके आठों महाशयोंके उत्सूत्र भाषणके कुतर्कोंकी (शास्त्रानुसार और युक्तिपूर्वक) समीक्षा करके मोक्षाभिलाषी सज्जनोंको सत्यासत्यका निर्णय दिखानेके लिये इतना परिश्रम करना पड़ा है सो इस ग्रन्थको पढ़नेवाले विवेकी मध्यस्थ पुरुष स्वयं विचार लेंगे ;—

और छठे महाशयजी आप लोग अनेक बातोंमें ढूँढियां का सरणा ले कर उन्हींकाही अनुकरण करते हो जिसमेंसें थोड़ीसी बातें इस जगह दिखाता हूँ ;—

१ प्रथम—श्रीजिनेश्वर भगवान्की प्रतिमाजीको मानने पूजनेका निषेध करनेके लिये ढूँढिये लोग अनेक प्रकारकी श्रीजिनमूर्तिकी निन्दा करते हुए अनेक कुतर्कों करके भोले

[२५३]

जीवोंके सत्यवातकी श्रद्धारूपी सम्यक्त्व रत्नको, हरण करके मिथ्यात्व बढ़ाते हैं तैसेही श्रीअनन्त जिनेश्वर भगवानोंका कहा हुआ तथा प्रमाण भी करा हुआ अधिकमासको गिनतीमें निषेध करनेके लिये, आप लोग भी अधिकमासकी अनेक प्रकारसें निन्दा करते हुए अनेक कुतर्कों करके भोले जीवोंके सत्य वातकी श्रद्धारूपी सम्यक्त्व रत्नको हरण करके मिथ्यात्व बढ़ाते हो इसलिये श्रीजैनशासनके निन्दक मिथ्यात्वी दूँढियांका सरणा आपही लेते हो ।

२ दूसरा--श्रीजैनशास्त्रोंमें नाम, स्थापना, द्रव्य, और भाव, यह चारोंही निक्षेपे मान्य करने योग्य, उपयोगी कहे हैं तथापि दूँढिये लोग उत्सूत्र भाषणका भय न करते अनन्त संसारकी वृद्धि कारक, स्थापनादि निक्षेपोंको निषेध करके बिना उपयोगके ठहराते हैं तैसेही श्रीजैनशास्त्रोंमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भावसें, चारोंही प्रकारकी चूलाका प्रमाण गिनती करने योग्य, उपयोगी कहा है और गिनतीमें भी लिया है तथापि आप लोग उत्सूत्र भाषण का भय न करते कालचूलादिका प्रमाणको गिनतीमें निषेध करके प्रमाण नहीं करते हो सो भी दूँढियांका सरणा आपही लेते हो ।

३ तीसरा--दूँढिये लोग 'मूलसूत्र मानते हैं मूलसूत्र मानते हैं' ऐसा पुकारते हैं परन्तु अपनी मति कल्पनासें अनेक जगह शास्त्रोंके पाठोंका उलटा अर्थ करते हैं और अनेक शास्त्रोंके पाठोंको तथा अर्थको भी छुपाते हैं और शास्त्रोंके प्रमाण बिना भी अनेक कल्पित बातोंको करके मिथ्यात्वमें फसते हैं और भोले जीवोंको फसाते हैं तैसेही आपलोग भी 'पञ्चाङ्गी मानते हैं पञ्चाङ्गी मानते हैं' ऐसा

[२७४]

पुकारते हो परन्तु अपनी मति कल्पनासे अनेक जगह शास्त्रोंके पाठोंका उलटा अर्थ करते हो और अनेक शास्त्रोंके पाठोंको तथा अर्थको भी छुपाते हो और शास्त्रोंके प्रमाण बिना भी अनेक कल्पित बातों करके मिथ्यात्वमें फसते हो और भोले जीवोंको फसाते हो (इसका विशेष खुलासा आगे करनेमें आवेगा) इस लिये भी दूँदियांका सरणा आपही लेते हो ।

४ चौथा—जैसे दूँदिये लोगोंकी गांस गांसमें बारम्बार श्रीजिन प्रतिभाजीकी और श्रीजैनाचार्योंकी निन्दा अवहेलना करनेकी आदत है जिससे अपने संसार वृद्धिका भय नहीं रखते हैं तैसेही आप लोगोंकी भी गांस गांसमें श्रीपर्युषणायर्वका व्याख्यान वगैरहमें श्रीवीरप्रभुके उ (६) कल्याणककी और श्रीजिनेन्द्रभगवान् का तथा पूर्वाचार्योंका प्रमाण करा हुआ अधिक मासकी निन्दा अवहेलना करनेकी आदत है जिससे आप लोग भी उत्सूत्र भाषणका भय न करते हुए संसार वृद्धिसे कुछ भी डरते नहीं हो इस लिये भी दूँदियांका सरणा आपही लेते हो ।

५ पाँचमा—जैसे दूँदिये लोग चर्चा करो चर्चा करो ऐसा पुकारते हैं परन्तु चर्चाका समय आनेसे मुख छिपाते हैं और जो बातकी चर्चा करनेकी होवे जिसकी शास्त्रार्थ से न्यायपूर्वक चर्चा करनी छोड़कर अन्यायसे निष्प्रयोजन की अन्य अन्य बातोंका झगड़ा खड़ा करके यावत् क्रोधका सरणा लेकर—रांड नपुती जैसी वृथा लड़ाई करके निन्दा ईर्ष्यासे संसार वृद्धिका कारण करते हैं परन्तु शास्त्रोक्त चर्चा वार्त्ताकी रीतिसे एक भी बातके सत्यअसत्यका निर्णय करके

[२७५]

असत्यको छोड़कर सत्यको ग्रहण करनेकी इच्छाही नहीं रखते हैं तैसेही आप लोगोंके भी कृत्य है (इस बातका इस ग्रन्थके अन्तमें खुलासा करनेमें आवेगा) इस लिये उपरकी बातमें भी दूँदियांका सरणा आप लोगही लेते हो ।

६ छठा—जैसे कितनेही दूँदिये लोग शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक श्रीजिनसूक्तिको मानने पूजने वगैरहकी सत्य बातोंको जानते हुए भी अपने मत कदा ग्रहकी भालमें फस करके इस लोककी मानता पूजनाके लिये अपने दृष्टि-रागी भक्तजनोंके आगे मिथ्यात्वके उदयसे सत्य बातोंका निषेध करके अपने अन्य परम्पराकी उत्सूत्र भाषणरूप कल्पित बातोंका स्थापन करके संसार वृद्धिका कार्य करते हैं तैसेही कितनीही बातोंमें आपके गुरुजी न्याया-भोनिधिजी (श्रीआत्मारामजी) ने भी किया है और आप लोग भी करते हो (जिसका खुलासा आगे करनेमें आता है) इस लिये भी दूँदियांका सरणा आप लोगही लेते हो ।

७ सातमा—जैसे कितनेही दूँदिये श्रीजैन तीर्थोंको छोड़के अन्य मतियोंके मिथ्यात्वी तीर्थोंमें जाते हैं तैसेही खास श्रीवल्लभविजयजीने भी कराया अर्थात् घासीराम और जुगलराम इन दोनों दूँदक साधुयोंने (श्रीजिनेश्वर भगवान् तुल्य श्रीजिनसूक्तिकी तथा श्रीजैनशासनके प्रभाविक महान् उत्तम श्रीजैनाचार्योंकी) द्वेष बुद्धिसे धृथा निन्दा करनेका और शास्त्रोंके विरुद्ध होकरके उत्सूत्र भाषणका तथा अपनी मति कल्पना मुजब मिथ्या बातोंमें वर्तनेका मिथ्यात्वरूप दूँदक मतका पाखण्डको संसार वृद्धिका कारण

[२७६]

ज्ञानकर छोड़ दिया और शास्त्रानुसार सत्य बातोंको ग्रहण करनेकी इच्छासे श्रीवल्लभविजयजीके पास जैन दीक्षा लेने को आये तब श्रीवल्लभविजयजीनें तथा उन्हेंके दृष्टिरागी श्रावकोंनें विचार किया कि--घासीराम और जुगलरामनें बूढ़क मतके साधु भेषमें अनुचित कार्यो (असूचीकी क्रियायो) से अपने शरीरको अपवित्र किया है इसलिये इन दोनोंका शरीर प्रथम पवित्र कराके पीछे दीक्षा देनी चाहिये ऐसा विचार करके दोनोंको पवित्र करनेके लिये जैन तीर्थोंमें न भेजते हुए अन्य भक्तियोंके मिथ्यात्वी तीर्थ में काशी गङ्गाजी भेजकरके पवित्र कराये (इसका विशेष आगे लिखनेमें आवेगा) इसलिये भी बूढ़ियोंका सरणा आपही लेते हो ।

इत्यादि अनेक बातोंमें छठे महाशयजी आप लोगही बूढ़ियोंका सरणा लेकर उन्होंनेही अनुकरण करते हो, तथापि आपने श्रीबुद्धिसागरजीको बूढ़ियोंका सरण लेनेका लिखा है सो प्रत्यक्ष मिथ्या है क्योंकि श्रीबुद्धिसागरजीनें बूढ़ियोंका सरणा लेनेका कोई भी कार्य नहीं करा है इतने पर भी आपके दिलमें यह होगा कि श्रीबुद्धिसागरजीनें बूढ़ियोंकी सारफत पत्र हमको पहुंचाया इसलिये बूढ़ियोंका सरणा लेनेका हमने लिखा है तो भी महाशयजी यह आपका लिखना सर्वथा अनुचित है क्योंकि दुनियामें यह तो प्रसिद्ध व्यवहार है कि--कोई गांममें किसी आदमीको एक पत्र भेजा जिसका जबाब नहीं आया तो थोड़े दिनोंके बाद दूसरा भी पत्र भेजनेमें आता है, दूसरे पत्रका भी जबाब नहीं आनेसे तीसरी

[२३७]

बेर उसी गांवका प्रतिष्ठित आदमी मारफत अथवा अपना जानकार संवेगी तथा ढूंडिया ती क्या परन्तु ब्राह्मण, सेवग, खगैरह हरेक जातिका हरेक धर्मवाला पुरुषकी मारफत उसीका निर्णय करनेमें आता है तैसेही श्रीबुद्धिसागरजीने भी किया अर्थात् दो पत्र आपको शास्त्रका प्रमाण पूछनेके लिये भेजे तथापि आपका कुछ भी जबाब नहीं आया तब तीसरी बेर प्रसिद्ध आदमी अपना जानकारके मारफत, आपको भेजे हुए पूर्वोक्त पत्रोंका जबाब पूछाया उसमें सरणा लेनेका कदापि नहीं हो सकता है परन्तु आप लोग अनेक बातोंमें ढूंडियांका सरणा लेते हो सो ऊपरमेंही लिख आया हूं सो विचार लेना;—

और दोनुं गच्छवालोंके आपसमें वादविवाद तथा कोर्ट कचेरीमें भगडा टंटा रूप कृथा युद्ध करनेको तथा करानेको आपही तैयार हो सो तो आपके लेखसें प्रत्यक्ष दीखता है ।

महाशयजी अब--किसकी मनः कामना पूर्ण न होनेसें किसीने ढूंडियांका सरणा लेकर युद्धारम्भ करना चाहा है और सूर्यनखाकी तरह दोनुं पक्षको दुःखदाई भी कौन हुवा है सो ऊपरका लेखको तथा आगेका लेखको और इन्ही ग्रन्थको पढ़कर हृदयमें विवेक बुद्धि लाकर विचार कर लीजिये,---

और श्री आगे छठे महाशयजी अपने और अपने गुरुजी न्यायाम्भोनिधिजीके उत्सूत्र भाषणके कृत्योंको तथा उन कृत्योंके फल विपाकोंको न देखते हुए श्रीबुद्धिसागरजी ने शास्त्रोंके पाठोंका प्रमाण सहित पत्र लिखकर पालणपुर

[२१८]

निवासी सहता पीताम्बरदास हाथीभाईको भेजा था उस पत्रके शाखोंके पाठोंको छोड़करके और छिद्रयाही हो करके उस पत्रपर द्वेषबुद्धिसें उठे महाशयजीनें वधाही आक्षेप किया है और उनके साथ कितनीही निष्प्रयोजनकी बातें लिखी है उसीका जबाब आगे (छठे महाशयजीके दूसरे गुजराती भाषाके लेखका जबाब छपेगा) वहां लिखनेमें आवेंगा ;—

और आगे फिर भी उठे महाशयजीनें लिखा है कि (बनारससें प्रसिद्ध हुआ मुनि धर्म्मविजयजीके शिष्य मुनि विद्याविजयजीका, पर्युषणा विचार नामा लेख देख लेना) इसपर भी मेरेको प्रथम इतनाही कहना है कि तीसरे महाशयजी श्रीविजयविजयजीनें श्रीसुखबोधिका वृत्तिमें पर्युषणा सम्बन्धी प्रथम अपने लिखे वाक्यार्थको छोड़ करके गच्छ कदाग्रहके हठवादसें उत्सूत्र भाषणका भय न करते अनेक कुतर्कों करी है (जिसका निर्णय इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ६८ से १५० तक उपरमेंही छप चुका है) उन्ही कुतर्कोंको देखके सातमें महाशयजी श्रीधर्म्मविजयजी तथा उन्हके शिष्य विद्याविजयजी भी कदाग्रहकी परम्परामें पड़के उत्सूत्र भाषणकेही कुतर्कोंका संग्रह करके, शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायके विरुद्ध होकरके अधूरे अधूरे पाठ लिखकर भोले जीवोंको मिथ्यात्वमें गेरनेंके लिये अपना लेख प्रगट करा है (इसका जबाब आगे छपेगा) उसीकोही गुजराती भाषामें जैन पत्रवालेनेभी अपना संसार बढ़ानेके लिये अपने जैन पत्रमें प्रगट करा है और उसी उत्सूत्र भाषणकी कुतर्कोंको उठे महाशयजी आय भी देखनेका लिखकर उन्हीको पुष्ट

[२९९]

करके उसी तरहके उत्सूत्र भाषणके कलप्राप्त करनेके लिये आप भी उसीमें फसे, हाय अफसोस—गच्छ कदाग्रहके घस होकरके अपना पक्ष जमानेके लिये सत्य असत्यका निर्णय किये बिना अपनी मतिकल्पनासें इतने विद्वान् कहलाते भी स्वच्छन्दाचारीसें लिखते कुछ भी विचार नहीं किया यह तो इस कलियुगकाही प्रभाव है,—

और दूसरा यह है कि न्याय अन्यायको न देखने वाले तथा दृष्टिरागके भूटे पक्षपाही और कदाग्रहके कार्यमें आगेवान ऐसे श्रीकलकत्तानिवासी श्रीतपगच्छके लक्ष्मीचन्दजी सीपाणीको पालणपुरसें श्रीवल्लभविजयजीकी तरफका पत्र आया था उसी पत्रमें ६-७ जगह मिथ्या बातें लिखी है उसी पत्रके अक्षर अक्षरका उतारा, मेरे (इस ग्रन्थकारके) पास है उसी उतारेकी नकलको यहाँ लिखकर उसीकी समीक्षा करनेका मेरा पूरा इरादा था परन्तु विस्तारके कारणसें सब न लिखते नमूनारूप एक बात लिख दिखाता हूँ—

छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजी लक्ष्मीचन्दजी सीपाणीको लिखते हैं कि [बनारससें यर्युषणा विचार नामा ट्रेकट निकला है उसीकाही भाषान्तर छापेवालेने छापा है इसमें हमारा कोई मतलब नहीं है ना हम इस बातको मन वचन काया करके अच्छी समझते हैं] इस जगह सज्जन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि सीपाणीजीके पत्रमें यर्युषणा विचारको तथा उसीका भाषान्तर छापेवालेनें छापेमें प्रसिद्ध करा है उसीको छठे महाशयजी मन, वचन, कायासें अच्छा नहीं समझते हैं

[२८७]

तो फिर उसी बातको याने पर्युषणा विचारको देख लेनेका लिख करके उसीको छापामें पुष्ट किया, यह तो प्रत्यक्ष सायावृत्तिका कारण है इसलिये जो सीपाणीजीके पत्रका वाक्य छठे महाशयजी सत्य मानेंगे तो छापेमें पर्युषणा विचारको पुष्ट करनेका जो वाक्य लिखा है सो वृथा हो जावेगा और छापेका वाक्य सत्य मानेंगे तो सीपाणीजीके पत्रका वाक्य मिथ्या हो जावेगा और पूर्वा-पर विरोधी विसंवादी दोनों तरहके वाक्य कदापि सत्य नहीं हो सकते हैं इसलिये दोनोंमेंसे एक सत्य और दूसरा मिथ्या माननाही प्रसिद्ध न्यायकी बात है, जिससे सीपाणी जीके पत्रका वाक्यको सत्य मानोंगे तो छापेका लेख विसं-वादीरूप मिथ्या होनेकी आलोचना छठे महाशयजी आप को लेनी पड़ेगी और छापेका वाक्यको सत्य मानोंगे तो सीपाणीजीके पत्रका वाक्य विसंवादीरूप मिथ्या होनेकी आलोचना लेनी पड़ेगी और पर्युषणा विचारमें उत्सूत्र वाक्य लिखे हैं उसीके अनुमोदनके फलाधिकारी होना पड़ेगा सो विवेक बुद्धि हो तो अच्छी तरह विचार लेना ;

और छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीके खबरदारका इस लेखमें तथा सावधान सावधानका दूसरा गुजराती भाषाका लेखमें और सीपाणिजीके पत्रका लेखमें इन तीनों लेखोंका वाक्यमें कितनीही जगह सायावृत्ति (कपट) का संग्रह है इससे श्रीवल्लभविजयजीको कपट विशेष प्रिय मालूम होता है और चर्चाचन्द्रोदय की पुस्तकमें भी श्री-वल्लभविजयजीको 'दम्भप्रिय' लिखा है सोही नाम उपरके कृत्योंसे सत्य कर दिखाया है,—

[२८९]

और इसके आगे दम्भप्रियजी श्रीवसुभविजयजीने अपने लेखके अन्तमें जो लिखा है उसीको यहां लिखके (पीछे उसीकी समीक्षा कर) दिखाता हूं ;—

[बुद्धिसागर मुनिजी ! याद रखना वो प्रमाण माना जावेगा, जो कि—तुम्हारे गच्छके आचार्योंसे पहिलेका होगा मगर तुम्हारेही गच्छके आचार्यका लेख प्रमाण न किया जावेगा ! जैसा कि तुमने श्रीजिनपति सूरिजीकी समाचारीका पाठ लिखा है कि, दो श्रावण होवे तो पीछले श्रावणमें और दो भाद्रपद होवे तो पहिले भाद्रपदमें पर्युषणापर्व—सांवत्सरिक कृत्य—करना ! क्योंकि, यही तो विवादास्पद है कि, श्रीजिनपतिसूरिजीने समाचारीमें जो यह पूर्वोक्त हुक्म जारी किया है कौनसे सूत्रके कौनसे दफे मुजिव किया है हां यदि ऐसा खुलासा पाठ पञ्चाङ्गीमें आय कही भी दिखा देवे कि, दो श्रावण होवे तो पीछले श्रावणमें और दो भाद्रपद होवे तो पहिले भाद्रपदमें--सांवत्सरिक प्रतिक्रमण, केशलुञ्जन, अष्टमतपः, चैत्यपरिपाटी, और सर्वसंचके साथ खानणाख्य पर्युषणा वार्षिक पर्व करना, तो हम माननेको तैयार है !]

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि—हे सज्जन पुरुषों उठे महाशयजी दम्भप्रियेजीके अन्तरमें कपट भरा हुवा होनेसे ऊपरका लेख भी कपटयुक्त लिखा है क्योंकि (बुद्धिसागर मुनिजी याद रखना वो प्रमाण माना जावेगा जो कि तुम्हारे गच्छके आचार्योंसे पहिले का होगा) यह अक्षर बड़े महाशयजीके मायाश्रुतिसे दृष्टिरागी भोले जीवोंको दिखाने मात्रही है नतु प्रमाण

[२२]

करनेके लिये यदि ऊपरके अक्षर प्रमाण करनेके लिये होवे तो—अधिक मासकी गिनती, तथा पचास(५०) दिने पर्युषणा और श्रीवीरप्रभुके छ (६) कल्याणक, सामयिकाधिकारे प्रथम करेनिभंते पीछे इरियावही बगैरह अनेक बातें श्री तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंनें और पूर्वधरादि श्रीजैन शासनके प्रभाविक पूर्वाचार्योंनें पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें प्रगटपने खुलासेके साथ कही है जिस पर छठे महाशयजी की श्रद्धा नहीं जिससें प्रमाण नहीं करते हुए उलटा निषेध करके उत्सूत्र भाषणसें संसार वृद्धिका भय नहीं रखते हैं ।

वहीही आश्चर्यकी बात है कि श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी तथा पूर्वाचार्योंकी कथन करी हुई अनेक बातें प्रमाण न करते हुए उत्सूत्र भाषणरूप अपनी मति-कल्प नासें चाहे वैसा वर्ताव करना और पूर्वाचार्योंका प्रमाण संजूर करनेका दिखाकर आप भले बनना यह तो प्रत्यक्ष सायावृत्तिसें छठे महाशयजीनें अपने दम्भप्रिये नामको सार्थक करके विशेष पुष्ट करनेके सिवाय और क्या लाभ उठाया होगा सो इन्ही ग्रन्थको पढ़नेवाले सज्जन पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और आगे फिर भी दम्भप्रियेजीनें लिखा है कि (तुम्हारेही गच्छके आचार्योंका लेख प्रमाण न किया जावेगा) यह लिखना छठे महाशयजी दम्भप्रियेजीको श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातना कारक पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंका उत्पादनरूप मिथ्यात्वको बढ़ाने वाला संसार वृद्धिका कारणभूत हैं क्योंकि—

१ प्रथमतो—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी परम्

[२८३]

परानुसार पञ्चाङ्गीके अनेक प्रमाणयुक्त श्रीखरतरगच्छके बुद्धि निधान प्रभाविकाचार्योंने अनेक शास्त्रोंकी रचना भव्य जीवोंके उपगारके लिये करी है जिसको न माननेवाले दम्भप्रियेजी जैसे प्रत्यक्ष श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आशातना करनेवाले पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके उत्थापक अद्वारहित जैनाभास मिथ्यात्वी बनते हैं इस बातके विशेष सज्जन पुरुष अपनी बुद्धिसें स्वयं विचार लेवेंगे,—

२ दूसरा यह है कि—श्रीखरतरगच्छ प्रसिद्ध करनेवाले श्रीजिनेश्वर सूरिजी महाराजकृत श्रीअष्टकजी सूत्रकी वृत्ति तथा श्रीपञ्चलिङ्गी प्रकरण मूल और तद्वृत्ति श्रीखरतरगच्छ के श्रीजिनपति सूरिजी कृत और श्रीखरतरगच्छ नायक सुप्रसिद्ध बुद्धिनिधान महान् प्रभाविक श्रीमदभयदेवसूरिजी महाराजनें श्रीनवाङ्गी वृत्ति उपरान्त श्रीउवाङ्गी श्रीपञ्चाशक जी श्रीषोडशकजी वगैरहकी अनेक वृत्ति और प्रकरणस्तोत्रादि बहुतही शास्त्रोंकी रचना करी है तथा और भी श्रीखरतरगच्छके अनेक आचार्योंने सैकड़ों शास्त्रोंकी रचना करी है जिन्हकोमानते हैं व्याख्यानमें पाँचते हैं तथापि दम्भप्रियेजी (तुम्हारे गच्छके आचार्योंका लेख प्रमाण न किया जावेगा) ऐसा लिखते हैं सो कितनी मायावृत्तिसें अन्याय कारक है इसको भी निष्पक्षपाती सज्जन स्वयं विचार सकते हैं ;—

और श्रीजिनेश्वर सूरिजीसें निश्चय करके श्रीखरतरगच्छ प्रसिद्ध हुवा है इसलिये श्रीनवाङ्गीवृत्तिकार श्रीमदभयदेव सूरिजी भी श्रीखरतरगच्छमें हुवे हैं तथापि श्रीजिनवल्लभ सूरिजीसें अथवा श्रीजिनदत्त सूरिजीसें १२७४ में खरतर हुवा

[२८४]

ऐसा कहते हैं सो मिथ्यावादी है इसका विशेष विस्तार शास्त्रोंके प्रमाण सहित इस ग्रन्थके अन्तमें करनेमें आवेंगा,—

३ तीसरा यह है कि—खास दम्भप्रियेजीके गुरुजी श्री-न्यायाम्भोनिधिजीनें चतुर्थ स्तुतिनिर्णयः पुस्तकमें श्रीखर-तरगच्छके श्रीअभयदेव सूरिजी श्रीजिनवज्रभ सूरिजी श्रीजिनपतिसूरिजी वगैरह आचार्योंकी समाचारियोंके पाठ लिखे हैं और श्रीखरतरगच्छके आचार्यका वचनको नही मानने वालोंको पृष्ठ ८८ के मध्यमें मिथ्यात्वी ठहराये हैं (इसका खुलासा इन्ही ग्रन्थके पृष्ठ १५९ । १६० में छपगया है) और दम्भप्रियेजी श्रीखरतरगच्छके आचार्यजीका लेख प्रमाण नही करके अपने गुरुजीके लेखसें ही आप मिथ्यात्वी बनते हैं सो भी वहीही आश्चर्यकी बात है ;—

४ चौथा यह है कि—दम्भप्रियेजी श्रीखरतरगच्छके आचार्यजीका लेख प्रमाण नही करते हैं इसको देखके और भी कितनेही अज्ञानी तथा गच्छ कदाग्रही अपनेअपने गच्छके आचार्योंका लेखको प्रमाण मान करके और सब गच्छवालोंके आचार्योंका लेखको प्रमाण नही मानेंगे जिस से श्रीजिनवाणीरूपी पञ्चाङ्गीके सैकड़ों शास्त्रोंका उत्पादन होगा और अपनी अपनी मतिकल्पना करके चाहे जैसा वर्त्ताव करना सुरू करेंगे तो श्रीजिनेश्वर भगवान्की अति उत्तम, अविसंवादी, श्रीजैनशासनकी अखण्डित मर्यादा भी नही रहेगी और कदाग्रही लोग अपने अपने पक्षका आग्रह में फसके मिथ्यात्व बढ़ाते हुवे संसार वृद्धि करेंगे जिसके दोषाधिकारी दम्भप्रियेजी वगैरह होवेंगे और आप दूसरे गच्छके आचार्यका लेख प्रमाण नही करेंगे तो दूसरे गच्छवाले

[२८५]

आपके गच्छके आचार्योंका लेख प्रमाण नहीं करने जिससे भी वृथा वाद विवादसे निवृत्तावस्था रहता रहेगा और सत्य असत्यका निर्णय भी नहीं हो सकेगा और दम्भप्रियजी अनेक गच्छोंके आचार्योंका लेखको प्रमाण करते हैं परन्तु श्रीखरतरगच्छके आचार्योंका लेख प्रमाण नहीं करते हैं यह भी तो प्रत्यक्ष अन्यायकारक हठवादका लक्षण है इसलिये दम्भप्रियजी वगैरह महाशयोंसे मेरा यही कहना है कि—

श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महारजोंकी परम्परा मुजब, पञ्चाङ्गीके प्रमाण पूर्वक कालानुसार, न्यायकी युक्ति करके सहित श्रीखरतरगच्छके आचार्योंका तो क्या परन्तु सब गच्छके आचार्योंका लेखको प्रमाण करना सोही आत्मार्थी मोक्षाभिलाषी सज्जनोंको परम उचित है ।

वैसेही इस ग्रन्थकारने भी श्रीतपगच्छके श्रीधर्मसागर जी तथा श्रीजयविजयजी और श्रीविनयविजयजी इन तीनों महाशयोंके शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक लिखित पाठोंको इसीही ग्रन्थके आदिका भागमें पृष्ठ ९।१०।११ में लिखे हैं और उसीका भावार्थ भी पृष्ठ १२ से १५ तक लिखके उसीका तात्पर्यको पृष्ठ १६ में प्रमाण किया है (और इन तीनों महाशयोंने प्रथम अपने लिखे वाक्यार्थको छोड़के गच्छ कदाग्रहका मिथ्या पक्षको स्थापन करनेके लिये उत्सूत्र भाषणरूप अनेक बातें लिखी है जिसकी समीक्षा भी शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ६८ से १५० तक उपरमें छप गई है) और भी श्रीतपगच्छके अनेक आचार्यों के लेख प्रमाण करनेमें आते हैं जैसे इस ग्रन्थकारने श्रीतपगच्छके आचार्योंके शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक लेखोंको

[२८६]

प्रमाण किये हैं—तैसेही छठे महाशयजी आप भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी वाणीरूप पञ्चाङ्गीको अद्वापूर्वक प्रमाण करनेवाले आत्मार्थी मोक्षाभिलाषी होवोंगे तो श्रीखरतरगच्छके आचार्योंके शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक लेखों को अवश्यही प्रमाण करके अपने मिथ्या हठवादको जलदी ही छोड़ देवोंगे तो ऊपर कहे सो दूषणोंका बचाव होनेसे बहुत लाभका कारण होगा आगे इच्छा आपकी ;—

और आगे फिर भी दम्भप्रियेजीने लिखा है कि (तुमने श्रीजिनपति सूरिजीकी समाचारीका पाठ लिखा है कि दो आवण होवे तो पीछले आवणमें और दो भाद्रपद होवे तो पहिले भाद्रपदमें पर्युषणापर्व—सांवत्सरिक कृत्य करना) यह लिखना भी छठे महाशयजी आपका कपटयुक्त है क्योंकि श्रीबुद्धिमागरजीने पूर्वधरादि महाराजकृत तीन शास्त्रोंके पाठ लिखके भेजे थे जिसमेंके पूर्वधराचार्यजी महाराजके मूलसूत्रके तथा चूर्णिके दोनू पाठोंको छुपाते हो सोही छठे महाशयजी आपका कपट है इसलिये मैं इस जगह प्रथम आपका कपटको खोलकरके पाठक वर्गको दिखाता हूँ—

१ प्रथम श्रीचौदह पूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु स्वामीजी कृत श्रीकल्पसूत्रका मूलपाठ लिखा था उसी पाठमें आषाढ़ चौमासीसे एकमास और बीशदिने पर्युषणा करना कहा है आवण अथवा भाद्रपदका नियम नहीं कहा है परन्तु ५० दिनका नियम है सोही दिनोंकी गिनतीसे ५० दिने पर्युषणा करना चाहिये श्रीकल्पसूत्रका मूलपाठ भाषार्थ सहित इसीही ग्रन्थके आदिमें पृष्ठ ४।५।६में छप गया है सोही पाठ इस वर्तमान कालमें आत्मार्थियोंको प्रमाण करने योग्य है ;

[२८७]

१ दूसरा श्रीपूर्वधर पूर्वाचार्यजी कृत श्रीवृहत्कल्प-
चूर्णिका पाठ लिख भेजा था सोही श्रीवृहत्कल्पचूर्णिके
तीसरे उद्देशके पृष्ठ २६४ से २६५ तकका पर्युषणा सम्बन्धी
पाठको यहां लिख दिखाता हूं तथाच तत्पाठः—

इदाणिं जंमि काले वासावासं ठाइतव्वं, जच्चिरं वा जाए
वा विहीए तं भणन्ति, आसाइ गाथा बाहिं ठिया गाथा,
उस्सग्गेण जाय आसाइपुस्सिमाए चेव पज्जोसवेति, असत्ति
खेतस्स बाहिंठाइत्ता, वसभा खेतं अतिगन्तुं वासावास-
जोग्गाणि, संधारण खेज्जमल्लगादीणि गिएहन्ति, काइयउच्चा-
रणा भूमिओ बंधन्ति, ताहे आसाइपुस्सिमाए अतिगन्तुं, पञ्चेहिं
दिवसेहिं पज्जोसयणा कप्पं कथित्ता, सावखबहुलपरुखस्स
पल्लमीए पज्जोसवेति पज्जोसवित्ता, उक्कोसेणं मग्गसिर-
बहुलदससीओ जाव, तत्थ अत्थितव्वं, किंकारणं पच्चिस्सकालं
वसति जतिचिरुखली वासं वा पडति, तेण इच्चिरं इधरा
कत्तियपुस्सिमाए चेव णिग्गन्तव्वं, एत्थतु गाथा अस्मिन्नत्र
पज्जोसवेइ इत्यर्थः ॥ अणभिग्गहितं णाम, गिहत्था जति
पुच्छन्ति, ठितत्थं वासावासं एवं, पुच्छितेहिं, भणियव्वं, ण
ताव ठामो केच्चिरंकालं एवं, वीसतिरायं वा मासं, कथं,
जति अधिमासतो पडितो तो वीसतिरायं, गिह्हिणातं ख
कज्जति, किंकारणं, एत्थ अधिमासओ चेव मासो गणि-
ज्जति, सो वीसाए सभं, वीसतिरातो भस्सति चेव, अथ ण
पडितो अधिमास तो वीसतिरातं मासं, गिह्हिणातं ख
कज्जति, किं पुण एवं उच्यते । असिवादि गाथाहुं, असिवा-
दीणि कारणानि जातानि, अथवा ण निरातं वासं आरुहं,
ताचे सोमो चिंसेज्जा अणावुठित्ति तेण चस्स संग्गहे करेति,

[२८८]

असंथरं ताणं शिगगसणं दो तेहियभणियं ठियामोत्ति, पच्छा लो गो भणेज्जा एत्तिज्जयंपि एते ण याणन्ति एवं पव-
यथोवधातो भवति, ठियामोत्तिय भणि ते लो गो चित्तेह जाणन्ते अवस्स वरिसइ ताथे लो गो परछंदेण हलकुलियादी करेति, तम्हा सवीसति राते मासे अभियहीतं गृहीक्षातमि-
त्यर्थः । एत्थउगाथा एत्थेति, आसाढ चउम्मासिए पडिक्कंते, पञ्चेहिं पञ्चेहिं दिवसेहिं गतेहिं, जत्थ जत्थ वासावास-
योग्गं खेत्तं पडिपुस्सं तत्थ तत्थ पज्जीसवे यत्तं, जाव सवीसइ रातो मासो, उस्सग्गेण पुण आसाढसुद्धदसमि पच्छद्धं, इय-
सत्तरी गाथा, एवं सत्तरी भवति, सवीसति राते मासे पज्जी सवेत्ता, कत्तिय पुस्सिमाए पडिकमित्ता, वितियदिवसे शिगग-
याणं, पञ्चसत्तरी भट्ठवयअभावसाए पज्जीसवेताणं, भट्ठवयबहुलदसमीए असीत्ति, भट्ठवयबहुलपञ्चमीए पञ्चासीति सावणपुस्सिमाए णउत्ति, सावणसुद्धदसमीए पञ्चणउत्ति, सावण सुद्धपञ्चमीए सत्तं, सावण अभावसाए पंचुत्तरं सत्तं, सावण-
बहुलदसमीए दसुत्तरं सत्तं, सावणबहुलपञ्चमीए पणरसुत्तरं सत्तं, आसाढपुस्सिमाए वीसुत्तरं सत्तं, कारणे पुण उम्मासितो जेठोत्ति उक्कोसो उगगहो भवन्ति, कथं जति वा पच्छद्धं अस्य व्याख्या, कत्तिएण गाथा उवट्ठिए, आसाढ मासकप्पए कते वासावासपाउग्ग खेत्तासती, तत्थेव वासो कातव्वो, पञ्चहिं दिवसेहिं पज्जीसवणा कप्पं कथिता, चाउम्मासिए चेव पज्जीसर्वेति, तं पुण इमेण कारणेण मग्गसिरं अत्थिज्जइ जति वासति पच्छद्धं आलम्बणं मासं पडेति, चिरकल्लो, आसाढे वासा रत्तिया चत्तारि मग्गसिरोय एते उम्मासिओ जेट्ठोगहो, पट्थाणेहिं पवसेहिंपि निगगतव्वं ।

[२८]

देखिये ऊपरके पाठमें पर्युषणाधिकारे चैव मिश्रय करके अधिकमासकी गिनतीमें कहा है और पूर्वधरादि उपविहारी महानुभावोंके लिये निवासरूप पर्युषणा (योग्यक्षेत्र तथा उपयोगी वस्तुयोंका योग होनेसे) उत्सर्गसे आषाढ़पूर्णिमाकोही करनी कही परन्तु योग्यक्षेत्रादिके अभावसे अपवादसे पांच पांच दिनकी वृद्धि करते अभि-वर्द्धित संवत्सरमें बीस दिन (आवण शुक्लपक्षमी) तक तथा चन्द्रसंवत्सरमें पचास दिन (भाद्रपदशुक्लपक्षमी) तक पर्युषणा करनी कही—आषाढ़पूर्णिमाकी तथा पांच पांच दिन की वृद्धिकी पर्युषणाकी अधिकरणदोषोंकी उत्पत्ति न होनेके कारण गृहस्थी लोगोंके न जानी हुई अज्ञात पर्युषणा कही है इसका विशेष खुलासा इन्ही ग्रन्थमें अनेक जगह छप गया है और बीसदिने तथा पचास दिने गृहस्थी लोगोंकी जानी हुई ज्ञातपर्युषणा कही उसीमें वार्षिक कृत्य बगैरह करनेमें आतेथे इसकाभी खुलासा इन्ही ग्रन्थमें अनेक जगह छप गया है जिसमें भी विशेष विस्तार पूर्वक पृष्ठ १०३ से ११७ तक अच्छी तरहसे निर्णय करनेमें आया है । और मासवृद्धिके अभावसे पर्युषणाके पिछाड़ी कार्तिक तक ७० दिन रहते हैं तैसेही मासवृद्धि होनेसे पर्युषणाके पिछाड़ी कार्तिक तक १०० दिन रहते हैं इसका भी विस्तार अनेक जगह छप गया है जिसमें भी विशेष करके पृष्ठ १२० से १२९ तक और १७४ से १८३ तक अच्छी तरहसे निर्णयके साथ छप गया है और उत्कृष्टसे १८० दिन का कल्प कहा है :

और तीसरा श्रीजिनपतिसूरिजी कृत श्रीसमाचारी ग्रन्थका पाठलिखभेजाथा सोहीपाठ यहां दिखाताहूं यथा :—

[२९०]

साधने भट्टवएवा, अहिगमासे चाउमासीओ ॥ पस्सास
इमे दिणे, पज्जोसवणा कायव्वा न असीमे, इति—

भावार्थः—आवण और भाद्रपद मास अधिक होते भी
आषाढ़ चौमासीसे पचासमै दिन पर्युषणा करना चाहिये परन्तु
अशीमें दिन नहीं करना । इस जगह सज्जन पुरुषोंको विचार
करना चाहिये कि ऊपरोक्त तीनों शास्त्रोंके पाठ आग-
मानुसार तथा युक्ति पूर्वक होनेसे छठे महाशयजीको प्रमाण
करने योग्य थे तथापि गच्छका पक्षपातके और पण्डिताभि-
मानके जोरसे ऊपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंकी प्रमाण
न करते हुवे श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठको तथा श्रीबृहत्कल्प-
चूर्णिके पाठको छुपाकरके मायावृत्तिसे श्रीजिनपति सूरिजी
की समाचारीके पाठ पर अपने विद्वत्ताकी चातुराई दिखाई
है कि (यही तो विवादास्पद है कि श्रीजिनपति सूरिजीनें
समाचारीमें जो यह पूर्वोक्त हुकमजारी किया है कौनसे
सूत्रके कौनसे दफे मुजिब किया है) छठे महाशयजीके इस
लेख पर मेरेको बड़ाही आश्चर्य सहित खेदके साथ लिखना
पड़ता है कि श्रीवल्लभविजयजीको अनुमान २२। २३ वर्ष दीक्षा
लिये हुए है तथा कुछ व्याकरणादि भी पढ़े हुए सुनते हैं
परन्तु इस जगह तो श्रीवल्लभविजयजीनें अपनी खूब अज्ञता
प्रगट करी हैं क्योंकि श्रीनिशीथसूत्रके लघु भाष्यमें, १
तथा बृहद्भाष्यमें २ और चूर्णिमें ३ श्रीबृहत्कल्पसूत्रके लघु
भाष्यमें ४ तथा बृहद्भाष्यमें ५ और चूर्णिमें ६ श्रीदशश्रुत-
स्कन्धसूत्रमें ७ तथा चूर्णिमें ८ श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें ९ तथा
तद्वृत्तिमें १० और श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रकी वृत्तिमें ११ इत्यादि
अनेक शास्त्रोंमें कहा है कि पचास दिने अवश्यही पर्युषणा

[२९१]

करनी चाहिये । तथापि पर्युषणा करने योग्यक्षेत्र नहीं मिले तो विजय (जङ्गल) में भी वृक्ष नीचे पचास वें दिन जरूर पर्युषणा करनी परन्तु पचासवें दिनकी रात्रिको उलझड़न नहीं करना यह बात तो प्रसिद्ध है इसीके सम्बन्धमें इन्हीं ग्रन्थके आदिमें श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रकी वृत्तिका पाठ पृष्ठ १८।१९ में और श्रीवृहत्कल्पवृत्तिका पाठ पृष्ठ २१ से २५ तक, और श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रकी चूर्णिका पाठ पृष्ठ ९१ से ९४ तक, और श्रीनिशीथसूत्रकी चूर्णिका पाठ पृष्ठ ९५ से ९९ तक, तथा तद्भाष्य पृष्ठ १०० से १०५ तक छप गया है,—

ऊपरोंक्त शास्त्रोंमें आषाढ़ चौमासीसे पांच पांच दिनोंकी वृद्धि करते (दशवें पञ्चकमें) पचासवें दिने प्रसिद्ध पर्युषणा मासवृद्धिके अभावसे चन्द्रसंवत्सरमें करनी कही है और मासवृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित संवत्सरमें पांच पांच दिनोंकी वृद्धि करते (चौथे पञ्चकमें) बीसवें दिने प्रसिद्ध पर्युषणा कही सो प्राचीनकालाश्रय पूर्वधरादि उपविहारी सहाराओंके लिये श्रीजैनज्योतिषके पञ्चाङ्ग मुजब वर्तनेके सम्बन्धमें कही परन्तु अबी इस वर्तमानकालमें जैन पञ्चाङ्ग के अभावसे और पड़ते कालके कारणसे ऊपरका व्यवहार श्रीसन्धकी आज्ञासे विच्छेद हुवा है सोही दिखाता हूं ।

श्रीतीत्योगालिय (तीर्थोद्धार) पयत्रामें कहा है - यथा ;—

वीसदिनेहिं कप्पो, पंचगहाणीय कप्पठवणाय,

नवसय तेणउएहिं, वुच्छिन्ना संघआणाए ॥ १ ॥

देखिये ऊपरकी गायामें बीस दिनका कल्प, तथा पांच पांच दिनकी वृद्धि करके अज्ञातपर्युषणास्थापन करनेसे पिछाड़ी कालावग्रह संबंधी श्रीवृहत्कल्पवृत्ति, श्रीदशाश्रुतचूर्णि,

[२९२]

श्रीनिशीथचूर्णि, श्रीवृहत्कल्पचूर्णिके, पाठ खुलासापूर्वक छप गये हैं सोही पंचकपरिहानीका कल्प, और कल्प स्थापना याने—योग्य क्षेत्रके अभावसे पांच पांच दिनकी वृद्धिसे अज्ञातपर्युषणा स्थापन करे उसी रात्रिकी वहां श्रीकल्पसूत्र के पठन करनेका कल्प, यह तीनों बातें वीर संभवत् ९९३ (विक्रम संभवत् ५२३) में श्रीसंघकी आज्ञासे विच्छेद हुई । तब चन्द्रसंवत्सरमें और अभिवर्द्धितसंवत्सरमें भी आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने पर्युषणा करनेके कल्पकी मर्यादा रही तथा पचासवें दिनही श्रीकल्पसूत्रके पठन करनेके कल्पकी मर्यादा भी रही और उसी वर्ष श्रीमान् परम उपगारी श्रीदेवर्द्धिगणिकमाश्रमणजी महाराजने श्रीजैन-शास्त्रोंकी पुस्तका रूढमें किये उसी समय श्रीदशाश्रुत-स्कन्धसूत्रके आठमें अध्ययनको लिखती वस्तु, जिन चरित्र तथा स्थिरावली और साधुसमाचारीका संग्रह करके अष्टम अध्ययनको संपूर्ण किया तब पांच पांच दिनकी वृद्धिसे अभिवर्द्धित संभवत्सरमें चार पञ्चक बीस दिनका तथा चन्द्र-संवत्सरमें दशपञ्चकका (कल्प) व्यवहारको न लिखा और चन्द्रसं० अभिवर्द्धितसं० इन दोनों संभवत्सरोंमें ५० दिनका एकही नियम होनेसे पचास दिनेही प्रसिद्ध पर्युषणा करनेका नियम दिखाया है यह श्रीदशाश्रुतस्कन्धसूत्रका अष्टमाध्य-यन श्रीकल्पसूत्रजीके नामसे जूदा भी प्रसिद्ध है उसी श्री-कल्पसूत्रका पर्युषणा सम्बन्धी पाठ भावार्थ सहित इन्ही ग्रन्थकी आदिमें पृष्ठ ४५५६ तक छप चुका है सोही पाठार्थ सूर्यकी तरह प्रकाश करता है कि इस वर्तमानकालमें आ-षाढ़ चौमासीसे पचास दिन जहां पूरे होवे वहांही पर्यु-

[२९३]

वर्णा करनी चाहिये इसीही श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठादिके अनुसार श्रीजिनपतिसूरिजीनें समाचारीमें लिखाहै कि— अधिक मास हो तो भी पचास दिने पर्युषणा करना परन्तु असी दिने नहीं करना चाहिये—इस लेखको देखके छठे महाशयजी लिखते हैं कि (पहीतो विवादास्पद है श्रीजिन पति सूरिजीने समाचारीमें जो यह पूर्वोक्त हुकम जारी किया है कौनसे सूत्रके कौनसे दफे मुजब किया है) इस पर मेरेको इतनाही कहना है कि श्रीकल्पसूत्रके पर्युषणा सम्बन्धी साधुसमाचारीका मूलपाठ इन्ही ग्रन्थके पृष्ठ ४।५ में छपा है उसी मूलपाठके अनेक दफे मुजब श्रीजिनपति सूरिजीनें समाचारीमें पूर्वोक्त हुकम जारी किया है सो श्रीजैन आगमानुसार है इसका निर्णय ऊपरमेंही कर दिखाया हैं इसलिये छठे महाशयजी आपको श्रीजिनपति सूरिजीके वाक्यमें जो शङ्कारूपी मिथ्यात्वका भ्रम पड़ा है सो उपरका लेखको पढ़के निकालदो और मिथ्या पक्षको छोड़कर सत्य बातको ग्रहण करके, निःसन्देहरूपी सम्यक्त्व रत्नको प्राप्तकरो क्योंकि आपके विवादास्पदका निर्णय उपरमेंही होगया है । और पृष्ठ १५७ से १६५ तक भी पहिले छपगया है ।

बड़ेही आश्चर्यकी बात है कि—श्रीवल्लभविजयजीको २२।२३ वर्ष दीक्षा लिये हुवे और हर वर्षे गांस गांसमें श्रीपर्युषणापर्वके व्याख्यानमें खुलासा पूर्वक व्याख्या सहित वंचाता हुवा श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठका तथा मूलपाठके व्याख्या का अर्थ भी उन्हकी समझमें नहीं आया होगा इसलिये ५० दिने पर्युषणा करनेका श्रीजिनपति सूरिजीका लेख पर शङ्का करी इससें साबूत होता है कि पर्युषणा सम्बन्धी

[२९४]

श्रीकल्पसूत्रके पाठसें तथा तद्पाठकी व्याख्यासें आप अज्ञ होवेंगे अथवा तो भोले जीवोंको गच्छ कदाग्रहका भ्रममें गेरनेके लिये जानते हुवे भी तीसरे अभिनिवेश सिध्दात्त्वके आधिन हो करके मायावृत्तिसें लिखा होगा सो विवेकी विद्वान् स्वयं विचार लेंगे :—

और आगे छठे महाशयजी दम्भप्रियजीनें फिरभी लिखा है कि (हाँ यदि ऐसा खुलासा पाठ पञ्चाङ्गीमें आप कहीं भी दिखा दें कि दो आवण होवे तो पीछले आवण में और दो भाद्रपद होवें तो पहिले भाद्रपदमें सांवत्सरिक प्रतिक्रमण, केश लुञ्चन, अष्टमतपः, चैत्यपरिपाटी, और सर्व सङ्गके साथ स्नामणारूप पर्युषणा वार्षिकपर्व करना तो हम माननेको तैयार है)

श्रीवल्लभविजयजीके इस लेखपर मेरेको प्रथमतो इतना ही कहना है कि ५० दिने दूसरे आवणमें पर्युषणा करने-वालोंको आपने आज्ञा भंगका दूषण लगाया तब श्रीबुद्धि-सागरजीनें आपको पत्र द्वारा पूछा कि कौनसे शास्त्रोंके पाठ मुजब ५० दिने पर्युषणा करनेवालोंको आपने आज्ञा भङ्गका दूषण लगाया है सो बतावो इस तरहसें शास्त्रका प्रमाण पूछा उसीको आप शास्त्रका प्रमाणतो बता सके नहीं तब पंडिताभिमानके जोर की मायावृत्तिसें निष्प्रयोजनकी अन्य अन्य बातें लिखके उछटा उन्हीसें ही शास्त्रका प्रमाण पूछने लगे सो दम्भप्रियजी यह आपका पूछना अन्यायकारक है क्योंकि प्रथम आपने ही आज्ञा भंगका दूषण लगाया है इसलिये प्रथम आपको ही शास्त्रका प्रमाण बताना न्याययुक्त उचित है तथापि जस तक आप

[२९५]

अपनी बात संबंधी शास्त्रका प्रमाण नहीं बतावोगे तब तक आपका दूसरोंको पूछना है सो निकेवल बाललीलावत् विवेकशून्यतासे अपने नामकी हासी करनेका कारण है सो विद्वान् पुरुष स्वयं विचार सकले है ;—

दूसरा—श्रीवज्रभविजयजी से मेरा (इस ग्रन्थकारका) बड़ेही आग्रहके साथ यही कहना है कि आपने ५० दिने पर्युषणा करनेवालोंको आज्ञा भंगका दूषण लगाया सो शास्त्रप्रमाण मुजब और न्यायकी युक्ति करके सहित सिद्ध कर दिखावो अथवा नहीं सिद्धकरसकोतो श्रीचतुर्विध संघ समक्ष मन बधन कायासे अपनी उत्सूत्रभाषणके भूलकी क्षमा मांगकर मिथ्या दुष्कृतसे अपनी आत्माको भवान्तर में उत्सूत्रभाषण की शिक्षा भोगनेसे बचालेवो ;—

और आप इन दोनोंमेंसे एक भी नहीं करोगे ओर इस बातको छोड़ कर निष्प्रयोजनकी अन्य अन्य बातोंसे वृथा वाद विवाद खण्डन मण्डन तथा दूसरेकी निन्दा अवहेलनासे भगड़ा टंटा करके आपसमें जो जो संपत्ति शासन उन्नतिके और भव्य जीवोंके उद्धारके कार्य होते हैं जिसमें विघ्नकारक राग द्वेष निन्दा ईर्ष्यासे कर्म बन्धके हेतु करोगे करावोगे और मिथ्यात्वको बढ़ावोगे जिसके दोषाधिकारी निमित्त भूत दम्भप्रियजी श्रीवज्रभविजयजी खास आपही होवोगे इस लिये निष्प्रयोजनकी अन्याय कारक वृथा अन्य अन्य बातों की छोड़कर अपनी बात संबंधी शास्त्रका प्रमाण दिखावो अथवा अपनी भूल समझके क्षमाके साथ मिथ्या दुष्कृतदेवो नहीं तो आप आत्मार्थी मोक्षाभिलाषी हो ऐसा कोईभी सज्जन नहीं मान सकेंगे किन्तु इस लौकिकमें दृष्टिरागि-

[२९६]

योंसें पूजता मानताके लिये परिहृताभिमानके जोरसें उत्सूत्रभाषणसें संसार वृद्धिका भय न करते बालजीवोंको कदाग्रहमें गेरके मिथ्यात्वकी बढ़ानेवाले आप ही सोतो श्रीजैनशास्त्रोंके तात्पर्यको जाननेवाले विवेकी सज्जन अवश्यही मानेंगे यह तो प्रसिद्धही न्यायकी बात है ;—

तीसरा यह है कि दूसरे श्रावणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणापर्व करने संबंधी यज्ञाङ्गीका पाठ पूछके मानने को छठे महाशयजी आप तैयार हुए हो परन्तु अपनी तरफसें पंचांगीका पाठ बता सकते नहीं हो इससें यह भी सिद्ध होगया कि इस वर्तमान कालमें दो श्रावण अथवा दो भाद्रपद होनेसें पर्युषणापर्व कबकरना जिसकी आपको अभीतक शास्त्रोंके प्रमाण मुजब पूरे पूरी मालूम नहीं है तो फिर दूसरोंकी आज्ञा भंगका दूषण लगाके निषेध करना यहतो प्रत्यक्ष आपका महामिथ्या उत्सूत्रभाषणरूप वृथा ही भगड़ेको बढ़ानेवाला हुवा सो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेंगे ;—

चौथा औरभी सुनो यहतो प्रसिद्ध बात है कि आषाढ चौमासीसें ५० दिने श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन वार्षिक कृत्यादिसें करना कहा है इस न्यायके अनुसार दूसरे श्रावण में अथवा प्रथम भाद्रपदमें ५० दिने पर्युषणा करना सोतो अल्प बुद्धिवाले भी समझ सकते हैं । तो फिर क्या छठे महाशयजीकी इतनी भी बुद्धिनहीं है सो ५० दिने दूसरे श्रावण में अथवा प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करने संबंधी यज्ञाङ्गी का पाठ पूछते हैं । इसपर कोई कहेगा कि छठे महाशयजी की ५० दिने पर्युषणा करनेकी बुद्धि तो हैं । इसपर मेरेको

[२९७]

इतनाही कहना है कि ५० दिने पर्युषणा करनेकी बुद्धि हैं तो फिर जानते हुवे भी तीसरे अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके अधिकारी क्यों बनके पञ्चाङ्गीका प्रमाण पूछकरके भोलेजीवों को संशयरूपी मिथ्यात्वका भ्रममें गेरे है और अधिकमास की गिनती निश्चय करके स्वयं सिद्ध है सो कदापि निषेध नहीं हो सकती है जिसका खुलासा इस ग्रन्थमें अनेक जगह छपगया है इसलिये दो आवण होतेभी ८० दिने भाद्रपदमें अथवा दो भाद्रपद होनेसे भी ८० दिने दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणा अपनी मति कल्पनासे श्रीजिनाज्ञाविरुद्ध क्यों करते है क्योंकि पचासवे दिनकी रात्रिको भी उल्लाङ्घन करनेवालेको शास्त्रोंमें आज्ञा विराधक कहा है इसलिये ८० दिने पर्युषणा करनेवाले अवश्यही आज्ञाके विराधक है यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है और ८० दिने पर्युषणा करनेका कोईभी श्रीजैनशास्त्रोंमें नहीं लिखा है परन्तु ५०दिने पर्युषणा करनेका तो पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें लिखा है सो इसीही ग्रन्थमें अनेक जगह छपगया है तथापि दंभप्रियजीने अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे दूसरे आवणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें ५० दिने पांच कृत्योंसे पर्युषणा वार्षिक पर्व करने संबंधी पंचांगीका पाठ पूछके भोले जीवोंको भ्रममें गेरे है सो दंभप्रियेजीके मिथ्यात्वका भ्रमको दूर करनेके लिये और मोक्षाभिलाषी सत्यग्राही भव्यजीवोंको निःसन्देह होनेके लिये इस जगह मेरेको इतनाही कहना है कि—श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठमें ५०दिने पर्युषणा करनी कही है इसलिये आवणमासकी वृद्धि होनेसे दूसरे आवणमें अथवा भाद्रपदमासकी वृद्धि होनेसे प्रथम भाद्रपदमें जहां ५०दिन पूरे होवे वहांही प्रसिद्ध पर्युषणामें

[२९८]

सांख्यसंस्कारिक प्रतिक्रमणादि पांच कृत्योंसें वार्षिकपथं करनेका समझना चाहिये क्योंकि जहां प्रसिद्ध पर्युषणा वहांही वार्षिक कृत्यादि करनेका नियम है सो तो श्रीकल्पसूत्रकी नव (९) व्याख्याओंमें श्रीखरतरंगच्छके और श्रीतपगच्छादिके सभी टीकाकारोंने खुलासा पूर्वक लिखा है इसका विस्तार इसीही ग्रन्थकी आदिसें लेकर पृष्ठ २० तक छप गया है और उन्ही टीकाओंमें पचास दिने भाद्रपद शुक्ल-पञ्चमीको सांख्यसंस्कारिक प्रतिक्रमणादि पांच कृत्योंसें वार्षिक पर्वरूप प्रसिद्ध पर्युषणा करनी कही है सो तो मास वृद्धिके अभावसें चन्द्रसंवत्सरमें नतु मासवृद्धि होते भी अभिवर्द्धित संवत्सरमें क्योंकि प्राचीनकालमें भी पौष अथवा आषाढ़ मासकी वृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीस दिने श्रावणशुक्ल पञ्चमीको सांख्यसंस्कारिक प्रतिक्रमणादि पांच कृत्योंसें प्रसिद्ध पर्युषणा जैनपञ्चाङ्गानुसार करनेमें आती थी इस बातका निर्णय श्रीकल्पसूत्रकी टीकाओंमें तथा इसीही ग्रन्थमें अनेक जगह और विशेष करके पृष्ठ १०७ से ११७ तक छप गया है परन्तु इस वर्तमान कालमें बीस दिने पर्युषणा करनेका कल्पविच्छेद होनेसें तथा जैन पञ्चाङ्गके अभावसें और लौकिक पञ्चाङ्गमें हरेक मासोंकी वृद्धि होनेके कारणसें ५० दिनेही प्रसिद्ध पर्युषणा वार्षिक कृत्यादिसें करनेकी शास्त्रोंकी तथा श्रीखरतरंगच्छके और श्रीतपगच्छादिके पूर्वज पूर्वाचार्योंकी मर्यादा है सो तो इस ग्रन्थकी आदिसेंही लेकर ऊपर तकमें अनेक जगह छप गया है और सातमें महाशयजी श्रीधर्मविजयजीके नामकी सभी क्षामें भी छपेगा (और वर्षाकालमें जीवदयादिके लियेही

[२९९]

खास करके दिनोंकी गिनतीसे पर्युषणा करनेका श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक कहा है) इस लिये इस वर्तमान कालमें दूसरे आवण में अथवा प्रथम भाद्रपदमें ५० दिनेही प्रसिद्ध पर्युषणा सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि पाँच कृत्यों सहित अवश्यही निश्चय करके करनी चाहिये सो पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके प्रमाणानुसार तथा युक्तिपूर्वक स्वयं सिद्ध है सो तो ऊपरके लेखको तथा इस ग्रन्थको आदिसे अन्ततक आठों महाशयोंके लेखकी समीक्षाको पढ़नेवाले मोक्षाभिलाषी सत्यग्राही सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे तथा छठे महाशयजी आप भी हृदयमें विवेक बुद्धि लाकरके न्याय दृष्टिसे पढ़कर अच्छी तरहसे विचारो और आप सत्यवादी महाव्रतधारी आत्मार्थी होखो तो पञ्चाङ्गीके अनेक प्रमाणानुसार और खास आपके गच्छके भी पूर्वाचार्योंकी मर्यादानुसार ५० दिने दूसरे आवणमें अथवा प्रथम भाद्रपदमें सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि पाँच कृत्योंसे प्रसिद्ध पर्युषणा वार्षिकपर्व करनेका ऊपरोक्त प्रत्यक्ष न्यायानुसार तथा युक्तिपूर्वक शास्त्रोंके प्रमाणको ग्रहण करो और शास्त्रोंके प्रमाण बिना तथा युक्तिके विरुद्धका मिथ्या कदाग्रहको छोड़ो और ५० दिने पर्युषणापर्व करनेका निषेध करने सम्बन्धी जितनी कुतर्क करनी है सो सबीही संसारवृद्धिकी हेतुरूप तथा भोले जीवोंकी सत्यबाट परसे श्रद्धा भ्रष्ट करके गच्छ कदाग्रहके मिथ्यात्वका भ्रममें गेरनेके लिये अपने विद्वत्ताकी हासी करानेवाली है सो भवभीरु मोक्षाभिलाषी आत्मार्थियोंको करनी उचित नहीं है तो फिर छठे

[३००]

महाशयजीने शास्त्रानुसार ५० दिने पर्युषणा पर्व करने वालोंको मिथ्या आज्ञाभङ्गका दूषण लगाके उत्सूत्र भाषण-रूप ८० दिने पर्युषणा करनेका पुष्टकिया जिसकी आलोचना लिये बिना कैसे आत्मका सुधारा होगा सो न्यायदृष्टि वाले सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे ;—

अब ठठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीने दूसरे गुजराती भाषाके लेखमें मिथ्यात्वके भगड़ेको बढ़ानेके लिये जो लेख लिखा है उसीका नमूना यहाँ लिख दिखा करके पीछे उसीकी समीक्षा करता हूँ—नवेम्बर मासकी ७वीं तारीख सन् १९०९ गुजराती आश्विन वदी १ हिन्दी कार्तिक वदी १ वीर संवत् २४३५ का जैनपत्रके ३० वा अङ्कके पृष्ठ पांचमा की आदिमें ही लिखा है कि,—

[वन्दे वीरस्—लेखक मुनि वल्लभविजय मु० पालणपुर
सावधान ! सावधान !! सावधान !!!

आचार्य सावधान ! उपाध्याय सावधान ! पन्यास सावधान ! गणी सावधान ! साधुसाध्वी सावधान ! यतीवर्ग सावधान ! श्रावक श्राविका सावधान ! शेठी-याओ सावधान ! कोन्फरन्स सावधान ! वकील प्लीडर सावधान ! बेरिस्टअटली सावधान ! नाणा कोथली सावधान ! छागता बलगता सावधान ! कागज कलम सावधान ! खड़ीओ रुथनाई सावधान ! सावधान ! सावधान !! सावधान !!! तपगच्छमान धरावनार सावधान ! खरतरगच्छीय सावधान !]

ठठे महाशयजीके इन अक्षरों पर मेरेको बड़ाही आश्चर्य उत्पन्न होता है कि श्रीवल्लभविजयजीकी विवेक

[३०१]

बुद्धि कैसी शून्य होगई है सो अपनी हासी करानेवाले बिना विचारे शब्द लिखते कुछ भी लज्जा नहीं आई क्योंकि श्रीवल्लभविजयजी आत्मार्थी महाव्रतधारी साधु होते तो बकील, बेरिस्टर, और नाणा कोथली, बगैरहको सावधान ! सावधान !! पुकारके कोर्ट कचेरीमें भगड़ा बढ़ानेकी तैयारी कदापि नहीं करते तथापि करी इससें धिवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे कि—श्रीवल्लभविजयजीमें भेष धारण करके साधु नाम धराया परन्तु अन्तरमें अद्वारहित होनेसे शास्त्रार्थ पूर्वक सत्य असत्यका निर्णय करना छोड़ करके श्रीखरतरगच्छके और श्रीतपगच्छके आपसमें कोर्ट कचेरीमें भगड़ेको बढ़ानेके लिये श्रीजैनशासनकी निन्दा करानेवाले तथा मिथ्यात्वको बढ़ानेवाले और अपने नामकी लज्जनीय शब्द लिखते पूर्वापरका कुछ भी विचार न किया और शक्त दिवाने बड़ेही पागलकी तरह—नाणा कोथली (रुपैयोंकी धेली) तथा कागद कलम और खड़ीओ रुशनाई (द्वात शाही) अचेतन अजीब वस्तुयोंको सावधान ! सावधान !! पुकारा—वाह क्या विद्वत्ताकी चातुराईका नमूना छठे महाशयजीनें प्रकाशित किया है सो पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे,—

और दूसरा यह है कि खास छठे महाशयजीकी सम्मति पूर्वक पञ्जाब असृतशहरसें, घासीराम और जुगलरामको गङ्गाजी भेजकर पवित्र करवाये जिसका कारण संक्षिप्तसें इसीही ग्रन्थके पृष्ठ १७५-१७६ में छपगया है और विशेष विस्तार पूर्वक पञ्जाब लाहोरसें जसबन्तराय जैनीकी मारफत श्रीआत्मानन्द जैन पत्रिका मासिक पत्र प्रसिद्ध

[३०२]

होता है उसीमें सन् १९०८ के २-३ अङ्कमें छप चुका है उसी घासीराम और जुगलरामको गङ्गाजी भेजकर पवित्र कराने सम्बन्धी दूँदकसाधुनामधारक कुंदनमखने १४ पृष्ठकी छोटीसी एक पुस्तक बनाकरके प्रगट कराई है सो पुस्तक छठे महाशयजीनें वांची है और उनके पास भी है उसी पुस्तकमें छठे महाशयजीके गुरुजी न्यायाम्भोनिधिजी श्रीआत्मारामजी सम्बन्धी तथा श्रीजैनखेताम्बर मूर्त्तिपूजने वालों सम्बन्धी और श्रीसिद्धाचलजी श्रीगीरनारजी श्रीआबूजी श्रीसमेतशिखरजी वगैरह श्रीजैनतीर्थों सम्बन्धी अनेकतरहके अनुचित शब्द लिखके निन्दा करी है उसीके निमित्त भूत छठे महाशयजी वगैर हुवे हैं और उसी पुस्तकके पृष्ठ ३-४में घासीराम और जुगलरामको गङ्गाजीके जलसें पवित्र कराये तैसेही छठे महाशयजीके गुरुजी श्रीआत्मारामजीको गङ्गाजीके जलसें पवित्र न करानेके कारण अपने गुरुजीको और अपने गुरुजीकी सम्प्रदायमें दीक्षा लेनेवालोंको अपवित्र ठहरनेका कलङ्क लगवाया और पृष्ठ ११ में घासीराम, जुगलरामको गङ्गाजी भेजने वालोंको तथा भेजाने वालोंको और सम्मती देकर अच्छा समझने वाले छठे महाशयजी आदिको मिथ्यात्वी, पाखण्डी, वगैरह शब्दोंका इनाम दे कर फिर पृष्ठ १३ के अन्तमें गङ्गाजी भेजने वालोंको श्रीजैनशासनको लांछन (कलङ्क) लगानेवाले ठहराकरके तीन बार धीक्कारका इनाम दिया है ।

इस जगह निष्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंको विचार करना चाहिये कि श्रीजैनतीर्थोंकी तथा श्रीजैनतीर्थोंका मानने वालोंकी द्वेष बुद्धिसें बड़ेही अनुचित शब्दोंसें निन्दा करके

[३०१]

भारी कर्मेंके बंध किये हैं और श्रीजैनशासनके निन्दकोंको भी उसी रस्ते पहुंचानेके लिये नरकादि अधोगतिका सार्थवाह (कुंदनमल्ल ढूढ़क) बना है और पुस्तक प्रगट कराई हैं जिसमें छठे महाशयजीके गुरुजीकी तथा उन्हींके सम्प्रदाय वालोंकी भी निन्दा करी हैं तथा खास छठे महाशयजी वगैरहको भी अनेक शब्द लिखते तीनवार धीक्कार भी लिख दिया हैं और श्रीजैनशासनकी निन्दा करके मिथ्यात्व बढ़ानेका कारण किया—उसीको तो छठे महाशयजीनें कुछ जबाब भी न दिया और सर्व श्रीसङ्गको तथा वकील, बेरिस्टर वगैरहको सावधान करके कोर्ट कचेरीमें श्रीजैनशासनके निन्दक कुंदनमल्लको शिक्षा दिलानेकी किञ्चिन्मात्र भी बहादुरी न दिखाई परन्तु श्री खरतरगच्छके और श्रीतपगच्छके आपसमें वृथाही कोर्ट कचेरीमें भगड़ा फैलानेके लिये और मिथ्यात्व बढ़ानेके लिये, वकील, बेरिस्टर, वगैरको सावधान करके वड़ीही बहादुरी दिखाई हैं सो वड़ीही आश्चर्यकी बात है कि श्रीजैनशासनके दुश्मन निन्दको से तो मुख छिपाते हैं और आपसमें भगड़ा करनेकी बहादुरी दिखाते कुछ लज्जा भी नहीं पाते है,—

अब छठे महाशयजीको मेरा (इस ग्रन्थकारका) इतनाही कहना है कि—आप सम्यक्स्त्री और श्रीजैनशासनके प्रेमी होवो तो प्रथम श्रीखरतरगच्छके और श्रीतपगच्छके आपसमें न्यायानुसार शास्त्रार्थ पूर्वक अन्तरका पक्षपात छोड़कर सत्य असत्यका निर्णय करके असत्यको छोड़के सत्यको ग्रहण करो और श्रीजैनशासनके निन्दक कुंदनमल्लके

[३०४]

मिथ्यात्वका पाखण्डको छेदन करनेके लिये अपनी बह्म दुरी प्रगट करो—जबतक कुंदनमल्लके मिथ्यात्व बढ़ानेवाले लेखका जबाब आप नहीं देखोगे तबतक आपकी विद्वत्ता क्याही समझनेमें आवेगी और ढूँढकोके मुखपर शाही फिरानेके द्वारादेसें कार्य करनेकी अक्कल आपने दोड़ाई थी परन्तु पूर्वापरका विचार किये बिना कार्य कराया जिससें आपकेही मुखपर शाही फिरने जैसा कारण बनगया और श्रीजैनतीर्थोंकी तथा अपने गुरुजी वगैरहकी निन्दा करानेके निमित्त भूत दोषाधिकारी भी आपकोही बनना पड़ा है और अपने बड़ोको अपवित्र ठहरानेका कलङ्क भी लगवाया है इसलिये कुंदनमल्ल ढूँढकके निन्दारूपी मिथ्या गप्पोंका जबाब देना आपकोही उचित है तथापि उन्हेंका जबाब देना आपको मुश्किल होवे तो आपके मरहलीमें विद्वत्ता का अभिमान धारण करनेवाले बहुतसें साधुजी है उनके पास उसीका जबाब दिलाना चाहिये इतने पर भी आप की तथा आपके मरहलीके साधुओंकी कुंदनमल्लके लेखका जबाब देनेकी बुद्धि नहीं होवे तो मेरी तरफसें इस ग्रन्थको संपूर्ण हुए बाद “कुंदनमल्लके मिथ्यात्वका पाखण्डछेदन कुठार” नामा ग्रन्थ आप लिखो तो बनाकर प्रगट करूं जिसमें श्रीजैनतीर्थों पर तथा श्रीजैनतीर्थोंको माननेवालों पर और आपके गुरुजी वगैरह पर जो जो आक्षेप करके दूषण लगाया है जिसका न्यायानुसार युक्तिपूर्वक अच्छी तरहसें जबाब लिखके सबके आक्षेपको दूर करनेमें आवेगा और कुंदनमल्लने अपने अन्तर गुण युक्त जो जो शब्द लिखे हैं उसीकाही न्याय युक्तिपूर्वक खास कुंदनमल्लकेही ऊपर घटानेमें आवेगा,—

[३०५]

और आगे फिर भी ठूठे महाशयजीनें लिखा है कि (अमो नहोता धारताके महात्मा मुनि मोहनलालजीना काल पछी ओहवो पण काल आवशे के जे आपसमां जंजाल फेलावी फालमारी पायमालकरी हाल बेहाल करी देशे पण भवितव्यताने कोण रोके) इत्यादि अनेक तरहके अनुचित शब्द लिखके श्रीमोहनलालजी पर तथा उन्हींके समुदाय वालोंपर द्वेषबुद्धिसँ खूबही कटाक्ष करके नाटकरूपसँ कितनीही बातोंमें उन्हींको कलङ्क लगाया है उसीका भी पुक्ति पूर्वक जबाब यहां लिखनेसे बहुतही विस्तार होजावे इस लिये श्रीमोहनलालजीके तथा उन्हींके संप्रदायके पूर्णप्रेमी और गुरुभक्त (पन्यासजी श्रीब्रह्ममुनिजी, पन्यासजी श्रीहर्ष-मुनिजी, और पन्यासजी श्रीकेशरमुनिजी वगैरह मंडली के साधुओंमेंसे) जो महाशय होवेंगे सो दंभप्रियजीके लेखका जबाब लिखके श्रीमोहनलालजीका तथा उन्हींकी समुदाय वालोंका कलङ्कको दूर करेगा ।

और इसके आगे फिर भी लिखा है कि (प्रश्नोत्तर-मालिका नामे अेक चौपड़ी रतलाममां वीरसंवत् २४३५ नाकारतक सुदीपाँचमें बेरिस्टरनुंखोटुं नाम लखी छपाववामां आवेल छे जेमां तपगच्छ उपर हुमलोकियां सिवाय बीजुं कांई पण मालम पड़तु मयी कारणके जेजे सवालो लख्याछे प्रायःसर्वना उत्तरो कलकत्ता थी प्रगट थयेल चौप-ड़ीना उत्तर रूपे जैनसिद्धान्त समाचारी नामे भावनगरनी ज-इन धर्मप्रसारक सभा तरफ थी छपायेल चौपड़ीमां आवी गयेल छे) ठूठे महाशयजीके ऊपरका लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गकी दिखाता हुं जिसमें प्रथमतो-प्रश्नोत्तरमालिका,

[३०६]

नामा छोटीसी पुस्तककी देख करके छठे महाशयजी श्रीवल्लभ विजयजी और श्रीकलकत्तानिवासी लक्ष्मीचन्दजी सीपाणी वगैरह महाशय कहते फिरते हैं कि—देखो प्रथम वाद विवाद का कारण खरतरगच्छवालोंकी तरफसे होता है जिसका नमूनारूप प्रश्नोत्तरमालिका नामा पुस्तक लोगोंको दिखाते हैं परन्तु प्रश्नोत्तरमालिका पुस्तक बननेका कारण समझे बिना द्वेष झुद्धिसे मिथ्या भाषण करके प्रथम वाद विवादके कारण करनेका श्रीखरतरगच्छवालोंकी भूठा दूषण लगाते हैं क्योंकि प्रथम रतलामसे श्रीतपगच्छके आवक वृद्धिचन्दजी खोगालालजी गांधीने श्रीहेदरावादमें चौमासा ठहरे हुवे न्यायरत्नजी श्रीशान्तिविजयजीको पत्र द्वारा, पांच—छ कल्याणकादि सम्बन्धी कितने ही सवाल पूछे जिसके जबाब सप्टेम्बर मासकी २७ वी तारीख सन् १९०८ आश्विन शुदी २ वीर संवत् २४३४ के जैनपत्रका २४ वां अङ्कके पृष्ठ ४ में छपे हैं उसीमें श्रीखरतरगच्छवालोंकी श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सम्बन्धी पूछा तब उसीके निमित्त कारणसे उसीका जबाब रूपमें श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकसम्बन्धी शास्त्रोंके पाठों सहित कितनेही शास्त्रानुसार सवालों पूर्वक—प्रश्नोत्तरमालिका नामा पुस्तक छपी है इसलिये प्रश्नोत्तरमालिका छपनेके निमित्त कारण श्रीशान्तिविजयजी है जो श्रीशान्ति विजयजी श्रीखरतरगच्छवालोंकी श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणक सम्बन्धी नहीं पूछते तो श्रीखरतरगच्छवालोंकी उसीका जबाबरूपमें प्रश्नोत्तरमालिका छपा करके प्रगट करनेकी कोई जरूरत नहीं थी परन्तु प्रथम जो कोई सवाल पूछेगा उसीका जबाब तो शास्त्रानुसार अवश्यही देना सो न्याय

[३०१]

युक्त बात हैं इसलिये प्रथम वाद विवादका कारण श्रीस्वर-
तरगच्छवालोंकी तरफसे नहीं किन्तु भीतपगच्छवालोंकीही
तरफसे होता है ;—

और (वेरिस्टरनुं खोटुं नाम लखी छपावामां आवेलछे)
छठे महाशयजीका यह भी लिखना द्वेष बुद्धिका मिथ्या
है क्योंकि यह तो दुनियामें प्रसिद्ध व्यवहार है कि—ऋषभ,
महावीर, वर्द्धमान, गौतम, इन्द्र, लक्ष्मीपति, अमर, राजा,
महाराज, सिंहजी, इत्यादि अपने संसारिक सम्बन्धियोंमें
अनेक तरहके व्यवहारिक नाम होते हैं उसी नामको
खोलनेमें अथवा लिखनेमें कोई दूषण नहीं है और श्रीजैन-
शास्त्रोंमें भी व्यवहारिक नामसे अनेक बातें लिखनेमें
आती है तैसेही उन्हको भी अपने संसारिक सम्बन्धियोंमें
व्यवहारिक नामसे वेरिस्टर कहते हैं सोही नाम लिखा
है उसीको छठे महाशयजी झूठा ठहराते हैं सो तो प्रत्यक्ष
द्वेष बुद्धिका कारण है ;—

और छठे महाशयजीने लिखा है कि (तपगच्छ उपर
हुमलो कया सिधाय बीजुं काई पण सालम पड़तु मथी)
इन अक्षरों पर भी मेरेको इतनाही कहना है कि सत्ययुग
बीधे कालमें भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके अमृत
समान धर्मोपदेशको सुन करके भी—भारी कर्म मिथ्यात्वी
प्राणी उन्हीमहाराजोंके अवर्णवाद खोलकर संसार वृद्धिका का-
रण करते थे तो अब इस कलियुग पञ्चमकालमें गच्छकदाग्रही,
हठवादी, पण्डिताभिमानि, दुःखगर्भित, मोहगर्भित वैराग्य
घाले, अन्तरमें श्रद्धारहित, मिथ्याभाषक, कल्युगी भारी
कर्मप्राणी—श्रीजैनशास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाणोंका अवर्णवाद

[३०८]

बोलके, संसार वृद्धिका कारण करे तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है तैसेही छठे महाशयजी दम्भप्रियजी श्रीवल्लभ-विजयजीने भी किया, अर्थात्—प्रश्नोत्तरमालिका पुस्तकमें शास्त्रोंके पाठ दिखाये और शास्त्रानुसार कितनीही बातें भी लिखी है उसको प्रमाण करना तो दूर रहा परन्तु तपगच्छ उपर हुमलो (जुलम) करनेका ठहरा करके श्रीजैनशास्त्रोंकी बातोंके अवर्णवाद लिखे सो तो उन्हेंही कर्मोंका दोष है ;—

और आगे फिर भी प्रश्नोत्तरमालिका सम्बन्धी छठे महाशयजी लिखते हैं कि (जे जे सवालो लख्या छे प्रायः सर्वना उत्तरो कलकत्ता थी प्रगट थयेल चोपड़ीना उत्तररूपे जैनसिद्धान्त समाचारी नामे भावनगरनी अइनधर्मप्रसारक सभा तरफ थी छपायेल चोपड़ीमां आवी गयेल छे) इस लेख पर भी प्रथमतो मेरेको इतनाही कहना है कि—कलकत्तेसें चोपड़ी (पुस्तक) प्रगट होनेका जो छठे महाशयजी लिखते हैं सो तो भूलसें मिथ्या है क्योंकि कलकत्तेसें पुस्तक प्रगट नहीं हुई थी किन्तु (न्यायाम्भोनिधिजीकेही उत्तसूत्र भाषणके अन्यायपर) मकसूदाबादके श्रावकने मुंबईमें छपवाकर 'शुद्ध समाचारी प्रकाश' नामा पुस्तक प्रगट किई है उसीमें श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्यजी महाराजोंकी आज्ञानुसार पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके पाठार्थों सहित जो जो बातें लिखनेमें आई है उसीका और प्रश्नोत्तरमालिकामें भी जो जो शास्त्रोंकी बातें लिखके सवाल पूछनेमें आये हैं । उसीके एक सवालका भी जवाबमें उत्तसूत्र भाषणके सिवाय शास्त्रार्थ पूर्वक कुछ भी जवाब जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकमें नहीं लिखा है ।

[३०९]

और (दूढ़िओअे पण याद राखवुं सामायिक लेतां प्रथम इरियावहिया केहवी अने पखी करेनिभंतेनो पाठ केहवी १, श्रीमहावीर स्वामिना पांच कल्याणक २, वगेरे बातोमां तो तमोने पण बाधाज आवशे माटे तपगच्छ उपरथयेल आक्षेप जोई फुलीने फालका न थाशे आबावतमां तो तमो पण जबाब दारजखो) इन अक्षरों करके छठे महाशयजी अपना मन्तव्य स्थापन करनेके लिये इस जगह दूढ़ि योंको भी अपने सामिल मिलाते हुवे उन्हींकाही सरणा ले करके सामायिक सम्बन्धी तथा कल्याणक सम्बन्धी श्रीखरतरगच्छवालोंके साथ वाद विवादरूप युद्ध करना चाहते हैं और बहुत वर्षोंका गच्छसम्बन्धी विवाद दबा हुआ था, उसीकोभी पीछाही सरू करके शुद्धसमाचारी प्रकाशकी सत्य बातोंका उत्तररूपमें जैनसिद्धान्तसमाचारी नामक, परन्तु वासत्विकमें उत्सूत्र भाषणके संग्रहकी-पुस्तकको आगे करके अपना मन्तव्यको पुष्ट किया इसलिये इस जगह—ऊपरकी दोनुं पुस्तकीकी सब बातोंके सत्य असत्यका निर्णय करके मोक्षाभिलाषी सत्यग्राही भव्यजीवोंको दिखाना मेरे को उचित है परन्तु बहुत विस्तार हो जानेके कारणसें नमूनारूप थोड़ीसी बातोंका निर्णय करके संक्षिप्तसें दिखता हुं, जिसमें प्रथम शुद्धसमाचारी प्रकाशमें सामायिकका अधिकार है तथा जैनसिद्धान्तसमाचारी नामक पुस्तकमें भी प्रथम सामायिकका अधिकार है और छठे महाशयजी भी दूढ़ियोंका साथ करके प्रथम सामायिक सम्बन्धी लिखते हैं इसलिये मेंभी इस जगह प्रथम सामायिक सम्बन्धी शास्त्रार्थ पूर्वक थोड़ासा लिखता हुं :—

[३१०]

आवकके सामायिक करनेकी विधिमें सामायिकाधिकार प्रथम इरियावही पीछे करेभिन्तेका उच्चारण करना ऐसे कोई भी शास्त्रोंमें नहीं कहा है किन्तु प्रथम करेभिन्तेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावही करना श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वचरादि महाराजोकी परम्परानुसार है और पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें भी कहा है सोही दिखाता हूं :-

श्रीजिनदास महत्तराचार्यजी पूर्वधर महाराजकृत श्री आवश्यकजी सूत्रकी चूर्णिमें १, श्रीमान् महान् विद्वान् सुप्रसिद्ध १४४४ ग्रन्थकार श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीआवश्यकजी सूत्रकी बृहद्वृत्तिमें २, श्रीचन्द्रगच्छके श्रीतिलकाचार्यजी कृत श्रीआवश्यकजीसूत्रकी लघुवृत्तिमें ३, श्रीयशोदेव उपाध्यायजी कृत श्रीनवपदप्रकरणकी विवरणरूप वृत्तिमें ४, श्रीपार्श्वनाथस्वामिजी की परम्परामें श्रीउक्लेशगच्छके श्रीदेवगुप्तसूरिजी कृत श्रीनवपदप्रकरणकी वृत्तिमें ५, पुनः श्रीपूर्वाचार्यजी कृत श्रीनवपदप्रकरणकी वृत्तिमें ६, श्रीलक्ष्मीतिलकसूरिजीकृत श्रीआवकधर्म प्रकरणकी वृत्तिमें ७, श्रीखरतरगच्छनायक सुप्रसिद्ध श्रीनवाङ्गीवृत्तिकार श्रीमदभयदेवसूरिजी कृत श्रीपञ्चाशकजी सूत्रकी वृत्तिमें ८, श्रीबड्गच्छके श्रीयशोदेवसूरिजी कृत श्रीपञ्चाशकजी सूत्रकी चूर्णिमें ९, श्रीचन्द्रगच्छके श्रीविजयसिंहाचार्यजीकृत श्रीआवकप्रतिक्रमणसूत्रकी चूर्णिमें १०, श्रीपूर्णपङ्कीयगच्छके कलिकाल सर्वज्ञ विरुद्धधारक महान्विद्वान् सुप्रसिद्ध तीन करोड़ श्लोकोंकी रचनासे अनेक ग्रन्थकर्ता श्रीहेमचन्द्राचार्यजी कृत श्रीयोगशास्त्रकी वृत्तिमें ११, श्रीखरतरगच्छके श्रीवर्द्धमानसूरिजी कृत श्रीकथाकोश ग्रन्थमें १२, श्रीपूर्वाचार्यजी कृत

[३११]

श्रीश्राद्धदिन कृत्य मूलसूत्रमें १३, श्रीतपगच्छनायक सुप्रसिद्ध श्रीमान् देवेन्द्रसूरिजी कृत श्रीश्राद्धदिनकृत्यसूत्रकी वृत्तिमें १४, श्रीयशोदेवसूरिजी कृत श्रीवन्दनकवृत्तिमें १५, श्रीखरतरगच्छके श्रीअभयदेवसूरिजी कृत श्रीसमाचारी ग्रन्थमें १६, तथा श्रीजिनप्रभसूरिजी कृत श्रीविधिप्रपा नामा समाचारी ग्रन्थमें १७, और श्रीखरतरगच्छके दूसरे श्रीवर्द्धमानसूरिजी कृत श्रीआचारदिनकर ग्रन्थमें १८, श्रीतपगच्छके श्रीकुलमण्डनसूरिजी कृत श्रीविचारामृत संग्रह ग्रन्थमें १९, तथा श्रीतपगच्छके सुप्रसिद्ध श्रीरत्नशेखरसूरिजी कृत श्रीश्राद्ध प्रतिक्रमणसूत्रकी वृत्ति (वन्दितासूत्रकी अर्धदीपिकानामा टीका) में २०, और सुप्रसिद्ध श्रीहीरविजयसूरिजीके सन्तानिये श्रीमानविजयजी उपाध्यायजी कृत श्रीधर्मसंग्रह ग्रन्थकी वृत्ति—जो कि सुप्रसिद्ध श्रीमान् यशोविजयजी उपाध्यायजीनें शुद्ध करी है उसीमें २१, इत्यादि अनेक शस्त्रोंमें श्रीपूर्वधरादि पूर्वाचार्योंनें और श्रीखरतरगच्छके तथा श्रीतपगच्छादि अनेक गच्छोंके अनेक पूर्वाचार्योंनें, श्रावकके सामायिक विधिमें (सामायिकाधिकारे) प्रयत्न करेभिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसें इरियावहीका प्रतिक्रमण करना सुलासापूर्वक कहा है जिसके विषयमें सब पाठ यहां लिखनेसें बहुत विस्तार होजावे तथापि श्रीतपगच्छके वर्तमानिक सत्यग्राही आत्मार्षी सज्जन पुरुषोंको निःसन्देह होनेके लिये अपनेही पूर्वजोंके बनाये ग्रन्थोंके पाठ इस जगह लिख दिखाता हुं—

श्रीतपगच्छनायक सुप्रसिद्ध विद्वान् अनेक ग्रन्थकार श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत श्रीश्राद्धदिनकृत्य सूत्रकी वृत्तिका पाठ नीचे मुजब जानो :—

[३१२]

साम्प्रतमष्टादशं सत्कार द्वारमाह ॥ ततो वैकालिका-
नन्तरं विकालवेलायामन्तर्मुहूर्तरूपायां तामेवव्यनक्ति
अस्तमिते दिवाकरे अर्द्धबिम्बादर्धाक् इत्यर्थः ॥ पूर्वो-
क्तेन विधानेन पूजाकृत्वेति शेषः । पुनर्वन्दते जिनोत्त-
मान् । प्रसिद्ध चैत्यवन्दनविधिनेति ॥२२८॥ अथैकोनविंशति-
वन्दनकोपलक्षितमावश्यकद्वारमाह ॥ ततस्त्वतीयपूजान-
न्तरं श्रावकः पौषधशालाङ्गत्वा यतनया प्रमार्ष्टि ततो नम-
स्कारपूर्वकं व्यवहित तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । स्थापयि-
त्वैव तत्र मूर्तिं स्थापनाचार्य्यं । ततो विधिना सामा-
यिकं करोति ॥ २२९ ॥ अथ तत्र साधवोऽपि सन्ति । श्राव-
केण गृहे सामायिकं कृतं । ततोऽसौ साधुसमीपे गत्वा
किं करोति इत्याह । साधुसाक्षिकं, पुनः सामायिकं
कृत्वा । ईर्ष्या प्रतिक्रम्यागमनमालोचयेत् । तत आचा-
र्यादिन् वन्दित्वा । स्वाध्यायं काले चावश्यकं करोति ॥२३०॥

देखिये ऊपरके पाठमें सांमके पूर्वोक्त विधिसें श्री
जिनराजकी पूजा करके प्रसिद्ध विधिसें चैत्यवन्दन करे बाद
पौषधशालामें जाकर यतना पूर्वक प्रमार्जना करके गुरु
अभावसें नमस्कार पूर्वक स्थापनाचार्य्यजीकी स्थापना
करके तिस विधिसें अर्थात् श्रीआवश्यकदि शास्त्रोक्त
विधिसें सामायिक करे और पौषधशालामें श्रीगुरुजी
महाराज होवे और अपने घरसें सामायिक करके पौषध-
शालामें गया होवे तो फिर भी गुरु साक्षि करेनिभंतेका
उच्चारण करके पीछे इरियावही पङ्क्तिमके आचार्यादि
महाराजोंको वन्दना करे और स्वाध्याय करे पीछे अवसर
होनेसें प्रतिक्रमण करे—

[३१३]

और श्रीतपगच्छके प्रभाविक श्रीहीरविजयजीसूरिजीके सन्तानिये श्रीमानविजयजी कृत श्रीधर्मसंग्रहकी वृत्तिको सुप्रसिद्ध श्रीयशोविजयजीने शुद्ध करी है उसीका पाठ यहां दिखाता हूं :—

यथा—आवश्यकसूत्रमपि सामायिकं नाम सावज्ज-
जोगपरिवज्जणं पिरवज्जजोगपडिसेवणं चेत्ति, तत्रायमाव-
श्यकवूर्त्ति, पञ्चाशकवूर्त्ति, योगशास्त्रवृत्त्याद्युक्तो विधिर्यथा-
आवकः सामायिककर्ता द्विधा भवति ऋद्धिमाननृधिकश्च
योऽसावनृदिकः स चतुर्षु स्थानेषु सामायिकं करोति जिन-
गृहे, साध्वन्तिके, पोषधशालायां, स्वगृहे वा यत्र वा, विश्रा-
म्यति निवर्णोपारो वा आस्ते तत्र च यदा साधुसमीपे
करोति तदायंविधिः पदि कस्माच्चिदपि भयं नास्ति केन-
चिद्विवादो नास्ति, ऋणं वा न धारयति माभूतत् कृता-
कर्षणापकर्षणनिमित्तसंक्लेशः, तदा स्वगृहेऽपि सामायिकं
कत्वा ईर्यां शोधयन् सावद्यां भाषां परिहरन्, काष्ठ-
लोष्ठवादिना यदि कार्यं, तदा तत्स्वामिनमनुज्ञाप्य प्रति
लिख्यं प्रमाज्येच गृह्णन्, खेलमिंघाणकादीन् विवेचयंश्च
स्यंडिलं प्रत्यवेक्ष्य, प्रमृज्य पञ्चसन्नितिसमितस्त्रिगुप्तिगुप्तः
साध्याश्रयं गत्वा, साधून्मनस्कृत्य सामायिकं करोति, तत्सूत्र
यथा करेभिर्भंते सामादभं सावज्जं जोगं पच्चस्कामि जाव
साहू पञ्जुवासामि दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं
न करेमि न कारवेमि तस्सभंते पडिक्कमामि निन्दामि
गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि त्ति ॥ एवं कृतसामायिक,
ईर्यापयिक्खाः प्रतिक्रामति पश्चादागमनमालेच्च, यथाज्येष्ठ-
माचार्यादीन्वन्दते, पुनरपि गुरुं वन्दित्वा प्रतुनेक्षितासने

[३१४]

निविष्टः, शृणोति, पठति, पृच्छति वा, एवं चैत्यभवनैऽपि-
 द्रष्टव्यं, यदा तु पोषधशालायां स्वगृहे वा सामायिकं गृहीत्वा
 तत्रैवास्ते तदागमनं नास्ति यस्तु राजादि महर्द्धिकः स गन्ध-
 सिन्धुरस्कन्धाधिकृढः शङ्खचामरादिराज्यालङ्कृतो ह्यस्ति का-
 श्चीयपादातिकरथकाद्यां परिकरितो श्रेरीभाङ्कारभरिताम्बर-
 तलो वन्दिवृन्दकोलाहलाकुलीकृतनभस्तलोऽनेकसामन्तमण्ड-
 लेश्वराहमह्निकासंप्रेक्ष्यमाणपादकमलः पौरजनैः सप्रदुमङ्गु-
 ल्योपदर्शयमानो मनोरथैरुपस्पृश्यमानस्तेषामेवाञ्जलिबन्धान्
 लाजाञ्जलिपाताम् शिरःप्रणामाननुमोदमानः अहो धन्यो
 धर्मो य एवंविधैरुपसेव्यते इति प्राकृतजनैरपि श्लाघ्यमानो-
 ऽकृतसामायिक एव जिनालयं साधुवसतिं वा गच्छति तत्र
 नतो राजककुदानि उग्रचामरीपामन्मुकुटखड्गकूपाणि
 परिहरति आश्रयकचूर्णौ तु मण्डं न अवणेद् कुण्डलाणि
 णाम मुद्गं च पुष्कतं खोलपादारगमादि वीसिरइति भणितं
 जिनार्चनं साधुवन्दनं वा करोति यदि त्वसौ कृतसामायिक
 एव गच्छेत्तदा गजाश्वादिभिरधिकरणं स्यात्तच्च न युज्यते
 कर्तुं तथा सामायिकेन पादभ्यामेव गन्तव्यं तच्चानुचितं
 भूपतीनां आगतस्य च यद्यसौ श्रावकस्तदा न कोऽप्यभ्यु-
 त्यानादि करोति अथ यथा भद्रकस्तदा पूजा कृतास्तु इति
 पूर्वमेवासनं मुञ्चति आचार्य्याश्च पूर्वमेवोत्थिता आसते मा
 उत्थानानुत्थानकृता दोषा भूयन्निति आगतश्चासौ सामा-
 यिकं करोतीति पूर्ववत्,—

देखिये ऊपरके पाठमें श्रीजिनदास महत्तराचार्यजी
 पूर्वधर महाराजकृत श्रीआवश्यकजी सूत्रकी चूर्णि १, श्री
 यशोदेवसूरिजी कृत श्रीपञ्चाशकजी सूत्रकी चूर्णि २, तथा

[३१५]

कलिकालसर्वज्ञ विसद-धारक श्रीहेमचन्द्राचार्यजी कृत श्री योगशास्त्रकी वृत्ति ३, और आदिशब्दसें श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीआवश्यकजी सूत्रकी यहवृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रा-नुसार—सामायिक करने वाले दो प्रकारके आवककी विधिमें खुलासा पूर्वक प्रथम करेभिन्नतेका उच्चारण किये बाद पीछे सें इरियावहीका प्रतिक्रमण करना अच्छीतरहसें स्पष्ट करके लिखा है। और आवक अपने घरमें वा गुरु अभावसें पौषध शालामें सामायिक करे वहां 'जाव नियमं पञ्जुवा सामि' ऐसा पाठ उच्चारण करे और श्रीगुरुजी महाराजके सामने सामायिक करे वहां 'जावसाहू पञ्जुवा सामि' ऐसा पाठ उच्चारण करे और श्रीजिनमन्दिरमें सामायिक करे वहां 'जावचेईय पञ्जुवा सामि' ऐसा पाठ उच्चारण करे—इसका ऊपरोक्त शास्त्रोंमें खुलासे पाठ है।

और भी श्रीतपगच्छके श्रीरत्नशेखरसूरिजी कृत श्रीआहु-प्रतिक्रमणवृत्ति (श्रीवन्दीता सूत्रकी अर्थदीपिका टीका) में भी आवकके दधमा सामायिक व्रताधिकारे ऊपर मुजब ही पाठ है और उसीका भाषान्तर श्रीमुम्बईवाले आवक-भीमसिंह माणकमें निर्णयसागर प्रेसमें श्रीजैनकथा रत्नकीय भाग चौथा (४) में उपवाया है जिसके पृष्ठ ३३७ से ३३८ तक देख लेना :—

और ऊपरोक्त अनेक शास्त्रोंके पाठ भावार्थ सहित एक दूसरा और भी ग्रन्थ रूपता है उसीमें विस्तार पूर्वक अनेक पाठ उपगये है जिसका भेद आगे खोलुंगा—

अब मोक्षाभिलाषी सत्यचाही सज्जन पुरुषोंकी इस जगह विचार करना चाहिये कि—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि

[३१६]

महाराजोंकी आज्ञानुसार पूर्वधरादि श्रीप्राचीनाचार्योंने तथा सबीही गच्छोंके पूर्वाचार्योंने और श्रीतपगच्छके भी प्रभाविक पुनर्षोंने अनेक शास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक सामा-यिकाधिकारे प्रथम करेभिन्नतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे हरियावही कही है सो आत्मार्थियोंको प्रमाण करने योग्य है तथापि श्रीतपगच्छके वर्त्तमानिक प्रायः करके सबीही श्रावक महाशयोंको ऊपर मुन्य वर्तना तो दूर रहा परन्तु ऊपर मुन्य श्रद्धा भी नहीं रखते है और चलते उन शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें अपनी मतिकल्पनासे वर्त्तते हैं उन्हींको श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक तथा खास अपनेही गच्छके प्रभाविक पुरुषोंकी आज्ञाके आराधक और पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंपर श्रद्धारखनेवाले कैसे कहे जावें और अनेक शास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाणकी विधिको छोड़ करके अन्य परम्परासे गङ्गुरीह प्रवाहवत् उन्ही शास्त्रोंके विरुद्ध वर्त्तने वालोंकी क्रिया भी कैसे सफल होगा—और श्रीजैनशास्त्रोंके एक पद पर अथवा एक अक्षर पर भी जो पुरुष श्रद्धा नहीं रखे वह प्राणी जमालिकी तरह निम्न, निम्न्यादृष्टि कहा जाता है सो तो अनेक शास्त्रोंमें प्रसिद्ध बात है तथापि श्रीतपगच्छके वर्त्तमानिक जो जो मुनि महाशय और श्रावक महाशय ऊपरोक्त अनेक शास्त्रों पर तथा उन शास्त्रोंके कर्त्ता श्रीजैनशासनके प्रभाविक पुरुषोंके वचनों पर और खास अपनेही गच्छके पूर्वज पुरुषोंके वचनों पर श्रद्धानहींरखते हैं उन्हींको—पक्षग्राही, दृष्टिरागी, शास्त्रोंकी श्रद्धा रहितके सिवाय और सम्यक्त्वकी कौन कहेगा सो तत्त्वग्राही पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ;—

[३१७]

और इस वर्तमान कालमें सुप्रसिद्ध न्यायाम्भोनिधिजी श्रीआत्मारामजी अनेक शास्त्रोंके अवलोकन करनेवाले गीतार्थ कहलाते थे इसलिये श्रीपूर्वधर महाराज कृत श्री आवश्यक चूर्ण वगैरह २१ शास्त्रोंके प्रमाण सामायिकाधिकारे प्रथम करेनिभंते पीछे इरियावही सम्बन्धी ऊपरमेंही पृष्ठ ३१७-३१९ में छपे हैं उन्ही शास्त्रोंके पाठोंको सामायिक सम्बन्धी न्यायाम्भोनिधिजीने वांचे हैं लोगोंको सुनाये हैं और उन्ही शास्त्रकार महाराजोंको श्रीजैनशास्त्रोंके अतीव गहनाशयको समझनेवाले, बुद्धिनिधान, प्रभाविक, श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक, सत्यवादी, पर उपगारी, मोक्षप्रिलाषी आत्मार्थी, और भव्य जीवोंको मोक्षसाधनका श्रीजिनाज्ञाके आराधनरूप रस्ताको दिखाने वाले गीतार्थ उत्तमपुरुष मानते थे लोगोंको भी कहते थे और उन्ही महाराजोंके बनाये ऊपरोक्त पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंको नहीं माननेवालोंको मिथ्यात्वी ठहरा करके उन्ही महाराजोंकी आशातना करनेवाले पञ्चाङ्गीकी श्रद्धारहित जैन-भास संसारगामी कहते थे और शास्त्रोंके पाठोंको छुपा करके अथवा आगे पीछेके सम्बन्धको छोड़ करके शास्त्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें अथूरे अथूरे पाठ लिखके उलटे तात्पर्य भोले जीवोंको दिखाने वालोंको संसारमें परिभ्रमण करनेवाले ठहराते थे सोही खास न्यायाम्भोनिधिजीके बनाये 'चतुर्थस्तुतिनिर्णयः' वगैरह ग्रन्थोंसें प्रत्यक्ष दिखता है तथापि वड़ेही अफसोसकी बात है कि दूरभवि बहुलकर्मी मिथ्यात्वीकी तरह पञ्चाङ्गीके ऊपरोक्तादि अनेक शास्त्रोंके पाठोंपर श्रीआत्मारामजीकी अन्तरमें श्रद्धा नहीं

[३१८]

भी इसलिये श्रीपूर्वधरादि सहाराजोंके बनाये श्रीआवश्यक-
 चूर्णि वगैरह पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंके पाठोंपर उन्हेंको संशयरूपी
 मिथ्यात्वका भ्रम रहा अथवा अपनी विद्वत्ताके अभिमानसे
 संसार वृद्धिका भय नहीं करते अभिनिवेशिकमिथ्यात्वके
 अधिकारी बनके ऊपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंके तात्पर्यको
 जानते हुवे भी प्रमाण नहीं करे और भोले जीवोंको भी
 पञ्चाङ्गीके ऊपरोक्तादि शास्त्रोंके पाठोंकी शुद्ध अद्भुत रहित
 बनानेके लिये 'जैनसिद्धान्त समाधारी' नामक पुस्तकमें
 पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके विरुद्धार्थमें अन्य अन्य विषयोंके
 अधिकारवाले अधूरे अधूरे पाठ लिखके उसीका भी उलटा
 तात्पर्य बालजीवोंको दिखा करके (उत्सूत्र भाषणरूप अनेक
 जगह लिखके) अपनी समुदायवालोंकी तथा अपने गच्छ-
 वालोंकी संशयरूपी मिथ्यात्वके भ्रममें गेरे हैं और श्रीजिनेश्वर
 भगवान्की आज्ञाका आराधनरूपी मोलसाधनका रस्ताकी
 सत्यबातोंका निषेध करके संसार वृद्धिके कारणरूप मिथ्यात्वको
 फैलानेवाली अपनी भक्तिकल्पनाकी मिथ्या बातोंकी स्थापन
 करी है जिसका विस्तारसे शास्त्रार्थ पूर्वक इस जगह निर्णय
 करनेसे बड़ाही विस्तार होजावे तथापि न्यायाम्भोनिधिजी
 का (अपनी समुदायवालों पर तथा अपने गच्छवालों पर)
 गेरा हुवा मिथ्यात्वका भ्रमको अवश्यही दूर करके मोक्षा-
 भिलाषी सत्यग्राही भव्यजीवोंकी शुद्ध अद्भुतरूपी सम्यक्त्व
 रत्नकी प्राप्तिके उपगारके लिये सत्य बातोंका दर्शाव भी
 जरूरही होना चाहिये इसलिये जैनसिद्धान्त समाधारी
 नामक पुस्तकके उत्तररूपमें 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' नामा
 ग्रन्थ छपना भी सुरू होगया है उसीमें न्यायाम्भोनिधि-

[३१९]

जीने जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकमें जो जो उत्सूत्र भाषण किये हैं जिसका अच्छीतरहसे विस्तार पूर्वक निर्णय छप रहा है परन्तु इस जगह भी व्यापकदृष्टिवाले आत्मार्षी भव्यजीवोंको निःसन्देह होनेकेलिये सामायिकाधिकार-सम्बन्धी न्यायाम्भोनिधिजीने जो जो उत्सूत्र भाषण किये हैं उसीका निर्णयके साथ संक्षिप्तसें दिखाता हूं—

१ प्रथम—सामायिकाधिकारे पहिले करेनिभंतेका उच्चारण कियेपीछे इरियावहीका प्रतिक्रमण करना अनेक शास्त्रोंमें कहा है सो ऊपरमेंही छप गया है और सामायिकाधिकार सम्बन्धी कोई भी शास्त्रोंमें पूर्वापर विरोधी विसंवादी वाक्य नहीं है याने कोई भी शास्त्रमें सामायिकाधिकारे प्रथम इरियावही पीछे करेनिभंतेका उच्चारण किसी भी पूर्वाचार्यजीमें नहीं कहा है तथापि न्यायाम्भोनिधिजी 'जैनसिद्धान्त समाचारी' नामक पुस्तकके पृष्ठ ३० के मध्यमें सामायिकविधि सम्बन्धी अनेक शास्त्रोंके आपसमें पूर्वापर विरोध विसंवाद उद्घाटित हैं सो उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तार 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' नामा ग्रन्थके पृष्ठ ३ से ७ तक छप गया है और सामायिकाधिकारे प्रथम करेनिभंते पीछे इरियावही सबी शास्त्रोंमें कही है जिसके विषयमें श्रीपूर्वधरादि प्रभाविक पुरुषोंके बनाये ग्रन्थोंमें तथा श्रीखरतरंगच्छके और श्रीतपगच्छादिके पूर्वजोंने भी ऊपर मुजबही कहा है उसीके अनेक पाठ अर्थ सहित 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' के पृष्ठ ७ से २६ तक खुलासा पूर्वक छप गये हैं परन्तु सामायिकमें प्रथम इरियावही पीछे करेनिभंते किसी भी शास्त्रमें नहीं लिखी है सोही दिखाता हूं :—

[३२०]

२ दूसरा—श्रीगणधर महाराज श्रीसुधर्म स्वामीजी कृत श्रीमहानिशीथ सूत्रके तीसरे अध्ययनमें उपधानके अधिकारमें चैत्यवन्दनादि सम्बन्धी विस्तार पूर्वक खुलासे पाठ है जिसके सम्बन्धवाले आगे पीछेके सब पाठको छोड़ करके थोड़ासा अधूरा पाठ न्यायाम्भोनिधिजीने जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकके पृष्ठ ३० वामें लिख करके गणधर महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम हरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तार पूर्वक निर्णय संपूर्ण पाठार्थ सहित 'आत्माभ्रमोच्छेदन-भानुः' नामा ग्रन्थके पृष्ठ २७ के अन्तसे पृष्ठ ३७ तक अच्छी तरहसे छपगया है ।

३ तीसरा—श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत श्रीदशवैकालिकजी सूत्रके चूलिकाकी ७वीं गाथाकी बृहद्बृत्तिमें साधुके उपदेशाधिकारमें गमनागमनादि कारणसे हरियावही करके स्वाध्यायादि करने सम्बन्धी विस्तार पूर्वक खुलासे पाठ है (श्रीदशवैकालिकजी मूलसूत्र, अवचूरि, भाषार्थ, दीपिका, और बृहद्बृत्ति सहित छपी हुई प्रसिद्ध है जिसके पृष्ठ ६७९। ६८०। ६८१ में छपगया है) जिसके सम्बन्धवाले सब पाठको छोड़ करके सिर्फ एकपद मात्रही न्यायाम्भोनिधिजीने जैन० नामक, पुस्तकके, पृष्ठ ३१ की आदिमें लिखके वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें सामयिकाधिकारे प्रथम हरियावही स्थापी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तार पूर्वक निर्णय 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' के पृष्ठ ३८ से ४८ तक छपगया है ।

४ चौथा—श्रीतपगच्छके श्रीधर्मघोषमूरिजी कृत श्री

[३२१]

संघाचारभाष्य वृत्तिमें दशत्रिक सहित आवकके चैत्य-
वन्दनकीविधि कथाओं सहित कही है जिसमें सातमीत्रिकमें
यतनापूर्वक तीनवार भूमि प्रमार्जन करके हरियावही पूर्वक
चैत्यवन्दन करने सम्बन्धी पुष्कली आवककी कथा कही है
उसीके भी आगे पीछेके सब पाठको छोड़ करके थोड़ासा
अधूरा पाठ न्यायां० ने 'जैन० ना० पुस्तकके' पृष्ठ ३१ में
लिखके ग्रन्थकार महाराजको गुरुविरोधीका दूषणके अधि-
कारी ठहरा करके ग्रन्थकार महाराजके विरुद्धार्थमें सामा-
यिकमें प्रथम हरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र
भाषण है इसका भी निर्णय संपूर्ण पाठ सहित ग्रन्थकार
महाराजके अभिप्राय पूर्वक 'आत्मभ्रमो०के' पृष्ठ ४८ से ६८
तक छपगया है ।

५ पांचमा—श्रीतपनच्छनायक श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत
श्रीधर्मरत्नप्रकरणकी वृत्तिमें स्वाध्याय करने सम्बन्धी विस्तार-
सें पाठ है जिसकी भी एक गाथा न्यायां० ने 'जैन० ना०
पुस्तकके' पृष्ठ ३३ के मध्यमें लिखके उसी गाथामें दो जगह
दो मात्रा भी जादा लगाके अर्थ भी उलटा करा और अपने
पूर्वजकोही विसंवादीका दूषण लगा करके वृत्तिकार महा-
राजके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम हरियावही स्थापी
सो भी महान् उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तारसें निर्णय
'आत्म० के' पृष्ठ ६९ से ७७ तक छपगया है ।

६ छठा—श्रीरत्नशेखरसूरिजी कृत श्रीआहुप्रतिक्रमण-
सूत्रकी वृत्तिमें आवश्यकचूर्णि वगैरह अनेक शास्त्रोंके प्रमा-
णानुसार सामायिकाधिकारे प्रथम करेनिभंते पीछे हरिया-
वही खुलासे कही है उसी शास्त्रोंकी विधि मुजब आवक

[३२२]

अपने घरसे' सामायिक करके पौषधशालामें गुहमहाराजके पास प्रतिक्रमण करनेके लिये आवे वहां इरियावही पूर्वक षड़ावश्यकरूप प्रतिक्रमण करनेके सम्बन्धमें पाठ है जिसका सम्बन्ध छोड़कर ग्रन्थकार महाराजको भी विसंवादके दूषित ठहरानेके लिये उलट पुलट अधूरा पाठ, न्यायां० ने 'जैन० ना० पुस्तकके' पृष्ठ ३४ के आदिमें लिखके ग्रन्थकार महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषणरूप है इसका निर्णय, 'आत्म०के' पृष्ठ ७७ से ८३ तक छपगया है ।

७ सातमा—श्रीयशोदेवसूरिजी कृत श्रीपञ्चाशकजीकी चूर्णिमें सामायिक विधिके विषे प्रथम करेनिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसे इरियावहीका प्रतिक्रमण करना खुलासे लिखा है उसी पाठको तो छुपा दिया और पौषधविधि सम्बन्धी पाठको न्या०ने 'जैन० ना० पु० के' पृष्ठ ३४ के अन्तमें लिखके चूर्णिकार महाराजको विसंवादीका दूषण लगाके उन्ही महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिककी विधिमें प्रथम इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी निर्णय 'आत्म०के' पृष्ठ ८४।८५।८६ में छपगया है ।

८ आठमा—श्रीपूर्वाचार्यजी कृत श्रीविवाहचूलिया सूत्रमें सिंहनामा आवकने इरियावही पूर्वक चार प्रकारका पौषधकरा उसी सम्बन्धी खुलासे पाठ है तथापि न्यायां-भोनिधिजीने पौषध सम्बन्धी पाठको तोड़ करके अधूरा पाठ 'जैन० ना० पु० के' पृष्ठ ३५ की आदिमें लिखके सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका निर्णय 'आत्म०' के पृष्ठ ८७।८८।८९ तक छपगया है ।

[३२३]

९ नवमा--श्रीतपगच्छके श्रीजयचन्द्रसूरिजी जो कि श्री आवश्यकवृहद्वृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रानुसार तथा अपने ही गच्छके नायक श्रीदेवेन्द्रसूरिजी कृत श्रीश्राद्धदिनकृत्य सूत्रकी वृत्तिके और खास अपने काका गुरुजी श्रीकुल-मण्डनसूरिजी कृत श्रीविचारामृतसंग्रहनामा ग्रन्थके अनुसार सामायिकाधिकारे प्रथम करेभिन्नते पीछे इरियावही श्रद्धापूर्वक मान्य करने वाले थे उन्ही महाराजकृत श्रीप्रति-क्रमणभेदेतुनामा ग्रन्थमें साधु और पौषधवाला आषक दोनोंके वास्ते इरियावही पूर्वक राई प्रतिक्रमण करनेका खुलासा पाठ है जिसमें भी प्रतिक्रमणके सम्बन्धी सब पाठको छोड़ करके ग्रन्थकार महाराजके विरुद्धार्थमें न्या०ने 'जैन० ना० पु०' के पृष्ठ ३५ वा के मध्यमें थोड़ासा अधूरा पाठ लिखके फिर भी मूल पाठके बिना भाषार्थमें सामायिक शब्दका ज्यादा प्रयोग करके सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तार 'आत्म०' के पृष्ठ ९०, ९१, ९२ तक छपगया है ।

१० दशमा--श्रीपञ्चम गणधर महाराजकृत श्रीभगवतीजी मूलसूत्रके तथा श्रीखरतरगच्छनायक श्रीअभयदेवसूरीजी कृत तद्वृत्तिके बारहवें शतकके प्रथम उद्देशमें पौषधके अधिकारमें पुष्कली नामा आषक सम्बन्धी इरियावही कही है (सो छपी हुई श्रीभगवतीजीके पृष्ठ ९८१, ९८२ में अधिकार है) जिसके भी आगे पीछेके पौषध अधिकार-वाले पाठको छोड़ करके न्या०ने 'जैन० ना० पु०' के पृष्ठ ३५ के अन्तमें थोड़ासा अधूरा पाठ लिखके श्रीसूत्रकार तथा वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम

[३२४]

इरियावही स्थापन करी सो भी उत्सूत्र भाषणरूप है इसका भी विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ ९३ से ९६ के मध्य तक छपगया है ।

११ इग्यारहमा—श्रीखरतरगच्छके श्रीअभयदेवसूरिजी कृत श्रीसमाचारी ग्रन्थमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेभिभंते पीछे इरियावहीका खुलासा पूर्वक पाठ है तथापि उस पाठको छुपा करके अथवा लुप्त करके ग्रन्थकार महाराजके विरुद्धार्थमें मिथ्यात्वरूप रोगके उदयसे किसी भारी कर्म प्राणीने अपनी मति कल्पना मुजब नवीन पाठ बना करके समाचारी ग्रन्थमें लिख दिया है उसीकोही न्यायाम्भोनिधि जीने जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकके पृष्ठ ३६ में लिखके सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करी है सो भी महान् उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तार पूर्वक निर्णय 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' नामा ग्रन्थके पृष्ठ ९६ के अन्तसे पृष्ठ १०४ तक छपगया है ।

१२ बारहमा--श्रीखरतरगच्छवाले सामान्य विशेष पाठ को, तथा श्रीआवश्यक बृहद्वृत्तिके, और चूर्णिके, पाठको मान्य करते हैं तथापि न्या० ने 'जैन० ना० पु० के' पृष्ठ ३८ में सामान्य पाठको तथा श्रीआवश्यक बृहद्वृत्तिके और चूर्णिके पाठको तुम मान्य नहीं करते हो ऐसे लिखके श्रीखरतर गच्छवालोंको मिथ्या दूषण लगाया सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ १०७ से १११ तक छपगया है ।

१३ तेरहमा--खास न्यायाम्भोनिधिजी अपनी बनाई 'चतुर्थ स्तुतिनिर्णय' नामा पुस्तकके पृष्ठ ८८ के मध्यमें श्री-

[३२५]

जिनप्रभसूरिजी कृत श्रीविधिप्रपा समाचारी ग्रन्थके पाठ को नहीं माननेवालोंको मिथ्या दृष्टि ठहराते हैं परन्तु आप 'जैन० ना० पु० के' पृष्ठ ३८ में इन्हीं महाराज कृत उन्हीं ग्रन्थके पाठको नहीं मानते हुये द्वेषबुद्धिसे आक्षेप करके शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक सत्य बात परसें ओले जीधोंकी अट्टाभङ्ग करनेका कारण किया हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका भी विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ १११ के अन्तसें पृष्ठ ११५ तक छपगया है ।

१४ चौदहमा—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी परम्परानुसार श्रीजिनदास महेश्वराचार्यजी पूर्वधर महाराजनें श्रीआवश्यकजी सूत्रकी चूर्णिमें आक्षकके नवमा सामायिक व्रतमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेभिभंतेका उच्चारण किये बाद पीछेसें हरियावही खुलासे लिखी हैं जिसको श्रीजिनाज्ञाके आराधक सबी आत्मार्थी श्रीजैनाचार्यादि महाराजोंने अट्टापूर्वक प्रमाणकरी है और श्रीहरिभद्रसूरिजी, श्रीदेवगुप्तसूरिजी, श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीयशोदेवसूरिजी, श्रीहेमचन्द्राचार्यजी, श्रीविजयसिंहाचार्यजी, श्रीदेवेन्द्रसूरिजी, श्रीतिलकाचार्यजी, श्रीलक्ष्मीतिलकसूरिजी, श्रीकुलसङ्गसूरिजी, श्रीरत्नशेखरसूरिजी, श्रीमानविजयजी (कृत वृत्ति शुद्धकर्ता श्रीयशोविजयजी) आदि महाराजोंनें अपने अपने बनाये ग्रन्थोंमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेभिभंते पीछे हरियावही खुलासे लिखी है उसी मुजब मोक्षाभिलाषी आत्मार्थी प्राणियोंकी अट्टापूर्वक मञ्जूर करनी चाहिये तथापि न्यायाम्भोनिधिजी 'जैन० ना०' पु० के पृष्ठ ४१-४२में पूर्वधर महाराजकृत श्रीआवश्यक चूर्णिके पाठ पर और

[३२६]

उत्तमपुरुषोंके बनाये ग्रन्थों पर श्रद्धा नहीं रखते हुये अपने अन्तरके मिथ्यात्वको प्रगट करके भोले जीवोंको भी शुद्ध-श्रद्धारूपी सत्यस्व रखते श्रष्ट करनेका कार्य किया सो भी महान् उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तारसें निर्णय 'आत्म० के' पृष्ठ १३८ से पृष्ठ १५५ तक छप गया है ।

१५ पदरहमा—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने चैत्य-वन्दनादिके सूत्रोंके उपधान कहे हैं तथा खास न्यायां-भोनिधिजी भी अपना बनाया 'तत्त्वनिर्णय प्रासाद' नामा ग्रन्थके पृष्ठ ४५७ से ४६४ तक उपधानकी व्याख्या उपर मुजबही करी है और श्रीभगवतीजीमें सामायिककी स्वयं आत्मा कहा है इसलिये आत्माके उपधान नहीं होते हैं और किसी भी शास्त्रमें सामायिकके उपधान नहीं लिखे हैं तथापि 'जैन० ना०' पु० के पृष्ठ ४३ में सामायिकके उपधान उहराते हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ १५६से १६९ तक छप गया है ।

१६ सोलहमा—श्रीदशैकालिकजी सूत्रकी चूलिकामें श्री सीमंधरस्वामीजी महाराजने साधुकेही अधिकारका वर्णन किया है सो प्रसिद्ध है तथापि न्या०ने 'जैन० ना० पु०'के पृष्ठ ४४-४५ में श्रीहरिभद्रसूरिजीकृत सृष्टवृत्तिके पाठको अगाड़ी का पिछाड़ी और पिछाड़ीका अगाड़ी उलट पुलट करके भी अधूरा लिखके फिर पृष्ठ ४५ के अन्तमें साधुके अधिकार वाले पाठको श्रावकके अधिकारमें स्थापन करनेके लिये खूबही परिश्रम किया है सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तार 'आत्म० के' पृष्ठ १७० से १९५ तक छप गया है ।

१७ सतरहमा—श्रीजैनधर्माचार्यजी पूर्वापर विरोध

[३२७]

रहित अविसंवादीपने ग्रन्थ रचना करते हैं तथापि न्या०ने जैन० ना० पु० के पृष्ठ ४७ में श्रीखरतरगच्छनायक श्रीनवाङ्गी वृत्तिकार सुप्रसिद्ध श्रीमदभयदेव सूरिजी महाराजको और श्रीतपगच्छनायक सुप्रसिद्ध श्रीमद्वेन्द्रसूरिजी महाराजको विसंवादी पूर्वापर विरोधि लिखनेवाले ठहराये हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तारसें निर्णय 'आत्म० के' पृष्ठ १९७ से २१६ तक छप गया है ।

१८ अठारहमा—श्रीखरतरगच्छके श्रीवर्द्धमानसूरिजीने आचारदिभकर नामा ग्रन्थमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेभिभते पीले हरियावही खुलासा पूर्वक लिखी है जिसका तात्पर्य समझे बिना न्या०ने 'जैन० ना० पु० के' पृष्ठ ४८ के आदिमें सामायिकमें प्रथम हरियावही स्थापन करने के लिये परिश्रम करके लिखा है सो भी उत्सूत्र भाषणरूप है इसका निर्णय 'आत्म० के' पृष्ठ २१९, २२०, २२१ तक छप गया है ।

१९ एकोनवीशहमा—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी महान् परम्परानुसार श्रीखरतरगच्छमें प्रथम करेभिभतेके उच्चारण करनेका अखण्डित व्यवहार आज तक चला आता है तथापि न्या० ने 'जैन० ना० पु०' के पृष्ठ ४८ के मध्यमें प्रथम हरियावहीकी परम्परा ठहराई है सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका निर्णय 'आत्म० के पृष्ठ' २२३-२२४ में छप गया है ।

२० बीशहमा—श्रीआवश्यकचूर्णि, बृहद्वृत्ति, लघुवृत्ति, श्रीपञ्चाशकवृत्ति, चूर्णि, श्रीयोगशास्त्रवृत्ति, वगैरह अनेक शास्त्रोंकी सामायिक विधिकी न्या०ने 'जैन० ना० पु० के'

[३२८]

पृष्ठ ४८ के मध्यमें 'सुच्छ' शब्दसे लिखके (शास्त्रों की तथा शास्त्रकार श्रीपूर्वधरादि महाराजोंकी आशातना करके) निषेध करी हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है इसका विस्तार आत्म०के' पृष्ठ २२५ से उपना सरू है ।

२१ एकवीशहना—श्रीजैनशास्त्रोंमें सर्व जगह सामायिक सम्बन्धी प्रथम करेभिर्भंते करनेकी एकही विधि है तथापि न्या० ने जैन० ना० पु० के पृष्ठ ४८ अन्तमें सामायिक सम्बन्धी पूर्वापर विरोधी दो विधि स्थापन करी हैं सो भी उत्सूत्र भाषण है उसका निर्णय 'आत्मभ्रमोच्छेदन-भानुः' नामा ग्रन्थमें उपना सरू है ।

ऊपर मुजब २१ प्रकारके उत्सूत्र भाषण न्यायाम्भोनिधि जीमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करनेके लिये लिखे हैं और कितनी जगह मायावृत्तिरूप, कितनीही जगह प्रत्यक्ष मिथ्या, कितनीही जगह अन्याय कारक, कितनीही जगह श्रीजैनशास्त्रोंके अतीव गहनाशयको समझे बिना उलटा भी लिख दिया है इत्यादि अनेक तरहके अनुचित लेखों करके सामायिकमें प्रथम इरियावही (श्रीजैनशास्त्रोंके तथा श्रीजैनाचार्योंके विरुद्ध) स्थापनेके लिये अपने तथा अपने पक्षधारियोंके संसार चट्टिके निमित्त भूत खूबही परिश्रम किया है उसीके सबका निर्णय देखनेकी इच्छा होवे तो 'आत्मभ्रमोच्छेदनभानुः' में शास्त्रार्थपूर्वक युक्ति सहित अच्छी तरहसे होगया है सो पढ़नेसे सर्व खुलासा हो जावेगा—और पर्युषणासम्बन्धी यह ग्रन्थ प्रसिद्ध होये बाद थोड़ेही दिनोंमें 'आत्मभ्रमो-च्छेदनभानुः' भी प्रगट होनेका सम्भव है ।

[३२९]

अथ सत्यग्राही सज्जनपुरुषोंको निष्पक्षपाती होकरके विचार करना चाहिये कि—एक सामायिक विषयमें प्रथम करेनिभंते पीछे इरियावही सम्बन्धी २१ शास्त्रोंके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको न्यायके समुद्र ही करके भी श्रीआत्मनारायणजीने छोड़ दिये और आप उन्ही शास्त्रोंके पाठोंकी श्रद्धा रहित बनकरके उन्ही शास्त्रोंके तथा उन्ही शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें प्रथम इरियावही स्थापन करनेके लिये ऊपर-रोक्त कैसा अनर्थ करके—कहीं उपधानसम्बन्धी, कहीं साधुके जाने आने सम्बन्धी, कहीं चैत्यवन्दनसम्बन्धी, कहीं स्वाध्यायसम्बन्धी, कहीं पड़ावप्रत्यक्षप्रतिक्रमणसम्बन्धी, कहीं पौषधमसम्बन्धी, इत्यादि अनेक तरहके अन्य अन्य विषयोंके सम्बन्धमें शास्त्रकार महाराजोंने इरियावही कही है जिसके बदले उन्हीं शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापन करनेके लिये आगे पीछेके पाठोंको छोड़ करके अधूरे अधूरे पाठ लिखते न्यायाभिमोचिजिजीको पर सबका कुछ भी भय नहीं लगा और इस लौकिकमें भी अपनी विद्वत्ताकी हासी करानेके कारणरूप इतना अभ्यास करते कुछ शर्म भी नहीं आई इसलिये सामायिकाधिकारे प्रथम करेनिभंते पीछे इरियावही सबी गच्छोंके प्रभाविक पुरुषोंने अनेक शास्त्रोंमें प्रत्यक्ष पने अविश्ववादरूप सुलासा पूर्वक लिखी है जिसको जानते हुवे भी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके जोरसे श्रीहरिभद्रसूरिजी, श्रीअभयदेवसूरिजी, श्रीदेवेन्द्रसूरिजी वगैरह प्रभाविक पुरुषोंको विश्ववादीका मिथ्या दूषण लगा करके सामायिकमें प्रथम इरियावही स्थापनेका विश्ववाद-

[३३०]

रूपी मिथ्यात्वकी बढ़ाने वाला भगड़ा (अविस्मृतादी श्री-जैनशासनमें इस वर्तमान कालके बालजीवोंकी श्रद्धाभ्रष्ट करनेके लिये) श्रीआत्मरामजीने अपनी विद्वत्ताके अभिमानसें खूबही फैलाया है ;—

और सामायिकाधिकारे प्रथम करेमिभंतेका उच्चारण करनेका निषेध करके प्रथम इरियावही स्थापन करने सम्बन्धी ऊपरोक्त जैनसिद्धान्त समाचारी नामक पुस्तकमें जैसे उत्सूत्र भाषणोंसें मिथ्यात्व फैलाया है तैनेही श्रीवीरप्रभुके उक्त्याणक निषेध करके पाँच कल्याणक स्थापन करने वगैरह कितनी बातोंमें भी खूबही उत्सूत्र भाषणोंसे मिथ्यात्व फैलाया है जिसका खुलासा आगे लिखुंगा—

और श्रीआत्मरामजीकी अपने पूर्व भवके पापोदयसें पहिले दुंदियोंके मिथ्या कल्पित मतमें दीक्षा लेनी पड़ी थी वहाँ भी अपने कल्पित मतके कदाग्रहकी बात जमानेके लिये अनेक शास्त्रोंके उलटे अर्थ करते थे तथा अनेक शास्त्रोंके पाठोंकी छोड़के अनेक जगह उत्सूत्र भाषण करके संसार वृद्धिका भय न करते हुवे भोले दृष्टिरागियोंकी मिथ्यात्वकी अनजालमें गेरते थे और मिथ्यात्वरूप रोगके उदयसें श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञा मुजब सत्य बातोंकी कल्पित समझते थे और श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञा विरुद्ध अपने मत पक्षकी कल्पित मिथ्या बातोंको सत्य समझते थे और हजारों श्रीजैन शास्त्रोंको उत्पादन करके सत्य बातोंके निन्दक शत्रु बनते थे इत्यादि अनेक तरहके कार्योंसें अपने दुंदक मतकी मिथ्या कल्पित बातोंको पुष्ट करके अपने मतको फैलाते थे परन्तु कितनेही वर्षोंके बाद अपने पूर्व भवके महान् पुण्योदय होनेसें दुंदकमतके पास-

[३३१]

रहकीसबपोल दिनदिनप्रति खुलतीगई जिससे कल्पित ढूँढकमत को श्रीजैनशास्त्रोंकेविरुद्ध और संसारवृद्धिका हेतु भूत जानकर छोड़दिया और श्रीजैनशास्त्रोंके प्रमाणानुसार सत्यबातोंको ग्रहण करनेके लिये संवेगपक्ष अङ्गीकारकरके अनेकशास्त्रोंका अवलोकनकिया और श्रीजैनतत्त्वादश, अज्ञानतिमिरभास्कर, तत्त्वनिर्णयमासाद् वगैरह भाषाके ग्रन्थोंका संग्रह करके प्रसिद्धभी कराये जिससे विद्वान्भी कहलाये तथा ढूँढकमतकी मिथ्यात्वरूप पाखण्डके भ्रमजालसे कितनेही भ्रमजालोंका उद्धार भी किया और अनेक भक्तजनोंसे खूबही पूजाये-शिष्य-वर्गका समुदाय भी बहुत हुआ तथा शुद्ध प्रवचक, उत्कृष्टक्रिया करने वाले भी कहलाये और श्रीमद्विजयानन्दपूरि-न्यायाम्भो-निधिजीवगैरह पदवियोंकोभी प्राप्तभये जिससे दुनियामें प्रसिद्ध भी हुवे परन्तु यह तो दुनियामें प्रसिद्ध बात है, कि-जिस आदमीका जो स्वभाव पहिलेसे पड़ा होवे उस आदमीको कितनेही अच्छे संयोगोंसे चाहे जितना उत्तम गिनो अथवा श्रेष्ठ पदमें स्थापनकरो तो भी अपना पहिलेका पड़ा हुआ स्वभाव नहीं छुटता है सोही बात नीति शास्त्रोंके 'सुभाषितरत्न भान्डागारम्' नामा ग्रन्थके पृष्ठ १०६ में कही है। तैसाही वर्ताव न्यायाम्भोनिधिजी नामधारक श्रीआत्मारामजीने भी किया है, अर्थात्-पूर्वोक्त ढूँढकमतके साधुपनेमें अनेक शास्त्रोंके विरुद्धार्थ-में अनेक जगह उत्पन्न भाषणकरने वगैरहके कार्योंका जो पहिले स्वभाव था सो नहींजानेके कारणसे उसीमुजबही संवेगपक्षमें भी अपने विद्वत्ताके अभिमानसे कल्पितबातोंको स्थापन करनेके लिये पर भवका भय न करके एक 'जैनसिद्धान्त समाचारो' परन्तु वास्तवमें "उत्पन्नोके कुयुक्तियोंकी भ्रमखाड" नामक पुस्तकमें अनुमान १६० शास्त्रोंकेविरुद्ध लिखके, ६० जगह अन्दाज उत्पन्न

[३३२]

भाषण भी लिखे हैं जिसके नमूनारूप एक सामायिक विषय सम्बन्धी संक्षिप्तसे ऊपरमेंही लिखनेमें आया है, और पर्युषणाके विषयमें भी अनेक जगह उत्सूत्र भाषण किये हैं उसकी भी समीक्षा इसही ग्रन्थके पृष्ठ १५१ से २१६ तक छप गई है सो पढ़नेसे निष्पक्षपाती सरयग्राही सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे।

और 'शुद्धसमाचारी'की पुस्तकमें पौषधाधिकारे, विधिसागंने उत्सगंसे-अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या इन चारों पर्वतिथियोंमें पौषध करनेसम्बन्धी श्रीसूयगहांगजी, उत्तराध्ययन जी, उववाईजी, धर्मरत्नप्रकरण वृत्ति, योगशास्त्र वृत्ति, धर्मबिन्दु वृत्ति, नवपद प्रकरण वृत्ति, समवायांग वृत्ति, पंचाशक वृत्ति, आवश्यक चूर्णि, तथा बृहद् वृत्ति, और श्रीभगवतीजीसूत्र वृत्ति, वगैरह शास्त्रोंके पाठ दिखाये थे जिसका तात्पर्यार्थको समझे बिना शास्त्रोंके विरुद्ध होकर हमेशा पौषधकरनेका ठहरानेके लिये श्रीआवश्यकसूत्रकी चूर्णिमें तथा बृहद् वृत्तिमें और लघु वृत्तिमें और श्रीप्रवचनसारोद्धार वृत्तिमें, श्रीसमवायांगजीसूत्रकी वृत्तिमें श्रीपंचाशकजीकी चूर्णिमें तथा वृत्तिमें और श्रीउपाशकदशंग वृत्ति वगैरह अनेक शास्त्रोंमें आवश्यककी ११ पहिनाके अधिकारमें पांचवी पहिनाकी विधिमें "आवक दीनमें ब्रह्मचर्य व्रत पाले और रात्रिको नियम करे" ऐसे सुझावे पाठ हैं तिसपरभी न्यायां-भोनिधिजीने अन्धपरंपरासे विवेक शून्यहोकर शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें अपनी मतिकल्पनासे श्रीआवश्यकवृत्ति वगैरहके पाठका "दिवसका ब्रह्मचर्यपाले रात्रिको कुशीलसेवे" ऐसा वीप-रीत अर्थ करके मैथुन सेवनकी हिंसाका उपदेश करनेका शास्त्र-कारोंको झूठा दूषण लगाके बहामारी अनर्थ करके जैनसिद्धांत तक पुस्तकमें दुर्लभओषिका कारण किया है

[३३३]

हरयादि, इसी तरहसे अनेक बातोंमें बहुत चरसूत्रोंसे बड़ा अभय किया है उसके सबका निर्णयतो “आत्मश्चमोच्छेदन भानुः” के अवलोकनसे अच्छी तरहसे हो जावेगा ।

और न्यायाम्भोनिधिजीने ‘जैनसिद्धान्त समाचारी’ पुस्तकका नाम रक्खा परन्तु वास्तवमें चरसूत्र भाषणोंके और कुयुक्तियोंके संग्रहकी पुस्तक होनेसे आत्मार्थी अध्यजीवोंके मोक्षसाधन में विघ्नकारक और श्रीजिनाज्ञासे बालजीवोंकी मद्द्वाश्रय करनेवाली मिथ्यात्वके पाखण्डकी भ्रमजालरूप हैं सो इसके बनानेवालोंको, तथा ऐसी जाल बनानेमें संसारचट्टिकी हेतु भूत खूबही दलाती कौशिस करनेवालोंको, और मिथ्यात्वको बढ़ा करके संसारमें भ्रमानेवाली ऐसीजाल प्रगट करनेमें श्रीभावनगरकी श्रीजैनधर्मप्रसारकसभाके मेम्बरलोग उस समय आगेवान् हुए जिन्होंकी, और इसके बनानेकी खुसीमानकर अनुमोदना करनेवालोंको और इसी मुजब अन्धपरंपराके गड्ढरीह प्रवाहकी तरह चलकर श्रीजिनाज्ञानुसार सत्यबातों की निन्दा करनेवालोंको, श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक सम्यक्त्वी आत्मार्थी जैनी-कैसे कहे जावे इस बातको तत्त्वग्राही मध्यस्थ सज्जनस्वयं विचारलेवेंगे—

और शास्त्रोंकेविरुद्ध उत्सूत्रप्ररूपणा करनेवालेको मिथ्यात्वी अनन्त संसारी अनेकशास्त्रोंमें कहा है और न्यायाम्भोनिधिजी नाम धारक श्रीआत्मारामजीने तो एक ‘जैनसिद्धान्त समाचारी’ नामक पुस्तकमें इतने शास्त्रोंके विरुद्ध लिखके इतने उत्सूत्र भाषण किये हैं तो फिर पहिले ढूँढकमतकी दीक्षानें और अन्यकार्योंमें कितने उत्सूत्रभाषण करके कितने शास्त्रोंकेविरुद्ध प्ररूपणाकरी होगी जिसके कल विषयकका कितना अनन्त संसार बढ़ाया होगा सो तो श्रीज्जानीजी महाराज जाने ।

[३३४]

और न्यायात्मोनिधिजीने श्रीजैनतत्त्वादर्शमें, अज्ञान तिमिर भास्करमें, और श्रीजैनधर्मविषयिक प्रश्नोत्तर, नामा पुस्तकमें जो उत्सूत्रभाषणरूपलिखा है जिसके सम्बन्धमें आगे लिखनेमें आवेगा

और इस तरहसे अनेक शास्त्रोंके पाठोंकी अद्वारहित तथा शास्त्रोंके आगेपीछेके सम्बन्धवाले पाठोंको छोड़करके शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें अधूरे अधूरे पाठलिखके उलटे बीपरीत अर्थ करनेवाले और शास्त्रकार महाराजोंको विसंवादोक्त-मिथ्या दूषण लगानेवाले और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार सत्यवातोंका उत्थापन करके अपनी सत्तिकल्पनासे अन्धपरम्पराकी मिथ्या बातोंको स्थापन करते हुये। अविधिरूप उन्नार्गके पाखण्डको फैलानेमें सार्थवाहकी तरह आगेधान बननेवाले और अपनेही गच्छके प्रभावक पुरुषों को दूषित ठहरानेवाले और बाल जीवोंको सत्य वातोंके निन्दक बना करके दुर्लभशोधिके कारणसे संसारकी खाड़मे गेरनेवाले ऐसे ऐसे महान् अनर्थ करनेवालेको गच्छपक्षका दृष्टिरागसे-गीतार्थ, न्यायात्मोनिधिजी (न्यायके समुद्र) और युगप्रधान, कलिकाल सर्वज्ञ समान जैनाचार्य्य वगैरहकी लम्बी लम्बी ओपमालगाके ऐसे उत्सूत्री गाढ़कदाग्रहियोंकी सहिना बड़ा करके आइंशरसे मोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें फँसानेके लिये उत्सूत्रभाषणोंके महान् अनर्थका विचार न करके उपरोक्त मिथ्या गुण लिखने-वालोंकी क्या गति होगी तथा कितना संसार बड़ा बर्गे और सम्यक्त्व रत्न कैसे प्राप्त कर सकेंगे सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने।

अब श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक सज्जन पुरुषोंको मेरा इतनाही कहना है कि ऊपरके लेखको पढ़के दृष्टिरागके पक्षपातको न रखते हुये संसार दृष्टिकी

[३३५]

हेतुभूत मिथ्या बातको छोड़ करके आत्मकल्याणके लिये सत्य बातोंके तत्त्वग्राही होना चाहिये और छठे महाशय जीनें दूंदियांको भी अपने सामिल करके सामायिक सम्बन्धी तथा कल्याणक सम्बन्धी और जैनसिद्धान्त समाचारी सम्बन्धी लिखके अपने पक्षकी बात जमानेका परिश्रम किया इसलिये मेने भी सामायिक सम्बन्धी और जैनसिद्धान्त समाचारी सम्बन्धी ऊपरमें इतना लिखके सत्यग्राही भव्यजीवोंको संक्षिप्तसे शास्त्रार्थ दिखाया है और कल्याणक सम्बन्धी पर्युषणका विषय पूरा हुवे बाद पीछेसे लिखनेमें आवेगा सो पढ़नेसें सर्व निर्णय हो जावेगा ;—

अब छठे महाशयजी श्रीवज्रभविजयजीको मेरा (इस ग्रन्थकारका) इतना ही कहना है कि आशाद्वौमासीसें पचास दिने दूसरे आवणमें पर्युषणा करनेवालोंको आपने आज्ञा भङ्गका दूषण लगाया तब श्रीलङ्करसे श्रीबुद्धिसागरजीने आपको पत्रद्वारा शास्त्रका प्रमाण पूछा उन्हेको शास्त्रका प्रमाण आपने बताया नहीं और छापेमें भी पर्युषणा विषयसम्बन्धी शास्त्रार्थ पूर्वक निर्णय करना छोड़ करके अपनी बात जमानेके लिये निष्प्रयोजनकी अन्य अन्य बातोंको लिखके प्रगट करी और अन्यायसें विशेष झगड़ा फैलानेका कारण किया इसलिये मेने भी आपके अन्यायको निवारण करनेके लिये मुख्य मुख्य बातोंका संक्षिप्तसें खुलासा करके सत्य तत्त्वग्राही सज्जन पुरुषोंको दिखाया हैं जिसको पढ़नेसे न्याय अन्यायका तथा श्रीजिनाज्ञाके आराधक विराधकका निर्णय निष्पक्षभाती पाठकवर्ग स्वयं कर लेंगे और मरिचिने एक उत्सूत्र भाषणसें एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम जितना

[३३६]

संसार बढ़ाया इस न्यायानुसार आपके गुरुजी न्यायान्धो-निधिजीने इतने उत्सूत्र भाषणोंसे कितना संसार बढ़ाया होगा सो तो आप लोगोंको भी न्याय दृष्टिसे हृदयमें विचार करना उचित है और अब आप लोग भी उसी तरहके उत्सूत्र भाषणोंसे मिथ्या भगड़ा करते हुए श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञानुसार मोक्षमार्गकी हेतुरूप सत्य-बातोंका निषेध करके श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध संसार वृद्धिकी हेतु-भूत मिथ्या कल्पित बातोंकी स्थापन करके बाल जीवोंकी सत्यबात परसे श्रद्धाभ्रष्ट करते हो और मिथ्यात्वको बढ़ाते हो सो कितना संसार बढ़ावोगे सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने-यदि आपको संसार वृद्धिका भय होवे और श्रीजिनाज्ञाके आराधन करनेकी इच्छा होवे तो जमालिके शिष्योंकी तरह आपभी करें तथा न्यायान्धोनिधिजीके समुदायवालोंकी भी ऐसैही करना चाहिये क्योंकि जमालिके उत्सूत्र परूपनाकी उनके शिष्योंकी जबतक मालूम नहीं थी तबतक तो जमालिके कहने मुजबकी सत्य माना परन्तु जब अपने गुरुकी श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध उत्सूत्र परूपनाकी मालूम होगई तब उसीको छोड़ करके श्रीवीरप्रभुजीके पास आकर सत्यग्राही होगये तैसेही न्यायान्धोनिधिजीके शिष्यवर्गमें भी जो जो महाशय आत्मारथी सत्य ग्राही होवेंगे सो तो दृष्टिरागका पक्षको न रखके अपने गुरुकी उत्सूत्र भाषणकी बातोंको छोड़कर शास्त्रानुसार सत्य बातोंको ग्रहण करके अपनी आत्माका कल्याण करेंगे और भक्तजनोंको करावेंगे ।

इति छठे महाशयजीके लेखकी संक्षिप्त समीक्षा समाप्ता ।

[३३९]

और सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजीकी तरफसे 'पर्युषणा विचार'नामा छोटीसी १० पृष्ठकी पुस्तक प्रगट हुई है जिसमें पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके विरुद्ध तथा श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी और खास अपनेही गच्छके पूर्वाचार्योंकी आशातना कारक और सत्य बातका निषेध करके अपने गच्छ कदाग्रहकी मिथ्या कल्पित बातको स्थापन करनेके लिये श्रीजैनशास्त्रोंके अतीव गहनाशयको समझे बिना शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें बिना सम्बन्धके और अधूरे अधूरे पाठ दिखाके उलटे तात्पर्यसे उतसूत्र भाषण रूप अनेक कुतर्कों करके अपने पक्षके एकान्त आग्रहसे दूसरोंको मिथ्या दूषण लगाके भोले जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरे है और अपनी विद्वत्ताकी हासी कराई है इसलिये अब में इस जगह भव्य जीवोंके मिथ्यात्वका भ्रम दूर होनेसे शुद्ध श्रद्धानरूपी सम्यक्त्वकी प्राप्तिके उपगारके लिये और विद्वत्ताके अभिमानसे उतसूत्र भाषण करनेवालोंको हित शिक्षाके लिये पर्युषणा विचारके लेखकी समीक्षा करके दिखाता हूँ ;—

यद्यपि पर्युषणा विचारकी पुस्तकमें लेखक नाम विद्या विजयजीका रूपा है परन्तु यह ग्रन्थकार उसीकी समीक्षा उन्होंनेके गुरुजी श्रीधर्मविजयजीके नामसे लिखता हैं जिसका कारण इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ६७:६८ में रूपागया है और आगे भी लपेगा इसलिये इस ग्रन्थकारको सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजीके नामसेही समीक्षा लिखनी युक्त है सोही लिखता है जिसमें प्रथमही पर्युषणा विचारके लेखकी आदिमें लिखा है कि (आत्मकल्याणभिलाषी भव्यजीव

[३३८]

निर्मूलता समूलताका विचार छोड़ अपनी परम्परा पर आरुढ़ होकर धर्मकृत्योंको करते हैं) इस लेखको देखतेही मेरेको बड़ाही विचार उत्पन्न हुआ कि—सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजी और उन्हींकी समुदायवाले साधुजी बहुत वर्षोंसे काशीमें रह करके अभ्यास करते हैं इसलिये विद्वान् कहलाते हैं परन्तु श्रीजैनशास्त्रोंका तात्पर्य उन्हींकी समझमें नहीं आया मालूम होता है क्योंकि आत्मार्थी प्राणियोंकी निर्मूलता समूलता इन दोनोंका विचार अवश्यमेव करना उचित है और निर्मूलता, याने—शास्त्रोंके प्रमाण बिना गच्छ कदाग्रहके परम्पराकी जो मिथ्या बात होवे उसीको छोड़ देना चाहिये और समूलता, याने शास्त्रोंके प्रमाणयुक्त कदाग्रह रहित गच्छ परम्पराकी जो सत्य बात होवे उसीको ग्रहण करना चाहिये और हेय, ज्ञेय, उपादेय, इन तीनों बातोंकी खास करके प्रथमही विचारनेकी आवश्यकता श्रीजैनशास्त्रोंमें खुलासा पूर्वक दर्शाई है, इसलिये निर्मूलता, हेय त्यागने योग्य होनेसे और समूलता, उपादेय ग्रहण करने योग्यहोनेसे दोनों का विचार छोड़ देना कदापि नहीं हो सकता है और आत्मकल्याणाभिलाषी निर्मूलता त्यागने योग्यका तथा समूलता ग्रहण करने योग्यका विचार जबतक नहीं करेगा तबतक उसीको श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध वर्त्तनेका अथवा श्रीजिनाज्ञा मुजब वर्त्तनेका, बन्धका अथवा मोक्षका, मिथ्यात्वका अथवा सम्यक्त्वका, संसार वृद्धिका अथवा आत्मकल्याणके कार्योंका, भेदभावके निर्णयको प्राप्त नहीं हो सकेगा और जबतक ऊपरकी बातोंकी भिन्नताकी नहीं

[३३९]

समझे गा तबतक उसीको आत्म कल्याणकारस्ता भी नहीं मिले गा तो फिर भाव करके श्रीजिनाज्ञा मुजब श्रावकधर्म और साधुधर्म कैसे बनेगा याने—निर्मूलता समूलताका विचार छोड़ करके धर्मकृत्योंके करनेवालोंको मोक्ष साधन नहीं हो सकेगा है क्योंकि उन्हेंका धर्मकृत्य तो तत्वा-तत्वका उपयोगशून्य होजाता है इसलिये आत्मार्थी प्राणि-योंको निर्मूलता समूलताका विचार करना अवश्यही युक्त है तथापि सातवें महाशयजीने दोनोंका विचार छोड़नेका लिखा हैं सो जैनशास्त्रोंके विरुद्ध होनेसें मिथ्यात्वका कारणरूप उत्सूत्र भाषण है इस बातको तत्त्वज्ञ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और (अपनी परम्परा पर आरुढ़ होकर धर्मकृत्योंका करते हैं) सातवें महाशयजीके इन अक्षरों पर भी मेरेको इतनाही कहना है कि—अपनी परम्परापर आरुढ़ होकर धर्मकृत्योंको करनेका जो आप कहते हो तब तो पर्युषणा विचारके लेखमें आपको दूसरोंका खण्डन करके अपना भण्डन करना भी नहीं बनेगा क्योंकि सबी गच्छवाले अपनी अपनी परम्परापर आरुढ़ होकर धर्मकृत्य करते हैं जिन्हेंका खण्डन करके अपना भण्डन करना सो तो प्रत्यक्ष अन्याय कारक कृथा है और परम्परा द्रव्य और भावसें दो प्रकारकी शास्त्रकारोंने कही है जिसमें पञ्चाङ्गीके प्रमाण रहित वर्त्ताव सो तो गच्छ कदाग्रहकी द्रव्य परम्परा संसार वृद्धिकी हेतु भूत होनेसें आत्मार्थियोंको त्यागने योग्य है और पञ्चाङ्गीके प्रमाण सहित वर्त्ताव सो भाव परम्परा मोक्षकी कारण होनेसें आत्मार्थियोंको प्रमाण करने योग्य हैं

[३४०]

और द्रव्य भाव परम्पराका विशेष विस्तार देखनेकी इच्छा होवे तो श्रीखरतरगच्छनायक सुप्रसिद्ध श्रीनवाङ्गी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरिजीकृत श्रीआगम-अष्टोत्तरी नामा ग्रन्थ 'आत्म-हितोपदेश-नामा पुस्तकमें' गुजराती भाषा सहित श्रीअहमदाबादसें लपके प्रसिद्ध होगया है सो पढ़नेसे अच्छी तरहसें मालूम हो जावेगा ।

और श्री सर्वज्ञ कथित श्रीजैनशासन अविमंवादी होने से श्रीतीर्थङ्कर भगवानोंके जितने गणधर सहाराज होते हैं उतनेही गच्छ कहे जाते हैं उन्ह सबीही गच्छवाले महानुभावोंकी ऐकही परूपना तथा एकही वर्ताव होता है और इस वर्तमान कालमें तो बहुतही गच्छवालोंके आपसमें अनेक तरहके विसंवाद होनेसें जुदी जुदी परूपना तथा जुदा जुदा वर्ताव है और बहुतही गच्छवाले अपने अपने गच्छकी परम्परा मुजब धर्मकृत्य करते हुये आप श्रीजिनाज्ञाके आराधक बनते हैं और दूसरे गच्छवालोंकी झूठे ठहरा करके निषेध करनेके लिये—राग, द्वेष, निन्दा, ईर्ष्यासें खण्डन मण्डन करके, आपसमें बड़ाही भारी विसंवादसें मिथ्यात्वको बढ़ानेवाला भगड़ा करते हैं इसलिये वर्तमान कालमें अपनी अपनी परम्परापर दृढ़ रहने सम्बन्धी सातवें महाशयजीका लिखना मिथ्यात्वका कारणरूप उत्सूत्र भाषण है क्योंकि अपनी अपनी परम्परा पर आकूढ़ होकर धर्मकृत्य करने वाले सबी गच्छवाले श्री जिनाज्ञाके आराधक हो जावेगे तो फिर अविमंवादी श्री जैनशासनकी मर्यादा कैसे रहेगा इसलिये वर्तमान कालमें अपने अपने गच्छपरम्पराकी बातोंका पक्षपात न रखते

[३४१]

हुवे श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध पञ्चाङ्गीके प्रमाण रहित कल्पित बातोंको छोड़ करके श्रीजिनाज्ञा मुजब पञ्चाङ्गीके प्रत्यक्ष प्रमाण पूर्वक सत्यवातोंको ग्रहण करके अपनी आत्माका कल्याण करनेके कार्योंमें उत्थम करना चाहिये जिससे आत्मकल्याण होगा नतु तत्वातत्वका विचारशून्य अन्धपर-परम्परामें—जैसे कि, ८० दिने पर्युषणा करना १, फिर माया-वृत्तिसे अधिक मासका निषेध भी करना २, तथा श्री वीरप्रभुके छ कल्याणकोंका निषेध करना ३, और सामा-यिक करते पहिलेही इरियावही करना ४, और आंखीलमें अनेक द्रव्य भक्षण करने कराने ५, इत्यादि अनेक बातें शास्त्रोंके प्रमाण बिना गहुरीह प्रवाहकी तरह आत्मार्थि-योंको त्यागने योग्य गच्छ कदाग्रहकी द्रव्य परम्परासे प्रचलित है नतु शास्त्रोंके प्रमाणानुसार भावपरम्परासे क्योंकि श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें दिनोंकी गिनतीसे ५० दिने पर्युषणा कही है १, और अधिकमासकी भी खुलासा पूर्वक गिनतीमें लिया है २, तथा श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंकी भी अच्छी तरहसे खुलासा पूर्वक कहे हैं ३, और सामायिका-धिकारे प्रथम करेभिज्जंतेका उच्चारण करना कहा है ४, और आंखीलमें भी दो द्रव्योंका भक्षण करना कहा है ५, सोही ऊपरकी बातें शास्त्रानुसार भावपरम्परासे होनेसे आत्मार्थियोंको ग्रहण करने योग्य है इन ऊपरकी बातोंका निर्णय आठोंही महाशयोंके उत्सृज भाषणके लेखोंकी समीक्षा सहित इस ग्रन्थको संपूर्ण पढ़नेवाले निष्पत्तपाती तत्त्व-वाही सज्जन पुरुषोंको स्वयं मालूम हो जायेगा ।

[३४२]

देखिये सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजीने शास्त्र-विशारदकी पदवीको अङ्गीकार करी है तथापि पर्युषणा विचारके लेखकी आदिमेंही श्रीजैनशास्त्रोंके तात्पर्यको समझे बिना निर्मूलता समूलताका विचार छोड़ने सम्बन्धी और अपनी२ परम्परा पर आसुद्ध होकर धर्मकार्य कहने सम्बन्धी दो उत्सूत्रभाषण प्रथमही बालजीवोंको मिथ्यात्वमें फँसानेवाले लिख दिये और पूर्वापरका कुछ भी विचार विवेक बुद्धिसें हृदयमें नहीं किया इसलिये शास्त्रविशारद पदवीको भी लजाया—यह भी एक अलौकिक आश्चर्य-कारक विद्वत्ताका नमूना है, खैर—अब पर्युषणा विचारके आगेका लेखकी समीक्षा करके पाठक वर्गको दिखाता हूँ—

पर्युषणा विचारका प्रथम पृष्ठके मध्यमें लिखा है कि—(पक्षपाती जन परस्पर निन्दादि अकृत्योंमें प्रवर्तमान होकर सत्यधर्मकी अवहेलना करते हैं) इस लेखपर भी मेरेको इतनाही कहना है कि सातवें महाशयजीने अपने कृत्य सुजब तथा अपने अन्तरगुण युक्त ही ऊपरका लेख में सत्यही दर्शाया है क्योंकि खास आपही अपने पक्षकी कल्पित बातोंको स्थापन करनेके लिये श्रीजिनाज्ञा सुजब सत्यबातोंको निषेध करके सत्यबातोंकी तथा सत्यबातोंको मानने वालोंकी निन्दा करते हुये कुयुक्तियोंसें बालजीवों को मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लियेही पर्युषणा विचारके लेखमें उत्सूत्र भाषणोंका संग्रह करके अविस्वादी श्रीजैन-शासनमें विस्वादाका भगड़ा बढ़ानेसें श्रीजैनशासनरूपी सत्यधर्मकी अवहेलना करनेमें कुछ कम नहीं किया है सो

[३४३]

तो पर्युषणाविचारके लेखकी मेरी लिखी हुई सब समी-
क्षाको पढ़नेवाले सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और आगे फिरभी सातवें महाशयजीने पर्युषणा
विचारके प्रथम पृष्ठकी पंक्ति १५वीं से पंक्ति १८ वीं तक लिखा
है कि (क्षयोपशमिक मतिज्ञानवान् और श्रुतज्ञानवान् पुरुष
वे युक्ति प्रयुक्ति द्वारा अपने अपने मन्तव्यके स्थापन करने
के लिये अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करते हुए मालूम
पड़ते हैं) सातवें महाशयजीका यह लिखना उपयोगशून्य
ताके कारणसे है क्योंकि क्षयोपशमिक मतिज्ञानवान् और
श्रुतज्ञानवान् पुरुष वे युक्तिप्रयुक्तिद्वारा अपने अपने मन्तव्य
को स्थापन करनेके लिये अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन
करनेवाले सातवें महाशयजी ठहराते हैं तो क्या वर्तमान
कालमें साधु और ब्राह्मण श्रीजिनाज्ञाकी सत्यव्यवहाररूपी
अपना मन्तव्य स्थापन करनेके लिये और श्रीजैनशासनके
निन्दक ढूँढ़िये और तेरहा पन्थी लोगोंको तथा अन्यमति-
योंको भी समझानेके लिये युक्ति प्रयुक्ति करनेवाले सबीही
अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करनेवाले ठहर जावेंगे
सो कदापि नहीं इसलिये सातवें महाशयजीका ऊपरका
लिखना उत्सूत्र भाषणरूप भूलका भरा हुआ है क्योंकि जो
जो कल्पित बातोंको स्थापन करनेके लिये जानते हुवे भी
कुयुक्तियों करके बालजीवोंको मिथ्यात्वमें गेरेंगे सो अभि-
निवेशिक मिथ्यात्व सेवन करनेवाले ठहरेंगे किन्तु सब नहीं
ठहर सकते हैं परन्तु यह बात तो सत्य है कि 'जैसा खावे
अन्न—तैसा होवे मन्न' इस कहावतानुसार अपने पक्षकी
कल्पित बातें जमानेके लिये खास आप अनेक बातोंमें

[३४४]

अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करनेवाले हैं सो आगे लिखनेमें आवेगा ;—

और पर्युषणा विचारके प्रथम पृष्ठकी १९ वीं पंक्तिसे दूसरे पृष्ठकी पंक्ति दूसरी तक लिखा है कि (सिद्धान्तका रहस्य ज्ञात होने पर भी एकांशकी आगे करके असत्य पक्षका स्थापन और सत्य पक्षका निरादर करनेके लिये कटिबद्ध होकर प्रयत्न करते दिखाई पड़ते हैं) इस लेख पर भी मेरेको इतनाही कहना है कि सातवें महाशयजीनें अपने कृत्य मुजबही जैसा अपना वर्ताव था वैसा ही उपरके लेखमें लिख दिखया है इसका खुलासा मेरा आगेका लेख पढ़नेसें पाठकवर्ग स्वयं विचार कर लेवेंगे ;—

और पर्युषणा विचारके दूसरे पृष्ठ की २० पंक्ति ३९ से ६ तक लिखा है कि (तत्र वार्षिकपर्व भाद्रपदसितपञ्चम्यां कालि कसूरेरनन्तरं चतुर्थ्यामेवेति—अर्थात् भाद्रपद सुदी पञ्चमीका साम्बत्सरिक पर्व था पर युगप्रधान कालिकाचार्यके समयसे चतुर्थीमें वह पर्व होता है) इस लेख पर भी मेरेको इतना ही कहना है कि—सातवें महाशयजीनें उपरके लेखसें वर्तमान कालमें दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापन करनेके लिये परिश्रम किया सो भी उत्सूत्र भाषण है क्योंकि आषाढ़ चौमासीसें पचास दिने पर्युषणा करनेकी श्रीजैनशास्त्रोंमें मर्यादा पूर्वक अनेक जगह व्याख्या है इसलिये दो श्रावण होनेसें ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करना शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक है तथापि मासवृद्धि दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापन करते हैं सो मिथ्या हठवादसें उत्सूत्र भाषण करते हैं क्योंकि

[३४५]

मासवृद्धिके अभावसे पचास दिने भाद्रपदमें पर्युषणा कही है नतु मासवृद्धि दो श्रावण होते भी ।

और आगे फिर भी पर्युषणा विचारके दूसरे पृष्ठकी ७वीं पंक्तिसे १८॥ वीं पंक्ति तक लिखा है कि (वासाणं सवी-
महराज मासे वड्कते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं इत्यादि
समवायाङ्गसूत्रके पाठका पूर्वभाग 'सवीसइ राइमासे वड्-
कते' पकड़कर उत्तर पाठकी क्या गति होगी इसका विचार
न रख मूलसूत्रको अलग छोड़कर दूसरे श्रावण के सुदीमें
पर्युषणापर्वके पाँचकृत्य 'संवत्सरप्रतिक्रान्ति लुञ्जनाष्टमं
तपः । सर्वाहंभूक्तिपूजा च सङ्गस्य क्षामणं मिथः' ॥ १ ॥
अर्थात् १ सांवत्सरिकप्रतिक्रमण, २ केशलुञ्जन, ३ अष्टमतपः,
४ सर्वमन्दिरमें चैत्यवन्दन पूजादि, ५ चतुर्विध सङ्गके साथ
क्षामणा करते हैं और भक्तोंको कराते हैं) ।

सातवें महाशयजीने ऊपरके लेखमें दूसरे श्रावण शुदी
में पाँचकृत्यों सहित पर्युषणा करनेवालोंको श्रीसमवायाङ्गजी
सूत्रके पाठका उत्तर भागको छोड़ करके पूर्वभागको पकड़ने
वाले ठहराये है सो अज्ञातपनेसें मिथ्या है क्योंकि श्रीसम-
वायाङ्गजी सूत्रका पाठ मासवृद्धिके अभावसे श्रीजैनपञ्चाङ्गा-
नुसार चार मासके १२० दिनका वर्षाकालमें चन्द्रसंवत्सर-
सम्बन्धी प्राचीनकालाश्रयी है और वर्तमानकालमें श्री-
कल्पसूत्रके मूल पाठानुसार तथा उन्हीकी अनेक व्याख्या-
योंके अनुसार आषाढ़ चौमासीसें ५० दिने दूसरे श्रावणमें
पर्युषणा करनेमें आती हैं इसलिये श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके
पाठका उत्तरभागको छोड़कर पूर्वभागको पकड़ने सम्बन्धी
सातवें महाशयजीका लिखना मिथ्या है ।

[३४६]

और (उत्तरपाठकी क्या गति होगी) सातवें महा-शयजीका यह लिखना भी विद्वत्ताके अजीर्णताका है क्योंकि श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ चार मासके वर्षाकाल सम्बन्धी होनेसे चार मासके वर्षाकालमें उसी मुजब वर्त्ताव होता है परन्तु सातवें महाशयजी श्रीगणधर महाराज श्रीसुधर्मस्वामी जी कृत श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठका तथा श्रीअभयदेव सूरिजी कृत तद्वृत्तिके पाठका अभिप्रायः जाने बिना सूत्र-कार तथा वृत्तिकार महाराजके विरुद्धार्थमें दो आवणादि होनेसे पाँच मासके १५० दिनका वर्षाकालमें उसी पाठको आगे करके बालजीर्वोको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरते हुवे उत्सूत्र भाषणरूप कदाग्रह जमाते हैं सो क्या गति होगी सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने ।

देखिये वड़ेही आश्चर्यकी बात है कि-अपना कदा-ग्रहकी उत्सूत्र भाषणरूप कल्पित बातको जमानेके लिये (उत्तरपाठकी क्या गति होगी) ऐमा तुच्छ शब्द लिखके श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रके पाठ पर आक्षेप करते कुछ लज्जा भी नहीं पाते हैं यह भी एक कलपुगी विद्वत्ताका नमूना है ।

और (मूलमन्त्रकी अलग छोड़कर) यह लिखना भी 'चोर डंडे-कोटवालकी' इस न्यायानुसार खास सातवें महाशयजी आप अनेक बातोंमें मूलमन्त्ररूप अनेक शास्त्रोंके मूलपाठोंकी अलग छोड़ते हैं फिर दूसरोंकी मिथ्या दूषण लगाते हैं सो उचित नहीं है क्योंकि दूसरे आवणमें पर्युषणा करनेवाले श्रीकल्पसूत्रका मूलमन्त्ररूपी पाठके अनुसारही करते हैं और श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ चार मासके वर्षाकाल-सम्बन्धी होनेसे उसी मुजबही वर्त्तते हैं इसलिये दूसरे

[३६१]

आवणमें पर्युषणा करने वालोंको मूलमन्त्रको अलग छोड़ने सम्बन्धी सातवें महाशयजीका लिखना मिथ्या है और सातवें महाशयजी अनेक बातोंमें मूलमन्त्ररूपी अनेक शास्त्रोंके मूलपाठोंको जानते हुवे भी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके अधिकारी बन करके अलग छोड़ते हैं सोही दिखाता हूँ ;—

१ प्रथम—हर वर्ष गांस गांसमें बंचाता हुवा सुप्रसिद्ध श्रीकल्पसूत्रमें पर्युषणा सम्बन्धी मूलमन्त्ररूपी विस्तारसें पाठ है उसीके अनुसार इस वर्तमान कालमें श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी प्राणियोंको पर्युषणा करनी चाहिये तथापि सातवें महाशयजी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको सेवन करते हुवे (श्रीकल्पसूत्रका मूलमन्त्ररूपी पाठ इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ४।५ में छप गया है) उसीको जानते हुवे भी अलग छोड़ते हैं और श्रीकल्पसूत्रके पाठानुसार दूसरे आवणमें पर्युषणा करने वालोंको झूठे ठहराकर मिथ्या दूषण लगाते हुवे निषेध करते हैं इसलिये शास्त्रानुसार वर्तने वालोंकी वृथा निन्दा करके श्रीजिनाज्ञारूपी सत्यधर्मकी अवहेलना (तिरस्कार) करने वाले काशीनिवासी सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजी है ।

२ दूसरा—श्रीअमन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने अनन्त काल हुवे अधिकमासको गिनतीमें खुलासा पूर्वक प्रमाण किया है तथा आगे करेंगे और सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंमें अधिक मासको गिनतीमें लेने सम्बन्धी विस्तार पूर्वक पाठ है सो कितनेही तो इसीही ग्रन्थके पृष्ठ २७ से ६५ तक छप गये हैं

[३४८]

और भी अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करने सम्बन्धी अनेक शास्त्रोंके प्रमाण आगे भी लिखनेमें आवेंगे उसीके अनुसार और कालानुसार युक्तिपूर्वक श्रीजिनाज्ञाके आराधन करने वाले आत्मार्थियोंको अधिकमासकी गिनती निश्चय करके प्रमाण करनी चाहिये तथापि सातवें महाशयजी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको सेवन करते हुवे श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उत्थापन करके पञ्चाङ्गीके मूलमन्त्ररूपी प्रत्यक्ष पाठोंको जानते हुवे भी अलग छोड़ते हैं और श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार पञ्चाङ्गीके प्रत्यक्ष प्रमाणों सहित कालानुसार और सत्य युक्तिपूर्वक अधिकमासकी गिनती प्रमाण करते हैं जिन्होंने झूठे ठहराकर मिथ्या दूषण लगा करके निषेध करते हैं इसलिये शास्त्रानुसार अधिक मासको प्रमाण करने वालोंकी वधाही निन्दा करके श्रीजिनाज्ञारूपी सत्यधर्मकी अवहेलना करनेवाले भी सातवें महाशयजी है।

३ तीसरा—श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने (श्री आधाराङ्गजी सूत्रकी चूलिकाके मूलपाठमें तथा श्रीस्थानाङ्गजी सूत्रके पांचवें ठाणेके मूलपाठमें और श्रीकल्पसूत्रके मूल पाठ वगैरह) पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके मूलमन्त्ररूपी पाठोंमें चरम तीर्थङ्कर श्रीवीरप्रभुके उक्तल्याणकों की खुलासापूर्वक कहे हैं (इसका विशेष निर्णय शास्त्रोंके पाठों सहित आगे लिखनेमें आवेगा) इसलिये श्रीजिनाज्ञाके आराधक पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंकी श्रद्धावाले आत्मार्थी पुरुषोंकी प्रमाण करने योग्य है तथापि सातवें महाशयजी अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करते हुवे ऊपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंकी मूलमन्त्ररूपी

[३४९]

जानते हुवे भी अलग छोड़ते हैं और पञ्चाङ्गीके ऊपरोक्तादि अनेक शास्त्रोंके अनुसार श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकों को मानने वालोंको भूटे ठहराकर मिथ्या दूषण लगा करके निषेध करते हैं इसलिये भी शास्त्रानुसार श्रीवीरप्रभुके छ कल्याणकोंकी माननेवालोंकी वृथाही निन्दा करके श्री जिनाज्ञारूपी मत्पधर्मकी अवहेलना करने वाले भी सातवें महाशयजी है ।

४ चौथा—श्रीआवश्यकजी सूत्रकी चूर्णि और वृहद्वृत्ति वगैरह पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेभिभंतेका उच्चारण किये पीछे हरियावहीका प्रतिक्रमण खुलासापूर्वक कहा है सोही श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्षी पुरुषोंको प्रमाण करने योग्य है तथापि सातवें महाशयजी अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करते हुवे ऊपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंको मूलमन्त्ररूपी जानते हुवे भी अलग छोड़ करके उसीके विरुद्ध बालजीवोंको कराते हैं—देखिये बड़ावश्यक करनेके लिये मूलमन्त्ररूपी श्रीआवश्यकजी है उसीकी चूर्णि और वृहद्वृत्तिके अनुसार उभयकाल (सांम और सवेर दोनुं वखत) बड़ावश्यकरूपी प्रतिक्रमण करनेका मंजूर करते हैं तथापि उसी शास्त्रोंमें सामायिकाधिकारे प्रथम करेभिभंतेका उच्चारण किये पीछे हरियावही करना कहा है उसीको मंजूर नहीं करते हैं जिन्हेंको मूलमन्त्ररूपी श्रीआवश्यकदि पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंकी अट्ठावाले श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्षी कैसे कहे जावे और उन्हींके बड़ावश्यक भी कैसे सार्थक होवेंगे सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जानें और विशेष आश्चर्यकी बात तो यह

[३५०]

है कि—खास सातवें महाशयजीकेही परमपूज्य श्रीतपगच्छके ही प्रभाविक श्रीदेवेन्द्रसूरिजीने श्रीश्राद्धदिनकृत्य सूत्रकी वृत्तिमें, श्रीकुलमण्डनसूरिजीने श्रीविचारामृतसंग्रहनामा ग्रन्थमें, श्रीरत्नशेखरसूरिजीने श्रीवन्दीता सूत्रकी वृत्तिमें, और श्रीहीरविजय सूरिजीके सन्तानीये श्रीमानविजयजीने तथा श्रीयशोविजयजीने श्रीधर्मसंग्रहकी वृत्तिमें खुलासा पूर्वक सामायिकाधिकारे प्रथम करेसिभंते पीछे हरियावही करना कहा है इन महाराजोंको सातवें महाशयजी शुद्ध-परूपक आत्मार्थी श्रीजिनाझाके आराधक बुद्धि निधान कहते हैं जिसमें भी विशेष करके श्रीयशोविजयजीके नाम से श्रीकाशी (बनारसी) नगरीमें पाठशाला स्थापन करी है तथापि उन महाराजोंके कहने मुजब सामायिकाधि-कारे प्रथम करेसिभंतेको प्रमाण नहीं करते हैं फिर उन महाराजोंको पूज्य भी कहते हैं यह तो प्रत्यक्ष उन महा-राजोंके कहने पर तथा पञ्चाङ्गीके शास्त्रों पर अद्धार रहितका नमूना है । यदि सातवें महाशयजी अपने गच्छके प्रभाविक पुरुषोंके कहने-मुजब तथा श्रीयशोविजयजीके नामसे पाठ-शाला स्थापन करी है उन महाराजके कहने मुजब बर्तने-वाले, तथा उन महाराजोंके पूर्णभक्त, और पञ्चाङ्गीके शास्त्रों पर अद्धार रखने वाले होवेंगे, तब तो सामायिकाधिकारे प्रथम कटे-सिभंतेको प्रमाण करके अपने भक्तोंसे जल्दही करावेंगे तो सातवें महाशयजीको आत्मार्थी समझनेमें आवेंगा । सामा-यिकाधिकारे प्रथम करेसिभंते २१ शास्त्रोंमें लिखी है परन्तु प्रथम हरियावही किसी भी शास्त्रमें नहीं लिखी है इसका खुलासा पूर्वक निर्णय इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ३१० से ३२९ तक

[३५१]

उपरमेंही छपगया है उसीको पढ़ करके भी सातवें महाशय जी अपने कदाग्रहके वस होकरके शास्त्रानुसार सत्यघात को प्रमाण नहीं करेंगे तो अपने गच्छके प्रभाविक पुरुषोंके वाक्य पर तथा श्रीयशोबिजयजीके नामसे पाठशाला स्थापन करी है उन सहाराजके वाक्य पर और पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंके पाठों पर श्रद्धा रखनेवाले आत्मार्थी है ऐसा कोई भी विवेकी तत्त्वज्ञ पाठकवर्ग नहीं मान सकेगा जिसके नामसे पाठशाला स्थापन करी है उसी सहाराजके वाक्य मुजब प्रमाण नहीं करना यह तो विशेष लज्जाका कारण है

इत्यादि अनेक बातोंमें सातवें महाशयजी अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सेवन करते हुवे मूलमन्त्ररूपी पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंके पाठोंकी जानते हुवे भी अलग छोड़ करके शास्त्रोंके प्रमाण बिना अपनी सतिकल्पनासे कुयुक्तियोंका सहारा ले करके उत्सूत्र भाषणमें वर्तते हैं और पञ्चाङ्गीके प्रमाण सहित शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक ऊपरोक्तादि अनेक बातोंकी प्रमाण करने वालोंकी भूठे ठहरा करके मिथ्या दूषण लगा कर ऊपरोक्त बातोंकी निषेध करते हैं इसलिये श्रीजिनेश्वरभगवान्की आज्ञानुसार वर्तने वालोंकी दृष्टा मिन्दा करके शास्त्रानुसार ऊपरोक्तादि बातोंके विरुद्ध अविसंवादी श्रीजैनशासनमें विसंवादरूपी मिथ्यात्वका झगड़ा बढ़ानेसे अविसंवादी श्रीजैनशासनरूपी गत्यधर्मकी अवहेलना करने वाले भी सातवें महाशयजीही है । और पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंके पाठोंकी प्रत्यक्ष देखते हुवे भी प्रमाण नहीं करते है और अपना कदाग्रहकी कल्पित कुयुक्तियोंकी आगे करके दृष्टिरागी भूठे पक्षग्राही बालजीवोंकी मिथ्यात्वमें गेरते हैं

[३५२]

इसलिये सत्यपक्षका निरादर करके असत्य पक्षका स्थापन करनेवाले भी सातवें महाशयजी है इस बातको निष्पक्ष पाती आत्मार्थी विवेकी पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठानुसार तथा उन्हीकी अनेक व्याख्यानानुसार आषाढ़ चौमासीसें ५० दिने दूसरे आषणमें पर्युषणा करनेवालों पर द्वेष बुद्धि करके आक्षेपरूप सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके दूसरे पृष्ठकी १८॥ वीं पंक्ति से २० वीं पंक्ति तक लिखा है कि (वस्तुतः तो भगवान्की आज्ञाके आराधक भठयजीवों पर कल्पित दोषोंका आरोप करके अपने भक्तोंको भ्रमजालमें फँसाकर संसार बढ़ाते हैं)

सातवें महाशयजीका इस लेखको देखकर मेरेको बड़ाही आश्चर्य सहित खेद उत्पन्न होता है कि जैसे दूढ़िये तेरहा पत्थी लोग अपने कदाग्रहकी कल्पित बातोंको स्थापन करनेके लिये श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञानुसार वर्तने वाले पुरुषोंकी झूठी निन्दा करके संसार वृद्धिका कारण करते हैं तैसेही सातवें महाशयजी भी इतने विद्वान् कहलाते हुवे भी अपने कदाग्रहकी कल्पित बातको स्थापन करनेके लिये श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञानुसार वर्तने वाले पुरुषोंकी झूठी निन्दा करके संसार वृद्धिका कारण करते हैं क्योंकि—श्रीतीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति और प्रकरणादि अनेक शास्त्रमें प्रगटपने आषाढ़ चौमासीसें दिनोंकी गिनतीके हिसाबसें ५० दिने निश्चय करके श्रीपर्युषणापर्वका आराधन करना कहा है उसीके अनुसार श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठ

[३५३]

मुजब तथा उन्हींकी अनेक व्याख्यायोंके पाठ मुजब वर्त्तमान कालमें दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणमें आषाढ़ चौमासीमें ५० दिने श्रीपर्युषणापर्वका आराधन आत्मार्थी प्राणी करते हैं और दूसरे भव्यजीवोंको कराते हैं जिन्होंको तो निध्या दूषण लगा करके संसार बढ़ाने वाले ठहराना और आप श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा विरुद्ध तथा पञ्चाङ्गीके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको छोड़ करके अपनी सति-कल्पनासे यावत् ८० दिने पर्युषणा करते हैं और बालजीवोंको भी कुयुक्तियोंमें भ्रमा करके कराते हैं इसलिये श्रीजिनाज्ञाकी सत्यवातका निषेध करके भी शुद्ध परूपक बनते हुवे संसार वृद्धिका भय नहीं करना सो निध्यात्वीके सिखाय और कौन होगा ।

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके दूसरे पृष्ठके अन्ते २१।२२ वीं पंक्तिमें लिखा है कि (उन जीवों पर भावदया लाकर सिद्धान्तानुसार परोपकार दृष्टिसे पर्युषणा विचार लिखा जाता है) इस लेखसे दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालों पर और करानेवालों पर भावदया लाकर सिद्धान्तानुसार परोपकार दृष्टिसे पर्युषणा विचार लिखनेका सातवें महाशयजी ठहराते हैं सो निः-केवल बालजीवोंको कदाग्रहमें फँसाकरके निध्यात्ववढ़ानेके लिये संसार वृद्धिके निमित्तभूत उत्सूत्र भाषण करते हैं क्योंकि प्रथमतो दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वाले पञ्चाङ्गी के अनेक शास्त्रानुसार करते हैं जिसके सम्बन्धमें इसीही ग्रन्थकी आदिसे २१ पृष्ठ तक अनेक शास्त्रोंके प्रमाण-पाठार्थ सहित छप गये हैं इसलिये शास्त्रानुसार वर्तने वालोंको

[३५४]

भूटे ठहरा करके भावदया दिखाना सो तो प्रत्यक्ष महा मिथ्या है। और भावदयाका स्वरूप जाने बिना सातवें महाशयजी भावदया वाले बनते हैं सो भी तौतेकी तरह तात्पर्य समझे बिना रामराम पुकारने जैसा है क्योंकि सातवें महाशयजी भावदयाका स्वरूपही नहीं जानते हैं इसलिये अबमें पाठकवर्गकों भावदयाका स्वरूप संक्षिप्तसें दिखाता हूं—

श्रीजैनशास्त्रोंमें भावदया उमीकी कहते हैं कि—प्रथमतो चतुर्गतिरूप संसारमें अनन्तकालसें नरकादिमें परिभ्रमणकी वेदना वगैरह स्वरूपको जान करके संसारकी निवृत्तिके लिये श्रीजिनेन्द्र भगवानोंका कहा हुआ आत्महितकारी धर्मको श्रद्धापूर्वक अङ्गीकार करके श्रीजिनेन्द्र भगवानोंके कहने मुजबही धर्मकी परूपना करे और मोक्षकी इच्छासें उसी मुजबही प्रवर्तें तथा दूसरोंको प्रवर्त्तावे और सब संसारी प्राणियोंको भी ऐसेही होनेकी इच्छा करे सोही उत्तम पुरुष भावदया कर सकता है, परन्तु सातवें महाशयजी तो उत्सूत्र भाषणोंसें संसार वृद्धिका भय नहीं करने वाले दिखते हैं क्योंकि श्रीजिनेन्द्र भगवानोंने तो अधिक मासको गिनतीमें लेनेका कहा है तथापि सातवें महाशयजी अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण करनेकी श्रद्धा रहित होनेसें उत्सूत्रभाषणरूप अधिक मासको गिनतीमें लेनेका निषेध करते हैं इसलिये सातवें महाशयजी काशीनिवासी श्रीधर्मविजयजी श्रीजिनेन्द्र भगवानोंके कहने मुजब वक्तने वाले नहीं है किन्तु श्रीजिनेन्द्र भगवानोंके विरुद्ध अपनी मतिकल्पनासें कुयुक्तियों करके बालजीवोंको मिथ्यात्वके

[३५५]

भ्रममें फँसाने वाले होनेमें उन्होंने भावदयाका सो सम्भवही नहीं हो सकता है किन्तु संसार वृद्धिकी हेतुभूत भावहिंसाका कारण तो प्रत्यक्ष दिखता है ।

और सातवें महाशयजीने सिद्धान्तानुसार परोपकार दृष्टिसें पर्युषणा विचार नहीं लिखा है किन्तु पञ्चाङ्गीके सिद्धान्तोंके विरुद्ध बालजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी शुद्ध अद्वारूप सम्यक्त्वस्वरूपसें अष्ट करनेको उत्सूत्र भाषणोंका संग्रह करके अपने कदाग्रहकी कल्पित बात जमानेके आग्रह से पर्युषणा विचारके लेखमें पर्युषणा सम्बन्धी श्रीजैन-शास्त्रोंके तात्पर्यकों समझे बिना अज्ञताके कारणसें कुतर्कों-काही प्रकाश किया है सो तो मेरा सब लेख पढ़नेसें निष्पक्षपाती सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके तीसरे पृष्ठकी आदिसें ७ वीं पंक्ति तक लिखा है कि (उत्तम रीतिसें उपदेश करते हुए यदि किसीको राग द्वेषकी प्रणति हो तो लेखक दोषका भागी नहीं है क्योंकि उत्तम रीतिसें दया करने पर भी यदि रोगीके रोगकी शान्ति नहो और मृत्यु हो जाय तो वैद्यके सिर हत्याका पाप नहीं है परिणाममें बन्ध, क्रियासें कर्म, उपयोगमें धर्म, इस न्यायानुसार लेखकका आशय शुभ है तो फल शुभ है)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूँ कि हे सज्जन पुरुषों सातवें महाशयजीकी बालजीवों की निष्पक्षतामें फँसाने वाली भाषावृत्तिकी चातुराईका नमूना सो देखो—आप अपने कदाग्रहके पक्षपातसें श्रीजैन-शासनकी उन्नतिके कार्योंमें विघ्नकारक संपत्ती नष्ट करने

[३५६]

वृथाही आपसमें झगड़ावढ़ानेके लिये 'पर्युषणा विचारनामा' पुस्तक प्रगट कराई जिसमें दूसरे आवणमें पर्युषणा करने वालों पर खूबही आक्षेपरूप अनुचित शब्द लिख करके भी आप निर्दूषण बनना चाहते हैं सो कदापि नहीं हो सकते हैं क्योंकि पर्युषणा विचारके लेखमें सत्यवातको मानने वालोंकी झूठी निन्दा करके वृथाही अपनी मतिकल्पनासे मिथ्या दूषण लगाये है और उत्सूत्र भाषणोंसे बालजीवों को भी मिथ्यात्वमें फँसाये हैं इसलिये ऊपरकी इन बातों के दोषाधिकारी तो सातवें महाशयजी प्रत्यक्षही दिखते हैं यदि सातवें महाशयजीको ऊपरकी बातोंके दूषणोंसे संसार वृद्धिका भय होवे और आत्मकल्याणकी इच्छा होवे तो अबसे भी झगड़ेके कार्योंमें न फँसके इस ग्रन्थको संपूर्ण पढ़ करके सत्यवातको ग्रहण करें और पर्युषणा विचारके लेखकी अपनी भूलोंकी क्षमापूर्वक मिथ्या दुष्कृत सहित आलोचना लेवें तो सातवें महाशयजीकी शुभ इरादेसे उत्तम रीतिका उपदेश करनेवाले तथा उत्सूत्र भाषणका भय रखनेवाले समझनेमें आवेंगे इतने पर भी सातवें महाशयजी पर्युषणा विचारके लेखोंको अपने दिलमें सत्य समझते होवें तो श्रीकाशीमें मध्यस्थ विद्वानोंके समक्ष (पर्युषणा विचारके लेखोंको) शास्त्रोंके प्रमाण सहित युक्तिपूर्वक सत्य करके दिखावे अन्यथा कदाग्रहसे सत्य-बातोंको छोड़ करके कल्पित घातोंको स्थापन करनेमें तो संसार वृद्धिके सिवाय और क्या लाभ होगा सो सज्जन पुरुष स्वयं विचार लेवें ;—

और उत्तम रीतिसे दया करनेके भरोसे विश्वासघात

[३५१]

करके विष मिश्रित दवा देकर रोगीको मृत्युके सरण प्राप्त करने वाला वैद्य नाम धारक पुरुष महापापी होता है तैसेही कर्मरूपी रोगसे पीड़ित भव्यजीवोंको उत्तम रीतिका उपदेश देनेके भरोसे विश्वाप्तघातसे उत्सूत्र भाषणरूप कल्पित कुयुक्तियोंका विष मिश्रित उपदेश करके भव्यजीवोंकी श्रीजिनाज्ञारूप सम्यक्त्वरत्न जीवतव्यसे भ्रष्ट करके मिथ्यात्वरूप सरणके सरण प्राप्त करनेवाला वैषधारी साधु नाम धारक पुरुष महापापी होता है तैसेही सातवें महाशयजीने भी पर्युषणा विचारके लेखमें भव्यजीवोंको उत्तम रीतिका उपदेश करनेके बहाने उत्सूत्र भाषणरूप कुतर्कोंका विष मिश्रित उपदेश करके भव्यजीवोंको मिथ्यात्वरूप मृत्युके सरण प्राप्त किये हैं इसलिये भव्य जीवोंको मिथ्यात्वरूप मृत्युके सरण प्राप्त करनेके दोषाधिकारी सातवें महाशयजी है यदि सातवें महाशयजीको ऊपरोक्त दूषणके फल विपाकका भय होवे तो अपने कृत्यकी आलोचना लेवेंगे ;—

और अपने कदाग्रहकी कल्पित बातको जमानेके लिये उत्सूत्र भाषणकी और कुयुक्तियोंकी बातें लिखनेवालेका परिणाम भी अच्छा नहीं होता है तथा क्रिया भी अच्छी नहीं होती है और उपयोग भी अच्छा नहीं होता है इसलिये पर्युषणा विचारके लेखक अपनेको अच्छा फलकी चाहना करते हैं सो कदापि नहीं हो सकेगा किन्तु पर्युषणा विचारके लेखमें शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणोंकी तथा कुयुक्तियोंकी और शास्त्रानुसार वर्तने वालोंकी झूठी निन्दा करके मिथ्या दूषण लगानेकी कल्पना भरी होनेसे

[३५८]

संसारवृद्धिके फल तो मिलनेका दिखता है इस बातको श्रीजैनशास्त्रोंके तत्त्वज्ञ पुनः अच्छी तरहसे विचार लेवें ;

और भी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके तीसरे पृष्ठकी ८।९।१० पंक्तियोंमें लिखा है कि (अधिक मासको लेखामें गिनकर पर्युषणा पर्व करनेवाले महानुभावोंकी नीचे लिखे हुए दोषों पर पक्षपात रहित विचार करनेकी सूचना दी जाती है) ।

इस लेखको देखकर मेरेको वड़ेही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजीने श्रीजैन-शास्त्रोंके तात्पर्यको बिना मसझे ऊपरके लेखमें इन्होंने श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी और खास अपनेही गच्छके पूर्वाचार्योंकी आशातनाकर कारण रूप संसार वृद्धिके हेतुभूत खूबही अज्ञतासे अनुचित लिखा है क्योंकि अनन्ते काल हुवे श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंने अधिकमासको लेखामें गिन करही पर्युषणा करते आये हैं तथा वर्तमान इस पञ्चम कालमें भी श्रीजिनाज्ञाके आराधक सबीही आत्मार्थी जैमाचार्योंने अधिक मासको लेखामें गिन करही पर्युषणा करी है और आगे भी श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराज जो जो होवेंगे सो सबीही अधिक मासको गिनतीमें लेकरही पर्युषणा करेंगे और अनेक आसनोंमें अधिकमासको गिनतीमें लेकरही पर्युषणा करनी लिखी है इसलिये अधिक मासको गिनतीमें लेकरके जो पर्युषणा करते हैं सोही श्रीजिनाज्ञाके आराधक है और अधिक मासको गिनतीमें छोड़ करके पर्युषणा करते हैं सोही श्रीजिनाज्ञाके विराधक

[३५९]

उत्सूत्र भाषण करने वाले हैं तैसेही सातवें महाशय जी आप अधिक मासको गिनतीमें नही लेते हुवे अधिक मासको गिनतीमें ले करके पर्युषणा करने वालोंको मिथ्या दूषण लगाके उत्सूत्रभाषणमें ऊपरोक्त महाराजोंकी आशा-तना करके संसार वृद्धिका कुछ भी भय नही करते हैं । हा अति खेदः ?

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके तीसरे पृष्ठकी ११ वीं पंक्तिसे १९ वीं पंक्ति तक लिखा है (प्रथम दोष-आषाढ़ चौमासी बाद पचास दिनके भीतर पर्युषणापर्व करे इस नियमकी रक्षा करते हुए तत्तुल्य दूसरे नियमका सर्वथा भङ्ग होता है क्योंकि पचासवें दिवस संवत्सरी और उसके पीछे सत्तरवें दिन चौमासी प्रति-क्रमण करके पीछे मुनिराजोंको विहार करना चाहिये यदि दूसरे श्रावणमें सांवत्सरिक कृत्य करेंगे तो सौ दिन षाकी रहेंगे तब सत्तर दिनका नियम कैसे पालन किया जायगा इसका विचार करो)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गकी दिखता हूं कि ऊपरके लेखमें दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालों की सातवें महाशयजीने प्रथम दोष लगाया सो निःकेवल अज्ञताके कारणसे मिथ्या लिखके उत्सूत्र भाषण किया है क्योंकि श्रीनिशीथभाष्यमें १, तथा चूर्णिमें २, श्रीवृहत्कल्पभाष्यमें ३, तथा चूर्णिमें ४, और वृत्तिमें ५, श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें ६, तथा वृत्तिमें ७, श्रीस्थानाङ्गजीकी वृत्तिमें ८, श्रीकल्पसूत्रकी नियुक्तिकी वृत्तिमें ९, श्रीकल्पसूत्रकी पाँच ठ्याख्याओंमें १४ श्रीपर्युषणा कल्पचूर्णिमें १५

[३६०]

श्रीगच्छाचारपयज्ञाकी वृत्तिमें १६ इत्यादि शास्त्रोंमें मासवृद्धि के अभावसे चन्द्रसम्बत्सरमें चारमासके १२० दिन का वर्षाकालमें ५० दिने पर्युषणा करनेसे पर्युषणाके पिछाड़ी कार्तिक तक ७० दिन रहते हैं जिसके सम्बन्धमें इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ९४ तथा ९९ और १२० । १२१ वगैरहमें कितनीही जगह पाठ भी छप गये हैं और मासवृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित संवत्सरमें जैनपञ्चाङ्गानुसार आषाढ़ चौमासीसे बीस दिने पर्युषणा करनेमें आती थी तब भी पर्युषणा के पिछाड़ी कार्तिक तक १०० दिन रहते थे इसका भी विशेष खुलासा इसीही ग्रन्थके पृष्ठ १०७ से १२३ तक छप गया है और वर्तमान कालमें जैनपञ्चाङ्गके अभावसे लौकिक पञ्चाङ्गमें हरेक मासोंकी वृद्धि हो तो भी ५० दिनेही पर्युषणा करनेकी मर्यादा है सो भी इसीही ग्रन्थकी आदिसे पृष्ठ २७ तक और छठे महाशयजी श्रीवल्लभविजयजीके लेख की समीक्षामें पृष्ठ २८६ से २९९ तक छप गया है इसलिये वर्तमानकालमें दो आषणादि होनेसे पाँच मासके १५० दिनका वर्षाकालमें ५० दिने पर्युषणा करनेसे पर्युषणाके पिछाड़ी कार्तिक तक १०० दिन रहते हैं सो भी शास्त्रानुसार और युक्तिपूर्वक होनेसे कोई भी दूषण नहीं है इसका भी विशेष निर्णय इसीही ग्रन्थके पृष्ठ १२० से १२९ तक और पृष्ठ १७७ के अन्तसे १८५ तक छप गया है इसलिये दो आषण होनेसे दूसरे आषणमें पर्युषणा करने वालोंको पर्युषणाके पिछाड़ी ७० दिन रखने सम्बन्धी और १०० दिन होनेसे दूषण लगाने सम्बन्धी सातवें महाशयजी लिखना अज्ञात सूचक और उत्सूत्र भाषण है। सो पाठकवर्ग विचारलेवेंगे,—

[३६१]

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीनें पर्युषणा विचारके तीसरे पृष्ठकी २०वीं पंक्तिसे चौथे पृष्ठकी दूसरी पंक्ति तक लिखा है कि (दूसरा दोष—भाद्रसुदीमें पर्युषणा पर्व कहा हुआ है तत्सम्बन्धी पाठ आगे कहेंगे अधिक-मास सानने वाले श्रावण सुदीमें पर्युषणा करते हैं शास्त्रानु-कूल न होनेसे आज्ञाभङ्ग दोष है) इस लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूँ कि हे सज्जनपुरुषों मास वृद्धिके अभावसे चन्द्रसंवत्सरमें भाद्रपदमें पर्युषणा होनेका दोनुं चूर्णिकार महाराजोंने कहा है तथापि सातवें महा-शयजीनें वर्तमानकालमें मासवृद्धि दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापन करनेके लिये आगे पीछेके सम्बन्ध वाले पाठोंको छोड़ करके दोनुं चूर्णिकार महाराजोंके विरुद्ध थोड़ासा अधूरा पाठ मायावृत्तिसे आगे लिखा है जिसकी समीक्षा मैंभी आगेही करूंगा। परन्तु इस जगह तो दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करने वालों को सातवें महाशयजीने शास्त्र विरुद्ध ठहरा करके आज्ञा भङ्गका दूसरा दूषण लगाया है सो शास्त्रोंके प्रमाणपूर्वक वर्तने वालोंको झूठे ठहरा करके मिथ्यादूषण लगाया है तथा उतसूत्र भाषणसे सत्य बातका निषेध करके मिथ्यात्व बढ़ाया है और अपने विद्वत्ताकी हासी भी कराई है क्योंकि अधिकमासको गिनतीमें लेनेका श्रीजैनशास्त्रानुसार तथा कालानुसार लौकिक पञ्चाङ्ग मुजब और युक्तिपूर्वक निश्चय करके स्वयं सिद्ध है इसलिये अधिक मासकी गिनती निषेध नहीं हो सकती है इसका विशेष विस्तार उहाँ महाशयोंके लेखोंकी समीक्षामें अच्छी तरहसे रूप गया है

[३६२]

और आषाढ़ चौमासीसे पचास दिने अवश्यही पर्युषणा पर्व करनेका सर्वत्र शास्त्रोंमें कहा है जिसका भी विशेष विस्तार इसीही ग्रन्थकी आदिसे लेकर ऊपर तकमें अनेक जगह छप गया है इसलिये वर्तमान कालमें ५० दिनके हिसाबसे दूसरे श्रावणमें पर्युषणापर्व करना सो शास्त्रानुसार और युक्तिपूर्वक सत्य होनेसे उसी मुजबब वर्तनेवालोंको जो सातवें महाशयजीने दूषण लगाया हैं सो निःकेवल संसार वृद्धि के हेतुभूत उत्सूत्र भाषण किया हैं इस बातको निष्पक्षपाती पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे । और देखिये बड़ेही आश्चर्यकी बात है कि सातवें महाशयजी श्रीधर्मविजयजी इतने विद्वान् कहलाते हैं और हरवर्ष गांव गांवमें श्रीकल्पमूत्रका मूल पाठको तथा उन्हींकी वृत्तिको व्याख्यानमें वांचते हैं उसी में ५० दिने पर्युषणा करनेका लिखा है उसी मुजबबही दूसरे श्रावणमें ५० दिने पर्युषणा करते हैं जिन्होंकी अपनी सति कल्पनासे आज्ञाभङ्गका दूषण लगाना सो विवेकशून्य कदाग्रही अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी और अपनी विद्वत्ताकी हासी करानेवालेके सिवाय दूसरा कौन होगा सो भी पाठकवर्ग विचार लेवेंगे ;—

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके चौथे पृष्ठकी तीसरी पंक्तिसे चौदह वीं पंक्ति तक लिखा है कि (अधिक मासके मानने वालोंको चौमासी समापनाके समय 'पंचरहं मासाणं दशरहं पक्खाणं पञ्चाशु-त्तरसयराइंदिआणमित्यादि' और सांवत्सरिक समापनाके समय 'तेरसरहं मासाणं छवीसरहं पक्खाणं' पाठकी कल्पना करनी पड़ेगी । यदि ऐसा करोगे तो कल्पित आचार

[३६३]

होनेसे फलसे वञ्चित रहोगे, क्योंकि शास्त्रमें तो 'चतुस्रहं मासाणं अट्ठस्रहं पक्खणं' इत्यादि तथा 'बारसस्रहं मासाणं चत्थीसस्रहं पक्खणं' इत्यादि पाठ है इसके अतिरिक्त पाठ नहीं है उसके रहने पर यदि नई कल्पना करोगे तो कल्पना कुशल, आज्ञाका पालन करनेवाला है या नहीं, यह पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि हे सज्जन पुरुषों सातवें महाशयजीके ऊपरका लेखको देखकर मेरेको बड़ाही आश्चर्य उत्पन्न होता है कि सातवें महाशयजीके विद्वत्ताकी विवेक बुद्धि (ऊपरका लेख लिखते समय) किस जगह चली गई होगी सो मासवृद्धिके अभावकी बातको मासवृद्धि होतेभी बाल जीवोंको लिख दिखाकरके अपनी बात जमानेके लिये दूसरोंको मिथ्या दूषण लगाते हुये उत्सूत्र भाषणसे संसार वृद्धिका भय हृदयमें क्यों नहीं लाते हैं क्योंकि जिस जिस शास्त्रमें सांवत्सरिक क्षामणाधिकार बारह मास, चौबीस पक्ष लिखे हैं सो तो निश्चय करके मासवृद्धिके अभावसे चन्द्र संवत्सर संबंधी है नतु मास वृद्धि होतेभी अभिवर्द्धित संवत्सर में क्योंकि मास-वृद्धि होनेसे तेरह मास और छबीस पक्ष व्यतीत होने पर भी बारह मास और चौबीस पक्षके क्षामणा करना ऐसा कोई भी शास्त्रमें नहीं लिखा है ।

और श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्रमें १, तथा तद्वृत्तिमें २, श्रीसूर्य-प्रज्ञप्ति सूत्रमें ३, तथा तद्वृत्तिमें ४, श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रमें ५, तथा तद्वृत्तिमें ६, श्रीनिशीथसूक्तिमें ७, श्रीजंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति सूत्रमें ८, तथा तीनकी पांच वृत्तियोंमें ९, श्रीप्रवचन-

[६६४]

सारोद्धारमें १४, तथा तद्वृत्तिमें १५, श्रीज्योतिष्करण-
पत्रामें १६, तथा तद्वृत्तिमें १७, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें
मास वृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित संवत्सरके १३ मास, २६ पक्ष
खुलासा पूर्वक लिखे हैं और लौकिकपञ्चाङ्गमें भी अधिक
मास होनेसें तेरह मास छवीश पक्षका वर्ष लिखा जाता
है और सब दुनिया भी धर्मकर्मके व्यवहारमें अधिकमासके
कारणसें तेरह मास छवीश पक्षको मान्य करती है उसी
मुजबही सब जैनी लोग भी वर्तते हैं इसलिये अधिक
मासके होनेसें तेरह मास, छवीश पक्षका धर्म, पापको
गिनतीमें लेकर उसनेही सहिनोंके धर्मकार्योंकी अनुमोदना
और पाप कार्योंकी आलोचना लेनी शास्त्रानुसार और
युक्तिपूर्वक है क्योंकि अधिक मास होनेसे तेरह मास छवीश
पक्षमें धर्म, और अधर्म, करके धर्मकार्योंकी गिनती नहीं
करना और पापकार्योंकी आलोचना नहीं करना ऐसातो
कदापि नहीं हो सकता है ।

और जब श्रीअमन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने
अधिकमासकी गिनतीमें प्रमाण किया है और अभिवर्द्धित
संवत्सर तेरह मास छवीश पक्षका कहा हैं तो फिर श्री
तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंके विरुद्ध अपनी नतिकल्प-
नासें बारह मास चौवीश पक्ष कहके एक मासके दो पक्षोंको
छोड़ देना और श्रीअमन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंका
कहा हुआ अभिवर्द्धित संवत्सरके नामका खंडन करना बुद्धि-
मान कैसे करेंगे अपितु कदापि नहीं । और श्रीअमन्त तीर्थङ्कर
गणधरादि महाराजोंने अधिक मासकी गिनतीमें प्रमाण किया
है तथापि सात्वें महाशयजी उत्सूत्र भाषक होकरके उसीका

[३६५]

निषेध करनेके लिये कटिबद्ध तैयार है तो फिर तेरह मास छवीस पक्ष कहेंगे ऐसा तो संभव ही नहीं हो सकता है जब अधिक मासको गिनतीमें लेनेको ही जिन्हको लज्जा आती है तो फिर तेरह मास छवीश पक्ष कहना तो विशेष उन्हको लज्जाकी बात होवे तो कोई आश्चर्य नहीं है ।

और सातवें महाशयजी शास्त्रोंके पाठ मंजूर करने वाले होवें तो फिर अधिक मासको श्रीअनंत तीर्थङ्कर गण-धरादि महाराजोंने प्रमाण किया है जिसका अधिकार इसी ही ग्रन्थके पृष्ठ ३२ से ४८ तक बगैरह कितनी ही जगह छप गया है और सामायिकाधिकारे प्रथम करेनिभंते का उच्चारण किये पीछे हरियावही करनी बगैरह अनेक बातें शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक कही है जिसको तो प्रमाण न करते हुवे छलटा स्तथापन करते हैं फिर शास्त्रके पाठकी बात करना सो कैसी विद्वत्ता कही जावे इस बातको पाठक-वर्ग भी विचार सकते हैं ।

शंका—अजी आप ऊपरमें अनेक शास्त्रोंके प्रमाणोंसे और मुक्तियों से तेरह मास छवीश पक्षकी गिनती करके उतनीही आलोचना लेकर उतनेही क्षामणे सांवत्सरिक प्रतिक्रमणमें करनेका दिखाते हो परन्तु सांवत्सरिक प्रति क्रमणकी विधिमें १३ मास, २६ पक्षके, क्षामणे करके उतने ही मासोंकी आलोचना लेनी किसी शास्त्रमें क्यों नहीं लिखी है ।

समाधान—भो देवानुमिय । सांवत्सरिक प्रतिक्रमणकी विधि में १३ मास, २६ पक्ष के क्षामणे करके उतने ही मास पक्षोंकी आलोचना लेनी किसी भी शास्त्र में नहीं लिखी है यह तेरा कहना अज्ञात सूचक है क्योंकि श्रीकाव-

[३६६]

श्वक चूर्णि में १ तथा बृहद्बृत्ति में २, और लघुबृत्ति में ३ श्रीप्रवचन सारोद्धार में ४, तथा बृहद्बृत्ति में ५, और लघु-बृत्ति में ६, श्रीधर्मरत्न प्रकरणकी बृत्ति में ७, श्रीअभयदेव सूरिजी-कृत समाचारी ग्रन्थ में ८, श्रीजिनपति सूरिजीकृत समाचारी में ९, श्रीजिनपति सूरिजीकृत समाचारी में १०, श्रीसमाचारी शतकनामा ग्रन्थ में ११, श्रीषडावश्यक ग्रंथ में १२, श्रीतपगच्छ के श्रीजयचन्द्र सूरिजीकृत प्रतिक्रमण गर्भहेतुनामा ग्रंथ में १३, श्रीरत्नशेखरसूरिजीकृत श्रीश्राद्ध-विधि बृत्ति में १४, प्राचीन प्रतिक्रमण गर्भहेतुनामा ग्रंथ में १५, और श्रीपूर्वाचार्योंके बनाये समाचारियोंके चार ग्रंथोंमें १६, इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें देवसी और राव प्रतिक्रमणके अनंतर पाक्षिक प्रतिक्रमणके मुखही चौमासी और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की विधि कही है और चौमासी सांवत्सरिक शब्दका नामांतर कहके चौमासी में २०, लोगस्स का कापोत्सर्ग तथा पांच साधुओंकी क्षमानेकी और सांवत्सरिक में ४० लोगस्सका कायोत्सर्ग तथा ७ वा ९ बगैरह साधुओंकी क्षमानेकी भिन्नता दिखाई है और क्षमाणा के अवसर में संवच्छर शब्द का ग्रहण करने में आता है । संवत्सर कहो । सांवत्सरी कहो । संवच्छरी कहो । वार्षिक कहो । सबका तात्पर्य एक है और संवत्सर शब्द यद्यपि-नक्षत्र संवत्सर १ । ऋतु संवत्सर २ । सूर्य संवत्सर ३. चंद्र संवत्सर ४. और अभिवर्द्धित संवत्सर ५ इन पांच प्रकार के अर्थों में ग्रहण होता है परन्तु क्षामणा के अवसर में तो दो अर्थ ग्रहण करने में आते हैं जिसमें प्रथम मास वृद्धि के अभावसे चन्द्र संवत्सर के बारह मास और चौबीस पक्ष अनेक शास्त्रों में कहे हैं और दूसरा मास

[३६७]

वृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित संवत्सरके तेरह मास और छबीश पक्ष भी अनेक शास्त्रोंमें कहे हैं इसलिये सांवत्सरिक क्षामणमें मास वृद्धिके अभावसें चंद्रसंवत्सर सम्बन्धी बारह मास चौबीस पक्ष कहने चाहिये और मास वृद्धि होनेसें अभिवर्द्धित संवत्सर सम्बन्धी तेरह मास छबीश पक्ष कहने चाहिये और जिस शास्त्रमें बारह मास चौबीश पक्ष लिखे हों सो चन्द्रसंवत्सर सम्बन्धी समझने चाहिये। इतने पर भी मासवृद्धि होनेसें तेरह मास छबीश पक्ष व्यतीत होने पर भी बारह मास चौबीश पक्ष जो बोलते हैं सो कोई भी शास्त्र के प्रमाण बिना अपनी मति कल्पनाका बताव करके श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंका कहा हुआ अभिवर्द्धित संवत्सरके नामको खंडन करके उत्सूत्र भाषणसें संसार वृद्धिका कारण करते हुवे गुरुगम रहित श्रीजैनशास्त्रों के तात्पर्यको नहीं जाननेवाले हैं क्योंकि देखो सर्वत्र शास्त्रों में साधुके विहारकी व्याख्यामें नव कल्प विहार साधुको करनेका कहा है सो मासवृद्धि के अभावसें होता है परन्तु शीतकालमें अथवा उष्णकालमें मासवृद्धि होनेसें अवश्य करके १० कल्पविहार करनेका प्रत्यक्ष ब्रतता हैं तथापि कोई हठवादी शीतकालमें अथवा उष्णकालमें मास वृद्धि होतेभी नवकल्प विहार कहनेवालेको माया मिथ्या का दूषण लगता है क्योंकि जैसे कार्तिक पीछे साधुने विहार किया और मास कल्पके नियम मुजब विचरता है उसी समय शीतकाल में अथवा उष्णकाल में अधिक मास होगया तो उस अधिक मास में अवश्य करके दूसरे गांव विहार करेगा परन्तु एकही गांव में दो मास तक कदापि

[३६८]

महीं ठहरेगा जब अधिक मास में विहार करके दूसरे गांव जावेगा तब उसीको दश कल्पि विहार हो जावेगा क्योंकि चारमास शीतकालके चारमास उष्णकालके तथा एक अधिक मासका और एक वर्षाऋतुके चारमासका इस तरहसे अवश्य करके दसकल्पि विहार होता है तथापि नव कल्पि कहनेवाला तो प्रत्यक्ष माया सहित मिथ्याभाषण करनेवाला ठहरेगा सो पाठकवर्ग भी विचार सकते हैं और जैसे मास वृद्धि होनेसे दसकल्पि विहार करने में आता है तैसेही मास सवृद्धि होनेसे तेरह मास छबीश पक्षोंकी गिनती करके उतनेही क्षामणे करने में आते हैं सो आत्मार्थी श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाके आराधक सत्यग्राही भठपजीव सो मंजूर करते हैं परन्तु उत्सूत्र भाषक कदाग्रही विद्वत्ता के अभिमानकी धारण करनेवालोंकी तो बातही जुदी है। और अधिक मासकी गिनती श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी कहीहुई है जिसको संसारगामी मिथ्यात्वी श्रीजिनाज्ञाका विराधकके सिवाय कौन निषेध करेगा और अधिक मासको माननेवालोंकी दूषण लगाकरके फिर आप निदूषण भी बनेगा। सो विवेकी पाठकवर्ग विचार लेवेंगे। और अधिक मासके कारणसे ही तेरह मास छबीश पक्षका अभिवर्द्धित संवत्सर श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने कहा है इस लिये अवश्य करके पांच मासका एक अभिवर्द्धित चौमासा भी मानना चाहिये।

(शङ्का) अधिक मासके कारणसे पांच मासका अभिवर्द्धित चौमासा किस शास्त्रमें लिखा है।

(समाधान) भो देवानुप्रिय ! ऊपर ही ३६३, ३६४ पृष्ठ में

[३६९]

१७ शास्त्रोंके प्रमाण अधिक मासके कारणसें तेरह मास छवीश पक्षका अभिवर्द्धित संवत्सर संबंधी छपे हैं उसी शास्त्रोंसे तथा युक्तियोंसें और प्रत्यक्ष अनुभवसें भी अधिक मासके कारणसें पांच मासका अभिवर्द्धित चौमासा प्रत्यक्ष सिद्ध होता है क्योंकि शीतकालके, उष्णकालके, और वर्षा-कालके चार चार मासका प्रमाण है परन्तु जैन पंचांगानुसार और लौकिक पंचांगानुसार जिस ऋतुमें अधिक मास होवे उसी ऋतुका अभिवर्द्धित चौमासा पांच मासके प्रमाणका मानना स्वयं सिद्ध है इस लिये अधिकमासके कारणसें चौमासामें पांचमास दशपक्षका और सांवत्सरीमें तेरह मास छवीशपक्षका अवश्य करके व्यवहार करना चाहिये ।

शङ्का—अजी आप अधिक मासके कारणसें चौमासामें पांच मास, दशपक्षका और सांवत्सरीमें तेरह मास छवीश पक्षका व्यवहार करना कहते हो सो क्षामणाके अवसरमें तो हो सकता है, परन्तु मुहपत्ती (मुखवस्त्रिका)की प्रतिलेखना करते, वांद्णा देते, अतिचारोंकी आलोचना करते वगैरह कार्योंमें चौमासीमें पांच मास, दश पक्षका और सांवत्सरीमें तेरह मास छवीश पक्षका व्यवहार कैसे हो सकेगा ।

समाधान—भो देवानुप्रिय—जैसे मास वृद्धिके अभावसें चौमासीमें चार मास, आठ पक्षका और सांवत्सरीमें बारह मास, चौवीश पक्षका, अर्थ ग्रहण करनेमें आता है और मुखवस्त्रिकाकी प्रतिलेखनामें, वांद्णा देनेमें, अतिचारोंकी आलोचना वगैरह कार्योंमें उतने ही मास पक्षोंकी भावना होती है, तैसे ही मास वृद्धि होनेके कारणसें चौमासीमें पांच मास, दश पक्षका और सांवत्सरीमें तेरह मास छवीश पक्षका

[३७०]

अर्थ ग्रहण होता है इसलिये चौमासीमें और सांवत्सरिक कार्योंमें भी उतने ही मास पक्षोंकी भावना करनेमें आती है,

और जैसे चंद्रसंवत्सरमें-सांवत्सरिक प्रतिक्रमणमें क्षामणाधिकारे 'बारसग्रहं मासाणं चउव्वीसग्रहं पक्खाणं तिन्निस्सयसट्ठी राइंदियाणं' इत्यादि पाठ बोलके बारह मास, चौवीश पक्ष, तीन सौ साठ (३६०) रात्रि दिनोंकी आलोचना करनेमें आती है और चौमासी प्रतिक्रमणमें

चउग्रहं मासाणं अट्ठग्रहं पक्खाणं वीसुत्तरसय राइंदियाणं' इत्यादि पाठ बोलके चार मास, आठ पक्ष, एक सौ बीस रात्रि दिनोंकी आलोचना करनेमें आती है, तैसे ही अभि-वर्द्धित संवत्सरमें भी सांवत्सरिक क्षामणाधिकारे 'तेरसग्रहं मासाणं छठवीसग्रहं पक्खाणं तिन्निस्सयणउ राइंदियाणं' इत्यादि पाठ बोलके तेरह मास, छवीश पक्ष, तीन सौ नब्बे (३९०) रात्रि दिनोंकी आलोचना करनेमें आती है और अभिवर्द्धित चौमासेमें भी 'पंचग्रहं मासाणं दसग्रहं पक्खाणं पंचासुत्तरसय राइंदियाणं' इत्यादि पाठ बोलके पांच मास, दश पक्ष एक सौ पचास (१५०) रात्रि दिनोंकी आलोचना करनेमें आती है ।

ऊपरमें श्रीआवश्यकचूर्णि, श्रीप्रवचनसारोद्धार, श्रीधर्म-रत्न प्रकरणवृत्ति और श्रीअभयदेवसूरिजीकृत समाचारी वगैरह शास्त्रोंके प्रमाण प्रतिक्रमण संबंधी लिखनेमें आये हैं, उन्हीं शास्त्रोंके अनुसार (संवच्छर) संवत्सर शब्दके ऊपरोक्त न्यायानुसार चंद्र, अभिवर्द्धित इन दोनों संवत्सरोंका अर्थ ग्रहण होनेसे क्षामणा संबंधी ऊपरका पाठ ऊपरोक्त शास्त्रोंके अनुसार ही समझना ।

[३९१]

पूर्व पक्ष—अजी आप ऊपरोक्त शास्त्रोंके अनुसार चन्द्र संवत्सरका और अभिवर्द्धित संवत्सरका अर्थ ग्रहण करके चंद्रमें बारह मासादिसें और अभिवर्द्धितमें तेरह मासादिसें संवत्सरीमें क्षामणा करनेका लिखतेहो परन्तु किसी भी पूर्वाचार्यजीने कोई भी शास्त्रमें ऐसा सुलासा क्यों नहीं लिखा है ।

उत्तर पक्ष—ओ देवानुप्रिय ! तेरेमें श्रीजैनशास्त्रोंके तात्पर्यार्थको समझनेकी गुरुगम बिना विवेक बुद्धि नहीं है इसलिये बालजीवोंको मिथ्यात्वमें फँसानेके लिये वृथा ही ऐसी कुतर्क करता है क्योंकि जब श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजों ने संवत्सर शब्दके चंद्र और अभिवर्द्धितादि जुदे जुदे अर्थ कहे हैं जिसमें चन्द्रके बारह मास, चौबीस पक्ष और अभिवर्द्धितके तेरह मास, छवीश पक्ष सुलासे कह दिये हैं, इसलिये पूर्वाचार्योंने संवत्सर शब्दको ही ग्रहण करके व्याख्या करी है और यह तो अल्पबुद्धिवाला भी समझ सकता है कि जब अधिक मासकी गिनती शास्त्रोंमें श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने प्रमाण करी है और प्रत्यक्षमें वर्तते हैं इसलिये पापकृत्योंकी आलोचनामें तो जरूर ही अधिक मास गिनतीमें लेना सो तो न्यायकी बात है परन्तु विवेकशून्य हठवादी होगा सो ऐसी कुतर्क करेगा कि—अधिक मासकी आलोचना कहां लिखी है जिसको यही कहना चाहिये कि अधिक मासको गिनतीमें लेकर फिर आलोचना नहीं करनी कहां लिखी है इसलिये ऐसी वृथा कुतर्कोंके करनेसें मिथ्यात्व बढ़ानेके सिवाय और कुछ भी लाभ नहीं उठा-सकेगा, क्योंकि जब अधिक मासकी गिनती मंजूर है तो फिर

[३७२]

आलोचना तो स्वयं संजूर हो चुकी और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंका कहा हुआ तथा प्रमाण भी करा हुआ अधिक मासकी उत्सृज भाषण करके निषेध करते हैं और प्रमाण करने वालोंको दूषण लगाते हैं सो पुरुष अधिक मासकी आलोचना नहीं करे तो उन्हींके मति कल्पनाकी बातही जुदी है परन्तु श्रीतीर्थङ्करगणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार अधिक मासकी गिनती प्रमाण करने वालोंको तो अवश्य ही अधिक मासकी आलोचना करना उचित है। इतने पर भी जो नहीं करने वाले हैं सो श्रीजिनाज्ञाके उत्थापक हैं।

और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी भाव परंपरानुसार चंद्रसंवत्सरका और अभिवर्द्धित संवत्सरका यथोचित अवसर पर जुदा जुदा अर्थग्रहण करके सांवत्सरीमें क्षामणा करनेकी अनुक्रमे अखंडित मर्यादा चली आती है इसलिये पूर्वाचार्योंने अधिक मासकी गिनती करनेकी तो सभी जगह व्याख्या करी है परन्तु क्षामणा सम्बन्धी संवत्सरशब्द लिखा है जिसका कारण यही है कि अधिक मास प्रमाण हुआ तो क्षामणे करनेका तो स्वयं प्रमाण हो चुका, जब सम्बेगी साधु मान लिया, तब महाव्रतधारी तो स्वयं सिद्ध हो चुका। जब श्रीजिनेश्वर भगवान्की मूर्त्तिको श्रीजिन सदृश मान्य करी तब उसीको बंदना पूजना तो स्वयं सिद्ध होगया। जब व्याख्यान वांचना संजूर कर लिया, तब जानकार तो स्वयं सिद्ध होगया। ऐसे ऐसे अनेक दृष्टान्त प्रत्यक्ष हैं सो विशेष पाठकवर्गभी विचार सकते हैं।

और श्रीजैनशास्त्रोंके तात्पर्यको नहीं जानने वाले

[३७३]

हठवादी पुरुषोंको तो श्रीप्रवचनसारोद्धार, तथा वृत्ति, और श्रीधर्मरत्नप्रकरण वृत्ति, और श्रीअभयदेवसूरिजी वगैरह पूर्वाचार्योंके बनाये समाचारियोंके ग्रन्थ और प्रतिक्रमण गर्भ हेतु, श्रीश्राद्धविधिवृत्ति, वगैरह शास्त्रोंके अनुसार सांवत्सरीमें बारह मास चौबीस पक्षके हामणा करनेका ही नहीं बनेगा क्योंकि इन शास्त्रोंमें तो बारह मास चौबीस पक्ष भी नहीं लिखे हैं तो फिर बारह मास दिका अर्थ ऊपरके शास्त्रोंके अनुसार कैसे मान्य करेंगे और पांचोंही प्रतिक्रमणोंकी विधि ऊपरके शास्त्रोंमें कही है इसलिये ऊपर कहे सो शास्त्रोंके अनुसार पांच प्रतिक्रमणोंकी विधिकी तो मान्य करनीही पड़ेगी और संवत्सर शब्दसे बारह मासका अर्थ ग्रहण करेंगे तो माससृष्टि होनेसे तेरह मासका भी अर्थ ग्रहण करनाही पड़ेगा सो तो न्यायकी बात हैं और पहिलेके कालमें ऐसी कुतर्क करनेवाले विवेकशून्य कदाग्रही पुरुष भी नहीं थे नहीं तो पूर्वाचार्योंजी जरूर करके विस्तारसे खुलासा लिख देते क्योंकि जिस जिस समयमें जैसी जैसी कुतर्क करनेवाले पूर्वाचार्योंके समयमें जो जो हठवादी पुरुष थे जिन्हेंको समझानेके लिये वैसे वैसेही खुलासा पूर्वाचार्योंने विस्तारसे किया है जैसे कि ईश्वरवादी, नास्तिक, वगैरहोंके लिये और श्रीजिनमूर्तिको तथा जिनमूर्तिकी पूजा सम्बन्धी शास्त्रोक्त विधिको वर्णन करी हैं, परन्तु मूर्तिके और पूजाके सम्बन्धमें वर्तमान समय जैसी युक्तियां लिखनेकी जरूरत नहीं थी जिसका कारण कि—उस समय श्रीजिनमूर्तिके तथा उसीकी पूजाके निषेधक ढूँढिये, तेरहपन्थी, वगैरह

[३७४]

कुयुक्तियां करने वाले पुरुष नहीं थे परन्तु वर्तमान समयमें श्रीजिनमूर्तिके निन्दक विशेष कुयुक्तियां करने लगे तो वर्तमान कालमें उसीके स्थापनेके लिये विशेष युक्तियां भी होती है।

तैसेही इस वर्तमान कालमें तेरह मास उबीश पक्षके निषेध करने वाले सातवें महाशयजी जैसे शास्त्रोंके तात्पर्यको नहीं जानने वाले पैदा हुवे तो उसीको स्थापन करनेके लिये इतनी व्याख्या भी मेरेको इस जगह करनी पड़ी नहीं तो क्या प्रयोजन था, अथ न्यायदृष्टिवाले सत्य-ग्राही भव्यजीवोंको मेरा इतनाही कहना है कि जैसे श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने श्रीमूयगङ्गाङ्गजी, श्रीदश-वैकालिकजी, श्रीउत्तराध्ययनजी वगैरह शास्त्रोंमें साधुके उद्देश करके व्याख्या करी है उसीको ही यथोचित साध्वीके लिये भी समझना चाहिये और श्रीवन्दीता-सूत्रकी—“वउत्थे अणुव्वयंमि, निच्चं परदारगमण विरइओ ॥ आयरियमप्पसत्थे, इत्थपमायप्पसंगेणं ॥ १५ ॥ अपरि गहिआ इत्तर” इत्यादि गाथायोंमें और अतिचारोंकी आलोचना वगैरहमें श्रावकका नाम उद्देश करके व्याख्या करी है उसीकोही यथोचित श्राविकाके लियेही समझना चाहिये इतने पर भी कोई विवेक शून्य कुतर्क करे कि—अमुक अमुक बातें साधुके और श्रावकके लिये तो कही है परन्तु साध्वी और श्राविकाके लिये तो नहीं कही है ऐसी कुतर्क करनेवालेको अज्ञानीके सिवाय, तत्त्वज्ञ पुरुष और क्या कहेंगे। तैसेही जिस जिस शास्त्रमें चन्द्रसंवत्सरकी अपेक्षासें जो जो बातें कही है उसीकेही अनुसार यथोचित अवसरमें अभिवर्द्धित संवत्सरसम्बन्धी भी समझनी चाहिये

[३७५]

तथापि विवेकशून्य हठवादी कोई ऐसी कुतर्क करे कि—
 अमुक शास्त्रमें मासवृद्धि के अभावसे चन्द्रसम्बत्सरके लिये
 बारह मासके सामने कहे हैं परन्तु मासवृद्धि होनेसे अग्नि-
 वर्द्धित सम्बत्सरके लिये तो कुछ नहीं कहा है, ऐसी कुतर्क
 करने वालेको अज्ञानीके सिवाय, तत्त्वज्ञ पुरुष और क्या
 कहेंगे क्योंकि एकके उद्देश्यसे जो व्याख्या करी होवे उसीके
 ही अनुसार दूसरेके लियेही यथोचित समझनेकी श्रीजैन-
 शास्त्रोंमें मर्यादा है इसलिये जूदे नाम उद्देश्य करके जूदी
 जूदी व्याख्या शास्त्रकार नहीं करते हैं परन्तु जो सत्यवादी
 विवेकी आत्मारथी होवेंगे सो तो सद्गुरुकी सेवासे श्रीजैन-
 शास्त्रोंके तात्पर्यको समझके सत्यवात ग्रहण करेंगे और
 विवेक रहित हठवादी होंगे जिसके कर्मोंका दोष नतु
 शास्त्रकारोंका, जैसे—श्रीकल्पसूत्रकी व्याख्याओंमें प्रसिद्ध
 बात है कि—कोई साधु स्थण्डिले जङ्गलमें गयाथा सो कुछ
 ज्यादा देरीसे गुरु पास आया तब उस साधुको गुरु महाराजने
 देरीसे आनेका कारण पूछा तब उस साधुने रस्तेमें
 नाटकीये लोगोंका नाटक देखनेके कारण देरीसे आना
 हुवा सो कहा, तब गुरु महाराजने नाटकीये लोगोंका नाटक
 देखनेकी साधुको मनाई करी तब विवेकी बुद्धिवाले चतुर थे
 वे तो नाटकणी लुगाइयोंका नाटकवर्जनेका भी स्वयं समझ
 गये, और विवेक बिनाके थे सो तो नाटकणी लुगाइयोंका
 नाटक देखनेको खड़े रहे, तब गुरु महाराजके कहने पर
 विवेक रहित होनेसे बोलेकी आपने नाटकीये लोगोंका
 नाटक देखनेकी मनाई करीथी परन्तु नाटकणी लुगाइयों
 का नाटक देखनेकी तो मनाई नहीं करी थी तब गुरु महाराज-

[३९६]

राजने कहा कि जब नाटककीयें लोगोंका नाटक वर्जन किया तब नाटकणी लुगाइयोंका नाटक तो विशेष रागका कारण होनेसें स्वयं वर्जन समझना चाहिये तब उन्होंने गुरु महाराजके कहने मुजबही संजूर किया—और हठवादी मूर्ख थे सो तो गुरु महाराजकोही दूषित ठहराने लगे कि आपने नाटककीये लोगोंका नाटक वर्जन किया तो फिर नाटकणी लुगाइयोंका नाटक क्यों वर्जन नहीं किया—

ऊपरके लेखका क्षामणाके सम्बन्धमें तात्पर्य ऐसा है जब श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंने संवत्सर शब्दके चन्द्र, अभिवर्द्धितादि जूदे जूदे भेद प्रमाण सहित कहे हैं और सांवत्सरिक क्षामणाके अधिकारमें संवत्सर शब्दसें व्याख्या करी है जिसमें मासवृद्धिके अभावसें चन्द्रसंवत्सरमें बारह मासादिसें क्षामणा करनेमें आते हैं उसीकेही अनुसार विवेक बुद्धिवाले चतुर होवेंगे सो तो मासवृद्धि होनेसें तेरह मासादिसें क्षामणा करनेका स्वयं समझ लेवेंगे और विवेक रहित होवेंगे सो शास्त्रोंके अनुसार युक्तिपूर्वक गुरु-महाराजके समझानेसें मान्य करेंगे और विवेक रहित हठवादी होवेंगे सो तो शास्त्रोंका प्रमाण और युक्ति होने पर भी शास्त्रकार महाराजोंकोही उलटे दूषित ठहरावेंगे कि अधिक मासकी गिनतीका प्रमाण करके तेरह मास छवीश पक्षका अभिवर्द्धित संवत्सरको शास्त्रकार लिख गये तो फिर अधिकमास होनेसें तेरह मास छवीश पक्षके क्षामणे करनेका क्यों नहीं लिख गये, इस तरहसें अपनी वक्र जड़ता प्रगट करके बालजीवोंको भी मिथ्यात्वमें फँसावेंगे, पर भवका भय नहीं रखेंगे,

[३११]

और शास्त्रकारोंको निर्या दूषण लगाके, फिर आप निर्दूषण भी बनेंगे, सो तो कलियुगकाही प्रभावके सिवाय और क्या होगा सो तत्त्वज्ञ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे ।

प्रश्न:—श्रीजैनशास्त्रोंमें चन्द्रसंवत्सरके ३५४ दिनका और अभिवर्द्धित संवत्सरके ३८३ दिनका प्रमाणकहा है फिर सांवत्सरी सम्बन्धी चन्द्रसंवत्सरमें ३६० दिनके और अभिवर्द्धित संवत्सर में ३९० दिनके क्षामणे करनेका आप कैसे लिखते हो ।

उत्तर:—भो देवानुप्रिय, श्रीजिनेन्द्र भगवानोंका कहा हुआ नयगर्भित श्रीजिन प्रवचनकी शैली गुरुगम और अनुभव बिना प्राप्त नहीं हो सकती है क्योंकि यद्यपि श्रीजैनशास्त्रोंमें चन्द्रसंवत्सरके ३५४ दिन, ११ घटीका, और ३६ पलका प्रमाण कहा है और अभिवर्द्धित संवत्सरके ३८३ दिन, ४२ घटीका, और ३४ पलका प्रमाण कहा है सो चन्द्रके विमानकी गतिके हिसाबसें निश्चय नय संबन्धी समझना चाहिये और जो चन्द्रसंवत्सरमें ३६० दिनके और अभिवर्द्धितमें ३९० दिनके क्षामणे करनेमें आते हैं सो दुनिपाकी रीतिसें, व्यवहार नय करके, लोगोंको सुखसें उच्चारण हो सके इसलिये बहुत अपेक्षासें समझना चाहिये । और व्यवहार नयसें चन्द्रसंवत्सरमें ३६० दिनका और अभिवर्द्धित संवत्सरमें ३९० दिनका उच्चारण करके क्षामणे करनेमें आते हैं परन्तु निश्चय नय करके तो जितने समयसें सांवत्सरीमें क्षामणे करनेमें आवेंगे उतनेही समय तकके पापकृत्योंकी आलोचना हो सकेगी सो विशेष पाठकवर्ग भी स्वयं विचार लेवेंगे और चौमासी पाक्षिक देवसीराइ प्रतिक्रमण सम्बन्धी भी निश्चय नयकी और व्यवहार

[३१८]

नयकी अपेक्षा केलिये आगे लिखुंगा—

अब सत्यग्राही तत्त्वज्ञ पुरुषोंकी न्यायदृष्टिसे विचार करना चाहिये कि अधिक मासके कारणसे चौमासीमें पांच मासादिसैं और सांवत्सरिमें १३ मासादिसैं क्षामणे करनेका अनेक शास्त्रोंके प्रमाणानुसार युक्तिपूर्वक और प्रत्यक्ष अनुभवसे स्वयं सिद्ध है सो तो मैंने ऊपरमें ही लिख दिखाया है परन्तु सातवें महाशयजी कोई भी शास्त्रके प्रमाण बिना पांच मास होते भी चार मासके क्षामण करने का और तेरह मास होते भी १२ मासके क्षामणे करनेका लिख दिखाके फिर शास्त्रानुसार पांच मासके और तेरह मासके क्षामणे करने वालोंको दूषण लगाते हैं सो अपने विद्वत्ताकी हांभी करा करके, संसार दृष्टिके हेतुभूत उत्सूत्र भाषणके सिवाय और क्या होगा सो पाठकवर्गको विचार करना चाहिये।

और भी आगे पर्युषणा विचारके चौथे पृष्ठकी १५ वीं पंक्तिमें २१वीं पंक्ति तक लिखा है कि—(दूसरी बात यह है किसी समय सोलह (१६) दिनका पक्ष होता है और कभी चौदह दिनका पक्ष होता है उस समय 'एक परुषाणं पन्नरसहं दिवसाणं' इस पाठको छोड़कर क्या दूसरी पाठकी कल्पना करते हो यदि नहीं करते तो एक दिनका प्रायश्चित्त बाकी रह जायगा जैसे तुम्हारे मतमें 'चउरहं मासाणं' इत्यादि पाठ कहनेसे अधिकमासका प्रायश्चित्त रह जाता है)—

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं कि हे सज्जन पुरुषों सातवें महाशयजीके ऊपरका लेखकी देखकर मेरेकी बड़ाही विचार उत्पन्न होता है कि—सातवें

[३७९]

महाशयजी इतने विद्वान् कहलाते हैं तथापि श्रीजैन शास्त्रों के तात्पर्य समझे बिना अपने कदाग्रहके कल्पित पक्षकी स्थापन करनेके लिये कृथाही क्यों उत्सूत्र भाषण करके अपनी अज्ञता प्रगट करी है क्योंकि लौकिक ज्योतिषके गणित मुजब वर्तमानिक पञ्चाङ्गमें तिथियांकी हानी और वृद्धि होनेका अनुक्रमे नियम है और अधिकमासकी तो सर्वथा करके वृद्धि ही होनेका नियम है परन्तु तिथिकी हानी होनेमें १४ दिन का पक्षकी तरह, मासकी हानी होकर ११ मासका वर्ष कदापि नहीं होता है इसलिये तिथिकी हानी अथवा वृद्धि होवे तो भी दुनियाके व्यवहारमें १५ दिनका पक्ष कहा जाता है जिससे क्षामणे भी १५ दिनके करनेमें आते हैं और मासकी तो हानी न होते, सर्वथा वृद्धिही होती है इसलिये दुनियाके व्यवहारमें भी तेरह मासका वर्ष कहा जाता है परन्तु मासवृद्धि होते भी बारह मासका वर्ष कोई भी बुद्धिमान विवेकी पुरुष नहीं कहते हैं जिससे मासवृद्धि होनेसे क्षामणे भी १३ मासकेही करनेमें आते हैं, परन्तु मासवृद्धि होते भी बारह मासके क्षामणे करनेका कोई भी बुद्धिवाले विवेकी पुरुष नहीं मान्य कर सकते हैं। इसलिये तिथियांकी हानि वृद्धि होनेका नियम होनेमें और मासकेसदा वृद्धि होनेका नियम होनेसे दोनोंका एक सदृश व्यवहार होनेका सातवें महाशयजी ठहराते हैं सो कदापि नहीं हो सकता है।

और निश्चय व्यवहारादि नय करके श्रीजिन प्रवचन चलता है इसलिये लौकिक पञ्चाङ्गमें १६ दिनका अथवा १४ दिनका पक्ष होते भी व्यवहार नयकी अपेक्षासे १५ दिनके क्षामणे करनेमें आते हैं परन्तु निश्चय नयकी अपेक्षासे तो

[३८०]

१६ दिनके अथवा १४ दिनके जितने समय तक जितने पुण्य पापादि कार्य करनेमें आये होंवे उतनेही पुण्य कार्योंकी अनुमोदना और पापकार्योंकी आलोचना करनेमें आवेगी, देवसी राइ प्रतिक्रमणवत् अर्थात् देवसी और राइप्रतिक्रमणका सांम और सवेरमें चार चार पहरका काल कहा है परन्तु कोई कारण योग संध्या समय देवसी प्रतिक्रमण न होसके तो रात्रिका बारह बजे (संध्यानरात्रि) के समय तक भी प्रतिक्रमण करनेका अवसर मिलनेसे करनेमें आसके तब निश्चय नय करके तो छ पहरके पाप कार्योंकी आलोचना होगी परन्तु व्यवहार नयकी अपेक्षासे चार पहरके अर्थ-वाला देवसी शब्द ग्रहण करके देवसी क्षामणे करनेमें आवेंगे अब देखिये अर्दुरात्रि तक छ पहरमें प्रतिक्रमण करके भी व्यवहार नयसे चार पहरके अर्थवाला देवसी शब्द ग्रहण करनेमें आवे और पुनः कारण योगे पहर रात्रि शेष रहते ३ बजेमेंही दूसरीबार राइ (रात्रि) प्रतिक्रमणकरनेका कारण पड़ गया तो एक पहर अथवा सवा पहरमें रात्रि प्रतिक्रमण करती समय निश्चय नय करके तो उतनेही समय तकके पापकार्योंकी आलोचना होगी परन्तु व्यवहार नयसे चार पहरके अर्थवाला राइ शब्दही ग्रहण करनेमें आवेगा तैसेही लौकिक पंचाङ्ग मुजब १४ दिने किंवा १५ दिने अथवा १६ दिने पाक्षिक प्रतिक्रमण करनेमें आवे तो निश्चय नय करके तो उतनेही दिनोंके पापकार्योंकी आलोचना करनेमें आवेगी परन्तु व्यवहार नयकी अपेक्षासे १५ दिनका पक्ष कहनेमें आता है इसलिये १५ दिनके अर्थवाला पाक्षिक शब्द ग्रहण करके क्षामणे भी करनेमें आते हैं, परन्तु व्यवहार नयका

[३८१]

भङ्गके दूषणसे हरनेवाले अन्य कल्पना कदापि नहीं करेंगे सो विवेकी सज्जन स्वयंविचार लेवेंगे ।

और सातवें महाशयजी १६ दिनका पक्षमें १५ दिनके क्षामणे करनेसे एक दिनका प्रायश्चित्त बाकी रहने संबंधी और १४ दिनका पक्षमें भी १५ दिनके क्षामणे करनेसे एकदिन का बिना पाप किये भी प्रायश्चित्त ज्यादा लेने सम्बन्धी ऊपरके लेखसे ठहराते हैं सो निःकेवल अज्ञातपनसे व्यवहार नयका भङ्ग करते हैं जिससे श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उल्लंघन रूप स्तसूत्र भाषक बनते हैं सो भी पाठकवर्ग विचार लेवेंगे ।

और यद्यपि श्रीजैनपञ्चाङ्ग की गिनतीसे तिथि की वृद्धि होनेका अभाव था तथा पौष और आषाढ़ मासकी वृद्धि होनेका नियम था परन्तु लौकिक पञ्चाङ्गमें तिथि की वृद्धि होनेका गिनती मुजब नियम है और हरेक मासोंकी वृद्धि होनेका भी नियम है । जब जैन पञ्चाङ्गके बिना लौकिक पञ्चाङ्ग मुजब तिथिकी वृद्धिको सातवें महाशयजी मान्य करके सोलह (१६) दिनका पक्षको मंजूर करते हैं तो फिर लौकिक पञ्चाङ्गानुसार श्रावण भाद्रपदादि मासोंकी वृद्धि होती है जिसको मान्य नहीं करते हुवे उलटा निषेध करनेके लिये पर्युषणा विचारके लेखमें वृथा क्यों परिश्रम करके निष्पक्षपाती विवेकी पुरुषोंसे अपनी हांसी करानेमें क्या लाभ उठाया होगा सो मध्यस्थ दृष्टिवाले सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और (जैसे तुम्हारे मतमें ‘चउण्हं मासाणं’ इत्यादि पाठ कहनेसे अधिक मासका प्रायश्चित्त रह जाता है) सातवें महाशयजीके ऊपरके लेखपर मेरेको इतनाही कहना है कि—

[३८२]

अधिक मासको मानने वालोंके मतमें तो अधिक मास होने से पाँच मास होते भी चार मास कहनेसे पाँचवा अधिक मासका प्रायश्चित्त बाकी रह जाता है इसलिये अधिकमास होनेसे पाँच मास जरूर बोलने चाहिये सो तो बोलतेही हैं इसका विशेष निर्णय ऊपरमें हो गया है, परन्तु पाँच मास होते भी चार मास बोलनेसे पाँचवा अधिक मासका प्रायश्चित्त उसीके अन्तर्गत आजानेका ऊपरके अक्षरोंसे सातवें महाशयजीने अपने मतमें ठहरानेका परिश्रम किया है सो कोई भी शास्त्रके प्रमाण बिना प्रत्यक्ष मायावृत्तिसे मिथ्यात्व बढ़ानेके लिये अज्ञ जीवोंको कदाग्रहमें गेरनेका कार्य किया है क्योंकि अधिक मास होनेसे पाँचमासके दश पक्ष प्रत्यक्ष में होते हैं और खास सातवें महाशयजी वगैरह भी सब कोई अधिक मासके कारणसे पाँच मासके दश पाक्षिकप्रतिक्रमण भी करते हैं फिर पाँचमास दश पक्ष नहीं बोलते हैं सो यह तो 'मम वदने जिह्वा नास्ति' की तरह बाललीलाके सिवाय और क्या होगा सो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे;—

और आगे फिर भी सातवें महाशयजीने पर्युषणा विचारके पाँचवें पृष्ठकी प्रथम पंक्तिसे छद्मी पंक्तितक लिखा है कि (अब लौकिक व्यवहार पर चलिए लौकिक जन अधिक मासमें नित्यकृत्य छोड़कर नैमित्तिककृत्य नहीं करते जैसे यज्ञोपवीतादि अक्षयतृतीया दीपालिका इत्यादि, दिगम्बर लोग भी अधिक मासको तुच्छ मानकर भाद्रपद शुक्लपञ्चमी से पूर्णिमा तक दश लाक्षणिक पर्वमानते है) —

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूँ कि हे सज्जन पुरुषों-श्रीजिनेन्द्र भगवानोंने तो अधिक

[३८३]

मासको गिनतीमें ले करकेही पर्युषणा करनेका कहा है तथापि सातवें महाशयजी पर्युषणा सम्बन्धी श्रीजैनशास्त्रों के तात्पर्यको समझे बिना अज्ञात पनेसें उत्सूत्र भाषक हो करके अधिक मासका निषेध करनेके लिये गच्छपक्षी बाल-जीवोंको मिष्टयात्वमें फँसाने वाली अनेक कुतर्कोंका संग्रह करते भी अपने मतव्यको सिद्ध न कर सके तब लौकिक व्यवहारका सरणा लिया तथापि लौकिक व्यवहारसें भी उलटे वर्तते हैं क्योंकि लौकिक जन (वैष्णवादि लोग) तो अधिक मासमें विवाहादि संसारिक कार्य छोड़कर संपूर्ण अधिक मासको बारहमासोंसें विशेष उत्तम जान करके 'पुरुषोत्तम अधिक मास' नाम रखके दान पुण्यादि धर्मकार्य विशेष करते हैं और अधिक मासके महात्मकी कथा अपने अपने घर घरमें ब्राह्मणोंसें बँचाकर सुनते हैं। अब पाठकवर्गको विचार करना चाहिये कि—लौकिकजन भी जैसे बारह मासोंमें संसारिक व्यवहारमें वर्तते हैं तैसेही अधिक मास होनेसें तेरह मासोंमें भी वर्तते हैं और बारह मासोंसें भी विशेष करके दानपुण्यादि धर्मकार्य अधिक मासमें ज्यादा करते हैं और विवाहादि मुहूर्त निमित्तिक कार्य नहीं करते हैं परन्तु बिना मुहूर्तके धर्मकार्योंको तो नहीं छोड़ते हैं और सातवें महाशयजी लौकिक जनकी बातें लिखते हैं परन्तु लौकिक जनसें विरुद्ध हो करके धर्मकार्योंमें अधिक मासके गिनती का सर्वथा निषेध करते कुछ भी विवेक बुद्धिसें हृदयमें विचार नहीं करते हैं क्योंकि लौकिक जन की बात सातवें महाशयजी लिखते हैं तबतो लौकिकजन की तरहही सातवें महाशयजीको भी वर्त्ताव करना चाहिये तो तो नहीं करते

[३८४]

हुये उलटेही वर्तते हैं सो भी बड़ेही आश्चर्यकी बात है ।

और यज्ञोपवीत, विवाह वगैरह मुहूर्त निमित्तिक कार्य तो चौमासेमें, मलमासमें, सिंहस्थमें, अधिक मासमें, रिक्ता तिथि में, और ग्रहण वगैरह कितनेही योगोंमें नहीं होते हैं परन्तु बिना मुहूर्तका पर्युषणादि धर्म कार्य तो चौमासेमें रिक्ता तिथि होने पर भी करनेमें आते हैं इसलिये मुहूर्त निमित्तिक कार्य अधिक मासमें न होनेका दिखाकरके बिना मुहूर्त का पर्युषणा पर्वका निषेध करना सो सर्वथा उत्सूत्र भाषण करके भोले जीवोंकी मिथ्यात्वमें फँसानेसे संसार वृद्धिका कारण है सो पाठकवर्ग भी विचार सकते हैं ।

और यज्ञोपवीत विवाहादि मुहूर्त निमित्तिक कार्य अधिकमासमें नहीं होनेका सातवें महाशयजी लिख दिखा करके पर्युषणा भी अधिक मासमें नहीं होनेका ठहराते हैं तब तो सिंहस्थ, सिंहराशीपर गुरुका आना होवे तब तेरह मासमें यज्ञोपवीत विवाहादि मुहूर्त निमित्त कार्य नहीं करनेमें आते हैं उसीकेही अनुसार सातवें महाशयजीको भी तेरह मास में पर्युषणादि धर्म कार्य नहीं करना चाहिये । यदि करते होवे तो फिर गच्छ कदाग्रही बाल जीवोंकी मिथ्यात्वमें फँसानेका वृथा क्यों परिश्रम किया सो तत्त्वज्ञ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे—और मुहूर्त निमित्तिक संसारिक कार्योंके लिये तथा बिना मुहूर्तका धर्म कार्योंके लिये विशेष विस्तारसे चौथे महाशयजी न्यायांभो-निधिजीके लेखकी समीक्षामें इसीही ग्रन्थके पृष्ठ १८४ से २०४ तक अच्छी तरहसे छप गया है सो पढ़नेसे सर्व निःसंदेह हो जावेगा ।

[३८५]

और अक्षयतृतीया दीपालिकादि सम्बन्धी आगे लिखनेमें आवेगा । और (दिगम्बर लोग भी अधिक मासको तुच्छ मानकर भाद्रपदशुक्ल पञ्चमीसे पूर्णिमा तक दशलाक्ष-जिकपर्व मानते हैं) सातवें महाशयजीका इस लेखपर मेरेको इतनाही कहना है कि—दिगम्बर लोग तो—केवलीको आहार, स्त्रीको मोक्ष, साधुको वस्त्र, श्रीजिनमूर्तिको आभूषण, नद्याङ्गी पूजा वगैरह बातोंको निषेध करते हैं और श्वेताम्बर मान्य करते हैं इसलिये दिगम्बर लोगोंकी अधिक मास सम्बन्धी कल्पनाको श्वेताम्बर लोगोंको मान्य करने योग्य नहीं है क्योंकि श्वेताम्बरमें पञ्चाङ्गीके अनेक प्रमाण अधिक मासको गिनतीमें करने सम्बन्धी मौजूद हैं इसलिये दिगम्बर लोगोंकी बातको लिखके सातवें महाशयजीने अधिक मासको गिनतीमें लेनेका निषेध करनेको उद्यम करके बालजीवोंको कदाग्रहमें गेरे हैं सो उत्सूत्र भाषणरूप है और सातवें महाशयजी दिगम्बर लोगोंका अनुकरण करते होंगे तब तो ऊपरकी दिगम्बर लोगोंकी बातें सातवें महाशयजीको भी मान्य करनी पड़ेंगी यदि नहीं मान्य करते होवें तो फिर दिगम्बर लोगोंकी बात लिखके दृष्टा क्यों कागद काले करके समयकी खोया सो पाठकवर्ग विचार लेवेंगे—

और आगे फिर भी पर्युषणा विचारके पाँचवे पृष्ठकी ७ वीं पंक्तिसे छठे पृष्ठकी पाँचवीं पंक्ति तक लिखा है कि— [अधिकमास संज्ञी पञ्चेन्द्रिय नहीं मानते, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि एकेन्द्रिय वनस्पति भी अधिक मासमें नहीं फलती । जो फल आवण मासमें उत्पन्न होने

[३८६]

वाला होगा वह दूसरेही आषणमें उत्पन्न होगा न कि पहिलेमें। जैसे दो चैत्र मास होंगे तो दूसरे चैत्रमें आमादि फलेंगे किन्तु प्रथम चैत्रमें नहीं। इस विषयकी एक गाथा आवश्यकनिर्युक्तिके प्रतिक्रमणाध्ययनमें यह है—

“जइ फुल्ला कणिआरया चूअग अहिमासयंमि घुट्ठंमि ।
तुह न खमं फुल्लेउं जइ पच्चंता करिंति डमराइ” ॥ १ ॥

अर्थात् अधिकमासकी उद्घोषणा होनेपर यदि कर्णिकारक फूलता है तो फूले, परन्तु हे आमावृक्ष ! तुमको फूलना उचित नहीं है, यदि प्रत्यन्तक (नीच) अशोभन कार्य करते हैं तो क्या तुम्हें भी करना चाहिये ?, सज्जनोंको ऐसा उचित नहीं है ।

इस बातका अनुभव पाठकवर्ग करें यदि अभ्यासकी सफलता हो तो जैसे कुशाग्रबुद्धि आज्ञानिबद्ध हृदय आचार्योंने अधिक मासको गिनतीमें नहीं लिया है उसी तरह तुम्हें भी लेखामें नहीं लेना चाहिये । जिससे पूर्वोक्त अनेक दोषोंसे मुक्त होकर आज्ञाके आराधक बनोगे ।]

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूँ कि—हे सज्जन पुरुषो सातवें महाशयजीने गच्छ पक्षी बालजीवोंको मिथ्यात्वमें फँसानेके लिये ऊपरके लेखमें वृथा क्यों परिश्रम किया है क्योंकि प्रथम तो (अधिक मास संज्ञी पञ्चेन्द्रिय नहीं मानते) यह लिखनाही प्रत्यक्ष महा मिथ्या है क्योंकि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय सब कोई अधिक मासको अवश्य करके मानते हैं सो तो प्रत्यक्ष अनुभवसेही सिद्ध है और ‘एकेन्द्रिय वनस्सति अधिक-मासमें नहीं फलनेका’ तब महाशयजी लिखते हैं सो भी

[३८९]

मिथ्या है क्योंकि वनस्पतिका फूलना और फूलोंका, फलोंका उत्पन्न होना सो तो समय, हवा, पानी, ऋतुके, कारणसें होता है इसलिये वनस्पतिकी समय (स्थिति) परिपाक न हुई होवे तथा हवा भी अच्छी न होवे जलका संयोग न मिले तो अधिक मासके बिना भी वनस्पति नहीं फूलती है और फल भी उत्पन्न नहीं होते हैं और अधिक मासमें भी स्थिति परिपक्व होनेसें हवा अच्छी लगनेसें जलका संयोग मिलनेसें फलती है और फूलोंकी, फलोंकी उत्पत्ति भी होती है ।

और जैसे बारह मासोंमें उत्पन्न होना, वृद्धि पामना, फूलना, फलना, नष्ट होना, वगैरह वनस्पतिका स्वभाव है तैसेही अधिक मास होनेसें तेरह मासोंमें भी है सो तो प्रत्यक्ष दिखता है ।

और 'जो फल श्रावण मासमें उत्पन्न होनेवाला होगा सो पहिले श्रावणमें न होते दूसरे श्रावणमें होगा' ऐसा भी सातवें महाशयजीका लिखना अज्ञातसूचक और मिथ्या है क्योंकि जैन पञ्चाङ्गमें और लौकिक पञ्चाङ्गमें अधिक मासका व्यवहार है परन्तु मुसलमानोंमें, बङ्गलामें, अंग्रेजीमें, तो अधिकमासका व्यवहार नहीं है किन्तु अनुक्रमसें मासोंकी तारीख मुजबब व्यवहार है जब लौकिकमें अधिक मास होनेसें अधिक मासमें वनस्पतिका फूलना, फलना नहीं होनेका सातवें महाशयजी ठहराते हैं तो क्या लौकिक अधिकमासमें जो मुसलमानोंकी, बङ्गलाकी और अंग्रेजीकी ३० तारीखोंके ३० दिन व्यतीत होवेंगे उसीमें भी वनस्पतिका फूलना फलना न होनेका सातवें महा-

[३८८]

शयजी ठहरा सकेंगे सो तो कदापि नहीं तो फिर कथा कथों कदायही बालजीवोंको मिथ्यात्वकी श्रद्धामें गेरनेके लिये अधिक मासमें वनस्पतिको नहीं फलनेका उत्सूत्र भाषणरूप प्रत्यक्ष मिथ्या स्थापन करते हैं सो न्यायदृष्टि वाले विवेकी पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ॥

और अधिक मासको वनस्पति अङ्गाकार नहीं करती है इत्यादि लेख चौथे महाशयजी न्यायाम्भोनिधिजीने भी बालजीवोंको मिथ्यात्वमें गेरनेके लिये उत्सूत्र भाषणरूप लिखा था जिसकी भी समीक्षा इसीही ग्रन्थके पृष्ठ २०५ से २१० तक छप गई है सो पढ़नेसे विशेष निर्णय हो जावेगा ।

और 'दो चैत्र मास होंगे तो प्रथम चैत्रमें आम्नादि नहीं फलते दूसरे चैत्रमें फलेगें इस विषय सम्बन्धी आवश्यक निर्युक्तिके प्रतिक्रमण अध्ययनकी एक गाथा' सातवें महाशयजीने लिख दिखाई—सो तो निःकेवल अपने विद्वत्ता की अजीर्णता प्रगट करी है क्योंकि श्रीआवश्यक निर्युक्ति के रचने वाले चौदह पूर्वधरश्रुतकेवली श्रीमान् भद्रबाहु स्वामीजी जैनमें प्रसिद्ध हैं उन्हीं महाराजको अनुमान २२७० वर्ष व्यतीत हो गये हैं उन्हींके समयमें अठाशी ग्रहोंके गतिकी मर्यादा पूर्वक जैनपञ्चाङ्ग सुरुवा उसीमें पौष और आषाढ़ मासके सिवाय चैत्रादि मासोंकी वृद्धिकाही अभाव था तो फिर श्रीआवश्यक निर्युक्तिके गाथाका तात्पर्यार्थको गुरु गमसे समझे बिना दूसरे चैत्रमें आम्नादि फलनेका सातवें महाशयजी ठहराते हैं सो विवेकी बुद्धिमान् कैसे मान्य करेंगे अपितु कदापि नहीं ।

और श्रीआवश्यक निर्युक्तिकी गाथा लिखके अधिक

[३८]

मासको गिनतीमें लेनेका सातवें महाशयजीने निषेध किया है सो भी निःकेवल गच्छपसके आग्रहसे और अपनी विद्वत्ता के अभिमानसें दृष्टिरागी अज्ञजीवोंको मिथ्यात्वमें फँसाने के लिये नियुक्तिकार महाराजके अभिप्रायको जाने बिना वृथाही परिश्रम किया है क्योंकि नियुक्तिकार महाराज चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली थे इसलिये श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंका कहा हुआ और गिनतीमें प्रमाण भी करा हुआ अधिक मासको निषेध करके उत्सूत्र भाषण करने वाले बनेंगे यह तो कोई अल्पबुद्धिवाला भी मान्य नहीं करेगा तथापि सातवें महाशयजीने नियुक्तिकी गाथासे अधिक मासको गिनतीमें लेनेका निषेध करके चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली महाराजको भी दूषण लगाते कुछ भी पूर्वापरका विचार विवेक बुद्धिसें हृदयमें नहीं किया यह तो बड़ेही अफसोसकी बात है ।

और खास इसीही श्रीआवश्यक नियुक्तिमें समयादि कालकी व्याख्यासे अधिक मासको प्रमाण किया है उसी नियुक्तिकी गाथा पर श्रीजिनदासगणि महत्तराचार्यजीने चूर्णिमें, श्रीहरिभद्र सूरिजीने बृहद्बृत्तिमें, श्रीतिलकाचार्यजीने लघुबृत्तिमें, और मलधारी श्रीहेमचन्द्रसूरिजीने श्रीविशेषावश्यकबृत्तिमें, खुलासा पूर्वक व्याख्या करी है उसीसे प्रगट पने अधिक मासकी गिनती सिद्ध हैं सो इस जगह विस्तारके कारणसें ऊपरके पाठोंको नहीं लिखता हूँ परन्तु जिसके देखनेकी इच्छा होवे सो नियुक्तिके चौबीसवा—अध्ययनके पृष्ठ ५१में, बृहद् बृत्तिके पृष्ठ २०६ में और विशेषावश्यककी बृत्तिके पृष्ठ ४८५ में देख लेना ।

[३९०]

अब इस जगह विवेकी पाठकवर्गको विचार करना चाहिये कि—खास निर्युक्तिकार महाराज अधिकमासको प्रमाण करने वाले थे तथा खास श्रीआवश्यक निर्युक्तिमेंही अधिक मासको प्रमाण किया है सो तो प्रगट पाठ है तथापि सातवें महाशयजीने गच्छपक्षके कदाग्रहसे दृष्टि-रागियोंको मिथ्यात्वके झगड़ेमें गेरनेके लिये निर्युक्तिकार चौदह पूर्वधर महाराजके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणरूप अपनी मति कल्पनासे, निर्युक्तिकी गाथा लिखके उसीके तात्पर्यको समझे बिनाही अधिक मासको गिनतीमें निषेध करनेका वृथा परिश्रम किया सो कितने संसारकी वृद्धि करी होगी सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने और तत्त्वज्ञ पुरुष भी अपनी बुद्धिसे स्वयं विचार लेवेंगे ।

अब इस जगह पाठकवर्गको निःसन्देह होनेके लिये निर्युक्तिकी गाथाका तात्पर्यार्थको दिखाता हूं ।

श्रीनिर्युक्तिकार महाराजने श्रीआवश्यक निर्युक्तिमें छ (६) आवश्यकका वर्णन करते प्रतिक्रमण नामा चौथा आवश्यकमें “पडिक्रमणं १ पडिअरणा २, पडिहरणा ३ वारणा ४ गियतिय ५ ॥ गिंदा ६ गरहा ७ सोही ८, पडिक्रमणं अट्टहा होइ” ॥ ३ ॥ इस गाथासे आठ प्रकारके नाम प्रतिक्रमणके कहे फिर अनुक्रमे आठोंही नामोंके निक्षेपोंका वर्णन किया हैं और भव्यजीवोंके उपगारके लिये “अट्टाणे १ पासए २ दुट्टकाय ३ विसभोयणा तलाए ४ ॥ दोकणा ५ चित्तपुत्ति ६ पइमारियाय ७ वत्थेव ८ अट्टणय” ॥ १२ ॥ इस गाथासे प्रतिक्रमण सम्बन्धी आठ दृष्टान्त दिखाये जिसमें पांचवा शियत्ति अर्थात् निवृत्ति सो उन्नमार्गसे हट करके

[३९१]

सन्मार्गमें प्रवर्तने सम्बन्धी दो कन्याका एक दृष्टांत दिखाया है जिसकी चूर्णिकारने, वहद् वृत्तिकारने और लघुवृत्तिकारने खुलासा पूर्वक, व्याख्या करी है और द्रव्य निवृत्ति पर दृष्टांत दिखाके, फिर भाव निवृत्ति पर उपनय करके दिखाया है, उसीके सब पाठोंकी विस्तार के कारणसे इस जगह नहीं लिखता हूं परन्तु जिसके देखनेकी इच्छा होवे सो चूर्णिके २६४ पृष्ठमें, तथा वहद् वृत्तिके २३३ पृष्ठमें देखलेना । और पाठकवर्गको लघु-वृत्तिका पाठ इस जगह दिखाता हूं श्रीतिलकाचार्यजी कृत श्री आवश्यक लघुवृत्तिके १९६ पृष्ठे यथा—

एकत्र नगरे शाला, पतिः शालासु तस्य च ॥ धूर्तावयन्ति
तेष्वेको, धूर्तो मधुरगी सदा ॥१॥ कुविंदस्य सुता तस्य, तेन
सार्द्धमयुज्यत ॥ तेनोचे साथ नश्यामो, यावद्वेत्ति न कश्चनः
॥२॥ तयोचेमे वयस्यास्ति, राजपुत्री तथा सभं ॥ संकेतो-
ऽस्ति यथा द्वाभ्यां, पतिरेक करिष्यते ॥३॥ तामप्यानयतेनोचे,
साथ तामप्यचालयत् ॥ तदा प्रत्यूषे महति, गीतं केनाप्यदः
स्फुटं ॥ ४ ॥ “जइ फुल्ला कस्सियारया, चूअगअहि मासयं-
मिघ्दंमि ॥ तुह न खमं फुल्लेउ, जइ पच्चंता करिंति हमरा-
इं” ॥ “नखमं नयुक्तं प्रत्यंता नीचकाः हमराणि विप्लव-
रूपाणि शेषं स्पष्टं” ॥ श्रुत्वैवं राजकन्या सा दध्यौ चूतं
महातरुम् ॥ उपालब्धो वसंतेन, कर्णिकारोऽधमस्ततः ॥ ५ ॥
पुष्पितो यदि किं युक्तं, तदीत्तमतरोस्त्वया ॥ अधिक मास
घोषणा, किं न श्रुतेत्यस्यगीः शुभा ॥ ६ ॥ चेतकुविंदी करोत्येवं,
कर्त्तव्यं किं सयापि तन् ॥ निवृत्तासामिषाद्रत्न, करंडोमेस्ति
विस्मृतः ॥ ७ ॥ राजसूः कोपि तत्राहि, गोत्रजैस्त्रासितो

[३९२]

निजैः ॥ तज्ज्ञातं शरणी चक्रे, प्रदत्ता तेनतस्य सा ॥८॥ तेन
 श्वशुर साहाय्याब्धिर्जित्यनिजगोत्रजान् ॥ पुनर्लेभे निजं
 राज्यं, पहराज्ञी बभूव सा ॥ २९ ॥ निवृत्तिर्द्रव्यतोभाणि,
 भावे चोपनयः पुनः ॥ कन्यास्थानीया मुनयो, विषया धूसं
 सन्निभाः ॥१०॥ योगीति गानाचार्योपदेशात्तेभ्यो निवर्तते ॥
 सुगतेर्भाजनं सस्या, दुर्गतेस्त्वपरः पुनः ॥ ११ ॥

अब विवेकी तत्त्वज्ञपुरुषोंको इस जगह विचार करना
 चाहिये कि राज्यकन्या उन्मार्गमें प्रवर्तने लगी तब उसी
 को समझानेके लिये कविने चातुरार्द्धसे दूसरेकी अपेक्षा ले
 कर “जइ फुल्ला” इत्यादि गाथा कही है सो तो व्याख्या-
 कारोंने प्रगट करके कहा है तथापि सातवें महाशयजी
 निर्युक्तिकार महाराजके अभिप्रायको समझे बिनाही राज-
 कन्याके दृष्टान्तका प्रसङ्गको छोड़ करके बिना संबंधकी एक
 गाथा लिखके अधिक मासमें वनस्पतिको नहीं फूलनेका
 ठहराया परन्तु दीर्घ दृष्टिसे पूर्वापरका कुछ भी विचार न
 किया क्योंकि वसन्त ऋतु सुखसे बोलके आम्र को
 ओलम्भा देती नहीं, तथा आम्र सुनता भी नहीं और जैन
 ज्योतिषके हिसाबसे वसन्त ऋतुमें अधिक मास होता भी
 नहीं, और अधिक मास होनेसे वनस्पतिको कोई उद्-
 घोषणा करके सुनाता भी नहीं है । परन्तु यह तो ग्रन्थ-
 कार महाराजने अपनी उत्प्रेक्षा रूप चातुरार्द्धसे दूसरेकी
 अपेक्षा ले करके प्रासङ्गिक उपदेशके लिये कहा है इसलिये
 वास्तवमें अधिक मासकी उद्घोषणा आम्रको सुना करके
 वसन्त ऋतुके ओलम्भा देने सम्बन्धी नहीं समझना चाहिये
 क्योंकि वर्तमानक पञ्चाङ्गमें चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़,

[१२]

आषाढादि मासोंकी वृद्धि होनेसें उन अधिक मासोंके समयमें देशदेशान्तरे आस्र वृक्षादिका फूलना, फलना और आमोंका उत्पत्ति होना प्रत्यक्ष देखनेमें और सुननेमें आता है और किसी देशमें माघ, फाल्गुन मासमें तो क्या परंतु हरेक मासोंमें भी आस्र फूलते हैं और अधिक मासके बिना भी हरेक मासोंमें कणियर भी फूलता रहता है इसलिये शास्त्रकार महाराजका अभिप्रायके विरुद्ध और कारण कार्य तथा आगे पीछेके सम्बन्धकी प्रस्ताविक बातको छोड़ करके अधूरा सम्बन्ध लेकर शब्दार्थ ग्रहण करनेसे तो बड़ेही अनर्थका कारण होजाता है, जैसे कि—श्रीसूयगङ्गाङ्गजीमें वादियोंके मत सम्बन्धकी बातको, श्रीरायप्रशेनीमें परदेशी राजाके सम्बन्धकी बातको श्रीआवश्यकजीकी और श्रीउत्तराध्ययनजीकी व्याख्यायोंमें निहूवोंके सम्बन्धकी बातको, और श्रीकल्पसूत्रकी व्याख्यायोंमें श्रीआदिजिनेश्वर भगवान्के वार्षिक पारणेके अवसरमें दोनूं हाथोंका विवादके सम्बन्धकी बातको इत्यादि पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंमें सैकड़ों जगह शब्दार्थ और होता है परन्तु शास्त्रकार महाराजका अभिप्राय औरही होता है इसलिये उस जगहकी व्याख्या लिखते पूर्वापरका सम्बन्ध रहित और शास्त्रकार महाराजके अभिप्राय विरुद्ध निःकेवल शब्दार्थको पकड़ करके अन्य प्रसङ्गकी अन्य प्रसङ्गमें अधूरी बातको लिखने वाला अनन्त संसारी मिथ्या दृष्टि निहूव कहा जावे, तैसेही श्रीआवश्यक निर्युक्तिकार महाराजके अभिप्रायके विरुद्धार्थमें शब्दार्थको पकड़ करके बिना सम्बन्धकी और अधूरी बात लिखके जो सातवें महाशयजीने बालजीवों

[३५]

को निध्यात्वमें फँसानेका उद्यम किया है सो निःकेवल उत्सूत्र भाषण रूप होनेसे संसार वृद्धिका हेतुभूत है सो विवेकी तत्त्वज्ञ पुरुष अपनी बुद्धिसे स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और फिर भी श्रीआवश्यकनिर्युक्तिकी गाथाकी बातपर सातवें महाशयजीने अपनी चातुराई भोले जीवोंको दिखाई है कि (कुशाग्र बुद्धि आज्ञा निबद्ध हृदय आचार्योंने अधिक मासको गिनतीमें नहीं लिया है उसी तरह तुम्हें भी लेखामें नहीं लेना चाहिये जिससे पूर्वोक्त अनेक दोषोंसे मुक्त होकर आज्ञाके आराधक बनोगे)

सातवें महाशयजीका यहभी लिखना अपनी विद्वत्ताके अजीर्णतासे संसार वृद्धिका हेतु भूत उत्सूत्र भाषण है क्योंकि निर्युक्तिकी गाथामें तो अकिध मासकी गिनती निषेध करने वाला एक भी शब्द नहीं है परन्तु श्रीअनन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंने अनन्ते कालसे अधिक मासको गिनतीमें लिया है इस लिये तत्त्वज्ञ बुद्धिवाले श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक जितने आत्मार्या उत्तमाचार्य्य हुवे है उन सभी महानुभावोंने अधिक मासको गिनतीमें लिया है और आगे भी लेवेंगे इसलिये इसकलियुगमें जो जो अधिक मासको गिनतीमें लेनेका निषेध करनेवाले हो गये हैं तथा वर्तमानमें सातवें महाशयजी वगैरह है सो सभीही पञ्चाङ्गीकी श्रद्धा रहित श्रीजिनाज्ञाके उत्पाक है क्योंकि अधिक मासको गिनतीमें करने सम्बन्धी २२ शास्त्रोंके प्रमाणतो इसीही ग्रन्थके पृष्ठ २१।२८ में द्रष्टव्य हैं और श्रीभगवती-जीमें २३, तथा तद्बृत्तिमें २४, श्रीअनुयोगद्वारमें २५, तथा

[३९५]

तद्वृत्तिमें २६, श्रीव्यवहारवृत्तिमें २७, श्रीआवश्यकनिर्युक्तिमें २८, तथा चूर्णिमें २९, बृहद्वृत्तिमें ३०, लघुवृत्तिमें ३१, और श्रीविशेषावश्यकवृत्तिमें ३२, श्रीकल्पसूत्रमें ३३, तथा श्रीकल्प-बृहत्की सात व्याख्यायोंमें ४०, श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें ४१, तथा श्रीजम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति की पांच व्याख्यायोंमें ४६, श्रीगच्छाचार पयन्नाकी वृत्तिमें ४७, श्रीज्योतिषकरणपयन्नामें ४८, तथा तद्वृत्तिमें ४९, श्रीदशाश्रुतस्मन्धसूत्रकी चूर्णिमें ५०, श्रीविधिप्रपामें ५१, श्रीमण्डलप्रकाशमें ५२, सेन प्रश्नमें ५३, और नवतत्त्वकी चार व्याख्यायोंमें ५७, और श्रीतत्त्ववार्थकी वृत्तिमें ५८, इत्यादि पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रोंके प्रमाणोंसे अधिक मानकी गिनती स्वयं सिद्ध है ।

इसलिये श्रीजिनाज्ञाके आराधक पञ्चाङ्गीकी श्रद्धावाले आत्मार्थी प्राणियोंको तो अधिक मासकी गिनती अवश्यमेव प्रमाण करना चाहिये जिससे कुछ भी दूषण नहीं लग सकता है परन्तु निषेध करने वाले हैं सो और पञ्चाङ्गी मुजब अधिक मासका प्रमाण करनेवालोंको अपनी कल्पनासे मिथ्या दूषण लगाते हैं सो संसारमें परिभ्रमण करने वाले उत्सूत्र भाषक और अनेक दूषणोंके अधिकारी हो सकते हैं सो तो पाठकवर्ग भी विचार सकते हैं ।

और पञ्चाङ्गीके एक अक्षरमात्रको भी प्रमाण न करने वाले हो तथा पञ्चाङ्गीके विरुद्ध थोड़ीसी बातकी भी परूपना करने वालेको मिथ्या दृष्टि निहूव कहते हैं सो तो प्रमिद्ध बात है तो फिर पञ्चाङ्गीके अनेक शास्त्रानुसार अधिक मासकी गिनती सिद्ध होते भी, नही मानने वालेको और इतने पञ्चाङ्गीके शास्त्रोंके प्रमाण विरुद्ध परूपना

[३६]

करने वालेको मिथ्या दृष्टि महानिहव कहनेमें कुछ हरजा होवेतो तत्त्वज्ञपुरुषोंको विचार करना चाहिये ।

अब अनेक दूषणोंके अधिकारी कौन हैं और जिना-
ज्ञाके आराधक कौन हैं सो विवेकी पाठकवर्ग स्वयं
विचार लेवेंगे ;—

और भी आगे पर्युषणा विचारके छठे पृष्ठकी ६ पंक्ति
से १८ वीं पंक्ति तक लिखा है कि (वादीकी शङ्का यहाँ
यह है कि अधिक मासमें क्या भूख नहीं लगती, और क्या
पापका बन्धन नहीं होता, तथा देवपूजादि तथा प्रति-
क्रमणादि कृत्य नहीं करना ? इसका उत्तर यह है कि
सुधावेदना, और पापबन्धनमें मास कारण नहीं है, यदि
मास निमित्त हो तो नारकी जीवोंको तथा अढाईद्वीपके
बाहर रहने वाले तिर्यञ्चोंको सुधावेदना तथा पापबन्धन
नहीं होना चाहिये । वहाँ पर मास पक्षादिकुछ भी
कालका व्यवहार नहीं है । देवपूजा तथा प्रतिक्रमणादि
दिनसे बढ़ है मासबद्ध नहीं है । नित्यकर्मके प्रति अधिक
मास हानिकारक नहीं है, जैसे नपुंसक मनुष्य स्त्रीके प्रति
निष्फल है किन्तु लेना ले जाना आदि गृहकार्यके प्रति
निष्फल नहीं है उसी तरह अधिक मासके प्रति जानों)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखता
हूँ कि हे सज्जन पुरुषों सातवें महाशयजीने प्रथम वादीकी
तरफसे शङ्का उठा करके उसीका उत्तर देनेमें खूबही अपनी
अज्ञता प्रगटकरी है क्योंकि सुधा लगना सो तो वेदनी
कर्मके उदयसे सर्व जीवोंको होता है और वेदनी कर्म
अधिक मासमें भी समय समयमें बन्धाता है तथा उदय भी

[३९७]

आता है और उसकी निवृत्ति भी होती है इसलिये अधिक मासमें क्षुधा लगती है और उसीकी निवृत्ति भी होती है । और पाप बन्धनमें भी जन, बचन, कायाके योग कारण है उसीसे पाप बन्धन रूप कार्य होता है और मन, बचन, कायाके, योग समय समयमें शुभ वा अशुभ होते रहते हैं जिससे समय समयमें पुण्य का अथवा पाप का बन्धन भी होता है और समय समय करकेही आवलिका, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, संवत्सर, युगादिसें यावत् अनन्त काल व्यतीत होगये हैं तथा आगे भी होंगे इसलिये अधिक मासमें पुण्य पापादि कार्य भी होते हैं और उसीकी निवृत्ति भी होती है और समयादि कालका व्यतीत होना अढ़ाई द्वीपमें तथा अढ़ाई द्वीपके बाहरमें और ऊर्ध्वलोकमें, अधोलोकमें सर्व जगहमें है इसलिये यहांके अधिक मासका कालमें वहां भी समयादिसें काल व्यतीत होता है इसीही कारणसे यहाँके अधिक मासका कालमें यहांके रहने वाले जीवोंकी तरहही वहांके रहनेवाले जीवोंको वहां भी क्षुधा लगती है और पुण्य पापादिका बन्धन होता है और यद्यपि वहां पक्षमासादिके वर्तावका व्यवहार नहीं है परन्तु यहांभी और वहां भी अधिक मासके प्रमाणका समय व्यतीत होना सर्वत्र जगह एक समान है इसीही लिये चारोंही गतिके जीवोंका आयुष्यादि काल प्रमाण यहांके संवत्सर युगादिके प्रमाणसे गिना जाता है जिससे अधिकमासके गिनतीका प्रमाण-संवत्सर, युग, पूर्वाङ्ग, पूर्व, पत्त्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, घनैरह सबी कालमें साथ गिना जाता है तथापि सातवें महाशयजी अधिकमासके

[३९८]

कालमें नारकी जीवोंको तथा अढ़ाई द्वीपके बाहेर रहने वाले जीवोंको क्षुधा वेदना तथा पापबन्धन नहीं होनेका लिखते हैं मो अज्ञताके सिवाय और क्या होगा सो पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और (देवपूजा प्रतिक्रमणादि दिनसे बहुत है मास बहुत नहीं है नित्य कर्मके प्रति अधिकमास हानिकारक नहीं है) मासबे महाशयजीका यह भी लिखना मायावृत्तिसे बालजीवोंको भ्रमानेके लिये मिथ्या है क्योंकि देवपूजा प्रतिक्रमणादि जैसे दिनसे प्रतिबहुवाले है तैसेही पक्ष, मासादिसे भी प्रतिबहुवाले है इसलिये पक्ष, मासादिमें जितनी देव पूजा और जितने प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य किये जावे उतनाही लाभ मिलेगा और पुण्य अथवा पापकार्य से आत्माको जैते दिवस लाभकारक अथवा हानिकारक होता है तैसेही पक्ष मासादिमें पुण्य अथवा पाप होनेसे पक्ष मासादि भी लाभकारक अथवा हानिकारक होता है इसलिये पक्ष मासादिकके पुण्यकार्योंकी अनुमोदना करके उस पक्ष मासादिको अपने लाभकारी माने जाते हैं तैसेही पक्ष मासादिमें पापकार्य हुवे होवे उसीका पश्चात्ताप करके उसीकी आलोचना लेनेमें आती है और उसी पक्ष मासादिको अपने हानिकारक समझे जाते हैं और एक पक्षके १५ राइ तथा १५ देवसी और एक पाक्षिक प्रतिक्रमण करनेमें आता है तैसेही एक मासमें ३० राइ तथा ३० देवसी और दो पाक्षिक प्रतिक्रमण करनेमें आते हैं मो तो प्रत्यक्ष अनुभवसे प्रसिद्ध है इसलिये एक मासके ३० दिनोंमें सब संसार व्यवहार और पुण्य पापादि कार्य होते भा साव

[३९९]

महाशयजी उसीकी गिनतीका निषेध करते हैं सो तो प्रत्यक्ष अन्याय कारक वृथा है इस बातको पाठकवर्ग भी स्वयं विचार सकते हैं और तीनों महाशयोंने भी ऊपरकी बात संबन्धी बाललीलाकी तरह लेख लिखा था जिसकी भी समीक्षा इसीही ग्रन्थके पृष्ठ १४२।१४३ में छप गई है सो पढ़नेसे विशेष निःसन्देह हो जावेगा ;—

और (जैसे नपुंसक मनुष्य स्त्रीके प्रति निष्फल है किन्तु लेना लेजाना आदि गृहकार्यके प्रति निष्फल नहीं है उसी तरह अधिक मासके प्रति जानों) इन असरों करके सातवें महाशयजीने देवपूजा मुनिदान आवश्यकदि ३० दिनोंमें धर्मकार्य होते भी पर्युषणादि धर्मकार्योंमें ३० दिनोंका एक मासको गिनतीमें निषेध करनेके लिये अधिक मासको नपुंसक ठहरा करके बालजीवोंको अपनी विद्वत्ताकी चातुराई दिखाई है सो निःकेवल उत्तमूत्रभाषण करके गढ़ मिथ्यात्वसे संसार वृद्धिका हेतु किया है क्योंकि श्रीअमन्त तीर्थङ्कर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंने जैसे मन्दिरजीके ऊपर शिखर विशेष शोभाकारी होता है उसी तरह कालका प्रमाणके ऊपर शिखररूप विशेष शोभाकारी कालचूलाकी उत्तम ओपसा अधिक मासको दिई है और अधिकमास को गिनतीमें सामिल ले करकेही तेरह मासोंका अभिवर्द्धित संवत्सर कहा है जिसका विस्तारसें खुलासा इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ॥८ से ६५ तक छपगया है तथापि सातवें महाशयजीने श्रीअमन्त तीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा सल्लङ्घनरूप तथा आशातना कारक और पञ्चाङ्गीके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको छोड़ करके अधिक मासको नपुंसककी हलकी

[४००]

बीपना लिखके अधिक मासकी हिलना करी और संसार षड्रिका कुछ भी भय न किया सो वड़ेही अकसौसकी बात है;—

और वैष्णवादि लोग भी अधिकमासको दानपुण्यादि धर्मकार्योंमें तो बारह मासोंके भी विशेष उत्तम “पुरुषोत्तम अधिक मास” कहते हैं और उसीकी कथा सुनते हैं और दानपुण्यादि करते हैं और पञ्चाङ्गमें भी तेरह मास, छवीश पक्षका वर्ष लिखते हैं सो तो दुनियामें प्रसिद्ध है तथापि सातवें महाशयजी अधिक मासको नपुंसक कहके उसकी गिनतीमें निषेध करते हुवे, तेरहमा अधिक मासको सर्वथाही उड़ा देते हैं और दुनियाके भी विरुद्धका कुछ भी भय नहीं करते हैं सो भी अभिलिखेशिक मिथ्यात्वका नमूना है क्योंकि सातवें महाशयजी काशीमें बहुत वर्षोंसे ठहरे हैं और अधिक मास होनेसे पुरुषोत्तम अधिक मासके महात्म की कथा काशीमें और सब शहरोंमें अनेक जगह वंचाती है सो तो प्रसिद्ध है और जैनशास्त्रानुसार तथा लौकिक शास्त्रानुसार धर्मकार्योंमें अधिक मास श्रेष्ठ है, तथापि सातवें महाशयजी नपुंसक ठहराते हैं और तो ऐसा होता है कि—

किसी नगरमें एक शेट रहता था, सो रूपलावण्य करके युक्त और धर्मावलम्बी था इसलिये उसीने परस्त्री गमनका और वेश्याके गमनका वर्जन किया था, सो शेट किसी अवसरमें बाजारके रस्तेसे चला जाता था उसी रस्तेमें कोई व्यभिचारिणी स्त्रीका और वेश्याका सकान आया, तब वह शेट उसीका सकानके पासमें हो करके आगेको चला गया परन्तु उसीके सकानपर न गया तब उस शेटको देखकर वह

[४०१]

व्यभिचारिणी स्त्री और वेश्या कहने लगी कि, यह तो नपुंसक है इसलिये हमारे पास नहीं आता है ।

अब पाठकवर्गको विचार करना चाहिये कि—जैसे उस व्यभिचारिणी स्त्रीका और वेश्याका मन्तव्य उस शेटसे परिपूर्ण न हुआ तब उसीको नपुंसक कहके उसीकी निन्दा करी परन्तु जो विवेकबुद्धि वाले न्यायवान् धर्मी मनुष्य होयेंगे सो तो उस शेटको नपुंसक न कहते हुवे उत्तमपुरुष ही कहेंगे, तैसेही सातवें महाशयजी भी अधिक मासको गिनतीमें लेनेका निषेध करनेके लिये उत्सूत्र भाषणरूप अनेक कुयुक्तियोंका संग्रह करते भी अपना मन्तव्यको सिद्ध नहीं कर सके तब नपुंसक कहके अधिक मासकी निन्दा करी और श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञा उल्लङ्घन होनेसे संसार ब्रह्मका भय न किया परन्तु जो विवेक बुद्धि वाले न्यायवान् धर्मी मनुष्य होयेंगे सो तो अधिक मासको नपुंसक न कहते हुवे श्रीतीर्थङ्कर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार विशेष उत्तनही कहेंगे सो तत्त्वज्ञ पाठक वर्ग स्वयं विचार लेंगे ;—

और अधिक मासको नपुंसक कहके धर्म कार्योंमें निषेध करनेके लिये चौथे महाशयजीने भी उत्सूत्र भाषण रूप कुयुक्तियोंके संग्रहवाला लेख लिखके बाल जीवोंको निष्प्यात्त्वमें गेरनेका कारण किया था जिसकी भी समीक्षा इसीही ग्रन्थके पृष्ठ २००से २०४ तक अच्छी तरहसे खुलासा पूर्वक छप गई है सो पढ़नेसे विशेष निःसन्देह हो जायेगा ;—

और जैसे धर्मी पुरुषोंको पर स्त्री देखनेमें अन्धकी तरह होना चाहिये परन्तु देव गुरुके दर्शन करनेमें तो

[४०२]

चार आंख वालेकी तरह हो जाना चाहिये तैसेही यह श्रेष्ठ पुरुष है परन्तु पर स्त्रीके गमनका और वेश्याके गमनका वर्जन करनेवाला धर्मावलम्बी होनेसे उनके साथ मैथुन सेवन करनेमें तो नपुंसककी तरह हैं परन्तु अपने नियमका प्रतिपालन करके ब्रह्मचर्य धारण करनेमें तो समर्थ होनेसे उत्तम पुरुषकी तरह है अर्थात् आपही उस गुणसे उत्तम पुरुष हैं इसी न्यायानुसार यद्यपि अधिक मास भी गिनतीके प्रमाणका व्यवहारमें तो बारह मासोंके बरोबरही पुरुष रूप है उसीमें वैष्णव लोग दान पुण्यादि विशेष करते हैं और उसीके महात्म्यकी कथा सुनते हैं इसीलिये उसीको पुरुषोत्तम अधिक मास कहते हैं।

और श्रीजैन शास्त्रोंमें भी मन्दिरके शिखरवत् कालका प्रमाणके शिखर रूप उत्तम ओपमा अधिक मासको है। उसीमें मुहूर्त नैमित्तिक विवाहादि आरम्भ वाले संसारिक कार्य नहीं होते हैं परन्तु धर्म कार्य तो विशेष होते हैं इसलिये उपरोक्त न्यायानुसार मुहूर्त नैमित्तिक आरम्भ वाले संसारिक कार्योंमें तो अधिक मास नपुंसककी तरह है परन्तु धर्म कार्योंमें तो विशेष उत्तम होनेसे सबसे अधिक है इसलिये इसका अधिक मास ऐसा नाम भी सार्थक है तथापि धर्म कार्योंमें और गिनतीका प्रमाणमें उसीको नपुंसक ठहरा करके अधिक मासकी जिन्दा करते हुए उसीकी गिनती निषेध करते हैं तो यह व्यभिचारिणी स्त्रीका और वेश्याका अनुकरण करनेवाले हैं सो पाठकवर्ग विचार लेवेंगे और अब सातवें महाशयजीके आगेका लेखकी समीक्षा करके पाठकवर्गको दिखाता हूं पुरुषवा विचारके उठे पृष्ठकी १९ वीं पंक्तिसे सातवें पृष्ठकी

[४०३]

चौथी पंक्ति तक लिखा है कि—(जैन पञ्चाङ्गानुसार तो एक युगमें दो ही अधिक मास आते हैं अर्थात् युगके मध्यमें आषाढ़ दो होते हैं और युगान्तमें दो पौष होते हैं। दो आषाढ़ दो भाद्र और दो आश्विन वगैरह नहीं होते। इस भावकी सूचना देने वाली पाठ देखो:—
 “जई जुग मज्जे तो दोपोसा जई जुग अन्ते दो आमादा”
 यद्यपि जैन पञ्चाङ्गका विच्छेद हो गया है तथापि युक्ति और शास्त्र लेख विद्यमान है) सातवें महाशयजीका इस लेख पर मेरेको इतनाही कहमा है कि—शास्त्रके पाठसे एक युगमें दो अधिक मास होनेका आप लिखते हो सो यह दोनों अधिक मास जैन शास्त्रानुसार गिनतीमें लिये जाते थे तो फिर ऊपरमेंही “कुशाग्रह बुद्धि आज्ञा-निबद्ध हृदय आचार्योंने अधिक मासको गिनतीमें नहीं लिया है” ऐसे अक्षर लिखके पर्युषणा विचारके सब लेखमें अधिक मासकी गिनती निषेध क्यों करते हो क्या आपको शास्त्रकी वाक्य प्रमाण नहीं है, यदि है तो आपका निषेध करना संसार दृष्टिका हेतु भूत उत्सृजभाषण होनेसे बाल जीवोंको मिथ्यात्वमें फँसाने वाला है सो विवेकी पाठक वर्ग स्वयं विचार सकते हैं ;—

और शास्त्रके पाठमें तो युगके मध्यमें दो पौष और युगान्तमें दो आषाढ़ खुलासे कहे हैं तथापि सातवें महाशयजी युगके मध्यमें दो आषाढ़ और युगान्तमें दो पौष लिखते हैं सो तो बहुत वर्षोंसे काशीमें अभ्यास करते हैं इसलिये विद्वत्ताके अजीर्णतासे उपयोग शून्यताका कारण है ;—

[४०४]

और श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति, श्रीसूर्यप्रज्ञप्ति, श्रीजंबूद्वीप प्र-
ज्ञप्ति और श्रीउद्योतिषकरंडपयज्ञ वगैरह शास्त्रानुसार तथा
उन्हींकी व्याख्यायोंके अनुसार अधिक मास होनेका कारण
कार्य तथा गिनतीका प्रमाणको जो सातवें महाशयजी किसी
सद्गुरुसे पढ़के तात्पर्यार्थको समझते और श्री भगवतीजी
श्रीअनुयोगद्वार वगैरह शास्त्रानुसार समय, आवलिकादि
कालकी व्याख्याको विचारते तो अधिक मासकी गिनती
निषेध कदापि नहीं करते और दो आश्विन दो भाद्र, दो
आश्विन वगैरह नहीं होनेका लिखनेके लिये लेखनी भी
नहीं चलाते सो पाठक वर्ग विचार लेंगे :—

और भी आगे पर्युषणा विचारके सातवें पृष्ठमें लिखा
है कि (लौकिक पञ्चाङ्गानुसार अधिक मासको लेखामें गिनने
वाले महाशयोंसे पूछता हूं कि यदि आश्विन दो होंगे तो
साम्बत्सरिक प्रतिक्रमणान्तर सत्तरवें दिनमें चौमासी प्रति-
क्रमण करेंगे कि नहीं, यदि नहीं करेंगे तो समवायाङ्क
सूत्रके पाठकी क्या गति होगी ? अगर चौमासीका
प्रतिक्रमण करेंगे तो दूसरे आश्विन सुदी पूर्णमासीके
पीछे विहार करना पड़ेगा । आश्विन मासको लेखामें
न गिनकर सत्तर दिन कायम रखेंगे तो आश्विन अथवा
भाद्रमासको लेखामें न गिनकर पचास दिन कायम रख
कर भगवान्की आज्ञाके अनुसार भाद्र सुदी चौथके रोज
साम्बत्सरिक प्रतिक्रमण क्यों नहीं करते)

इस लेख पर भी मेरेको इतनाही कहना है कि—जैन
पञ्चाङ्गके अभावसे लौकिक पञ्चाङ्गानुसार वर्ताव करनेकी
पूर्वाचार्योंकी आज्ञा है इसलिये कालानुसार श्रीजैन

[४७५]

शांसेममें लौकिक पञ्चाङ्ग मुजबही तिथि, वार, घड़ी, पक्ष, नक्षत्र, योग, सूर्योदय, दिनमान, तिथिकी ह.नी, वृद्धि, राशि चन्द्र, पक्ष, मास, मुहूर्त वगैरहसे संसार व्यवहारमें और धर्म व्यवहारमें वर्ताव करनेमें आता है इसलिये लौकिक पञ्चाङ्गमें जिस मासकी वृद्धि होवे उसीको मान्य करके उसी मुजब संसार व्यवहारमें और धर्म व्यवहारमें वर्ताव होनेका प्रत्यक्षमें खनता है इसलिये लौकिक पञ्चाङ्गमें दो आचण, दो भाद्रपद और दो आश्विन वगैरह होवे उसी के गिनतीको निषेध न करते हुवे प्रमाण करना सो तो पूर्वाचार्योंकी आज्ञानुसार तथा युक्ति पूर्वक और प्रत्यक्ष अनुभवसे स्वयं सिद्ध है इसलिये अधिक मासकी गिनती निषेध करने वाले अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको सेधन करने वाले प्रत्यक्षमें खनते है सो तो विवेकी सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे;—

और दो आश्विन होनेसे साम्बत्सरिक प्रतिक्रमणके बाद ७० दिने चौमासी प्रतिक्रमण करके दूसरे आश्विनमें विहार करनेकी कोई जरूरत नहीं है क्योंकि अधिक मास होनेसे साम्बत्सरिक प्रतिक्रमणके बाद १०० दिने कार्तिकमें चौमासी प्रतिक्रमण करके विहार करनेमें आता है सो शास्त्रानुसार और युक्ति पूर्वक न्यायकी बात है इसलिये कोई भी दूषण नहीं लख सकता है इसका खुलासा इसी ही ग्रन्थके पृष्ठ ३५८।३६० में छप गया है—

और “समवायाङ्ग सूत्रके पाठकी क्या गति होगी” सातवें महाशयकीका यह लिखना अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको प्रगट करने वाला उत्सूत्रभाषण रूप संसार वृद्धिका

[४०६]

हेतु भूत है क्योंकि श्रीसमवायाङ्गजी सूत्रका पाठ तो श्रीगण-
धर महाराजका कहा हुआ है और चार मासके सम्बन्ध
वाला है इसलिये उसीकी तो सदाही अच्छी गति है
और चार मासके वर्षाकालमें उसी मुजब वर्तनेमें आता है
परन्तु सातवें महाशयजी सूत्रकार महाराजके विरुद्धार्थ
में पाँच मासके वर्षाकालमें भी उसी पाठको स्थापन
करनेके लिये सूत्रके पाठ पर ही आशेष करते हैं और
बाल जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरते हैं सो क्या गति
प्राप्त करेंगे सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने—

और “आश्विन मासको लेखामें न गिनकर सत्तर
दिन कायम रखोगे” यह भी सातवें महाशयजीका लि-
खना मिथ्या है क्योंकि हम तो आश्विन मासको लेखा
में गिन करके १०० दिन कायम रखते हैं इस लिये मिथ्या
भाषण करनेसे महाशयके भङ्गका सातवें महाशयजीको
भय लगता हो तो मिथ्या दुष्कृत देना चाहिये—

और “श्रावण अथवा भाद्रमासको लेखामें न गिनकर
पचास दिन कायम रख कर भगवान्की आज्ञाके अनुसार
भाद्र शुदी चौथके रोज सम्बत्सरिक प्रतिक्रमण क्यों नहीं
करते” सातवें महाशयजीका इस लेख पर मेरेको इतनाही
कहना है कि मास वृद्धिके अभावसे आषाढ चौमासीसे पचास
दिने भाद्र शुदी चौथको पर्युषणमें सांवत्सरिक प्रतिक्रमण
वगैरह करनेकी तो श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञा है परन्तु
पचासवें दिनकी रात्रिकोभी उत्लंघन करना नहीं कल्पता
इसलिये दो श्रावण होनेसे श्री कल्पसूत्रके तथा उन्हांकी
व्याख्याओंके अनुसार ५० दिनकी गिनतीसे दूसरे श्रावणमें

[४०९]

अथवा प्रथम भाद्रमें पर्युषणा करना चाहिये परंतु मास वृद्धि दो श्रावण होतेभी ८० दिने भाद्र शुदीमें पर्युषणा करके भी निदुषण बननेके लिये अधिक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें छोड़करके ८० दिनके ५० दिन गच्छपक्षी बाल जीवोंके आगे कहके आप आज्ञाके आराधक बनना चाहते हैं सो कदापि नहीं हो सकते हैं क्योंकि श्रीभगवतीजी श्रीअनुयोगद्वार श्रीज्योतिषकरंडपयन्त्र और नव तत्त्व प्रकरणादि शास्त्रानुसार तथा इन्हींकी ठयाख्यायोंके अनुसार समय, आवलिका, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मासादिसे जो काल व्यतीत होवे उसी कालका समय मात्रभी गिनतीमें निषेध नहीं हो सकता है तथापि निषेध करनेवाले पंचांगीकी श्रद्धारहित और श्रीजिनाज्ञाके उत्थापक निन्हव, मिथ्या दृष्टि-संसार गामी कहे जावे, तो फिर एक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें निषेध करने वालेको पंचांगीकी श्रद्धा रहित और श्रीजिनाज्ञाके उत्थापक अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी कहनेमें कुछ भी तो दूषण सालूम नहीं होता है इसलिये अधिक मास के ३० दिनोंकी गिनती निषेध करने वाले मिथ्या पक्षग्राहियोंकी आत्माका कैसे सुधारा होगा सो तो श्रीज्ञानीजी महाराज जाने । इसलिये दो आश्विन होनेसे भाद्र शुदी चौथसे कार्तिक तक १०० दिन होते हैं जिसके ७० दिन अपनी सति कल्पनासे बनाने वाले और दो श्रावण होनेसे भाद्रतक ८० दिन होते हैं जिसके तथा दो भाद्र होनेसे दूसरे भाद्र तक ८० दिन होते हैं जिसके भी ५० दिन अपनी सति कल्पनासे बमाने वाले अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी होनेसे आत्मारथियोंको सन्नोंका पक्ष छोड़ करके इस ग्रन्थको सम्पूर्ण पढ़

[४०८]

कर सत्य बातको ग्रहण करना चाहिये जिसमें आत्म-कल्याण है नतु अधिक मासके गिनतीका निषेध रूप अंध परंपराका निष्पात्तमें;—

और इसके आगे फिरभी मासवृद्धि होतेभी भाद्र पदमें पर्युषणा ठहरानेके लिये पर्युषणा विचारके सातवें पृष्ठके अन्तते आठवें पृष्ठ तक लिखा है कि—(पर्युषणाकल्पचूर्णि, तथा महानिशीचचूर्णिके दसवें उद्देशमें इसी तरहका पाठ है,

“अन्नया पज्जोसवणादिक्से भागए अज्जकालणेण सालवाहणो भणिभो, भद्वयमुण्हपञ्चमीए पज्जोसवणा” ३०

तथा “तत्थ य सालवाहणो राया, सो अ साधगो, सो अ कालगज्जं इतं सोऊण निग्गओ, अभिमुहो समणसंघो अ, महाविभूर्इए पविट्ठो कालगज्जो, पविट्ठे हिंअभणिअं भद्वयमुदु पञ्चमीएपज्जोसवणिज्जइं समणसंघेण पडिवरणं ता रणणाभणिअं तद्विवसं सम लोगानुवसीए इंदो अणुजाणेयव्वो होहिसि साहू चेइए अणुपज्जुवासिस्सं, तो छट्ठीए पज्जोसवणा किज्जइ, आयरिएहिं भणिअं, न वट्ठिइति अतिकुमित्तुं, ताहे रणणा भणिअं, ता अणागए चउत्थीए पज्जोसविति, आयरिएहिं भणिअं, एवं भवउ, ताहे चउत्थीए पज्जोसवियं, एवं जुगप्पहाणेहिं कारणे चउत्थी पवत्तिआ, सा चेवाणुमसा सवसाहूणमित्यादि” ।

ऊपरकी पाठ साक्षात् सूचित करती है कि भाद्र सुदी चौथको साम्बत्सरिक प्रतिक्रमण वगैरह करना चाहिये । किन्तु जब दो आवण आवें तो आवण सुदी चौथके रोज साम्बत्सरिक कृत्य करे ऐसा तो पाठ कोई सिद्धान्तमें नहीं है तो आग्रह करना क्या ठीक है ? दो भाद्र आवेंतो

[४०८]

किसी तरह पूर्वोक्त पाठका समर्थन करोगे। परश्वसन्तर दिनमें चौमासी प्रतिक्रमण करना चाहिये)

ऊपरके लेखकी समीक्षा करके पाठक वर्गको दिखाता हूँ कि—हे मज्जन पुरुषो मातर्वे महाशयजीका ऊपरके लेखको मैं देखता हूँ तो मेरेकोयड़ेही खेदकेसाथ आश्चर्य उत्पन्न होता है कि, मातर्वे महाशय श्रीधर्मविजयजीने शास्त्रविशारदजैना-चार्यकी पदवीको धारण करी है परंतु अपने कदाग्रहके कल्पित पक्षकी बातकी मायावृत्तिसे स्थापित करके बालजीवोंको श्रीजिनाज्ञासे भ्रष्ट करनेके लिये उन्होंने अभिनेवेशिक मिथ्यात्वका बहुतही संग्रह होनेसे उस पदवीकी सार्थक न कर सके परन्तु शास्त्रविराधक वत्सूत्रभाषणाचार्यकी पदवीके गुण तो (मातर्वे महाशयजीमें) प्रगट दिखते हैं क्योंकि देखो मातर्वे महाशयजीने मास वृद्धि दो श्रावण होतेभी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापन करनेके लिये पर्युषणाकल्पचूर्णिका और महानिशीथके दशवे उद्देशकी चूर्णिका पाठ लिख दिखाया परंतु शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें अधूरी बात भोले जीवोंको दिखानेसे संसारवृद्धिका कुछभी भय हृदयमें न लाये मालूम होता है क्योंकि प्रथमतो महानिशीथकी चूर्णिका नाम लिखा सो तो उपयोग शून्यताके कारणसे मिथ्या है क्योंकि महानिशीथकी चूर्णि नहीं किंतु निशीथसूत्रकी चूर्णि है और पर्युषणाकल्प चूर्णिमें तथा निशीथसूत्रकी चूर्णिमें खास पर्युषणाकेही संबंधकी व्याख्यामें अधिक मासको गिनतीमें प्रमाण किया है और मास वृद्धि होनेसे अभिवर्द्धित संवत्सरमें बीस दिने पर्युषणाकही है तैसेही मास वृद्धिके अभावसे चंद्र संवत्सरमें ५० दिने पर्युषणा कही है और पञ्चक परिहाणीका कालमें

[४१०]

चरकहृसे १८० दिनके छ मासका कल्प कहा है और मास वृद्धि के अभावसे आषाढ़ चौमासीसे पांच पांच दिनकी वृद्धि करते दसवे पञ्चकमें पचासवें दिन भाद्र पद शुक्ल पञ्चमीकी पर्युषणा करनेमें आती थी परंतु कारणसे श्रीकालकाचार्य-जीने एकौन पञ्चाशवें (४९) दिन भाद्र शुदी चौथकी पर्युषणा करी है जिसका संबंधभी विस्तार पूर्वक दोनुं चूर्णिमें कहा है सो दोनुं चूर्णिके पर्युषणा सम्बन्धी विस्तारवाले दोनुं पाठ भावार्थ सहित इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ९२ से लेकर १०४ तक छप गये है सो पढ़नेसे सर्व निर्णय हो जावेगा । परन्तु वड़ेही अफसोसकी बात है कि सातवें महाशयजी दोनुं चूर्णिके आगे पीछेके सब पाठोंको छोड़ करके फिर मास वृद्धि के अभावसे ४९ वे दिने पर्युषणा करनेवाले पाठको मास वृद्धि दो श्रावण होते भी लिखके दोनों चूर्णिकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें यावत् ८० दिने पर्युषणा स्थापन करनेके लिये बाल जीवोंको अधूरे पाठ लिख दिखाते कुछ भी लज्जा नहीं पाते हैं सो भी कलयुगि विद्वत्ताका नमूना है इसलिये मास वृद्धि के अभाव के विस्तार वाले सब पाठोंको छोड़ करके मास वृद्धि होते भी उसीमेंसे अधूरेपाठ सातवें महाशयजीने लिखे है सो अभि-निवेशिक मिथ्यात्वसे शास्त्रविराधक उत्सूत्र भाषणाचार्यके गुण प्रगट दिखाये है सो तो विवेकी पाठक वर्ग स्वयं विचार लेंगे,—और सुप्रसिद्ध विद्वान् तीसरे महाशयजी श्रीविनय विजयजीने भी, परिडितहर्षभूषणजीकी और धर्मसागरजीकी भूतार्थमें पढ़कर अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे ऊपरकी दोनों चूर्णिके अधूरे पाठ श्रीसुखबोधिका वृत्तिमें लिखे है उसी तरहसे वर्तमानमें सातवें महाशयजीने भी किया परन्तु

[४११]

पर भवका और विद्वानोंके आगे अपने नामकी हासी करानेका कुछ भी पूर्वापरका विचार न किया, अन्यथा अन्ध परम्पराके मिथ्यात्वकी पुष्टीकारक शास्त्रकार महा-राजोंके विरुद्धार्थमें ऐसे अधूरे पाठ लिखके और कुयुक्तियोंका संग्रह करके बाल जीवोंको सत्य बात परसे भ्रष्ट करनेके लिये कदापि परिश्रम नहीं करते, सो तो निष्पक्ष-पाती सज्जनोंको विचार करना चाहिये;—

और “जद्य दो श्रावण आवे तो श्रावण सुदी चौथके रोज सांवत्सरिक कृत्य करे ऐसा तो पाठ कोई सिद्धान्तमें नहीं है तो क्या आग्रह करना ठीक है” यह भी सातवें महाशयजीका लिखना गच्छपक्षी बाल जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये अज्ञताका अथवा अभिनिवेशिक मिथ्यात्वका सूचक है क्योंकि दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा करना ऐसा तो किसी भी शास्त्रमें नहीं लिखा है तो फिर दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका कृपा क्यों पुकारते हैं और दो श्रावण होनेसे दूसरे श्रावणमें पर्युषणा करना सो तो श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठानुसार तथा उन्हींकी अनेक व्याख्यायोंके अनुसार और युक्तिपूर्वक स्वयं सिद्ध है सो तो इसी ग्रन्थकी आदिमेंही विस्तारसे लिखनेमें आया है और खास सातवें महाशयजी भी श्रीकल्पसूत्रके मूलपाठकी तथा उसीकी वृत्तिको हर वर्ष पर्युषणामें बांधते हैं उसीमें जैन पञ्चाङ्गके अभावसे “जैनटिप्पनकानुसारेण यत्तत्सत्र युग-मध्ये पौषो युगान्ते च आषाढ एव वर्द्धते नान्येमासास्तटि-प्पनकंतु अधुना सम्पन् न ज्ञायतेऽतः पञ्चोशद् भिदिनैः पर्यु-षणा सङ्गते-युक्तेति ब्रूयाः—” ऐसे अज्ञर किरखावली वृत्तिमें

[४१२]

तथा दीपिका वृत्तिमें और सुखबोधिका वृत्तिमें अपने ही गच्छके विद्वानोंने खुलासा पूर्वक लिखे हैं सो सातवें महाशयजी अच्छी तरहसे जानते हैं और दो आषण होनेसे दूसरे आषणमें ५० दिन पूरे होते हैं इसलिये “जब दो आषण आवे तो आषण सुदी चौथके रोज मांवत्सरिक कृत्य करे ऐसा तो पाठ कोई सिद्धान्तमें नहीं है तो आग्रह करना क्या ठीक है” सातवें महाशयजीका यह लिखना मायावृत्तिसे अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको प्रगट करनेवाला प्रत्यक्ष सिद्ध होगया सो पाठकवर्ग भी विचार लेंगे,—

और (दो भाद्र आवे तो किसी तरह पूर्वोक्त पाठका समर्थन करोगे परञ्चसत्तर दिनमें चौमासी प्रतिक्रमण करना चाहिये) सातवें महाशयजीके इस लेखपर भी मेरेको इतनाही कहना है कि—दो भाद्रआवे तब पूर्वोक्त पाठके अभिप्रायसे ५० दिनकी गिनती करके प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा करना सो तो न्यायकी बात है परन्तु दो भाद्र होते भी पिछाड़ीके १० दिन रखनेके लिये दूसरे भाद्रमें पर्युषणा करनेवालोंकी बड़ी भूल है क्योंकि पूर्वोक्त पाठमें कारण योगे ४९ वें दिन पर्युषणा करी है परन्तु ५१ वें दिन भी नहीं करी है इस लिये दो भाद्र होनेसे दूसरे भाद्रमें पर्युषणा करनेवालोंको ८० दिन होते हैं इसलिये श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध बनता है और चार मासके १२० दिनका वर्षाकालमें ५० दिने पर्युषणा करनेसे पिछाड़ी १० दिन रहनेका दोनुं चूर्णिके पाठमें खुलासा पूर्वक कहा है सो तो इसीही ग्रन्थके पृष्ठ ९४ और ९९ वें पाठ छप गये हैं इसलिये मास वृद्धि होते भी पिछाड़ीके १० दिन रखनेका आग्रह करने वाले अज्ञानियोंकी

[४१३]

पंक्तिमें गिनने योग्य है सो तो इस ग्रन्थको संपूर्ण पढ़नेवाले विवेकी सज्जन स्वयं विचार सकते हैं :—

और दो आखण तथा दो भाद्रपद और दो आश्विन हो तोभी आषाढ चौमासीसे ५० दिने दूसरे आखणमें अथवा प्रथम भाद्रमें पर्युषणा करनी चाहिये जिससे पिछाड़ी १०० दिने चौमासी प्रतिक्रमण करनेमें आवे तो कोई दूषण नहीं है किन्तु शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक है इसका विशेष विस्तार पहिलेही छप चुका है । और नवमे पृष्ठके मध्यमें तिथिसंबंधी लिखा है जिसकी तो समीक्षा आगे लिखंगा परन्तु आठवें पृष्ठके अन्तमें तथा नवमे पृष्ठके आदि अन्तमें और दशवे पृष्ठकी आदिमें छठी पंक्ति तक लिखा है कि— (जैसे फाल्गुन और आषाढकी वृद्धि होनेपर दूसरे फाल्गुनमें और दूसरे आषाढमें चौमासी प्रतिक्रमणादि करते हो, उसी तरह अन्य अधिक मासमें भी दूसरेहीमें करना वाजिब है । वैसा नहीं करोमे तो विरोधके परिहार करनेमें भाग्यशाली नहीं बनोगे । एक अधिकमासमाननेमें अनेक उपद्रव खड़े होते हैं और अधिकमासकी गिनतीमें न लेनेवालेको कोई दोष नहीं है । उसी तरह तुम भी अधिक मासको निःसत्त्व मानकर अनेक उपद्रव रहित बनो ।

इस रीतिकी व्यवस्था रहते हुए कदाग्रह न छूटे तो भले स्वपरम्परा पालो परन्तु स्वमन्तव्यमें विरोध न आवे ऐसा वक्तव्यकरना बुद्धिसानपुरुषोंका काम है । जैसे फाल्गुनके अधिक होनेपर दूसरे फाल्गुनमें नैमित्तिक कृत्य करते हो उसी तरह अन्य अधिकमास आनेपर दूसरे मही नेमें नैमित्तिक कृत्योंके करनेका उपयोग रखो कि जिसमें कोई छि-

[४१४]

रोध न रहे । दो आवण हो, अथवा भाद्र हो तथा दो आ-
श्विन होताभी कोई विरोध नहीं रहेगा । तीर्थंकर सहारा
जकी आज्ञा सम्यक् प्रकारसे पलेगी)

ऊपरके लेखमें सातवें महाशयजीने अधिक मासको
निःसत्त्व मान कर गिनतीमें निषेध किया तथा गिनतीमें
लेनेवालोंको अनेक उपद्रव दिखाये और गिनतीमें नहीं
लेनेवालोंको दूषण रहित ठहराये फिर मास वृद्धि होनेसे
दूसरे मासमें नैमित्तिक कृत्य करनेका भी ठहराया इसपर
मेरेको बड़ेही आश्चर्य सहित खेदके साथ लिखना पड़ता
है कि सातवें महाशयजीके विद्वत्ताकी विवेक बुद्धि किस
खाड़में चली गई होगी सो ऊपरके लेखमें विवेक शून्य
होकर पूर्वापरका विचार किये बिनाही उटपटांग लिख
दिया क्योंकि देखा सातवें महाशयजी यदि अधिक मासको
निःसत्त्व मान करके गिनतीमें नहीं लेते होवे तब तो दो
आवण, दो भाद्र, दो आश्विन, दो फाल्गुण और दो आ-
षाढ मासोंका उन्हींका लिखनाही बन्ध्याके पुत्र समान हो
जाता है और मास वृद्धि होनेसे दो आवणादि लिखते हैं तथा
उसी मुजब्रही वर्ताव करते हैं तब तो अधिक मासको
निःसत्त्व मान करके गिनतीमें निषेध करना (गिनतीमें
नहीं लेना) सो समजनीबन्ध्या समान बाल लीलाकी
तरह होजाता है क्योंकि दो आवणादि लिखके उसी मुजब्र
वर्ताव करना फिर मास वृद्धिकी गिनती निषेध करना
यहतो विवेक शून्यके सिवाय और कौन होगा क्योंकि
दो आवणादि लेखके उसी मुजब्र वर्ताव करते हैं इसलिये
उन्हींकी गिनतीका निषेध करना तथा गिनतीमें लेने

[४१५]

बालोंकी अनेक उपद्रव दिखाने और आप दोनों मासों को लिखके उसी मुजब वर्त्ताव करते भी, उसीको गिनतीमें न लेते हुये प्रत्यक्ष माया वृत्तिसे दूषण रहित बनना से सब बाल जीवोंकी कदाग्रहमें फंसाकर उत्सूत्र भाषणसे संसार परिभ्रमणका हेतु है सो तो निष्पक्षपाती तत्त्वज्ञ पुरुष स्वयं विचार लेवेंगे ;—

और मास वृद्धि होनेसे मास तिथि नियत सब नैमित्तिक कृत्योंको दूसरे मासमें करनेका सातवें महाशयजी ठहराते हैं सो भी अज्ञताका सूचक है क्योंकि वर्त्तमानमें मास वृद्धि होनेसे मास तिथि नियत कृत्य, आगे पीछे दोनों मासमें करनेमें आते हैं याने कृष्ण पक्षके तिथि नियत कृत्य प्रथम मासके प्रथम कृष्ण पक्षमें करनेमें आते हैं और शुक्ल पक्षके तिथि नियत कृत्य दूसरे मासके दूसरे शुक्ल पक्षके करनेमें आते हैं :—

मित्रवत् न्यायसे अर्थात्—एक नगरमें सज्जनादि गुणयुक्त व्यवहारिया रहता था उसीने अपने भोजनकी तैयारी करी उसी समय उसीके मित्रका आगमन हुआ तब दूसरा भोजन बनानेका अवसर न होनेसे अपने भोजनमेंसे आधा मित्रको दिया और आधा आपने ग्रहण किया, उसी दृष्टान्तके न्यायसे एक नगर रूपी संवत्सर उसीमें सज्जनादि गुणयुक्त व्यवहारियावत् मास उसीके भोजन रूपी नैमित्तिक कृत्य और अधिक मास रूपी मित्रका आगमन होनेसे आधे आधे नैमित्तिक कार्य बांट लिये समजो जैसे दो कार्तिक होवेंगे तब श्रीमंभवनाथस्वामीके केवल ज्ञान कल्याणकके श्रीपद्म-प्रभुजीके जन्मकल्याणकके तथा दीक्षाकल्याणकके, श्रीने-

[४१६]

मिनाथजीके च्यवन कल्याणकके और श्रीमहावीरस्वामीके मोक्षकल्याणकके उच्छ्व तपश्चर्यादिकार्य, तथा दीपमालिका (दीवाली) और उसीके सम्बन्धीकार्य प्रथम कार्तिक मासके प्रथम कृष्णपक्षमें करनेमें आवेंगे, दो चैत्र होनेसे श्रीपार्श्वनाथजीके केवल ज्ञानादि कार्य प्रथम चैत्रमें तथा श्रीवर्द्धमानस्वामीके जन्मादिके तथा ओलियों वगैरह दूसरे चैत्रमें और दो आषाढ होनेसे श्रीआदिनाथजीके च्यवनादिके कार्य प्रथम आषाढमें और श्रीवर्द्धमानस्वामीके च्यवनादिके कार्य तथा चौमासी वगैरह दूसरे आषाढमें इसी तरहसे सब अधिक मासोंमें समझना चाहिये ।

और इस बातका विशेष खुलासा पांचवें महाशयजी न्यायरत्नजीके लेखकी समीक्षामें भी लिखनेमें आया है सो इसीही ग्रन्थके पृष्ठ २३४:२३५:२३६ में छप गया है सो पढ़नेसे विशेष निर्णय हो जावेगा ;—और मामवृद्धि होनेसे ऊपर मुजबही कल्याणकादि तपश्चर्या करनेके लिये खास मासवें महाशयजीकेही पूर्वज श्रीतपगच्छमें सुप्रसिद्ध श्रीविजयसेन-मूरिजीने भी कहा है तथाहि श्रीमेनप्रश्ने सप्तसप्तति (७७) पृष्ठे यथा :—

प्रश्नः—चैत्रमास वृद्धौ कल्याणकादि तपः प्रथमेद्वितीये वा मासिकार्या ।

उत्तरम्—प्रथमचैत्रामित द्वितीयचैत्रमित पक्षाभ्यां चैत्रमास सम्बन्धी कल्याणकादि तपः श्रीतातपादैरपि कार्यमाणं दृष्टमस्ति तेन तथैवकार्यमित्यादि ।

और लौकिकजन भी दो भाद्रपद होनेसे श्रीकृष्णजीकी जन्माष्टमी प्रथम भाद्रपदके प्रथमपक्षमें मानते हैं तथा दो

[४१७]

आश्विन होनेसे आद्रपक्ष प्रथम आश्विनमें और दशहरा दूसरे आश्विनमें, इसी तरहसे सब अधिक मासोंके कारणसे मास नैमित्तिक कार्य आगे पीछे दोनोंमें मानते हैं। परन्तु सातवें महाशयजी नैमित्तिक कार्य केवल दूसरे मासमें ही करनेका लिख करके दो कार्तिक होवे तब दिवाली धनैरह कृष्णपक्षके नैमित्तिक कार्य दूसरे कार्तिकमें तथा दो पौष होवें तब श्रीचन्द्रप्रभुजीके, श्रीपार्श्वनाथजीके जन्म, दीक्षादि कल्याणक दूसरेपौषमें और दो चैत्रहोनेसे श्रीपार्श्वनाथजीके केवल ज्ञान कल्याणकको दूसरे चैत्रमें इसी तरहसे कृष्णपक्षके नैमित्तिक कार्य भी दूसरे मासमें ठहराते हैं सो शास्त्रविरुद्ध होनेसे अज्ञताका कारण है क्योंकि ऊपरोक्त लेखानुसार ऊपर के कार्य प्रथम मासके प्रथम कृष्णपक्षमें होने चाहिये सो तो न्याय दृष्टि वाले धिवेकी पाठकवर्ग स्वयं विचार लेंगे;—

और उपरोक्त नैमित्तिक कार्योंके लेखसे दो भाद्रपद होनेसे पर्युषणा भी दूसरे भाद्रपदके दूसरे शुक्लपक्षमें सातवें महाशयजी ठहराते हैं सो भी निष्केवल अपनी अज्ञानता को प्रगट करते हैं क्योंकि मास नैमित्तिक कार्य अधिक मास होनेसे आगे पीछे दोनों मासमें करनेमें आते हैं परन्तु पर्युषणा वैसे नहीं हो सकती है क्योंकि पर्युषणा तो दिनोंके प्रतिबद्ध होनेसे अषाढ़ चौमासीसे ५० दिनकी गिनतीसे अवश्य करके करनेका अनेक शास्त्रोंमें प्रगट पाठ है इसलिये दो भाद्रपद होनेसे पर्युषणा दूसरे भाद्रपदमें नहीं किन्तु प्रथम भाद्रपदमें ५० दिनकी गिनतीसे शास्त्रोंको प्रमाण करने वाले आत्मार्थियोंको करनी चाहिये और प्राचीन कालमें जैन पञ्चांगानुसार मास वृद्धि होनेसे श्रावणमें पर्यु-

[४१८]

वर्षा करनेमें आतीथी तथा वर्तमानकालमें दो आषाढ होनेसे दूसरे आषाढमें पर्युषणा करनेमें आती है इसलिये मासवृद्धि होतेभी भाद्रपद प्रतिषट्ठ पर्युषणा नहीं ठहर सकती है किन्तु दिनोंके प्रतिषट्ठही गिननेसे जहां व्यवहार से ५० दिन पूरे होवे वहांही करनी उचित है वतने परभी सातवें महाशयजी अपने कदाग्रहके हठवादसे शास्त्रोंके प्रमाणोंको छोड़ करके नैमित्तिक कार्योंकी तरह दूसरे भाद्रपदमें पर्युषणा करनेका ठहराते हैं तोभी उन्हींको प्रत्यक्ष विरोध आता है सोही दिखावते हैं कि—खास सातवें महाशयजीके पूर्वजने अधिक मास होनेसे कृष्णपक्षके नैमित्तिक कार्य प्रथम मासके प्रथम कृष्णपक्षमें करनेका कहा है उमी मुअब सातवें महाशयजी पर्युषणाकरें तब तो पर्युषणाके आठदिनोंके उच्छव का भङ्ग हो जावेगा और पर्युषणामे पहिले कृष्णपक्षके चार दिनोंके कार्य प्रथम भाद्रपदमें करने पड़ेगे फिर एक मास पर्यन्त मौन धारण करके पर्युषणामे पिछाड़ीके चार दिनोंके कार्य दूसरे भाद्रपदमें करें तब तो सातवें महाशयजीकी खूब विटंबना होजावेसो तत्त्वज्ञ विवेकी जन स्वयं विचार लेंगे;—

और ओलियों छठे महीने करनेमें आती है परन्तु अधिक मास होनेसे सातवें महीने करनेमें आती है तथा चौमासी चौथे महीने करनेमें आता है परन्तु अधिक मास होनेसे पांचवें महीने करनेमें आता है सो तो न्यायपूर्वक युक्ति की बात है परन्तु पर्युषणा तो आषाढ चौमासीसे ५० दिने अपश्य करके करनेका कहा है, इसलिये अधिक मास हो तो भी ५० वें दिनकी रात्रिकी भी उल्लंघनकरनेसे निषिद्धा-

[४१९]

स्वकी प्राप्ति होती है तो फिर दूसरे भाद्रपदमें ८० दिने पर्यु-
षणा करना सो तो कदापि श्रीजिनाहामें नहीं आ सकता
है सो भी विवेकी पाठकगण स्वयं विचार लेंगे;—

और शास्त्रानुसार भावपरंपरा करके तथा युक्तिपूर्वक और
लौकिक व्यवहार मुजब्र अधिक मास होनेसे नैमित्तिक
कार्य आगे पीछे दोनों मासमें करनेमें आते हैं सोतो सातवें
महाशयजीके पूर्वजने भी लिखा है जिसका पाठ ऊपरही
लिखनेमें आया है तथापि सातवें महाशयजी प्रथम मासको
छोड़करके दूसरे मासमें नैमित्तिक कार्य करनेके लिये
“वैसा नहीं करोगे तो विरोधके परिहार करनेमें भाग्य-
शाली नहीं बनोगे” ऐसे अक्षर लिखके प्रथम मासमें
नैमित्तिक कार्य करने वालोंको विरोध दिखाते हैं सो कोई
भी शास्त्रके प्रमाण बिना अपनी मति कल्पनासे भोले
जीवोंको भ्रमसे गेरनेके लिये अपने पूर्वजके वचनको भी
विरोध दिखाने वाले सातवें महाशयजी जैसे कलियुगि
बिनीत प्रगट हुवे है सो तो अपने पूर्वजोंको खोटे कहके
आप भले बनते हैं इसलिये आत्मार्थियोंको इन्हकी कल्पित
बात प्रमाण करने योग्य नहीं है,—

और (कदाग्रह न छूटे तो भले स्वपरंपरा पाले) सातवें
महाशयजीका यह भी लिखना भोले जीवोंको कदाग्रहमें
फंसाकर मिथ्यात्वको बढ़ानेवाला है सो तो इसीही ग्रंथके
पृष्ठ ३१९ से ३४२ तकका लेख पढ़नेसे मालूम हो सकंगा परंतु
सातवें महाशयजीने ऊपरके लेखमें अपने अन्तरके भावका
बुझन किया मालूम होता है क्योंकि सातवें महाशयजी बहुत
बर्षोंसे काशीमें ठहर कर अपनी विद्वत्ता प्रगट कर रहे हैं

[४२०]

इसलिये भोले जीव जानते है कि सातवें महाशयजीकी तरफसे पर्युषणा विचारका लेख प्रगट हुवा है सो शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वकही होगा परन्तु उसी लेखको तत्त्वज्ञ पुरुषो ने देखा तो निष्केवल शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें तथा उत्सूत्रभाषणोंके संग्रह वाला और कुयुक्तियोंके संग्रह वाला होनेसे अज्ञानी जीवोंको मिथ्यात्वमें फंसाने वाला सालूम हुवा तब उसीकी शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक समीक्षा मेरेको भठयजीवोंके उपकारके लिये इतनी लिखनी पड़ी है इसको बांचकर सातवें महाशयजीको अपनी विद्वत्ताके अभिमानसे और अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके करणसे अपना मिथ्यापक्षके कल्पित कदाग्रहको छोड़कर सत्य बात ग्रहण करनी बहुतही मुश्किल होनेसे (कदाग्रह न छूटेतो भले स्व परंपरा पालो) ऐसे अक्षर लिखके कदाग्रहको तथा शास्त्रों के प्रमाण बिना कल्पित बातोंकी अंध परम्पराको पुष्ट करके भोले जीवोंको उसीमें फंसाये और आपनेभी उसीका शरणालेकरके अपना अन्तर मिथ्यात्वको प्रगट किया इसलिये इस ग्रंथकारका सब सज्जन पुरुषोंको यही कहना है कि जो अल्पकर्मी मोक्षाभिलाषी आत्मारथी होगा सोतो शास्त्रोंके प्रमाण विरुद्ध अपने अपने कदाग्रहकी अन्ध परंपराके पक्षका आग्रहमें तत्पर न बनके इस ग्रंथको सम्पूर्ण पढ़ करके पंचांगी प्रमाण पूर्वक युक्ति सहित सत्य बातोंको ग्रहण करेगा दुसरोसे करावेगा और बहुल कर्मी मिथ्यास्वी होगा सोतो शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक सत्य बातोंको जानकरकेभी उसीको ग्रहण न करता हुआ अपने कदाग्रहकी अन्ध परम्परामे रहकर उसीको पुष्ट करने

[४२१]

के लिये और सत्य बातों का निषेध करनेके लिये नवीनकी क्युक्तियों के विकल्प खड़े करके विशेष मिथ्यात्व फैलावेगा और दूसरे भेले जीवोंकीभी उसीमें फंसावेगा सोतो उसीकेही निवीड़ कर्मोंका उदय समझना परन्तु उसीमें शास्त्रकारका कोई दोष नहीं है इसलिये यहां मेरा खुलासा पूर्वक यही कहना है कि अधिकमासकी गिनती निषेध करनेवाले और गिनतीप्रमाण करनेवालोंकी अनेक क्युक्तियोंसे कल्पित दूषण लगानेवाले सातवें महाशयजी जैसे विद्वान् कहलाते भी निःकेवल अन्ध परम्पराके कदाग्रहमें पड़के बालजीवोंको भी उसीमें फंसानेके लिये अभिनिवेशिक मिथ्यात्वको सेवन करके श्रीतीर्थंकरगणधरादि महाराजोंकी और अपने पूर्वजोंकी आशासमा करते हुए पक्षांगीके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको छोड़कर फिर शास्त्रकार महाराजोंके विरुद्धार्थमें उत्सूत्र भाषणों करके खूब पाखण्ड फैलाया है और फैलारहे हैं जिससे श्रीतीर्थंकर महाराजकी आज्ञाको उत्थापन करते हैं इसलिये अधिक मासकी गिनती निषेध करनेवाले कदाग्रहियोंकी मिथ्यादृष्टि निन्हर्वोंकी गिनतीमें गिनने चाहिये। यदि श्रीतीर्थंकर महाराजकी आज्ञाको अराधन करके आत्म कल्याणकी इच्छा होवे तो अधिक मासके निषेध करनेसम्बन्धी कार्योंका मिथ्या दुष्कृत देकर उसीकी गिनतीके प्रमाण मुजबब बतौं नहीं तो उत्सूत्र भाषणोंके विपाकतो भोगे बिना छूटने मुशकिल है;—

और फिरभी स्वपरम्परा पालने सम्बन्धी सातवें महाशयजीने लिखा है कि (स्वसंतप्यमे विरोध न आवे ऐसा वर्ताव करना बुद्धिमान पुरुषोंका काम है) इस छेड़पर

[४२२]

भी मेरेको इतनाही कहना है कि—यह भी सातवें महाशय-
जीका लिखना अज्ञताका सूचक है क्योंकि श्रीजिनेश्वर
मगवान्का कथन करा हुआ श्रीजिन प्रवचन अविस्मृतादी
हीनेसे सब गणधरोंके सबगच्छोंकी एकही समाचारी
होती है परन्तु इस वर्तमान कालमें तो सब गच्छ
वालोंकी भिन्न भिन्न समाचारी है और शास्त्रोंके प्रमाण
बिनाही अन्ध परम्परासे कितनीही बातें चल रही
हैं इसलिये शास्त्र प्रमाण बिनाकी द्रव्य परम्परा पालने
वालोंको तो श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध महान् विरोध प्रत्यक्ष
दिखता है तथापि अपने अन्ध परम्परा के कदाग्रहको
नहीं छोड़ते हैं फिर कुयुक्तियोंसे अपना कदाग्रहके
मंतव्यको पुष्ट करके विरोध रहित (सातवें महाशयजीकी
तरह) बनना चाहते हैं सो तो बुद्धिमान पुरुष नहीं
किन्तु अभिनिवेशिक सिध्दात्वी पक्षे कदाग्रही कहे जाते हैं
इसलिये अपने आत्म साधनमें विरोध नहीं चाहनेवाले तत्त्वज्ञ
पुरुषोंको तो शास्त्र विरुद्ध अपनी परम्पराको छोड़ करके
शास्त्रानुसार सत्य बातको ग्रहण करनाही परम उचित है;—

और पर्युषणा विचारके दशवें पृष्ठकी सातवीं पंक्तिसे
दशवीं पंक्ति तक लिखा है कि (हित बुद्धिसे लिखे हुए
विषय पर समालोचना करना ही तो भले करो किन्तु शास्त्र
मार्गसे विपरीत न चलनेके लिये सावधानी रखना समा-
लोचनाकी समालोचना शास्त्र मर्यादा पूर्वक करनेको लेखक
तैयार है) सातवें महाशयजीके इस लेखपर भी मेरेको इतना
ही कहना है कि—जैसे कितनेही दूढ़िये तेरहा पंथी वगैरह
कदाग्रही नायावृत्तिवाले भूत लोग अपने कदाग्रहके पक्षकी

[४२३]

बढ़ानेके लिये शास्त्रोंके आगे पीछेके सब पाठोंको छोड़ करके उसीके बीचमेंसे बिना सम्बन्धके अधूरे पाठके फिर उलट अर्थ करके उत्सूत्र भाषणोंसे तथा कुयुक्तियोंसे भोले जीवोंकी सत्य बातों परसे श्रद्धा भ्रष्ट करके अपने मिथ्यात्वके पाखण्डमें गेरके संसार वृद्धिका कारण करते हैं तो भी हितोपदेशसे अच्छा किया ऐसा अज्ञताके कारणसे वृथा पुकार करते हैं ।

तैसेही पर्युषणा विचारके लेखकने भी किया, अर्थात्— अपने कदाग्रहमें मुग्ध जीवोंको फंसानेके लिये त्रीनिशीष चूर्ण वगैरह शास्त्रोंके आगे पीछेके सब पाठोंको छोड़ करके उसीके बीचमेंसे शास्त्रकारोंके विरुद्धार्थमें बिना सम्बन्धके अधूरे पाठ लिखके उलटे अर्थ करके उत्सूत्र भाषणोंकी तथा कुयुक्तियोंकी कल्पनायोका पर्युषणा विचारके लेखमें संग्रह करके भी अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे हित बुद्धिसे विषय लिखनेका ठहराते हैं सो कदापि नहीं ठहर सकता है क्योंकि हितबुद्धिकेबहानेमिथ्यात्वकेपाखण्डकी वृद्धिका कारण किया है इसलिये भव्यजीवोंके उपकारके लिये पर्युषणा विचारके लेखकी शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक समालोचना करनी मेरेको उचित थी सो करी है जिसपर भी शास्त्रमार्गसे विपरीत न चलनेके लिये सावधानी रखनेका सातवें महाशयजी लिखते हैं इसपर भी मेरेकी इतनाही कहना है कि— खाम आपही अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे (शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक अधिक मासकी गिनती प्रमाण तथा श्रावण वृद्धिसे ५० दिने दूसरे श्रावणमें पर्युषणा और मासवृद्धिसे १३ मासके सामने वगैरह) सत्य बातोंकी ग्रहण नहीं करते हुए अपने

[४२४]

कदाग्रहकी कल्पनाको स्थापन करनेके लियेऔर सत्यबातों को निषेध करनेके लिये पर्युषणा विचारके लेखमें उत्सूत्र भाषणोंकी और कुयुक्तियोंके विकल्पोंके प्रत्यक्ष मिथ्या गण्योंके लिखके भी शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक लिखनेवालेकी शास्त्र मार्गसे विपरीत न चलनेके लिये सावधानी दिखाते हैं सो तो प्रत्यक्ष धूर्ताचारोका लक्षण है इसको पाठक वर्ग स्वयं विचार लेवेंगे;—

और (समालोचनाकी समालोचना शास्त्र मर्यादा पूर्वक करनेको लेखक तैयार है) सातवें महाशयजीके इस लेख पर भी मेरेको इतनाही कहना है कि—पञ्चांगीकी श्रद्धा रहित कदाग्रहमें आगेवान, अनिनिवेशिक मिथ्यात्वको सेवन करने वाले तथा अन्यायमें प्रवर्तने वाले होकरकेभी शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक मेरे सत्य लेखोंकी समालोचना आप कैसे कर सकोगे क्योंकि जो आप पञ्चांगीकी श्रद्धा वाले आत्मारथी तथा न्यायमें प्रवर्तने वाले होवे तबतो जो जो मैंने पर्युषणा विचारके लेखकी पंक्ति पंक्तिकी शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक समालोचना करके आपके लेखोंकी उत्सूत्र भाषण रूप प्रत्यक्ष मिथ्या ठहराये है और सत्य बातोंको प्रगट करी है उसीको आद्यन्त पर्यंत पढ़के अथनी उत्सूत्र भाषणोंकी और प्रत्यक्ष मिथ्या लेखोंके भूलोंकी श्रीचतुर्विध संघ समक्ष आलोचना लेकर शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक सत्य बातोंको ग्रहण करी पीछे मेरे लेखकी समालोचना करनेकी आपमें योग्यता प्राप्त होवे तब मेरे लेखकी समालोचना करनेकी तैयार होना चाहिये। इतने परभी पर्युषणा विचार के सब लेखोंको आप सत्य समझते होवें तो पंक्ति पंक्तिके

[४२५]

सब लेखोंको शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक सिद्ध कर दिखाओ नहीं दिखाओ तो उसीकी आलोचना लेकर सत्य बातोंको ग्रहण करो और अपने सब लेखोंकी शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक सिद्ध नहीं करेंगे तथा अपनी भूलोंकी आलोचना भी नहीं करेंगे और सत्य बातोंको ग्रहण भी नहीं करेंगे तब तक मैंने लेखकी समालोचना करनेकी आपमें योग्यता प्राप्त नहीं हो सकेगी तथापि आप केवल अपनी विद्वत्ताकी शर्म-केसारे, लौकिक लज्जासे अपनी उत्सृज भाषणोंकी तथा प्रत्यक्ष मिथ्या (पर्युषणा विचारके) लेखोंकी भूलोंकी छुपा करके शास्त्रानुसार युक्ति पूर्वक सत्य बातोंके सम्बन्धका सब लेखको छोड़ करके बिना सम्बन्धका अधूरा लेखकी कुयुक्तियोंके विकल्पो से समालोचना करके शास्त्र मर्यादा पूर्वकके बहाने सुगंध जीवोंको मिथ्यात्वमें फंसानेके लिये पर्युषणा विचार के लेखकी तरह फिर भी उद्यम करेंगे तो उसीके भी सबकी समालोचना करके आपके अन्यायके पाषण्डको शांत करनेके लिये मैंने जो जलदीसे लेखनी चलानी ही पड़ेगी इसमें फरक नहीं समझना ;—

और पर्युषणा विचारके दशवें पृष्ठकी ११ वीं पंक्तिसे दशवें पृष्ठके अन्त तक लिखा है कि (पाठक महाशयोंको पक्षपात शून्य होकर निष्पक्ष देखने की सूचना दी जाती है स्नेहरागके बस होकर असत्यको सत्य नहीं मानना और गतानुगतिक नहीं बनना तत्त्वान्वेषी बनकर जल्दी गृह व्यवहारकी स्वीकार करके भगवान्की आज्ञानुसार भाद्र सुदी चौथके दिन सांवत्सरिक वगैरह पांच कृत्योंका आराधनकरके थोड़ेभयमें पञ्चमज्ञानके भागीबनो इसतरह

[४२६]

का धर्मलाभ पाठकवर्गके प्रति लेखकदेता है) इस रीतिसे सातवें महाशयजीने पर्युषणाविचारके लेखको पूर्ण किया है । अब ऊपरके लेखकी समीक्षा करते हैं कि—गच्छके पक्षपातका स्नेहरागसे असत्यको सत्यमान करके गतानुगतिक गहुरीह प्रवाहवत् अन्य परम्पराकोही मानने वाले निष्प्रावृष्टि कहे जाते हैं इसलिये तत्त्वान्वेषी बन करके शास्त्रानुसार युक्ति सम्मत सत्य बातोंका निर्णयपूर्वक ग्रहण करना सोआत्मारथियोंका काम है इसलिये पक्षपात रहित पर्युषणा विचारके निबन्धकी पढ़ा तों साफ मालूम हुआ कि पर्युषणा विचारके लेखकने अपनी अज्ञानताके कारणसे अपने गच्छका पक्षपात करके अन्य परम्पराका निष्प्रावृत्तको बढ़ानेके लिये पं० हर्षभूषणजीकी धर्मसागरजीकी और विनयविजयजी वगैरहोंकी, उत्सूत्र भाषणोंकी कल्पनाओंको सत्य मानकर श्रीतीर्थकर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञाकी उत्थापन करके पर्युषणा विचारके लेखमें केवल शास्त्रोंके विरुद्ध उत्सूत्र भाषणोंकी कल्पनायें भरी हुई होनेसे गच्छ पक्षके निष्प्रावृत्त आग्रह करनेवाले बालजीवोंकी श्रीजिनाज्ञासे भ्रष्टकरके निष्प्रावृत्तमें फँसाने वाला और खास पर्युषणा विचारके लेखकको संसार वृद्धिका हेतु भूत प्रत्यक्ष देखनेमें आया इसलिये पर्युषणा विचारके लेखकके तथा अन्य आत्मारथियोंके उपकारके लिये उसीकी समालोचना करके निष्पक्षपाती पाठक गणको सत्यवात दिखाई है सो इसकी पढ़कर पर्युषणा विचारके लेखक वगैरह यदि आत्मारथि होवेंगे तब तो गच्छके पक्षपातका आग्रहको न रखके असत्यको छोड़कर सत्यको ग्रहण करके अपनी भूलोंको सुधारेगे और अपनी विद्वत्ताके

[४२७]

अभिमानी मिथ्यात्वी होवेंगे तो विशेष कदाग्रह बढ़ानेके लिये उद्यम करेंगे (उसीका उत्तर तो देनाही होगा) परन्तु इस ग्रन्थके प्रगट होनेसे सम्यक्त्वी अथवा मिथ्यात्वी की तो परीक्षा अच्छी तरहसे हो जावेगी :—

और सातवें महाशयजी अधिक मासके ३० दिनोंकी गिनतीमें छोड़ करके दो श्रावण होते भी भाद्रपदमें पर्युषणा करना सो शुद्ध व्यवहारसे भगवानकी आज्ञामे ठहराते हैं सो तो सोनेकी भ्रांतिसे केवल पीतल ग्रहण करने जैसा करके अपनी पूर्ण अज्ञता प्रगट करते हैं क्योंकि अधिक मासकी गिनती छोड़नेसे तो अनन्त संसारकी वृद्धिका हेतुभूत मिथ्यात्वकी प्राप्ति होती है इसलिये अधिक मासकी गिनती निषेध करने वाले कदापि आज्ञाके आराधक नहीं बन सकते हैं किन्तु शास्त्रानुसार युक्तिपूर्वक और प्रत्यक्ष वर्तावसे अधिकमासके ३० दिनोंकी गिनतीमें लेनेसे ही भगवानकी आज्ञाका आराधन हो सकता है इसलिये अधिकमासकी गिनती प्रमाण करना सोही सत्वान्वेषी शुद्ध व्यवहारको ग्रहण करनेवाले भगवानकी आज्ञाके आराधक हो सकेंगे इसलिये मासवृद्धि दो श्रावण होनेसे ५० दिनकी गिनतीसे दूसरे श्रावणमें पर्युषण पर्वमें सांवत्सरिक वगैरह कृत्योंका आराधन करनेवाले आत्मार्थी होनेसे पञ्चम केवलज्ञानके भागी हो सकेंगे ।

और अन्तमें पाठकवर्गकी धर्ममलाभ लेखकने लिखा है सो भी बुद्धिकी अजीर्णता प्रगट करी मालूम होती है क्योंकि पाठकवर्गमें तो पर्युषणा विचारके लेखकी बाँचनेवाले आचार्य, उपाध्याय, गणी, पन्दास तथा साधु साध्वी और लेखकसे दीक्षा

[४२८]

पर्यायमें अधिक सुजिमरहली खगैरह सब कोई आजाते हैं इसलिये सबको धर्मलाभ देनेकी पर्युषणा विचारके लेख ककी ताकत नहीं होते भी देता है तो बुद्धिकी अजीर्णतामें क्या न्यूनता रही है सो विवेकीजन स्वयंविचारसकते हैं ; और सातवें महाशयजीने पर्युषणाविचारके लेखमें अधिक मासकी गिनती निषेध करनेके लिये इतना परिश्रम किया है परन्तु अधिक मास किसको कहते हैं जिसकी भी तो उनकी मालूम नहीं है क्योंकि, देखो दुनियाके व्यवहारमें तिथि बृद्धिकी तरह दूसरेको अधिक मास कहते हैं । तथा जैनशास्त्रोंमें भी दूसरेकोही अधिकमास कहा है ॥ और लौकिक पञ्चाङ्गमें दोनों मासके मध्यमें संक्रान्ति रहितकों अधिकमास कहते है परन्तु दिनोंकी गिनतीमें दोनों मासके ६० दिनोंको बराबर सब कोई लेते हैं इसलिये अधिक मासके दिनोंकी गिनती निषेध नहीं हो सकती है ।

और सातवें महाशयजी अधिक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें नहीं लेनेका लिख करके भोले जीवोंको बहकाते हैं परन्तु खास आपही अधिक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें ले करके सर्व व्यवहार करते हैं सो तो प्रत्यक्ष दीखता है तथापि अधिक मासके ३० दिनोंको गिनतीमें नहीं लेनेका लिख करके भोले जीवोंको बहकाते हैं सो तो 'ममजमनी वन्ध्या'की तरह प्रत्यक्ष धूर्तताका नमूना है सो तो विवेकी जन स्वयं विचार लेवेंगे ।

और सातवें महाशयजीने अधिकमासको नपुसक निःसत्त्व ठहराकर उसीकी गिनतीमें छोड़ देनेका लिखा है परन्तु आज दो भाद्रपद होते हैं तब अधिक मास रूप दूसरे भाद्र-

[४२९]

पदमें खास आप पर्युषणा करते हैं और ८।१०।१५।२०।३०।४०।४५ दिनके उपवासोंकी तपस्याकी गिनतीमें अधिक मासके ३० दिनको बराबर गिनते हैं । तो अब पाठकवर्गको विचार करना चाहिये कि खास आप अधिक मासके दिनोंको तपश्चर्याकी गिनतीमें लेते हैं तथा अधिक मासमेंही पर्युषणा करते हैं तथापि उसीको नपुसक निःसत्त्व ठहराकर दूष्टि-रागी भोले भाले जीवोंकी श्रीजिनाज्ञासे भ्रष्ट करते हैं सो अभिनिवेशिक मिथ्यात्व से कितने संसार वृद्धिका हेतु है सो तत्त्वज्ञ स्वयं विचार लेंगे,—

और पर्युषणा विचारका छपाई खर्चा और टपाल खर्चा श्रीयशोविजयजीकी पाठशालाके सम्बन्धसे लगा है सो तो यहांके दलीपसिंहजी जौहरीके पास काशी की पाठशालालासे उदयराज कोचरका पोष्टकाई आया है उसी से तथा और भी कितनेही कारणोंसे सिद्ध होता है उसका विशेष विस्तार अवसर होनेसे पुनरावृत्तिमें लिखने में आवेगा और पर्युषणा विचारका लेख काशीमें उसी पाठशालासे प्रगट भी हुवा है तथापि सातवें महाशयजी अपनी निन्दाकेभयसे श्री यशोविजयजी की पाठशालाके नामसे पर्युषणा विचारके लेखको प्रगट न कराते उदयराज कोचरके नामसे प्रगट कराया और श्रीकाशी (वाणारसी) का नाम भी न लिखाते प्रत्यक्ष मिथ्या फलोधीका नाम लिखाके मायावृत्ति से फलोधीके नामसे प्रगट कराया तो फिर अनुमान ६० जगह सरसूत्र भाषणोंवाला तथा १० जगह प्रत्यक्ष मिथ्यालेखवाला और सत्य बात का निषेध करके अपनी कल्पनाकी मिथ्या बातको स्थापने

[४३०]

की कुयुक्तियों वाला और श्रीजिनाज्ञा मुजब वर्तने-
वालोंको जूठी कल्पनासे दूषण लगाके अनन्त संसारका
हेतु भूत मिथ्यात्यको बढ़ानेवाला पर्युषणा विचारके लेखमें
अपना नाम प्रगट करते लज्जा आवे तो निज शिष्यविद्या
विजयजीका नाम लिख देवे तोभी कुछ विशेष आश्चर्य नहीं
है सो पाठकवर्ग स्वयं विचार लेवेंगे,—

और काशीनिवासी सातवें महाशयजी जैनतत्त्वदिग्दर्शन,
आत्मोन्नति दिग्दर्शन, जैनशिक्षादिग्दर्शन वगैरह छोटे
छोटे लेखोंको तो अपने नामसे प्रगट करते हैं तथा विद्या-
विजयजीभी अपने गुरुजीका लम्बा चौड़ा नाम समेत जैन-
पत्रमें अपना लेख प्रगट करते हैं और छोटी छोटी पुस्तकें
भी श्रीयशोविजयजीकी पाठशालाके नामसे प्रगट करनेमें आती
है परन्तु पर्युषणा विचारके लेखमें न तो सातवें महाशयजीका
नाम लिखा तथा विद्याविजयजीनेभी अपने गुरुजीका
नाम भी नहीं लिखा और अपना निवास ठिकाना भी
नहीं लिखा और श्रीयशोविजयजीकी पाठशालाका नाम
भी नहीं लिखा इसपर भी बुद्धिजन विचार करें तो स्वयं
मालूम हो सकेगा कि सातवें महाशयजीने दुनियामें अपनी
मिन्दाकी शर्मके मारे गुप्तपुत्र प्रगट कराया है क्योंकि इतने
विद्वान् ऐसे प्रसिद्ध आदमी होकरके भी गच्छके पक्षपातसे
ऐसा अनर्थ क्यों किया इसका भेद न खुलनेके वास्ते पाठ
शालाका तथा पाठशालाके उत्पादकका नाम नहीं लिखा
है परन्तु विवेकी बुद्धिजनोंके आगे तो ऐसी धूर्तता नहीं
रूप सकती है,—

[४३१]

और जैनपत्रका अधिपति आठवा महाशय श्रावकनाम धारक भगुभाई फतेचन्दने सेप्टेम्बर मासकी २२वीं तारीख सन् १९०९ दूसरे श्रावण बदी १३, परन्तु हिन्दी भाद्रपद कृष्ण १३ वीर संवत् २४३५ के जैनपत्रका २३ वा अङ्ककी आदिमेंही 'पर्युषणा विषे विचार' नामसे जो लेख प्रगट करा है सो तो सातवें महाशयजीके पर्युषणा विचारके लेखकी ही गुजराती भाषामें लिखकी प्रगट किया है इसलिये जैनपत्रवालेके लेखकी तो सातवें महाशयजीके लेखकी तरह ऊपर मुजबही समीक्षा समझ लेना और जैनपत्रवाला संप संप पुकारता है परन्तु एकएककी निन्दा करके कुसंपकी खट्टि करता है तथा गच्छके पक्षपातसे सत्य बातोंका निषेध करके अपना मिथ्यापक्षको स्थापन करनेके लिये उत्सूत्रभाषणोंसे दुर्गतिका रस्ता लेता है और अज्ञानी जीवोंकोभी यहांही पहुंचानेके लिये उत्सूत्र भाषणोंका संग्रह जैनपत्रमें प्रगट करता है और कान्फरन्स सुकृत भगदारादिसे शासनोन्नतिके कार्योंमें विप्रकारक गच्छोंके खगडनमगडनका भगड़ा एक-वार नहीं किन्तु अनेकवार जैनपत्रमें उठाया है क्योंकि देखो पर्युषणा सम्बन्धी भी प्रथमही छठे महाशयजीकी मिथ्या कल्पनाकः उत्सूत्र भाषणका लेखको जैनपत्रमें प्रगट करके भगड़ेकी नींव रोपन करी तथा सातवें महाशयजीके भी उत्सूत्र भाषणोंके संग्रहवाला लेखका भाषान्तर प्रगट करके उत्सूत्रभाषणोंके भयङ्कर विपाक लेनेके लिये दुर्गतिका रस्ता लिया और फिर भी छठे महाशयजी की तरफके श्रीखरतरगच्छ वालोंकी निन्दावाले तथा कोर्ट कचेरीमें भगड़ा लड़ाके दीर्घकाल पर्यन्त कुसंपकी खट्टि करनेवाले दो

[४३२]

लेखोंको प्रगट करके अपनी पूर्ण मूर्खता प्रगट करी और पर्युषणा, सामायिक, कल्याणक, वगैरह बातोंका झगड़ा बढ़ाया है (जिसका निर्णय तो इस ग्रन्थके पढ़नेसे मालूम हो सकेगा) इसलिये जैनपत्रवाले आठवें महाशयको जो संसारवृद्धिसे दुर्गतिमें परिभ्रमणका भय होवे तो उत्सूत्र भाषणोंका मिथ्या दुष्कृत देकर श्रीजनविंध संघ समक्ष उसीकी आलोचन लेवे तथा फिर कभी १६८८ मरहटन करके दूसरों की निन्दासे गच्छका झगड़ा न उठावे और असत्यको छोड़कर सत्यको ग्रहण करे नहीं तो पक्षपातसे उत्सूत्रभाषणके विपाक तो भोगे बिना कदापि नहीं छुटेंगे ।

और मैरेको बड़ेही खेदके साथ बहुतही लाचार हो करके लिखना पड़ता है कि—अधिक मासके ३० दिनोंकी गिनती निषेध करनेवाले उत्सूत्र भाषक मिथ्या हठग्राही अभिनिवेशिक मिथ्यात्वियोंकी विवेक बुद्धि कैसी नष्ट हो गई है सो पूर्वापरका विचार किये बिनाही अधिक मासके ३० दिनोंमें सर्वकार्य करते भी पक्षपातके आग्रहसे गहुरीह प्रवाहकी तरह मिथ्यात्वकी अन्ध परम्परासे एक एककी देखादेखी तात्पर्यार्थके उपयोग शून्य होकरके उसीकोही पकड़कर उसीकी पुष्टि करते हैं परन्तु श्रीजिनाज्ञाका उत्थापन करके बाल जीवोंको मिथ्यात्वमें फंसानेसे अपनी आत्मघातका कुछ भी भय नहीं करते हैं क्योंकि पञ्चाङ्गी प्रमाण पूर्वक और युक्ति सहित श्रीजिनेश्वर भगवानकी आज्ञाके आराधक सभी आत्मारथी जैनाचार्य वगैरह अधिक मासके दिनोंकी गिनती प्रमाण करकेही प्राचीन कालमें पूर्वधरादि महाराज भी पर्युषणा करते थे तथा वर्तमानमेंभी

[४३३]

सब कोई आत्मार्थि जन अधिक मासकी गिनती प्रमास करकेही पर्युषणा करते हैं और आगे भी ऐसेही करेंगे परन्तु शासननायक श्रीवर्द्धमानस्वामीके मोक्ष पधारे बाद अनुमान एक हजार वर्ष व्यतीत हुए पीछे उत्सूत्र भाषणोंमें आगेवान मच्छ कदायही शिथिलाचारी धर्मधूर्त जैनाभास पाखरही चैत्य वासियोंने पञ्चाङ्गी प्रमाणपूर्वक प्रत्यक्षसिद्ध होते भी कितनीही सत्य बातोंको निषेध करके अपनी सति कल्पनासे उत्सूत्र भाषणरूप कुयुक्तियों करके श्रीजिनाज्ञाविरुद्ध कल्पित बातोंकी प्ररूपणा करी और अविसंवादी श्रीजैन शासनमें वि संवादके मिथ्यात्वको बढ़ाया था जिसमें शास्त्रानुसार तथा युक्ति पूर्वक अधिक मासकी गिनती तथा आषाढ़ चौमासीसे ५० दिने श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन करनेका प्रत्यक्ष दिखते हुए भी लौकिक पञ्चाङ्गमें मासवृद्धि दो श्रावणादि होनेसे प्रत्यक्ष शास्त्रोंके तथा युक्तिके भी विरुद्ध होकर यावत् ८० दिने श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन करनेका सुरू करके श्रीजिनाज्ञाका उत्थापनसे मिथ्यात्व फैला था और निर्दूषण बननेके लिये अधिक मासकी गिनती निषेध करके उत्सूत्र भाषणोंकी कुयुक्तियोंसे अज्ञानीजीवोंको अपने मिथ्यात्वकी भ्रमजालमें फसानेके लिये धर्मधूर्ताई करनेमें कुछ कम नहीं किया था सो तो श्रीसंघपट्टककी व्याख्याओंके अवलोकनकरनेसे अच्छी तरहसे मालूम हो सकता है ।

और कितनेही भारी कर्म प्राणी तो उपरोक्त मिथ्यात्वकी भ्रमजालमें फसकर अन्धपरम्परासे उसीकोही पुष्ट करते हुए बाल जीवोंको अपने फंदमें फसाते रहते थे उसी मिथ्यात्वकी अन्धपरम्पराकेही अनुसार पं० श्रीद्वर्षभूषणजी

[४३४]

और धर्मसागरजी वगैरह जो जो लेख लिख गये हैं और वर्तमानमें 'शास्त्र विशारद जैनाचार्य' की उपाधिधारक सातवें महाशयजी श्रीधर्म विजयजी जैसे प्रसिद्ध विद्वान् कहलाते भी उसी अन्धपरम्परासे मिथ्यात्वके कदाग्रहको पकड़कर अज्ञ जीवोंको उसीमें फसानेके लिये उसीको विशेष पुष्ट करनेका उद्यम करते हैं परन्तु श्रीजिनेश्वर भगवानकी आज्ञाका उत्थापन करके प्रत्यक्ष पञ्चाङ्गी प्रमाण विरुद्ध प्ररूपणा करते हुए अभिनिवेशिकमिथ्यात्वसे सज्जन पुरुषोंके आगे हास्य काहेतु करनेका कारण करते भी कुछ लज्जा नहीं पाते हैं सो तो इस कलियुगमें पाखण्ड पूजा नामक अच्छेरेका प्रभावही भालूम पड़ता है। इसलिये श्रीजिनाज्ञाके आराधक आत्मार्थी पुरुषोंको ऐसे उत्सृज भाषकोंकी कुयुक्तियोंके भ्रममें न पड़ना चाहिये और निष्पक्षपातसे इस ग्रन्थको आदिसे अन्त तक बाँचकर असत्यको छोड़के सत्यको ग्रहण भी करना चाहिये परन्तु गच्छके आग्रहसे उत्सृज भाषणकी बातोंको पकड़कर उसीमें नहीं रहना चाहिये।

और भी श्रीधर्मसागरजीकी तथा श्रीविनयविजयजीकी धर्मधूर्ताई का नमूना पाठक वर्गको दिखाऊँ, कि देखा श्रीविनयविजयजीने श्रीछोकप्रकाश नामा ग्रन्थ बनाया है सो प्रसिद्ध है उसीमें अधिक मासकी गिनती प्रमाण करी है अर्थात् समयादि सुक्षमकालसे आवलिका सुहूर्तादिककी ठ्याख्या करके ३० सुहूर्तोंका एक अहोरात्रि रूप दिखस, सो १५ दिवसोंसे एकपक्ष, दो पक्षोंसे एकमास पारह मासोंसे चन्द्रसंवत्सर और अधिक मास होनेसे तेरह मासोंका अभिवर्द्धित संवत्सर इन पाँचों संवत्सरोसे

(४३५)

एक युगके १८३० दिनोंके ५४९०० (चौपन हजार नौ सौ) मुहूर्तोंकी व्याख्या श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्तिमूत्रके अनुसार श्रीविनय विजयजी लोकप्रकाशमें स्वयं लिखते हैं तैसेही श्रीधर्म-भागरजीने भी श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्तिकी वृत्तिमें ऊपर मुजबही पांच श्रृंखलाके दो अधिकमानोंके दिनोंकी तथा पक्षोंकी और मुहूर्तोंकी गिनती पूर्वक एक युगके १८३० दिनोंके ५४९०० मुहूर्त सुलामा पूर्वक लिखे हैं । तथापि वडेही खेदकी बात है कि इन दोनों महाशयोंने गच्छकदायह का पक्ष करके उत्तमूत्र-भाषणसे संसार वृद्धिका भय न रक्खा और बालजीवोंको श्रीजिनाज्ञाकी सत्य बात परसे श्रद्धाभ्रष्ट करनेके लिये श्रीकल्पमूत्रकी कल्पकिरणावलीवृत्तिमें तथा सुखशोधिका वृत्तिमें काल चूलाके बहानेसे दोनों अधिक मासके ६० दिनोंकी गिनती निषेध करके अपने स्वहस्ये एक युगके दो अधिक मासोंके दिनोंकी मुहूर्तोंकी गिनती पूर्वक १८३० दिनोंके ५४९०० मुहूर्तोंको श्रीतीर्थकर गणधर महाराजकी आज्ञानुसार लिखे हैं उसीका भङ्गकारक दो अधिक मासके ६० दिनोंके अनुमान १८०० मुहूर्तोंके कालका व्यतीत होना प्रत्यक्ष होते भी उसीको गिनती में से सर्वथा उड़ादेकर श्रीतीर्थकर गणधर महाराजके कथनका प्रमाणमें भङ्ग डालने वाले लेख लिखते पूर्वापरका विवेकबुद्धिसे कुछ भी विचार न किया और उत्तमूत्र भाषणोंका संग्रह करके कुयुक्तियोंसे अज्ञानी-जनोंको भ्रमाने का कारण किया इसलिये इन दोनों महाशयोंकी धर्मभूताईमें कुछ कम होवे तो न्यायवृष्टिवाले विवेकीमन स्वयं विचार लेवेगे ।

और इन दोनों महाशयोंके लिये

[४३६]

सम्बन्धी पूर्वापरविरोधि (विषमवादी) तथा उत्सूत्र भाषणोंकी कुयुक्तियोंवाले और सम्यक्त्वसे भ्रष्ट करके मिथ्यात्वमें गेरनेवाले लेखोंकी दीर्घ संसारीके सिवाय और कौन मान्य करके श्रीतीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आशातनाकारक उल्टा घर्ताव करेगा सो भी तत्त्वज्ञ पुरुष न्याय दृष्टि वाले सज्जन स्वयं विचार लेवेंगे—

और अधिक मासके निषेधक श्रीधर्मसागरजी श्रीजय विजयजी श्रीविजयविजयजी और पं० श्रीहर्षभूषणजी वगैरहोंने जो जो गच्छकदायही दृष्टिरागी मुग्ध जीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेके लिये उत्सूत्र भाषणोंका और कुयुक्तियोंका संग्रह करके अपना संसार वृद्धिका कारण करते हुए अपने ऐसे कल्पित लेखोंको सत्य माननेवाले अपने पक्षग्राहियोंका भी संसार वृद्धिका कारण कर गये हैं सो इन सब उत्सूत्र भाषणरूप कल्पित कुयुक्तियोंके लेखोंका निर्णय तो इस ग्रन्थमें अनुक्रमसे सातों महाशयोंके लेखोंकी समीक्षामें होगया है सो इस ग्रन्थको आदिसे अन्त तक पक्षपात रहित होकर न्याय दृष्टिसे पढ़नेसे सब बातोंका अच्छी तरहसे निर्णय मालूम होजावेगा । तथापि जो पं० श्रीहर्षभूषणजीने पर्युषणस्थिति नामक लेख में जो जो उत्सूत्र भाषणोंका और कुयुक्तियोंका संग्रह करके मिथ्यात्वका कारण किया है उसीका दिग्दर्शनमात्र थोड़ासा नमूना इस जगह पाठकगणको दिखाता हूं यथा—

श्रीसोमंधरसरहंतं नत्वापर्युषणास्थितिं श्रुवेवर्तितभा-
द्रस्य व्यक्तं युक्त्यागमक्रमैः ॥ नन्वशीत्यादिनैः पर्युषणापर्य-
सिद्धान्ते क्व प्रोक्तमस्तीत्येवंवेत्तार्हि पंच सासात्मकं वरा

[४३९]

चतुर्भासिकमपि सिद्धांते क्वर्वर्त्ति सत्यं परमधिकमासोऽस्मा
भिर्नगण्यमानोस्ति एवं चेत्तर्हि अस्माभिरपि यदाधिकः
श्रावणो भाद्रपदोवावर्द्धते तदा नगण्यते तेनाशीतिदिनानि
पञ्चाशद्दिनान्येवेतीत्यादि ।

अब पं० हर्षभूषणजीके ऊपरका लेखको तत्वज्ञ पुरुष
निष्पक्षपातसे विचारेंगेतो प्रत्यक्षपने उनके भ्रमजालका परदा
खुल जावेगा क्योंकि युक्ति और आगम क्रमके बहाने उत्सूत्र
भाषणाका संग्रह करके कुयुक्तियोंकी भ्रमजालमें बालजी-
वोंको गेरनेका कारण किया है सो तो प्रत्यक्ष दिखता है
क्योंकि ८० दिने पर्युषणा करनेका किसी भी शास्त्रमें नहीं
कहा है परन्तु श्रावण भाद्रपदादि अधिक होनेसे पंचमासके
१० पक्षोंके १५० दिनका अभिवर्द्धित बीसासा तो प्रत्यक्षपने
अनुभवसे देखनेमें आता है इसलिये निषेध नहीं हो सकता
है और अधिक मासको गिनतीमें निषेध करके दूसरे श्रावण
के ३० दिनोंको गिनतीमें छोड़कर ८० दिनके ५० दिन अपनी
सतिकल्पनासे बनाते हैं सो निष्केवल उत्सूत्र भाषण है क्यों
कि शास्त्रानुसार तथा युक्तिपूर्वकमे तो ८० दिनके ५० दिन
कदापि नहीं हो सकते हैं सो तो इस ग्रन्थको पढ़नेवाले
स्वयं विचार लेंगे ।

और फिर आगे । ननु 'अभिवर्द्धयंभि बीसा इयरेषु
सवीसइमासो' निशीथभाष्ये इत्यत्राधिकमासोगणितो-
ऽस्ति । इस तरहसे अधिक मासकी गिनती सम्बन्धी
पूर्वपक्ष उठाकर उसीका उत्तरमें—'आसाढ पुणिमाएपविठा'
इत्यादि निशीथ धूर्णिका अधूरा पाठसे अज्ञात पर्युषणाकी
और 'बीसदिणेहिंक्प्यो' इत्यादि बिनाही प्रसङ्गकी विच्छेद

[४३८]

कल्पसम्बन्धीबातलिखके बालजीवोंको भ्रममेंगेरेँ और अधिक भासकी गिनती निषेध दिखा कर अपनी विदुत्ताकी चतुराई बिवेकी तत्पुत्रपुरुषोंके आगे हास्यकी हेतु रूप प्रगट करी है क्योंकि निशीथचूर्णमेंही खास अधिक भासको गिनती प्रमाण करीहै और अज्ञात तथा ज्ञात पयुषणा सम्बन्धी विस्तारसे व्याख्या की है सो पाठ भावार्थ महित तीनों महाशयों के लेखों की समीक्षामें इनही ग्रन्थके पृष्ठ ९५ से १०४ तक छपगयाहै इसीलिये आगे पीछेके प्रसंग व ले सब पाठको छोड़कर बिना सम्बन्धके अधूरे पाठसे बाल जीवोंको भ्रममें गेरने सोपी उत्सूत्र भाषण है ।

और आगे फिर भी अधिक भासमें क्या क्षुधा नहीं लगतीहै तथा सूर्योदय नहीं होताहै और देवमिक पाक्षिक प्रतिक्रमण, देवपूजा मुनिदानादि क्रिया शुद्ध नहीं होतीहै सो गिनतीमें नहीं लेतेहो इस तरहका पूर्वपक्ष उठाकर उसीका उत्तरमें पांचभासके चौमासेमें तुमभी चारभास कहतेहो इत्यादि अज्ञानतासे प्रत्यक्ष मिथ्या और उटपटांग लिखाहै सोता वृथाही हास्य का हेतु कियाहै । और श्रीउत्तराध्ययनजीके २६ अध्ययनका पौरुष्याधिकार मागवृद्धिके अभाव सम्बन्धी सविस्तर पाठको छोड़कर “असाढभासे दुप्यया” किफ इतनाही अधूरा पाठ लिखके उत्सूत्र भाषणसे भोले जीवोंको भ्रमानेका कारण कियाहै इसका निर्णयतो तीनों महाशयों के लेखोंकी समीक्षामें इसही ग्रन्थके पृष्ठ १३६ । १३७ में छप गयाहै ।

और श्रीआवश्यक निर्युक्तिकी गायिका तात्पर्यार्थको समझे बिना तथा प्रसंगकी बातको छोड़कर ‘जडफुल्ला’

[६३९]

इत्यादि गाथा लिखके उत्सूत्र भाषणसे सिध्दात्वका कारण किया है जिसका निर्णयतो चौथे और सातवें महाराजजी के लेखकी समीक्षामें इसही ग्रन्थके पृष्ठ २०५ से २१० तक और ३८५ से ३९५ तक सविस्तार छप गया है सो पढ़नेसे हर्षभूषणजी की शास्त्रार्थ शून्य विद्वत्ताका दर्शन अच्छीतरहसे हो जावेगा ।

और श्रीनिशीथ तथा श्रीदशवैकालिकवृत्तिके नामसे जलानसंधीकल्पित अधूरा पाठ लिखके उसीपर अपनी सतिसे कुविकल्प उठाकर कालचूलाके बहाने अधिक मासकी गिनती उत्सूत्र भाषणरूप निषेध करके वाल जीवोंके आगे धर्म ठगार्हे फोलादे है जिसका निर्णयतो 'जैनमिद्वांत समाचारी'के लेखकी समीक्षामें इसही ग्रन्थ के पृष्ठ ५८ से ६५ तक और पांचवें महाशयजी के लेखकी समीक्षामें पृष्ठ २० से २२३ तक छप गया है सो पढ़नेसे मालूम हो जावेगा । और रत्नकोष ज्योतिष् ग्रन्थका १ श्लोक लिखके अधिक मासमें मुहूर्त नैमित्तिक विवाहादि संसारिक कार्य नहीं होनेका दिखाकर विनामुहूर्तका पर्युषणादि धर्म कार्यभी अधिकमासमें नहोने का दिखाया सोभी उत्सूत्र भाषण है इस बातका निर्णय चौथे महाशयके लेखकी समीक्षामें पृष्ठ १९४ से २०४ तक छप गया है ।

और भी इसीही तरहसे अधिक मासके ३० दिनों को गिनतीमें निषेध करके ८० दिनके ५० दिन वाल जीवोंके आगे सिद्ध करनेके लिये क्युक्तियोंके विकल्पोका और उत्सूत्र भाषणोंका संग्रह करके भी फिर जोजो मासवृद्धिके अभाव सम्बन्धीश्रीपर्युषणा कल्पचूर्णि, निशीथचूर्णि, पर्युषणा कल्पटिप्पण और संदेहविषौषधिवृत्तिके सविस्तार वाले सब पाठों को छोड़करके उसीके पूर्वापरका संबंध विनाके और

[४४०]

शास्त्रकार महाराजोंके अनिर्णय विरुद्ध अधूरे अधूरे पाठोंको लिखके दृष्टिरागी गच्छकदाग्रही विवेकशून्य मुग्ध जीवों के आगे मास वृद्धि दो आखण होतेभी भाद्रपदमें पर्युषणा ठहराकर दिखानेका प्रयास किया जिसका निर्णय तो इस ग्रन्थमें अच्छीतरहसे सविस्तार शास्त्रकार महाराजोंके अनिर्णय सहित शास्त्रोंके संपूर्ण पाठार्थों पूर्वक लिखनेमें आया है सो पढ़नेसे निष्पक्षपाती सज्जन स्वयं विचार करलेवेंगे ।

औरभी सुप्रसिद्ध श्रीकुलमंडनसूरिकीने विचारामृत संग्रह नामा प्रकरणमें पर्युषणाधिकारे पृष्ठ १३ में अधिक मासकी गिनती निषेध करनेके लिये जो लेख लिखा है उसीका भी नमूना यहाँ दिखाता हूँ । यथा—

युगेतृतीय पंचम वर्ष संभावीयोऽधिकमासः स्यात् नासौलोके लोकोत्तरेच चतुर्मास सांवत्सरिकादि प्रमाण चिंतायां क्वाप्युपयुज्यते, लोके दीपोत्सवाक्षयतृतीया भूमिदोहादिषु शुद्ध द्वादश मासांतर्भाविषु लोकोत्तरेच-चतुर्मासिकेषु 'आसाढमासे दुष्पया' इत्यादि पौरुषी प्रमाण चिंतायां परयासायण प्रमाण्यां वर्षांतर्भावि जिनजन्मादि कल्याणकेषु वृद्धावासस्थित स्यविर नवविभागक्षेत्र कल्प-मायांच नायंगयते कालचूलत्वादस्य । तथाहि । निशीथे दशवैकालिकवृत्तौच, चूला चातुर्विध्यं द्रव्यादिभेदात् तत्र द्रव्य चूला ताम्रचूलादि क्षेत्रचूला मेरोश्चत्वारिंशद्योजन प्रमाण चूलिका कालचूला युगेतृतीय पंचमवर्षधोरधिक मासकः भावचूलात् दशवैकालिकस्यचूलिकाद्वयं । नच चूलाचूलावतः प्रमाण चिंतायां पृथक् व्यात्रियते । यथा । लक्ष-योजन प्रमाणस्यमेरोः प्रमाणचिंतायां चूलिका प्रमाणमिति

(४४९)

यश्चाधिक मासको जनशास्त्रे पीषावाढरूपः लौकिक शास्त्रेषु चैत्राश्विनमासांत सप्तमासव्यवस्थित मासरूपोऽभिवर्द्धित मासौक्त्व चित्कल्पे प्रयुज्यते । यदुक्तं रत्नकोशाख्य ज्योतिष-शास्त्रे । यात्राविवाहमंडनमन्यान्यपि शोभनानि कर्माणि परिहर्तव्यानिबुधेः सर्वाणि नपुंसकेमासि ॥ जति अहिमासओ पद्धितो तो वीसतीरायं गिहिणापं न कज्जति किं कारणं अथ अहिमासओ चेव मासो गणिज्जति तो वीसाएसमं सवीसति रातो मासो भसति चेव इति बृहत्कल्प सू० पत्र २५ उ०३ । पुनः । जम्हा अभिचट्ठिय वरिसे गिम्हे चेव सो मासो अब्बकन्तो तम्हा वीस दिणा अणभिग्गहियंकीरइ निशी० सू० उ० १० पत्र ३१७ बृहत्कल्प निशीथ चूर्णिकदभ्यामपिस्वाभिगृहीतगृहस्थ ज्ञातावस्थान ठयतिरिक्ततेषु कार्येषु क्वाप्यधिकमासको नामग्रहणं प्रमाणीकृतो न दृश्यते-इति ।

अथ श्रीकुलमंडनसूरिजी कृत उपरके लेखको देखकर मेरेको बडेही अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि—ऐसे सुप्रसिद्धविद्वान् पुरुष आचार्यपदके धारक होकरके भी स्वगच्छा ग्रहका पक्षपात करके उत्सूत्र ज्ञापनोंसे संसारवृद्धिकामय न करते हुवे कुपुक्तियोंका संग्रहसे बालजीवोंको मिथ्यात्वके भ्रममें गेरनेका उद्यम किया है सो श्रीअनन्त तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंके वचनका उत्थापनरूप है क्योंकि पांच वर्षोंके एकयुगमें तीसरे तथा पांचवें वर्ष जो पौष तथा आपाढको अधिकमास जैनशास्त्रोंमें कहा है उसीकोही मंदिरोंके शिखर वत् तथा मेरुचूलिकावत् और दशवैकालिकजो आचारंगजी की चूलिकावत् कालचूलाकी उत्तम श्रेष्ठ ओपना देकर दिनोंमें पक्षोंमें मासोंमें गिनती करके वर्ष तथा युगादि

[४४२]

कका प्रमाणश्रीअमन्ततीर्थंकर गणधरादि सहाराजोंने कहा है तथा श्रीवृहत्कल्पवृत्ति श्रीनिशीथवृत्तिमें निश्चय अधिक मासको गिन करके बीशदिने ज्ञात पर्युषणा कही है तथापि श्रीकुलमङ्गलसूरिजीने पर्युषणाधिकारे कालचूलाके बहाने अधिक मासको गिनतीमें निषेध किया सो श्रीअमन्त तीर्थंकर गणधरादि सहाराजों की आज्ञा उत्थापन रूप उत्सृज्य माषण है ।

और आसाढमासे दुप्पमा, संबंधी तो उपरमेंही हर्षभूषणजीके लेखका उत्तर में सूचना करनेमें आगई है । और स्थिबीर कल्पियोंके अधिकमासहोतेभी नवविभागक्षेत्र याने नवकल्प विहारकालिहासोभी प्रत्यक्षमिथ्या है क्योंकि १० कल्पविहारप्रत्यक्षपने होता है इसकानिर्णय तथा दीवाली अस्य तृतीयादि लौकिक संबंधी लिखा है जिसका निर्णय और श्रीजिनेश्वर भगवान्के कल्याणक संबंधी लिखा है जिसका भी निर्णय तो सातवें महाशयजीके लेखकी समीक्षामें होगया है ।

और एक युगके दोनों अधिक मासोंके दिनोंकी गिनती पूर्वक १८३० दिनोंमें सूर्यचारके दश [१०] अयण श्रीतीर्थंकरगणधरादि सहाराजोंने कहे हैं सो श्रीचंद्रपद्मति श्रीसूर्यपद्मति श्रीजंबूद्वीपपद्मति श्रीज्योतिषकरंडपद्म तथा इनही शास्त्रोंकी व्याख्यओंमें और श्रीवृहत्कल्पवृत्ति, मंडल प्रकरणादि अनेकशास्त्रमें प्रगटपाठ है और लौकिकमेंभी अधिकमासहोनेसे उसीके दिनोंकी गिनती पूर्वक १८३ दिने दक्षिणायणसे उत्तरायणमें सूर्यमंडलहोनेका प्रत्यक्षदेखनेमें आता है इसलिये ६ मासके अयणका प्रमाणमें अधिकमास नहीं गिनने

[४४३]

संबंधी श्रीकुलमंडनसूरिजीका लिखना प्रत्यक्ष निष्पत्ति है ।

और जैन पंचांगानुसार पौष तथा आषाढ की वृद्धि होती थी तबभी उसी के दिनेंको पर्युषणादि सब धर्म कार्यों में गिनती करते थे सोतो उपरमेंही श्रीवृहत्कल्पचूर्णि श्रीनिशीषचूर्णिके पाठसे प्रत्यक्षदिखता है परन्तु वर्तमानकाळे जैन पंचांगके अभावेसे लौकिक पंचांगानुसार वर्ताव करने में आता है उसीमें चैत्रादि मासोंकी वृद्धि होती है उसी के ३० दिनोंमें दुनियांका सब व्यवहार तथा धर्म व्यवहार प्रत्यक्षपनेहोता है इसलिये उसीके दिनेंकी गिनती निषेध नहीं होसकती है तथापि जो संक्रांति रहित मलमास केभरोसे अधिक मासके दिनेंकी गिनती निषेध करते हैं सो अपनी पूर्ण अज्ञानतासे भोले जीवोंको गन्धकदायहमें नेरनेका कार्य करते हैं क्योंकि संक्रांति रहित अधिक मास को मलमास कहा है तैसेही दो संक्रांति वाले क्षय मासको भी मलमास कहा है परन्तु अधिक मासके तथा क्षय मास के दिनेंकी गिनती खरोखर करते हैं । तथाहि कमलाकर भट विरचित (लौकिक धर्मशास्त्र) निर्णय सिंधीनामा ग्रंथे ।

तत्र संक्षेपतःकालः षोढा-अठ्शोडशमृतुर्मासः पक्षदि-
वस इति ॥ पुनस्तत्र वक्ष्यमाणैः आषाढादि द्वादश मासै
स्तद्वद् । मउमासेतु उति षष्ठिदिनात्मकः एको मासो द्वा-
दश मासत्वनविरुद्धमिति ॥ तथाच ठ्यासः षष्ट्यातु दिवसै-
मांसःकथितो बादेरायणैः-इति ॥ अथ मलमास क्षयमास
निर्णय । अथ मल मासः तत्रैकमात्र संक्रांति रहितःसिता-
दिश्चांदो मासो मल मासः एकमात्र संक्रांति राहित्यनसंक्रा-
तित्वेन संक्रांति द्वयत्वमथ भवतिइति । मल मासो द्वेषा

[४४४]

अधिक मासः क्षयमासश्चेति । तदुक्तं काठक गृह्ये । यस्मिन् मासे न संक्रांति । संक्रांति द्वयमेव ब्रह्ममलमासः । सविज्ञेयो मासः स्यात् त्रयोदशः । तथा चोक्तं हेमाद्रि नागर खंडे । नभो वा नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत् सप्तमः पितृ पक्षस्यादन्यत्रैव तु पंचमः ॥

अब देखिये उपरोक्त शास्त्रोंके पाठोंसे लौकिक शास्त्रों में अधिक मासके दिनोंकी गिनती करीहै इसलिये निषेध करने वाले गच्छकदाग्रहसे अज्ञानता करके प्रत्यक्ष मिथ्या भाषण करने वाले बनतेहैं सोतो पाठक वर्ग स्वयं विचार सकतेहैं ।

और अधिक मासको बारह मासोंसे जूदा गिनके तेरह मासोंका वर्षकहे तथा अधिक मासको जूदा न गिनके संयोगिक मासके साथ गिने तो ६० दिवसका महीना मान के बारह मासका वर्षकहे तोभी तात्पर्यार्थसेतो दोनों तरह करके अधिक मासके दिनोंकी गिनती लौकिक शास्त्रोंमें प्रगटपने कही है इस लिये निषेध नहीं होसकतीहै ।

और संक्रांति रहित अधिक मासको मलमास कहा तैसेही दो संक्रांति वाले क्षयमासको भी मलमास कहाहै सो चैत्रसे आश्विन तक सात मासोंमें से हरेक अधिक मास होतेहैं तैसेही कार्तिकसे पौष तक तीनमासोंमें से हरेक मास क्षयभी होतेहै और जैसे तीसरे वर्ष अधिक मास होताहै सो प्रसिद्धहै तैसेही कालांतरमें क्षय मासभी होताहै सो लौकिक शास्त्रोंमें प्रसिद्धहै ।

और मासवृद्धिके अभावमें आषाढ़ चौमासीसे पंचम पितृपक्ष होताहै परंतु आषाढ भाद्रपद मासकी वृद्धि होनेसे अधिक मासके दोनोपक्षोंकी गिनती पूर्वक सप्तम पितृपक्ष लिखा है ।

[४४५]

और अधिक तथा क्षय संज्ञा वाले मास समुच्चयके व्यवहारमें तो संयोगिक मासके सामिल गिनेजातेहैं परंतु भिन्न भिन्न व्यवहारमें तो दोनों मासोंके दिनोंकी गिनती जूदी जूदी करनेमें आतीहै सो अधिक मास संबंधी तो उपरमें तथा इसग्रन्थमें लिखनेमें आगयाहै परंतु क्षयमास संबंधी थोड़ा सा उल्लिखिताहूं कि जब कार्तिक मासका क्षय होवे तब उसीके दिनोंकी गिनतीपूर्वक ओलियोंकी आश्विन पूर्णिमा से १५ दिने दीवाली तथा श्रीवीरप्रभुके निर्वाण कल्याणक तथा २० वें दिन ज्ञानपंचमी और ३० वें दिन कार्तिक पूर्णिमा से चौमासा पूरा होनेसे मुनि विहार होताहै इस तरहसे मार्गशीर्ष पौषका भी क्षय होवे तब मौन एकादशी, पौष दशमी वगैरह पर्व तथा और श्रीजिनेश्वर भगवान् के जन्मादि कल्याणकोंकी तपश्चर्यादि कार्य करनेमें आतेहैं ।

अब श्रीजिनेश्वर भगवान्की आज्ञाके आराधक सज्जन पुरुषोंको न्याय दृष्टिसे विचार करना चाहिये कि—क्षयमास के दिनोंमें दीवाली वगैरह वार्षिक वर्ष किये जातेहैं उसी मुजबही श्रीतपगच्छके सबी महाशय करतेहैं इसलिये क्षय मासके दिनोंकी गिनती निषेधकरनेकातो किसीभी महाशय जीने कुछभी परिश्रम न किया । और पर्युषणामें तथा पर्युषणासंबंधी मासिक डेढमासिक तपश्चर्यादि कार्योंमें अधिक मासके दिनोंकी गिनती प्रत्यक्षपने करते हुवेभी दूसरे गच्छ वालीसे द्वेषबुद्धि रखके अधिक मासकी गिनती निषेध करनेके लिये उत्तम भाषणोंसे कुयुक्तियोंका संग्रह करनेका श्रीतपगच्छके अनेक महाशयोंने खूबही परिश्रम कियाहै सो तो प्रत्यक्षपने स्वगच्छाग्रहके इटवाद का नमूनाहै सो इस

[४४६]

बातको इस ग्रन्थके पढ़नेवाले सज्जन स्वयं विचार लेंगे ।

और अधिक मासको कालचूला कहते हुए भी नपुंसक लिखते हैं सोभी श्रीअनन्ततीर्थकरगणधरादि महाराजोंकी आश्रितना करनेके बरोबरहै तथा विवाहादि मुहूर्तनैमित्तिक संसारिककार्योंके लियेभी उपरमेंही हर्षभूषणजीके लेखमेंसूचना करनेमें आगई हैं ।

और वीशदिनकी ज्ञात पर्युषणाके सिवाय और कार्योंमें अधिकमासको प्रमाण करनेका नहीं दिखता है यह लिखना भी श्रीकुलमंडनसूरिजी का प्रत्यक्षनिध्या है क्योंकि दिनों की पक्षोंकी मासोंकी गिनतीका कार्यमें, चौमासेके वर्षक युगके प्रमाणकी गिनतीका कार्यमें, क्षामणोंके कार्यमें, सामायिक प्रतिक्रमण पौषध देवपूजा उपवास शीलव्रतादि नियमोंका प्रत्याख्यानोके गिनतीका कार्यमें चौमासी छमासी वर्षों तथा वीसस्थानकजीके और पर्युषणादि तप केदिनों की गिनतीके कार्योंमें और आगमोके योग ब्रह्मादि कार्योंमें, अधिक मासके दिनोंकी गिनती को प्रमाण गिननेमें आतीहै सो तो प्रत्यक्ष अनुभव की प्रसिद्ध बात है । और एकजगह अधिकमासको कालचूलालिखते हैं दूसरी जगह नपुंसक लिखते हैं तथा एक-जगह श्रीवृहत्कल्पवृणि श्रीनिशीषवृणिकेपाठोंसे 'चेव' निश्चय अधिकमासको गिनतीकरनेका लिखते हैं दूसरी जगह नहीं गिननेका लिखते हैं इसतरहसे बालजीवोंको भ्रममें गेरनेवाले पूर्वोपरविरोधि (विसंवादी) लेखलिखते कुछभीविचार न किया सोभी कलयुगीविद्वत्ताका नमूना हैं ।

और आगे फिरभी जो जैन पंचाङ्गानुसार प्राचीन कालमें अभिवर्द्धितसम्बत्सरमें वीशदिने अर्थात् आषणशुदी

[४४७]

पंचमीको ज्ञात पर्युषणा वार्षिककृत्यादिपूर्वक करनेमें आती थी, ससीको वर्षाकालकी स्थितिरूप गृहस्थी लोगोंके आगे कहने मात्रही वार्षिककृत्योंरहित ठहरानेके लिये और अभि वृद्धितमेंभी ५० दिने भाद्रपदमें वार्षिक कृत्यों सहित पर्युषणाको ठहरानेकेलिये चूर्णिकारादि महाराजोंके अभिप्रायको समझे बिनाही उलटा विरुद्धार्थमें और अधिक मास संबंधी पूर्वापरकी सब व्याख्याके पाठोंको छोड़करके अधिकरण दोषोंके तथा उपद्रवादिके संबंध वालेअधूरेपाठ लिखके फिर चंद्रसम्बत्सर में ५० दिन की तरह अभिवृद्धितसंबत्सर में २० दिने ज्ञात पर्युषणा दिखाकरके ५० दिनकी ज्ञात पर्युषणामें तो वार्षिक कृत्य करनेकी सिद्ध करतेहैं परंतु २० दिनकी ज्ञात पर्युषणाको अपनीमतिकल्पमासे गृहस्थी लोगोंके आगे वर्षास्थितिरूप ठहराकर वार्षिक कृत्योंको निषेध करतेहैं सो कदापि नहीं होसकताहै क्योंकि ५० दिनकी ज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्योंकी तरह २० दिनकी ज्ञात पर्युषणामें भी वार्षिक कृत्य शास्त्रानुसार तथा युक्तिपूर्वक स्वयं सिद्ध है इसका सविस्तार निर्णय तीनों महाशयोंके लेखोंकी समीक्षामें इसही ग्रन्थके पृष्ठ १०७ से ११७ तक अच्छी तरहसे खप गया है इस लिये जो श्रीकुलमंडन सूरिजीने २० दिनकी पर्युषणाको वार्षिक कृत्यों रहित ठहरानेके लिये मास वृद्धि के अभाव संबंधी पाठोंको मास वृद्धिहोती भी अधूरे अधूरे लिखके वाल जीवोंको दिखायेहै सो आत्मार्थिपनेका लक्षण नहींहै । सोतो व्यायहृष्टिवाले सज्जन स्वयंविचार लेवेंगे ।

और अभिवृद्धितमें बीस दिने ज्ञात पर्युषणा वार्षिक कृत्यों पूर्वक करनेसे । प्रथम बीस वर्ष ११ । ११ मासे तथा

[४४८]

दूसरे पंचम वर्ष १३।१३ मासे और तीसरे वर्ष १२ मासे वार्षिक कृत्य होनेका दिखाकर पांच वर्षोंके ६० मास श्रीकुलसंज्ञन सूरिजी लिखतेहैं सोला श्रीअनंत तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञाकोप्रत्यक्षपने उत्थापनकरके उत्सूत्रभाषण करनेवाले बनते हैं क्योंकि अभिवर्द्धितमें वीशदिने व्रातणमें पयुषणा करनेसे जैनशास्त्रानुसारतो प्रथम चौथे वर्ष १३।१३ मासे और दूसरे तीसरे पंचमें वर्ष १२।१२ मासे वार्षिक कृत्य होनेका बनताहै और पांच वर्षोंके ६२ मास श्रीअनंत तीर्थंकर गणधरादि महाराजोंकी आज्ञानुसार जैनशास्त्रोंमें प्रसिद्धहै।

और मासवृद्धिसे तेरहमासहोतेभी १२ मासके क्षामणे लिखतेहैं सोभी अज्ञानताका सूचकहै क्योंकि मासवृद्धि होने से तेरहमास कवीशपक्षकेक्षामणे कियेजातेहैं इसका निर्णय सातवे स० ले० समीक्षामें इसही ग्रन्थ के पृष्ठ ३६३ से ३७८ तक छपगयाहै सो पढ़नेसे सब निर्णय होजावेगा।

और जैनशास्त्रोंमें मुख्य करके एकबातकी व्याख्या करतेहैं उसीकेही अनुसार यथोचित दूसरी बातोंके लियेभी समझा जाताहै इसलिये जिन जिन शास्त्रोंमें चंद्रसंवत्सर में ५० दिने तथा अभिवर्द्धित संवत्सरमें २० दिने ज्ञात पयुषणा कही सो यावत् कार्तिक तक खुलासा लिखाहै जिसपर विवेक बुद्धिसे विचार किया जावेतो जैसे चंद्रसंवत्सरमें ५० दिन जहां पूरे होवे वहां स्वभावसेही भाद्रपद समझतेहैं तैसेही अभिवर्द्धित संवत्सरमें २० दिन जहां पूरे होवे वहां भी स्वभाविक रीतिसे व्रातण समझना चाहिये। और चार मासके १२० दिनका वर्षा कालमें ५० दिने पयुषणा करनेसे

[४४९]

पिछाही कार्तिक तक १० दिन स्वभावसेही रहतेहै तैसेही २० दिने पर्युषणा करनेसे भी पिछाही कार्तिक तक १०० दिनभी स्वयं समझना चाहिये तथापि चंद्र संवत्सरमें भाद्रपदकी तरह अभिवर्द्धित संवत्सरमें श्रावणमें पर्युषणा करनेका तथा पर्युषणाके पिछाही १० दिनकी तरह १०० दिन रहनेका कहां कहा है, ऐसी प्रत्यक्ष अज्ञानताकी सूचक कुयुक्ति करके बाल जीवोंको भ्रमानेसे कर्म बंधके सिवाय और कुछभी लाभ नहीं होने वाला है । क्योंकि जिन जिन शास्त्रों में चंद्रसंवत्सरमें ५० दिने भाद्रपदमें पर्युषणाकरके पिछाही १० दिन कार्तिक तक का लिखा है और अभिवर्द्धितमें २० दिने पर्युषणा करनेका भी लिखदिया है उसी शास्त्र पाठोंके भावार्थ से अभिवर्द्धितमें २० दिने श्रावणमें पर्युषणा करनेका और पर्युषणा के पिछाही १०० दिन रहनेका स्वयं सिद्ध है सोतो अल्प मतिवालेभी समझ सकते हैं ।

और फिरभी २० दिनकी ज्ञात तथा अनिश्चय और प्रसिद्ध पर्युषणामें वार्षिक कृत्यों का नियोजन करनेके लिये आषाढ पूर्णिमाकी अज्ञात तथा अनिश्चय और अप्रसिद्ध पर्युषणामें वार्षिककृत्यकरनेका दिखातेहै सोभी अज्ञानताका सूचक है क्योंकि वर्षकी पूरतीहुये बिना तथा अज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्य कदापि नहीं होसकते हैं किन्तु वर्षकी पूर्तिहोनेसे ज्ञात पर्युषणामें वार्षिक कृत्य होते हैं और अधिक मास होनेसे श्रावणमें १२ मासिक वर्ष पूरा होजाता है इसीलिये श्रावणमें ज्ञातपर्युषणा करके वार्षिक कृत्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादिक कार्य करनेमें आते हैं ।

और मासशुद्धि होतेभी भाद्रपदमें पर्युषणा स्थापन करने के लिये श्रीजीवाभिगमजी सूत्रका एकपदमात्र लिखदिखाया

[४५०]

सोतो अपनी विद्वत्ताकी हासी कराने जैसा किया है क्योंकि वहांतो श्रीनन्दीश्वरध्वीपाधिकारे जिन चैत्योंकी व्याख्या करके वहां बीमासीमें तथा संवत्सरीमें और श्रीजिनेश्वर भगवान् के जन्मादि कल्याणकोंमें भुवनपति बगैरह बहुत देवोंको अठाई उच्छ्व करनेका लिखा है परन्तु वहां भाद्रपदकातो नाममात्र भी नहीं है सो सूत्र वृत्ति सहित उपाहुवा श्रीजीवा भिगमजीके पृष्ठ ८४३ में खुलासा पूर्वक अधिकार है इस लिये ऐसे ऐसे पाठोंको लिखके बाल जीवोंको भ्रममें गेरनेसे तो अपने कल्पित बातकी पुष्टि कदापि नहीं हो सकती है सो विवेकी पाठक गणभी स्वयं विचार सकते हैं।

और श्रीकुलमंडन सूरिजीके उपरोक्त लेखके अनुसार ही धर्मसागरजीनेभी तत्करवृत्ति करके धर्म धूर्ताईसे निजको तथा गच्छ कदाग्रही बालजीवोंको दुर्लभबोधिका कारण करनेके लिये 'तत्त्वतरंगिणी' ग्रन्थका नाम रखके वास्तविक में 'कृत्यक्रियोंकी भ्रमजाल' बनाकर उसीमें पर्युषणा संबंधी मिथ्यात्वका कारणरूप जो लेख लिखा है जिसका निर्णय तथा 'प्रवचनपरिक्षा' नामक ग्रन्थमेंभी तत्सूत्र भाषणोंके संग्रहसे कृत्यक्रियों करके पर्युषणा संबंधी जो लेख लिखा है जिसका निर्णय तो ऊपरके लेखको तथा इस ग्रन्थको विवेक बुद्धिसे पढ़नेवाले तत्त्वज्ञ पुरुष स्वयंही समझ लेवेगे:—

अब पाठकगणको मेरा इतनाही कहना है कि—श्रीजैन शास्त्रोंमें अधिक मासको कालचूलाकी जो उत्तम ओपमा देते हैं उसीके दिनोकी गिनती करनेमें आती है तथा लौकिक शास्त्रानुसार और प्रत्यक्ष पने बर्तावकी सत्ययुक्तियोंके अनुसार करकेभी अधिकमासके दिनोकी गिनती क-

[४५१]

रनेमें आती है जिसका विस्तार पूर्वक इस ग्रन्थमें उपगया है इसलिये कालचूला वगैरहके बहाने करके कुयुक्तियों से उसीके दिनेश की गिनती निषेध करने वाले श्रीजिनेश्वर भगवानकी आज्ञाके लोपी उत्सूत्रभाषक बनते हैं, सो तो इस ग्रन्थके पढ़ने वाले तत्त्वज्ञ स्वयं विचार सकते हैं इसलिये श्रीजिनेश्वरभगवानकी आज्ञाके आराधन करनेकी इच्छावाले जो आत्माधी सज्जन होवेंगे सो तो अधिकमासके दिनोंकी गिनती निषेध करनेका संसारवृद्धिका हेतुभूत उत्सूत्र भाषणका साहस कदापि नहीं करेंगे, और भव्यजीवोंको इस ग्रन्थके पढ़ करके भी अधिकमासके निषेध करने वालोंका पक्ष ग्रहण करके अभिनिवेशिक मिथ्यात्वसे बालजीवोंको कुयुक्तियोंके भ्रममें गेरनेका कार्य करनाभी उचित नहीं है और गच्छका पक्षपात छोड़कर न्याय दृष्टिसे इस ग्रन्थका अवलोकन करके अधिकमासके दिनोंकी गिनती पूर्वकही पर्युषणादि धर्म व्यवहारमें वर्ताव करना सोही सम्भवत्वधारी आत्माधिगियोंको परम उचित है इतनेपरभी जो कोई अपने अन्तर मिथ्यात्व के जोरसे अज्ञ जीवोंको भ्रमानेके लिये अधिक मासकी गिनती निषेध संबंधी कुयुक्तियोंका संग्रह करके पूर्वापरका विचार किये बिनाही मिथ्यात्वका कार्य करेगा तो उसीका निवारण करनेके लिये और भव्य जीवोंके उपकारके लिये इस ग्रन्थ कारकी लेखनी तैयारही समझना ।

अब पर्युषणासंबंधी लेखकी समाप्तिके अवसरमें पाठक गणको मेरा इतनाही कहना है कि श्रीतपगच्छके विद्वान् कहलाते जोजोमहाशयजी श्रीअनंततीर्थकर गणधरादि सहाराजोंके बिसदुर्गमें पंचांगीके अनेक प्रमाणोंको प्रत्यक्षपने

[४५२]

उत्पादनकरके उत्सूत्रभाषणोंसे कुयुक्तियोंके संग्रह पूर्वक अधिकमासको कालचूला गैरहके बहानेसे निषेधकरने संबंधी-कल्पकिरणावली तथा सुखबोधिकावृत्तिगैरहके लेखों को हरषर्षे श्रीपर्युषणापर्वके दिनोंमें छांचते हैं जिसको गच्छकदा ग्रही पक्षपाती अज्ञानी व श्रद्धापूर्वक सत्यमानते हैं ऐसे उपदेशक तथा श्रोता श्रीजिनाज्ञाके आराधक पंचांगीकी श्रद्धावाले सम्पत्तवी आत्मायी हैं ऐसा कोईभी विवेकीतत्त्वज्ञ तो नहीं कहसकेगे । क्योंकि श्रीअनंत तीर्थंकर गणधरादिसहस्र-राजोंका प्रमाण कियाहुवा कालचूलाकी श्रेष्ठ ओपमा वाला अधिकमासको निषेधकरने वालोंसे प्रत्यक्षपने श्रीजिनाज्ञा का धिराधकपना होनेसे मिथ्यात्वसिद्ध होता है सो तत्त्वज्ञ स्वयंविचार सकते हैं । इसलिये मिथ्यात्वसे संसारमें परि-भ्रमण करनेका भय करने वाले तथा श्रीजिनाज्ञामुजब सतने की इच्छा करने वाले विवेकियोंको तो श्रीजिनाज्ञा विरुद्ध उपरोक्त कार्यकरना तथा उसी मुजब श्रद्धा रखना उचित नहीं है किंतु श्रीजिनाज्ञामुजब पर्युषणाके व्याख्यान सुनने वाले भव्यजीवोंके आगे अधिक मासकी गिनती करनेका शास्त्र प्रमाणपूर्वक सिद्धकरके दूसरे आवणमें वा प्रथम भाद्रपदमें श्रीपर्युषणा पर्वका आराधन करना तथा दूसरोंसे करना सोही आत्महितकारी है सो तत्त्वदृष्टिसे विचारना चाहिये:-

इति अधिक मासके निषेधक उत्सूत्र भाषी कुयुक्तियों
करनेवाले सातवें महाशयजी गैरहोंके पर्युषणा
सम्बन्धि अज्ञ जीवोंको मिथ्यात्वमें गेरनेके
लेखोंकी संक्षिप्त समीक्षा समाप्ता ॥



9/1